श्रीभागवत पत्रिकाके ४५ वें वर्षकी
विषय सूची

विषय	संख्या/पृष्ठ
अर्थ-पञ्चक	—१/५
अवधूत गीता	—१/१४, २/३९
अक्षय तृतीयाके उपलक्ष्यमें	—३/६४
अपनी बुद्धिमत्ता पर अहङ्कार मत करो	—८/१७८
असत्सङ्ग	—९/१९५
आचार और प्रचार	—३/५२
ईश-विमुखताका परिणाम और उसे दूर करनेका उपाय	—११/२४८
उड़त गुलाल, लाल भये बदरा	—२/४२
उडुपीमें श्रीचैतन्य महाप्रभु	—१२/२७१
उपनिषद्-उपाख्यान	—४/८९
ऐकान्तिक और व्यभिचारी	—७/१४९
कीर्त्तनका अधिकारी कौन है	—१/४
कलि	—५/१००, ६/१२३
कुछ सोचने-समझनेकी बातें	—१२/२६९
कृष्णकी गौ सेवा, श्री	—११/२५३
कृष्णचन्द्राष्टकम्, श्री	—१०/२१७
कृष्णस्तोत्रम्, श्री	—११/२४१, १२/२६५
गिरिधारी गौड़ीय मठ, श्री	—२/४७
गुरु-तत्त्व, श्री	—१२/२७४
गौरतत्त्व, श्री	—६/१३२, ७/१५७
गौराङ्ग-सुधा, श्री	—१/८, २/३४, ३/५६, ४/८०, ५/१०९, ६/१३५, ७/१५९, ८/१८५, ९/२०७, १०/२२७, ११/२५७, १२/२७८
चैतन्यदेव, श्री	—९/१९८, १०/२२२
दुर्नीति, सुनीति और भक्तिनीति	—४/९१
नवनीतप्रियाष्टकम्, श्री	—६/१२१
नवयुवद्वन्द्व-दिदृक्षाष्टकम्, श्रीश्री	—४/७३
परहिंसा और दया	—८/१७१
पुरुषोत्तम धाममें श्रीपुरुषोत्तम व्रत, श्री	—७/१६६
पुरुषोत्तम मास	—४/८५
पुरुषोत्तम मासके कृत्य, श्री	—५/१०६
प्रचार कर मथुरा प्रत्यागमनके उपलक्ष्यमें	—६/१४०
प्रयोजन विचार	—४/७५
प्रश्नोत्तर	—१०/२१९, ११/२४३
ब्रह्मकुण्ड (श्रीगोवर्द्धन), श्री	—७/१६७
भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके प्रश्न, श्री	—११/२५०
भगवान्‌की अप्रकट लीलाका रहस्य	—२/३१, ३/५३, ४/७७, ५/१०३, ६/१२६
मनभावन द्वन्द्व	—३/६०
मानव सर्वश्रेष्ठ क्यों है	—८/१७३
मुकुन्दमुक्तावली, श्री	—१/१, २/२५, ३/४९
रघुनाथदास गोस्वामी, श्री	—२/२८
राधाकुण्डाष्टकम्, श्री	—९/१९३
राधिकाष्टकम्, श्री	—७/१४५
लघु-भागवतामृत, श्री	—७/१४७
वदन्ति तत्तत्त्वविदः	—८/१८१
वास्तव दीक्षा	—९/२०२
वास्तविक भारतवासी कौन है	—१०/२३२
विविध संवाद	—१/२२, ३/६६, ६/१४१, ७/१६४, ८/१८९, ९/२११, १०/२३६, ११/२६१, १२/२८१
विदेश प्रचार संवाद	—४/९४, ५/११३
विषय-सूची	—१२/२८८
वृन्दावनाष्टकम्, श्री	—८/१७०
व्रजमण्डल परिक्रमा २००१, श्री	—८/१९१
श्रद्धा	—१२/२६७
श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराजजीका पत्र	—१/२४
श्रीमद्भागवतसे अधिक महत्त्वपूर्ण	—६/१२८
श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय	—७/१५१
स्वनियम-दशकम्, श्री	—५/९७

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ चैत्र मास, सन् २००१, १० मार्च — ९ अप्रैल
{ संख्या १

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

[श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्]

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम्।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम्।।१।।

जिनका वर्ण नवीन जलधरके समान है, जिनके कानोंमें चम्पाके फूल सुशोभित हैं, खिले हुए पद्मके समान जिनका मुख है, जिसपर सदा मन्दहास्य खेलता रहता है, जिनके वस्त्रकी कान्ति स्वर्णके समान है, जो मस्तक पर मोरमुकुट धारण किये रहते हैं, सबके साररूप उन श्रीयशोदाकुमारको मैं नमन करता हूँ।।१।।

मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः करविनिहितकन्दुः बल्लवीप्राणबन्धुः।
वपुरुपसृतरेणुः कक्षनिक्षिप्तवेणुर्वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः।।२।।
ध्वस्तदुष्टशङ्खचूड बल्लवीकुलोपगूढ भक्तमानसाधिरुढ़ नीलकण्ठपिच्छचूड।
कण्ठलम्बिमञ्जुगुञ्ज केलिलब्धरम्यकुञ्ज कर्णवर्त्तिफुल्लकुन्द पाहि देव मां मुकुन्द।।३।।
यज्ञभङ्गरुष्टशक्रनुन्नघोरमेघचक्रवृष्टिपूरखिन्नगोपवीक्षणोपजातकोप ।
क्षिप्रसव्यहस्तपद्मधारितोच्चशैलसद्मगुप्तगोष्ठ रक्ष रक्ष मां तथाद्य पङ्कजाक्ष।।४।।
मुक्ताहारं दधदुडुचक्राकारं सारं गोपीमनसि मनोजारोपी।
गोपी कंसे खलनिकुरम्बोत्तंसे वंशे रङ्गी दिशतु रतिं नः शार्ङ्गी।।५।।
लीलोद्दामा जलधरमालाश्यामा क्षामाः कामादभिरचयन्ति रामाः।
सा मामव्यादखिलमुनीनां स्तव्या गव्यापूर्त्तिः प्रभुरघशत्रोर्मूर्त्तिः।।६।।
पर्ववर्तुलशर्वरीपतिगर्वरीतिहराननं नन्दनन्दनमिन्दिराकृतवन्दनं धृतचन्दनम्।
सुन्दरीरतिमन्दिरीकृतकन्दरं धृतमन्दरं कुण्डलद्युतिमण्डलप्लुतकन्धरं भज सुन्दरम्।।७।।
गोकुलाङ्गणमण्डनं कृतपूतनाभवमोचनं कुन्दसुन्दरदन्तमम्बुजवृन्दवन्दितलोचनम्।
सौरभकरफुल्लपुष्करविस्फुरत्करपल्लवं दैवतव्रजदुर्लभं भज बल्लवीकुलवल्लभम्।।८।।
तुण्डकान्तिदण्डितोरुपाण्डुरांशुमण्डलं गण्डपालिताण्डवालिशालिरत्नकुण्डलम् ।
फुल्लपुण्डरीकखण्डकल्पितमाल्यमण्डनं चण्डबाहुदण्डमत्र नौमि कंसखण्डनम्।।९।।
उत्तरङ्गदङ्गरागसङ्गमातिपिङ्गलस्तुङ्गशृङ्गसङ्गिपाणिरङ्गनातिमङ्गलः ।
दिग्विलासिमल्लिहासिकीर्त्तिवल्लिपल्लवस्त्वां स पातु फुल्लचारुचिल्लिरद्य बल्लवः।।१०।।

जिनके मुखकी अनुपम शोभा शरदऋतुके पूर्ण चन्द्रका पराभव करती है, जो क्रीड़ारस और लावण्यके समुद्र हैं, जो हाथमें कन्दुक लिए रहते हैं तथा गोपियोंके प्राणबन्धु हैं, जिनका मङ्गलविग्रह गोधूलिसे धूसरित रहता है, जो बगलमें वंशी लिए रहते हैं और गौएँ जिनकी वाणीके वशीभूत रहती हैं, वे नन्दनन्दन मेरी रक्षा करें।।२।।

हे मुकुन्द! आपने शंखचूड़–जैसे दुष्टका बात–की–बातमें संहार कर दिया। भाग्यवती गोपरमणियाँ बड़े ही प्रेमसे आपको हृदयसे लगाती हैं। भक्तोंकी मानसभूमिपर आप सदा ही आरूढ़ रहते हैं। मयूरपिच्छके द्वारा आप अपने केशपाशको सजाये रहते हैं। आपके कण्ठदेशमें मनोहर गुञ्जाके हार लटके रहते हैं। अपनी रसमयी क्रीड़ाओंके लिए आप रमणीय कुञ्जोंका आश्रय लेते हैं और अपने कानोंमें खिले हुए कुन्दके फूल खोंसे रहते हैं। देव! आप मेरी रक्षा करें।।३।।

हे कमलनयन! यज्ञ बन्द कर दिये जानेसे रुष्ट हुए इन्द्रने भयङ्कर मेघमण्डलीको प्रेरित कर जब व्रजभूमिपर मूषलाधार वर्षा प्रारम्भ की, उस समय इस अतर्कित विपत्तिसे दुःखी हुए गोपालोंको देखकर आपके क्रोधकी सीमा नहीं रही और आपने तुरन्त अपने बाँये करकमलपर

उत्तुङ्ग गोवर्द्धन गिरिको धारणकर उसीकी छत्रछायासे सम्पूर्ण ब्रजमण्डलको उबार लिया, उसी प्रकार आज मुझ अनाथकी भी रक्षा करें।।४।।

जो अपने वक्षःस्थलपर नक्षत्रमण्डलीके समान मोतियोंका बहुमूल्य एवं श्रेष्ठ हार धारण किया करते हैं, जो गोपाङ्गनाओंके चित्तमें प्रेमका सञ्चार करते रहते हैं, दुष्टमण्डलीका शिरोभूषण कंस जिनके क्रोधका शिकार बन गया और जिनकी वंशीपर विशेष प्रीति है, वे कृष्ण हमें अपने दुर्लभ प्रेमका दान करें।।५।।

स्वच्छन्द क्रीड़ामें रत रहनेवाली मेघमालाके समान श्याम, गोपबालाओंको प्रेम-व्याधिसे जर्जर कर देनेवाली, अखिल मुनिमण्डलीके द्वारा स्तवनके योग्य एवं दूध, मक्खन आदि गव्य पदार्थोंसे पूर्ण तृप्तिका अनुभव करनेवाली भगवान अघसूदन श्रीनन्दनन्दनकी सर्वैश्वर्यपूर्ण मञ्जुलमूर्त्ति मेरी रक्षा करे।।६।।

जिनका मनोहर मुखमण्डल पूर्णिमाके चन्द्रमाके गर्वको चूर्ण कर देता है, भगवती लक्ष्मी जिनके चरणोंका सदा ही वन्दन किया करती हैं, जो अपने श्रीविग्रहपर दिव्यातिदिव्य चन्दनका लेप किए रहते हैं, जो व्रजसुन्दरियोंका प्रेमोपहार स्वीकार करनेके लिए गिरिराजकी कन्दराओंको मन्दिर बना लेते हैं, घनघोर वर्षासे व्रजको बचानेके लिए जिन्होंने गोवर्द्धन गिरिको लीलासे ही अपने करकमलपर धारण कर लिया है एवं जिनकी ग्रीवा चमचमाते हुए कुण्डलोंके प्रभामण्डलसे परिव्याप्त रहती है, उन श्यामसुन्दर नन्दनन्दनका ही निरन्तर सेवन करते रहो।।७।।

जो गोकुलके प्राङ्गणको अपनी मनोमुग्धकारी लीलाओंसे मण्डित करनेवाले, पूतना-जैसी राक्षसीको जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाके लिए छुड़ा देनेवाले हैं, जिनकी दन्तावली कुन्दपङ्क्तिके समान शुभ्र एवं मनोहर है, जिनके विशाल लोचन अम्बुजवृन्दके द्वारा वन्दित हैं, जिनके करपल्लव सौरभके निधान फुल्लपङ्कजोंके समान शोभायमान हैं और जिनका दिव्यदर्शन देवताओंके लिए भी दुर्ल्लभ है, उन गोपीजनवल्लभ भगवान श्रीकृष्णका सदा स्मरण करते रहो।।८।।

जिनके मनोहर मुखमण्डलकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्र-मण्डलके गर्वको भी खण्डित करती रहती है, रत्ननिर्मित कुण्डल जिनके गण्ड-मण्डल पर ताण्डव करते रहते हैं, विकसित कमलकी मालासे जिनका वक्षस्थल सदा मण्डित रहता है और जिनके बाहुदण्ड शत्रुओंके लिए बड़े ही प्रचण्ड हैं, उन कंससूदन भगवान श्रीकृष्णकी मैं स्तुति करता हूँ।।९।।

उठती हुई तरङ्गोंके समान अङ्गरागके लेपसे जिनकी अङ्गकान्ति पीताभ हो गयी है, जो हस्तकमलमें लम्बा-सा सींग धारण किए हुए हैं, जो व्रजाङ्गनाओंकी मण्डलीके लिए अत्यन्त मङ्गलरूप हैं, जिनकी कीर्त्तिवल्लीके पल्लव दिशाओंको मण्डित करनेवाली मल्लिकाके पुष्पोंका परिहास करते हैं और जिनकी कमनीय भ्रूलताएँ कान्तिसे उल्लसित रहती हैं, वे वल्लवकुमार आज आपकी रक्षा करें।।१०।। ❑

कीर्त्तनका अधिकारी कौन है?

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

कीर्त्तनका प्रभाव

नवधा भक्तिके अन्तर्गत कीर्त्तनाख्या भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। दूसरे आठ प्रकारके भक्ति–अङ्ग कीर्त्तनाख्या भक्तिके साथ ही साधित होते हैं। कृष्ण–कीर्त्तन पापोंसे मलिन हुए जीवोंके हृदयरूपी दर्पणको साफ कर देते हैं, भवरूपी महादावाग्निको बुझा देते हैं, जीवोंके परम मङ्गलरूप कल्याण–किरणोंका विस्तार करते हैं; वे अप्राकृत अनुभूतिके प्राण हैं, जीवोंके कृष्णसेवानन्दको बढ़ाते हैं, पद–पद पर पूर्ण–अमृत अर्थात् प्रेमका आस्वादन कराते हैं तथा सेवामृत–समुद्रमें सबको निमज्जित कराते हैं।

कृष्ण कीर्त्तनकी योग्यता

कृष्णका कीर्त्तन कृत्रिमरूपसे नहीं होता। कीर्त्तनकारी अपनी शुद्ध अप्राकृत बुद्धि द्वारा चिन्मय कृष्णनामका केवल सेवोन्मुख होकर ही कीर्त्तन कर सकता है। जहाँ गायककी वृत्ति अन्याभिलाषमयी (कृष्णसेवाके अतिरिक्त दूसरी अभिलाषाओं वाली) या कर्म–ज्ञान द्वारा आच्छादित होती है, वहाँ कीर्त्तन या सङ्गीत भक्तिका अङ्ग नहीं रह जाता। इसलिए श्रीमन्महाप्रभुने जीवोंके लिए उपदेश किया है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः।।

(शिक्षाष्टक–३)

सब प्रकारके प्राकृत अहङ्कारसे रहित होकर अति तुच्छ तृणसे भी अपनेको तुच्छ (सुनीच) जानकर, वृक्षकी भाँति सहिष्णु होकर, अपनेको सब प्रकारके जड़ीय अहङ्कारसे मुक्त कर तथा दूसरोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हुए अर्थात् प्राकृत अभिमानका सम्मान करते हुए जीवको निरन्तर कृष्णनाम कीर्त्तन करना चाहिए। प्राकृत अभिमानके वश होनेसे, अपनेको प्राकृत समझनेसे, अपनेको किसी प्राकृत वस्तुके अधीन समझनेसे, प्राकृत सम्मानकी लालसा रहने पर अथवा दूसरी प्राकृत वस्तुओंका असम्मान करने पर अप्राकृत हरिनामका निरन्तर कीर्त्तन नहीं किया जा सकता।

कीर्त्तनकी अयोग्यता

जो प्राकृत उच्च कुलमें पैदा होनेके कारण अपनेको बड़ा समझते हैं, जो अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर अपनेको धनी–मानी समझते हैं, जो अपने प्राकृत रूपके मदमें इठलाते फिरते हैं, जो पग–पग पर अपनी प्राकृत प्रशंसाके पीछे पड़े रहते हैं, वे कभी भी अकिञ्चनकी भाँति निष्कपट होकर श्रीकृष्णनाम कीर्त्तन नहीं कर सकते।

प्राकृत सुर–तालमें मुग्ध व्यक्ति नामकीर्त्तनके लिए अयोग्य है

जो सुर, लय, ताल और मान आदिके सौन्दर्य द्वारा आच्छादित होकर नामका रसास्वादन करनेसे वञ्चित हैं, वे हरिकीर्त्तनके अनधिकारी हैं। ऐसे लोग हरिकीर्त्तन नहीं कर सकते। जो परम श्रद्धापूर्वक कृष्णका कीर्त्तन करनेमें उत्साहयुक्त नहीं हैं, वे भी कीर्त्तनके

अनधिकारी हैं। जो अवान्तर उद्देश्यसे प्रतिष्ठा आदिके लिए नाम-कीर्त्तनमें दम्भ प्रकाश करते हैं, वे नाम-कीर्त्तनके अयोग्य हैं। केवल जड़के प्रति उदासीन, अप्राकृत सेवा-परायण एवं निष्कपट हृदयवाले सज्जन ही नामकीर्त्तनके यथार्थ अधिकारी हैं। ❑

अर्थ-पञ्चक

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद् रामानुजाचार्यके प्रशिष्य श्रीलोकाचार्य इस ग्रन्थके रचयिता हैं। संसारी जीवोंको तत्त्वज्ञानके लिए यह अर्थपञ्चक नितान्त आवश्यक है। स्वस्वरूप, परस्वरूप, पुरुषार्थ-स्वरूप, उपायस्वरूप और विरोधीस्वरूप— इन पाँच अर्थोंका ज्ञान और उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है—

(क)जीवका स्वरूप— (१) नित्य, (२) मुक्त, (३) बद्ध, (४) केवल और (५) मुमुक्षु।

(ख)ईश्वरका स्वरूप— (१) पर, (२) व्यूह, (३) विभव, (४) अन्तर्यामी और (५) अर्चावतार।

(ग)पुरुषार्थ-स्वरूप— (१) अर्थ, (२) धर्म, (३) काम, (४) आत्मानुभव और (५) भगवदनुभव।

(घ)उपायस्वरूप— (१) कर्म, (२) ज्ञान, (३) भक्ति, (४) प्रपत्ति और (५) आचार्याभिमान।

(ङ)विरोधी स्वरूप— (१) स्वरूप-विरोधी, (२) परत्व-विरोधी, (३) पुरुषार्थ-विरोधी, (४) उपाय-विरोधी और (५) प्राप्य-विरोधी।

जीवका स्व-स्वरूप

(१)नित्यजीव—सर्वदा संसार-सम्बन्ध-दोषसे रहित, भगवदानुकूल्यमात्र भोगयुक्त, वैकुण्ठनाथके मन्त्रणायोग्य ईश्वर-नियोग सृष्टि, स्थिति और संहार करनेमें समर्थ, सभी अवस्थाओंमें ईश्वरकी सेवामें नियुक्त विश्वक्सेन आदि अमरवृन्द नित्यजीव हैं।

(२)मुक्तजीव—भगवानकी कृपासे जिनका प्रकृति-सम्बन्धजनित क्लेशमल दूर हो गया है। भगवदानन्दसे उत्फुल्ल, स्तवपरायण, सन्तोषानन्दसे भरपूर वैकुण्ठमें स्थित मुनिगण मुक्तजीव हैं।

(३)बद्धजीव—पाञ्चभौतिक, अनित्य सुख-दुःखका अनुभव करनेवाले, आत्म-दर्शन एवं आत्मस्पर्शनमें अयोग्य, अशुद्ध, अज्ञान, अन्यथा ज्ञान और विपरीत ज्ञानजनक देहमें आत्मबुद्धियुक्त, स्वदेह पोषणमें सब समय व्यस्त, वर्णाश्रमधर्मके विरुद्ध, असेव्यकी सेवा, भूतहिंसा, परस्त्री और पर-द्रव्यका अपहरण करके संसारवर्द्धक भगवद् विमुख चेतन-समूह ही बद्धजीव हैं।

(४)केवल जीव—केवल जीव अकेला होता है। भूख-प्याससे पीड़ित होकर अन्य वस्तुके अभावमें अपनेको ही आप खाते-पीते हैं। योग आदि वासनार्जित कैवल्यप्राप्त जीव ही केवल जीव हैं।

(५)मुमुक्षु जीव— मुमुक्षु जीव संसार-दावाग्निसे तप्त होकर सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिए ज्ञानद्वारा यथार्थ आत्मविवेक लाभ करके प्रकृतिको दुःखाश्रय हेय-पदार्थसमूह-स्वरूप,

आत्माको प्रकृतिसे परतत्त्व-स्वरूप और स्वयंप्रकाश, स्वतःसुखी, नित्य अप्राकृतस्वरूप जानते हैं। आनन्दमय परमात्मविवेकमें अशक्ततावश प्रकृतिके अल्परसमें ही अपनेको पहले दुःखी मानते हैं। आत्म-प्राप्ति साधक ज्ञानयोग निष्ठाफलस्वरूप आत्मानुभवको ही एकमात्र पुरुषार्थ मानकर सिद्ध अप्राकृत शरीरकी प्राप्ति तक इस जगतमें वर्त्तमान रहते हैं। मुमुक्षु जीव दो प्रकारके हाते हैं—उपासक और प्रपन्न।

ईश्वरका परस्वरूप

(१)परतत्त्व—पर शब्दसे परमेश्वरका बोध होता है। नित्य वर्त्तमान आदि-ज्योतिरूप पर-वासुदेव।

(२)व्यूह-तत्त्व—सृष्टि, स्थिति और संहारकर्त्ता सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।

(३)विभव-तत्त्व—राम-कृष्ण आदि अवतार।

(४)अन्तर्यामी-तत्त्व—दो प्रकारके हैं—दासोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट परमात्मा और 'वासुदेव हमारे प्राणस्वरूप हैं'—इस चिन्ता द्वारा विचारवान पुरुषोंके अन्तःकरणमें सर्वाङ्गसुन्दर लक्ष्मीजीके साथ वर्त्तमान परमसुन्दर नारायण।

(५)अर्चावतार—दासोंके अभिमत नाम और रूपविशिष्ट उपास्य मूर्त्ति। सर्वज्ञ होकर भी अज्ञप्राय, सर्वशक्तिमान होकर भी अशक्तप्राय, पूर्णकाम होकर भी सापेक्षप्राय, रक्षक होकर भी रक्ष्यप्राय एवं स्वयं स्वामी होकर भी भक्तके स्वामी-प्राय मन्दिरमें वर्त्तमान रहनेवाले अर्चावतार।

पुरुषार्थ-स्वरूप

(१)धर्म—प्राणि-रक्षाके एकमात्र उपायरूप वृत्तिका नाम धर्म है।

(२)अर्थ—वर्णाश्रमके अनुरूप धन-धान्य संग्रहपूर्वक देवता-पितृ आदि कर्मों और प्राणिरक्षाके विषयमें उत्तम देश, काल और पात्रका विचारकर धर्मबुद्धिसे व्यय करनेका नाम अर्थ है।

(३)काम—कामके दो प्रकार हैं—इहलौकिक और पारलौकिक। पितृ, मातृ, रत्न, धन, धान्य, अन्न, पानीय, दारा, पुत्र, मित्र, पशु, गृह, क्षेत्र, चन्दन, कुसुम, ताम्बूल और वस्त्र आदि पदार्थोंमें शब्द आदि विषयानुभव-जनित सुखकी कामनाको काम कहते हैं।

(४)आत्मानुभव—दुःखनिवृत्तिमात्र अनुभवको केवलात्मानुभव कहते हैं। यही एक प्रकारका मोक्ष है।

(५)भगवदनुभव—भगवदनुभव ही परम पुरुषार्थ लक्षण मोक्षानुभव है। प्रारब्ध कर्म और पुण्य-पापके विनष्ट होने पर 'अस्ति, जायते, परिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यति'—तापत्रयाश्रित इन छः प्रकारके विकारोंसे रहित होने पर भगवत्-स्वरूप आवरणपूर्वक विपरीत ज्ञान-उत्पादक संसार-वर्द्धक स्थूल शरीर परित्याग करके सुषुम्ना नाड़ीके द्वारसे कपाल भेदकर निर्गत होकर सूक्ष्म शरीरमें अर्चिरादि मण्डलमें प्रवेशपूर्वक विरजामें स्नानद्वारा सूक्ष्म शरीर और वासनारेणु दूरकर जीव समस्त प्रकारके तापोंको हरनेवाले श्रीविग्रहका करस्पर्श लाभ करते हैं। तब शुद्धसत्त्वस्वरूप पञ्चोपनिषन्मय ज्ञानानन्दजनक, भगवदनुभवके योग्य तेजोमय अप्राकृत देह प्राप्त होकर किरीटयुक्त अमरोंके बीच महामणि मण्डपमें भू, श्री और लीलादेवीके सहित विराजमान परव्योमनाथको नित्य अनुभवपूर्वक तदीय नित्यसेवामें वर्त्तमान होते हैं।

उपाय-स्वरूप

(१)कर्म—यज्ञ, दान, तप, ध्यान, सन्ध्या-वन्दन,

पञ्चमहायज्ञादि, अग्निहोत्र, तीर्थयात्रा, पुण्यक्षेत्रवास, कृच्छ्रचान्द्रायण, पुण्यनदीमें स्नान, व्रत, चातुर्मास्य, फल-मूलका भोजन, शास्त्राभ्यास, भगवत्समाराधन, जप, तर्पण, कायशोषण और पापनाशादि कार्योंमें शब्द आदि विषय ग्रहणको कर्म कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिरूप अष्टाङ्गयोग भी कर्माङ्ग है।

(२)ज्ञान—आत्मतत्त्वकी आलोचनाका नाम ज्ञान है। इस ज्ञानयोगके साथ ऐश्वर्यका प्रधान स्थान है। हृदय मण्डल और आदित्य मण्डलमें विराजमान सर्वेश्वरका लक्ष्मी सहित पद्म, शङ्ख, चक्र और गदाधारीके रूपमें अनुभव—यह शेषोक्त ज्ञान भक्तियोगका सहायक है।

(३)भक्ति—तैलधाराकी भाँति अविच्छिन्न भगवत्-स्मृतिविस्ताररूप अनुभवको प्रीतिके रूपमें लानेकी योग्य वृत्तिका नाम भक्ति है। भक्तिका स्वरूप यह है कि वह प्रारब्ध कर्मकी निवृत्तिके उपायरूप साध्यसाधन अनुष्ठान द्वारा आत्माका सङ्कोच विकाश करने योग्य होती है।

(४)प्रपत्ति—भक्ति उपाय-स्वरूप होकर भगवद्विषयानुभवरूप जिस उपेय भावको उत्पन्न करती है, उसे प्रपत्ति कहते हैं। प्रपत्ति दो प्रकारकी होती है—आत्मरूप प्रपत्ति और दृप्तरूप प्रपत्ति। भगवानकी अहैतुकी कृपासे शास्त्राभ्यासके द्वारा, आचार्यके उपदेशसे ज्ञान उत्पन्न होने पर भगवदनुभव होता है। उस समय भगवदनुभवके विपरीत देहसम्बन्ध, देश-सम्बन्ध इत्यादि असह्य हो उठने पर श्रीवैकुण्ठनाथकी दयाका ध्यान कर, दूसरी कोई गति न देख कर—'मैं आपका दास हूँ'—इस वाक्यके साथ श्रीवैकुण्ठनाथके शरणागत होकर नमस्कार करके आर्त्ति ज्ञापन करते हुए एकान्तरूपमें अनुगत होने का नाम आर्त्तरूप प्रपत्ति है। दृप्त प्रपत्ति—दृप्त-प्रपन्न-पुरुष स्वर्ग और नरकमें विरक्तिपूर्वक भगवत् प्राप्तिकी आशामें आचार्यके उपदेशसे उपाय ग्रहणपूर्वक विपरीत प्रवृत्तिको दूर कर वेद-विहित वर्णाश्रमका अनुष्ठान वाचिक, मानसिक और कायिक भगवत्-सेवाके अनुकूलरूपमें करते हैं। ईश्वरका शेषित्व, नियन्तृत्व, स्वामित्व, शरीरीत्व, व्यापकत्व, धारकत्व, रक्षकत्व, भोक्तृत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, सम्पूर्णत्व, पूर्णकामत्व और अपना शेषत्व, नियाम्यत्व, स्वत्व, शरीरत्व, व्याप्यत्व, धार्यत्व, रक्षत्व, भोग्यत्व, अज्ञत्व, अशक्तत्व, अपूर्णत्व आदि ज्ञात होकर ईश्वरकी कृपाकी खोज करते हैं।

(५)आचार्याभिमान—मैं अशक्त और दीनहीन हूँ—ऐसा समझ कर उपयुक्त भागवत आचार्यके समीप अपना दुःख निवेदन करके उनके साथ दृढ़ सम्बन्धयुक्त (गुरु-शिष्य सम्बन्ध युक्त) होकर भगवद्भजन करनेका नाम आचार्याभिमान है।

विरोधी-स्वरूप

(१)स्वरूप-विरोधी—देहात्म-अभिमान अर्थात् इस जड़देहमें आत्माभिमान, अपनेको भगवानका दास नहीं जानना और अपनी स्वतन्त्रता—ये कतिपय स्वरूप विरोधी हैं।

(२)परत्वविरोधी—भगवान्के अतिरिक्त दूसरे देवताओंको परतत्त्व जानना, उनको भगवानके समान समझना, क्षुद्र देवताओंके विषयोंमें शक्तियोग प्रतिपत्ति (शक्तिमान समझना), भगवदवतारोंको मनुष्य मानना, अर्चावतारोंमें शक्तिका अभाव मानना—ये परत्व-विरोधी हैं।

(३)पुरुषार्थ-विरोधी—भगवत्-सेवामें अनिच्छा

और भुक्ति-मुक्तिरूप दूसरे-दूसरे पुरुषार्थोंकी अभिलाषा—ये दोनों पुरुषार्थ विरोधी हैं।

(४)उपाय-विरोधी—इस उपायके अतिरिक्त (भक्ति या प्रवृत्तिको छोड़कर) दूसरे-दूसरे और भी उपाय हैं, जिनसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है—ऐसी मान्यता, उपायके प्रति लाघव बुद्धि और उपेय तत्त्वके प्रति गौरव बुद्धि, ये तीन उपाय-विरोधी हैं।

(५)प्राप्ति-विरोधी—प्रारब्धकर्मोंके अनुसार प्राप्त वर्त्तमान शरीरके प्रति दृढ़ सम्बन्ध, अनुतापशून्य गुरूपसत्ति, भगवान्‌की अवज्ञा करना, भागवतों (भक्त और ग्रन्थ भागवत) की अवज्ञा करना तथा अन्यान्य गुरुतर अहित-आचरण—ये सब प्राप्ति-विरोधी हैं।

इस प्रकार अर्थ-पञ्चकका ज्ञान उत्पन्न होने पर मुमुक्षु व्यक्ति जब तक मोक्षकी सिद्धि न हो जाए, तब तक अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुरूप जीविका निर्वाहोपयोगी पदार्थ संग्रह कर उन सबको भगवन्निवेदित कर प्रसाद ग्रहण कर जीवन धारण करेंगे। तत्त्वज्ञानको उत्पन्न कर सकें, ऐसे गुरुके समीप उपस्थित हो कर उनके आज्ञानुसार आचरण करेंगे।

ईश्वरके निकट सदा दैन्य, आचार्यके पास अपनी अज्ञता, वैष्णवोंके पास अपना पारतन्त्र्य और संसारीके प्रति उपेक्षा प्रकाश करेंगे। प्राप्य साधनमें अध्यवसाय, विरोधी विषयोंसे भय, इतर विषयोंमें अरुचि, अपने शरीरके प्रति अरुचि और स्वरूप ज्ञानके संरक्षणमें आसक्ति रखेंगे।

श्रीमद्‌गौड़ीय मतके अनुसार ऐश्वर्यपूर्ण दास्यरसके विचारसे ये उपदेशसमूह ग्रहणीय हैं। ऐश्वर्यमिश्र नारायण-दास्यरस और माधुर्यमूलक कृष्णदास्यरसमें जो सूक्ष्म प्रभेद है, उससे श्रीमन्महाप्रभुके सेवक भलीभाँति परिचित हैं। कृष्णदास्यरसमें भी इस अर्थ-पञ्चकका उपदेश सामान्य भावान्तरके साथ ग्रहण करनेसे कोई दोषकी बात नहीं होगी। इस दास्यरसमें विश्रम्भ भावयुक्त होने पर सख्य रस होता है। पुनः उसमें स्नेह युक्त होने पर वात्सल्य रस होता है। इसी प्रकार असङ्कोच, स्वात्मनिवेदन उदित होने पर श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट मधुर भाव होता है। अतएव श्रीरामानुजाचार्यके सिद्धान्तोंको हमारे गौड़ीय प्रेममन्दिरके भित्तिस्वरूप जानकर हम उनको बार-बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं।❑

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी

तिलकधारणकी महिमा वर्णन

बङ्गदेशसे आनेके पश्चात् प्रभुने पुनः अध्यापन आरम्भ कर दिया। नवद्वीपमें ही मुकुन्द सञ्जय नामक एक परम भगवद्भक्त थे। उन्हींके घरमें गौरसुन्दर छात्रोंको पढ़ाने लगे। एक दिन एक विद्यार्थी बिना तिलक किए ही विद्यालयमें पढ़ने आ गया। जगद्वासियोंको तिलककी महिमा समझानेके उद्देश्यसे प्रभु बोले—"तुम्हारे ललाटपर तिलक नहीं है; क्या कारण है? क्या तुम नहीं जानते हो कि यदि दीक्षित ब्राह्मणके ललाटपर तिलक न हो तो उसका ललाट श्मशानके समान ही है?

इस विषयमें शास्त्रोंमें अनेक प्रमाण हैं—

ततो द्वादशाभिः कुर्यान्नामभिः केशवादिभिः।
द्वादशाङ्गेषु विधिदूर्द्ध्वपुण्ड्राणि वैष्णवः।।
यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्याय पितृतर्पणम्।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्द्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्।।
यच्छशरीरं मनुष्याणामूर्द्ध्वपूण्ड्रं विना कृतम्।
द्रष्टव्यं नैव तत्तावत् श्मशानसदृशं भवेत्।।
शंखचक्रोर्द्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम्।
गर्दभस्तु समारोप्य राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत्।।
ऊर्द्ध्वपुण्ड्रैर्विहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत्।
तत्सर्वं राक्षसः नित्यं नरकञ्चाधिगच्छति।।

अर्थात् वैष्णव द्वादशाङ्गोंमें भगवानके केशवादि द्वादश नामोंके द्वारा द्वादश ऊर्द्ध्वपुण्ड्र धारण करेंगे। यज्ञ, दान, तप, होम, पितृ-तर्पण (श्राद्ध) आदि समस्त कर्म यदि तिलक धारण किए बिना अनुष्ठित हों, तो ये सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। जिस मनुष्यके शरीरपर तिलक न हो, वह श्मशान सदृश है। उसका दर्शन कभी नहीं करना चाहिए। जिसके शरीरपर शंख, चक्र, गदा आदि अथवा ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक आदि न हों, राजा उसे गधेपर बिठाकर अपने राज्यसे बाहर निकाल दें। जो ऊर्द्ध्वपुण्ड्र धारण किए बिना सन्ध्या-कर्म आदि करते हैं, वे सब राक्षस हैं तथा नित्य नरकगामी होते हैं।

इसके अतिरिक्त शास्त्रोंमें वैष्णवोंके लिए त्रिपुण्ड्र एवं तिर्यक्पुण्ड्रका निषेध किया गया है—

ऊर्द्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रं यः कुरुते स नराधमः।
त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं न दृश्यते।
तत् दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचेलं स्नानमाचरेत्।।

अर्थात् जो व्यक्ति ऊर्द्ध्वपुण्ड्रके स्थानपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह नराधम है। जिसके ललाटपर ऊर्द्ध्वपुण्ड्रके स्थानपर त्रिपुण्ड्र दिखाई देता है, उसका दर्शन करनेसे अथवा स्पर्श करनेसे वस्त्रसहित स्नान करना चाहिए।

अतः आज प्रातःकाल तुमने बिना तिलक धारण किए जो सन्ध्या की वह व्यर्थ हो गयी। अब तुम घर जाकर पुनः तिलक धारणकर सन्ध्या करो। उसके बाद यहाँ पढ़नेके लिए आना।" ऐसा कहकर प्रभुने उसे वापस भेज दिया। इस प्रकार प्रभु श्रीगौरसुन्दर शास्त्रकी विधियोंको स्वयं पालन करते हुए दूसरोंसे पालन करवाते थे। उनके सभी छात्र उन्हींके समान स्वधर्म-परायण थे। यद्यपि प्रभु सभीके साथ हास-परिहास छेड़-छाड़ करते थे, परन्तु स्त्रियोंसे बहुत दूर रहते थे। यदि उनके मार्गमें चलते समय कोई स्त्री आ रही हो, तो वे चुपचाप सिर झुकाकर एक तरफ खड़े हो जाते थे।

श्रीविष्णुप्रियाजीसे विवाह

इस प्रकार प्रभु तो प्रातःकालसे सायंकालतक विद्यार्थियोंके साथ विद्यारसमें मग्न रहते थे। परन्तु शचीमाताको प्रभुके विवाहकी चिन्ता लगी थी। वे प्रभुका विवाह पुनः कराना चाहती थीं। इसलिए वे जहाँ कहीं भी जातीं, सब समय उनकी दृष्टि निमाईके अनुरूप किसी कन्याकी खोज करती थी। नवद्वीपमें ही श्रीसनातन नामक एक महाभाग्यवान ब्राह्मण थे, जो राजपण्डित भी थे। वे सर्वदा दूसरोंके उपकारमें ही रत रहते थे तथा स्वयं सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय थे। उनकी एक कन्या थी जिसका नाम विष्णुप्रिया था। उसका चरित्र परम पवित्र था तथा रूप एवं गुणोंमें वह लक्ष्मीके समान ही थी। वह बाल्यावस्थासे ही दिनमें दो-तीन बार गङ्गास्नान करती तथा माता-पिताकी अच्छी

प्रकारसे सेवा करती थी। प्रतिदिन गङ्गाके घाटपर शचीमाताको देखकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करती थी। शचीमाता भी प्रसन्न होकर उसे वरदान देती थीं कि कृष्ण तुम्हें योग्य पति प्रदान करें। अब शचीमाता विचार करने लगीं कि निमाईके साथ यदि इसका विवाह हो जाए तो कितना अच्छा होगा! ऐसा विचारकर शचीमाताने एकदिन काशीनाथ पण्डितको बुलवाकर कहा—"हे पण्डितजी! आप कृपापूर्वक श्रीसनातन पण्डितके पास जाइए तथा उनसे उनकी कन्या विष्णुप्रियाका हाथ हमारे निमाईके लिए माँगिये।"

यह सुनकर काशीनाथ प्रसन्न होकर सनातनके घर पहुँच गए। उन्हें अपने घर आया देखकर सनातन पण्डितने आदरपूर्वक उन्हें बैठनेके लिए आसन प्रदान कर उनका यथोचित सत्कार किया। तत्पश्चात् अत्यन्त विनयपूर्वक उनसे पूछने लगे—"हे पण्डितवर्य! आज आपने हमारे यहाँ आनेका कष्ट क्यों किया? यदि मेरे अनुरूप कोई सेवा हो तो बोलिए।"

काशीनाथ—"आपसे कुछ कहना है। यदि आपको अच्छा लगे तो करेंगे, अन्यथा मत करेंगे। आप अपनी कन्याका विवाह निमाई पण्डितसे कर दीजिए। आपकी कन्याके लिए वे ही योग्य पति हैं एवं उनके योग्य ही आपकी कन्या है। जिस प्रकार कृष्ण एवं रुक्मिणीकी जोड़ी थी, ठीक वैसी ही इन दोनोंकी जोड़ी होगी।"

यह सुनकर सनातनपण्डित अपनी पत्नी तथा परिवारके अन्यान्य सदस्योंसे विचार विमर्श करने लगे कि क्या किया जाए। सभी लोग बोले—"इसमें विचार करनेकी क्या बात है? हमलोगोंकी तो पहलेसे ही यही इच्छा है कि विष्णुप्रियाका विवाह निमाई पण्डितसे हो। यह तो विष्णुप्रियाका सौभाग्य ही कहो कि स्वयं शचीमाताने अपनी तरफसे विवाहका प्रस्ताव हमारे घर भेजा।"

उन सबकी सम्मति जानकर वे प्रसन्न होकर काशीनाथसे बोले—"हे विप्र! मैं अवश्य ही निमाईको अपनी कन्या दान करूँगा। आज मेरी कन्या एवं हमारे वंशका महासौभाग्य उदित हुआ कि निमाईपण्डित जैसा पति मेरी कन्याको अनायास ही प्राप्त हो रहा है। अतः आप जाकर शचीमाताको यह समाचार सुनाइए तथा कहिए कि जैसी उनकी इच्छा हो, हमें वैसा ही आदेश प्रदान करें।"

यह सुनकर काशीनाथ प्रसन्न होकर वापस आए तथा शचीमाताको यह सुसमाचार सुनाया, जिसे सुनकर शचीमाताकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने तुरन्त ब्राह्मणोंको बुलवाकर विवाहका शुभ मुहूर्त्त निकलवाया तथा विवाहकी तैयारियोंमें जुट गईं। प्रभुके विवाहकी बात जब विद्यार्थियोंके कानोंमें पहुँची तो वे भी बहुत आनन्दित हो गए।

यह बात जब बुद्धिमन्तखानके कानोंमें पहुँची, तो वे शचीमाताके पास आए तथा बोले—"हे माता! इस विवाहमें जितना भी खर्चा होगा, वह सब मेरी तरफसे होगा। उसी समय मुकुन्द सञ्जय आए तथा शचीमाताको प्रणामकर बोले—"इस विवाहमें मैं भी कुछ योगदान करना चाहता हूँ।" यह सुनकर पास ही खड़े बुद्धिमन्तखान झटसे बोले—"हे ब्राह्मणदेव! आप मुझे क्षमा करें, परन्तु मैं इस विवाहको ब्राह्मणकी भाँति नहीं, अपितु एक राजकुमारकी भाँति कराना चाहता हूँ। इस

विवाहमें ऐसी व्यवस्था करूँगा कि सभी लोग याद रखेंगे। उन्होंने आजतक ऐसा विवाह न देखा होगा और न भविष्यमें देखेंगे।" यह सुनकर सञ्जय मुकुन्दजी प्रसन्न हो गये। दूर-दूर स्थानोंमें रहनेवाले परिजनोंको निमन्त्रण भेज दिये गये। अब सभी लोग घरको सजानेमें तथा विवाहके लिए आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करनेमें लग गए। अन्ततः उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करते-करते विवाहका अधिवास दिवस भी उपस्थित हो ही गया (किसी भी कार्यसे एक दिन पहले उसके विषयमें जो पूजा-पाठ इत्यादिका अनुष्ठान होता है, उसे अधिवास दिवस कहते हैं)।

उस दिन प्रातःकालसे ही मण्डप सजाया जाने लगा। मण्डपके चारों ओर केलेके पेड़ खड़े किये गए, आमके पत्ते बाँधे गए तथा जलसे भरे हुए मङ्गल-कलश स्थान-स्थानपर स्थापित किये गए। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकारके मङ्गलसूचक वस्तुओंके द्वारा मण्डपकी शोभा निखर गई।

दोपहरके पश्चात् बाजेवाले आ गये तथा मृदङ्ग, शहनाई, करताल इत्यादि नाना प्रकारके वाद्य बजाने लगे। जिनकी मधुर मङ्गलमयी ध्वनि सुनकर आनन्दसे सभी लोगोंका शरीर रोमाञ्चित होने लगा। एक ओर ब्राह्मणवृन्द सुस्वरसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे, तो दूसरी ओर सौभाग्यवती स्त्रियाँ मधुरस्वरसे मङ्गलसूचक गीत गाने लगीं। इस प्रकार उस समय वहाँका वातावरण अत्यन्त ही मनोरम हो गया। उस समय श्रीगौरसुन्दर वहाँपर उपस्थित हुए। मण्डपके चारों ओर दान लेनेके लिए तथा दर्शनके लिए हजारों ब्राह्मणोंकी भीड़ लगी थी। प्रभु सभीके मस्तकपर चन्दन लगाकर सुगन्धित माला पहनाकर अनेक प्रकारके उपहार प्रदानकर उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। उस समय अनेक लोभी ब्राह्मण एकबार दान प्राप्त करने पर भी भीड़में मिलकर पुनः दान लेने आ जाते। अन्तर्यामी प्रभु यह देखकर हँसते हुए उन्हें और भी अधिक दान देते। उन्होंने दान देनेवालोंसे कह दिया कि जो जितनी बार चाहे, उसे उतनी बार दे दो। इस प्रकार हजारों-हजारों ब्राह्मण आकर दान ग्रहण करने लगे। कहाँसे इतने ब्राह्मण आ रहे थे। इसकी कोई निश्चितता नहीं। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता लोग भी अपने प्रभुके विवाह अनुष्ठानका दर्शन एवं उनके हाथोंसे दान प्राप्तकर कृतार्थ होनेके लिए साधारण ब्राह्मणोंके वेशमें आने लगे। हजारों ब्राह्मणोंके मुखमें एक ही वाक्य था—यह अधिवास धन्य है। आजतक बहुतसे अधिवासोंमें हम दान लेने गए, परन्तु ऐसा अधिवास कहीं भी नहीं देखा। जितना दान यहाँ मिला, उतना आजतक कहीं नहीं मिला। ऐसा प्रतीत होता है यहाँ जितना दान मिला है, जीवनभर भी वह समाप्त होनेवाला नहीं है।

उसी समय राजपण्डित सनातन अपने कुछ परिजनोंके साथ हाथमें अधिवासकी सामग्री लेकर प्रभुके घर उपस्थित हुए। उस समय स्त्रियाँ मिलकर मधुरस्वरसे गीत गाने लगीं तथा जय-जयकार करने लगीं। ऐसे शुभमुहूर्त्तमें जब उन्होंने विधिपूर्वक श्रीगौरसुन्दरका तिलक किया एवं माला पहनायी, वहाँपर उपस्थित लोग जय-जयकार करने लगे। अधिवासकी रस्म पूर्ण करनेके बाद वे प्रसन्न मनसे अपने घरकी ओर चल पड़े। ठीक इसी प्रकार प्रभुके परिवारके

लोगोंने भी सनातनके घर जाकर विष्णुप्रियाजीका तिलक आदि किया। इसके अतिरिक्त और जितने भी लौकिक आचार थे, उन सबका विधिपूर्वक पालन किया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभुने उठकर सर्वप्रथम गङ्गास्नानकर विष्णुकी पूजा की। तत्पश्चात् अपने सभी बन्धु–बान्धवोंके साथ नान्दीमुख (कोई भी शुभकर्मसे पूर्व छः पितृगण— पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह एवं छः मातृगण— माता, मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही, पितामही, प्रपितामही इनकी तृप्तिके उद्देश्यसे श्राद्ध किया जाता है। इसीको नान्दीमुख कहते हैं।) कर्म इत्यादिका अनुष्ठान किया। प्रातःकालसे ही घरमें शहनाईयाँ बज रही थीं, स्त्रियाँ घरके दरवाजोंपर एवं आङ्गनमें स्थान–स्थानपर आम्रपल्लव, दीप, मङ्गलघट इत्यादि स्थापित कर रही थीं। घरके चारों ओर रङ्ग–बिरङ्गी पताकाएँ हवामें लहरा रही थीं।

तत्पश्चात् शचीमाता प्रसन्नमनसे पतिव्रता स्त्रियोंको साथ लेकर गङ्गापूजा करने गईं। गङ्गापूजाके पश्चात् सभी स्त्रियाँ बाजेके साथ षष्ठीदेवीके मन्दिरमें गईं तथा उनकी पूजा की। पूजाके पश्चात् कुछ अन्यान्य लौकिक आचारोंको निपटाकर शचीमाता एवं अन्य स्त्रियाँ वापस आ गईं। आकर शचीमाताने सभी स्त्रियोंको रीतिके अनुसार खिल, केले, तेल, पान, सिन्दूर इत्यादि प्रदान किया। इसी प्रकार विष्णुप्रियाजीके घरमें भी उनके पिता सनातनपण्डित इन समस्त प्रकारके लौकिक नियमोंका पालन कर रहे थे।

विवाहसे पूर्व इन समस्त नियमोंको पूरा करनेके पश्चात् कुछ समयके लिए प्रभु विश्राम करने लगे। विश्रामके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक सभी ब्राह्मणोंको खाद्य वस्तुएँ एवं वस्त्र इत्यादि यथायोग्य प्रदानकर सबको सन्तुष्ट किया। सभी ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर प्रभुको आशीर्वाद प्रदानकर भोजनके लिए अपने–अपने घरको चले गये।

शामके समय सभी लोग प्रभुको वरवेशमें सजाने लगे। प्रभुके शरीरमें चन्दनका लेप किया गया, ललाटपर (मस्तकपर) अर्द्धचन्द्रकी आकृति बनाई गई, उसके मध्यमें सुन्दर तिलककी रचना की गई। उनके शिरपर दिव्य मुकुट तथा गलेमें सुन्दर हार तथा शरीरपर सूक्ष्म पीतवस्त्रको त्रिकच्छरूपमें धारण कराया गया। उनके दोनों बाजुओंमें तथा गलेमें विविधप्रकारके रत्नोंसे निर्मित हार तथा बाजूबन्ध धारण कराये गए। एक तो प्रभुका सौन्दर्य पहले से ही अपूर्व था। परन्तु इस समय तो वरवेशमें उनका सौन्दर्य शतगुण बढ़ गया। जो उनके इस रूपका दर्शन करता वह मन्त्रमुग्धकी भाँति अपने–आपको भूलकर एकटक अपलक नेत्रोंसे उन्हें निहारता रह जाता था। देखते–ही–देखते गोधूलिका समय उपस्थित हुआ। उसी समय बुद्धिमन्तखान प्रसन्नतापूर्वक एक दिव्य पालकी तैयार करवाकर वहाँपर ले आए। श्रीगौरसुन्दर पालकीमें बैठेंगे, यह देखकर चारों ओरसे सभी जय–जयकार करने लगे। ब्राह्मणवृन्द उच्चस्वरसे वेदध्वनि करने लगे। उस समय सभी ओर आनन्द–ही–आनन्द था। तब साक्षात् धर्मस्वरूप प्रभु शचीमाताकी परिक्रमाकर पालकीमें विराजमान हो गए। उनके पालकीमें विराजमान होते ही चारों ओरसे जय–जयकार होने लगी।

अब बारात धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। उस बारातकी शोभाके विषयमें क्या वर्णन किया जा सकता है? नगरमें असंख्य दीप जले हुए थे। बारातके आगे-आगे लोग अनेक प्रकारकी आतिशबाजियाँ जला रहे थे। बारातमें सबसे आगे दो पंक्तियोंमें बुद्धिमन्तखानके कर्मचारी, उनके पीछे रङ्ग-विरङ्गी पताकाएँ चल रही थीं। उनके पीछे बहुरूपीगण (जो विचित्र-विचित्र वेश धारणकर एवं अनेक प्रकारकी हास्यपूर्ण क्रियाओंके द्वारा सभीको हँसाते हैं) चल रहे थे। उनके पीछे-पीछे अनेक नर्त्तकोंके दल चल रहे थे, जो दिव्य-दिव्य नृत्योंके द्वारा सबके मनको हर लेते थे। उनके साथ अनेक वाद्ययन्त्र बज रहे थे, जिससे रोमाञ्चित हो छोटे-छोटे बच्चे भी आनन्दसे नाच रहे थे। यह देखकर प्रभु हँसने लगे।

सर्वप्रथम बारात गङ्गाके किनारे पहुँची। वहाँपर गङ्गाजीको प्रणामकर कुछ समयतक नवद्वीपमें ही यहाँ-वहाँ भ्रमण करने लगी। उस दिव्य विवाह समारोहका जो भी दर्शन करता वह विस्मित एवं चमत्कृत हो जाता। उसके मुखसे बरबस ही निकल पड़ता—"अहो! धन्य है, यह विवाह। जीवनमें विवाह तो अनेक देखे, पर ऐसा आजतक नहीं देखा।" वरवेशमें प्रभुका दर्शनकर सभी मोहित हो जाते। जिसके घरमें रूपवती एवं गुणवती कन्या थी, वह खेदपूर्वक विचार करने लगता कि मेरा परम दुर्भाग्य है, जो ऐसे योग्यपात्रको अपनी कन्या का दान नहीं कर पाया।

इस प्रकार नगरमें भ्रमण करते-करते ठीक गोधूलिके समय बारात श्रीसनातनपण्डितके द्वारपर पहुँची। बारात देखकर सनातनपण्डित आगे आए तथा प्रभुको गोदीमें लेकर विवाह मण्डपपर बैठा दिया तथा उनके उपर पुष्पवृष्टि की। तबतक उनकी पत्नी भी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ वहाँपर पहुँच गईं। उन्होंने प्रभुके शिरपर धान एवं दूर्वा प्रदान किया तथा घीके सात प्रदीपोंद्वारा श्रीगौरसुन्दरकी आरती की। अन्यान्य स्त्रियोंने भी प्रभुके उपर खिल, पैसे इत्यादि प्रदान किए। इतनेमें विष्णुप्रियाजीकी सखियाँ विष्णुप्रियाजीको विभिन्न प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जितकर विवाह मण्डपके पास ले आईं तथा विष्णुप्रियाजीको पकड़कर प्रभुकी सात बार परिक्रमा करवाईं। परिक्रमाके पश्चात् विष्णुप्रियाजी प्रभुको प्रणामकर उनके सामने बैठ गईं। अब पहले विष्णुप्रियाजीने प्रभुके श्रीचरणोंमें माला अर्पणकर स्वयंको ही अर्पित कर दिया। यह देखकर प्रभुने भी विष्णुप्रियाजीके गलेमें माला पहनाई। तब दोनों ही परस्पर एक दूसरेपर पुष्पवृष्टि करने लगे। आनन्दसे ब्रह्मा आदि देवगण भी दोनोंपर गुप्तरूपसे पुष्पवर्षा करने लगे। तत्पश्चात् विष्णुप्रियाजीकी सखियों एवं प्रभुके सखाओंमें प्रेमकलह होने लगा। उसमें कभी विष्णुप्रियाजीकी सखियाँ जीत जातीं तो कभी प्रभुके सखालोग। यह देखकर श्रीगौरसुन्दरके श्रीमुखकमलपर मन्द-मन्द मुस्कान छा गई, जिसे दर्शनकर सभी लोग आनन्दसागरमें तैरने लगे। उसी समय राजपण्डित उत्फुल्लित मनसे कन्यादान करनेके लिए बैठ गये। उन्होंने शास्त्रविधिपूर्वक संकल्पकर प्रभुके श्रीहस्तकमलोंमें अपनी प्यारी कन्याको समर्पित किया। इसके साथ ही अनेक गायें, भूमि, शय्या, दास-दासियाँ इत्यादि प्रभुको समर्पित कीं। तब विष्णुप्रियाजीको प्रभुके बायीं ओर बिठाकर हवन किया गया।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य जितनी भी प्रकारकी लौकिक क्रियाएँ थीं, उन सभीको पूराकर वर एवं कन्याको घरमें ले जाया गया। उसके बाद सभी लोग भोजन करने बैठ गये। इस प्रकार पूर्वकालमें जो सौभाग्य नग्नजीत, जनक, भीष्मक आदिको प्राप्त हुआ था, आज वही सौभाग्य राजपण्डित सनातनको भी प्राप्त हुआ था। दूसरे दिन अपराह्णकालमें वापस आनेका समय उपस्थित होनेपर वाद्य, गीत, नृत्यादि आरम्भ हो गया। चारों ओर आनन्द-कोलाहल होने लगा। स्त्रियाँ जय-जयकार करने लगीं। विप्रगण यात्रा वापसी सम्बन्धित श्लोकोंका उच्चारण करने लगे। तब प्रभु उपस्थित गणमान्य व्यक्तियोंको प्रणामकर लक्ष्मीजीके साथ पालकीमें बैठ गए। उस समय चारों ओर जय-जयकार होने लगी तथा ब्राह्मणलोग प्रभुको आशीर्वाद प्रदान करने लगे। अब धीरे-धीरे पालकी आगे बढ़ने लगी। मार्गमें जो भी दर्शन करते, उनके मुखसे अनायास ही निकल जाता—"यह वरवधूकी जोड़ी धन्य है।" स्त्रियाँ विष्णुप्रियाजीके सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए परस्पर कहने लगीं—"इसने अवश्य ही अनेक जन्मोंतक लक्ष्मी अथवा पार्वतीजीकी निष्कपटरूपसे सेवा की है। इसीके फलस्वरूप इसे ऐसा समस्त गुणोंसे युक्त पति प्राप्त हुआ।" कुछ स्त्रियाँ कहने लगीं—"इस जोड़ीको देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये साक्षात् शिव-पार्वती हैं।"

इस प्रकार कोई उन्हें लक्ष्मीनारायण, तो कोई रति-कामदेव, कोई इन्द्र-शची तो कोई सीता-रामचन्द्रके रूपमें दर्शन करने लगीं। प्रभु भी लक्ष्मीके साथ मार्गमें मुस्कुराते हुए कृपादृष्टि करते हुए अपने घरकी ओर चल रहे थे। मार्गमें आनन्दवर्षा करते हुए कुछ क्षण पश्चात् प्रभु अपने घरके आङ्गनमें उपस्थित हुए। बारातको दरवाजेपर आया देखकर शचीमाता अन्यान्य स्त्रियोंको साथ लेकर पालकीके निकट गईं तथा आनन्दसे अपनी पुत्रवधूको घरके भीतर ले आईं। घरके भीतर लाकर अपने पुत्र एवं पुत्रवधूको बैठा दिया तथा सभी लोग दोनोंकी जय-जयकार करने लगे। इसके बाद प्रभुने स्वयं ही वाद्यकारोंको (बाजेवालों), भिक्षुकोंको, ब्राह्मणोंको, बन्धु-बान्धवोंको यथायोग्य वस्त्र, धन एवं खाद्यवस्तुएँ इत्यादि दानकर सन्तुष्ट किया। बुद्धिमन्तखानको, जिन्होंने कि इस विवाहका सारा खर्च स्वयं उठाया, प्रभुने प्रेमालिङ्गन किया। इसके बाद सभीको सन्तुष्टकर अपने घरसे विदा दिया। ❑

अवधूत गीता

एक बार ययातिके पुत्र धर्मविद् यदुने एक त्रिकालदर्शी तरुण अवधूत ब्राह्मणको निर्भय विचरण करते हुए देखा। उन्होंने उनसे प्रश्न किया—"हे ब्राह्मण! आपको समस्त लोकोंकी सर्वोत्तम बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई, जिसके बलपर आप परम विद्वान् होनेपर भी बालकके समान बड़ी निर्भीकताके साथ पृथ्वीपर विचरण कर रहे हैं? आप कर्म करनेमें समर्थ, विद्वान् और निपुण हैं। आपका भाग्य और सौन्दर्य भी प्रशंसनीय है। वाणीसे अमृत टपक रहा है।

फिर भी आप जड़ और उन्मत्त-से रहते हैं। आप पुत्र, स्त्री, धन आदि संसारके स्पर्शसे भी रहित हैं। मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आपको अपने आत्मामें ही ऐसे अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव कैसे होता है? आप कृपा करके बताइए।"

वह तरुण ब्राह्मण और कोई नहीं, ब्रह्मवेत्ता श्रीदत्तात्रेयजी थे। उन्होंने राजा यदुके प्रश्नको सुनकर कहा—"राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे बहुतसे गुरुओंका आश्रय लिया है। उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगतमें स्वच्छन्द विचरता हूँ। मैंने जिनको अपना गुरु बनाया है, उनके नाम ये हैं—

(१) पृथ्वी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११) पतङ्ग, (१२) मधुकर, (१३) हाथी, (१४) शहद निकालनेवाला, (१५) हिरन, (१६) मछली, (१७) पिङ्गला वेश्या, (१८) कुरर पक्षी, (१९) बालक, (२०) कुँआरी कन्या, (२१) वाण बनानेवाला, (२२) सर्प, (२३) मकड़ी और (२४) भृङ्गी कीट। राजन्! मैंने इन्हींके आचरणसे इस लोकमें अपने लिए शिक्षा ग्रहण की है।

(१) पृथ्वीसे शिक्षा

मैंने पृथ्वीसे धैर्य और क्षमाकी शिक्षा ली है। लोग पृथ्वीपर कितना आघात और क्या-क्या उत्पात नहीं करते; परन्तु वह न तो किसीसे बदला लेती है और न रोती-चिल्लाती है। उसी प्रकार दैवी मायाके द्वारा वशीभूत आत्मीय स्वजनोंके द्वारा उत्पीड़ित होनेपर भी धीर व्यक्ति कदापि सद्गुरुके पादपद्मोंसे विचलित न हों। पृथ्वीके ही विकार पर्वत और वृक्षसे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे उनकी सारी चेष्टाएँ सदा-सर्वदा दूसरोंके हितके लिए ही होती है, उसी प्रकार साधु पुरुषको सहिष्णु होकर स्वयं कृष्णनाम करना चाहिए और संसारमें सर्वत्र कृष्णनामका प्रचारकर जगतका उपकार भी करना चाहिए।

(२) वायुसे शिक्षा

वायु दो प्रकारकी है—प्राणवायु और बाहरी वायु।

(क) प्राणवायुसे शिक्षा—जैसे प्राणवायु आहार मात्रकी इच्छा रखता है, उसकी प्राप्तिसे ही सन्तुष्ट हो जाता है, वैसे ही गुरुदासको भी चाहिए कि जितनेसे जीवन-निर्वाह हो जाए, उतना ही भोजन करें। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिए बहुतसे विषय न चाहें। संक्षेपमें उतना ही विषयोंका उपयोग करना चाहिए जिनसे बुद्धि विकृत न हो, मन चञ्चल न हो और वाणी भगवत्-इतर कथामें न लग जाए। इस प्रकार बहुत रूखा और अनिवेदित द्रव्योंका आहार न करें। इससे चित्त चञ्चल होता है। साथ ही उसे आलस्य और वीर्यादिवर्द्धक द्रव्योंका भी वर्जन करना चाहिए, क्योंकि इनसे भी चित्तकी व्याकुलता बढ़ती है।

(ख) बाहरी वायुसे शिक्षा—समस्त विषयोंकी सेवा करने पर भी गुरुदास किसीमें आसक्त न हों, ठीक उसी प्रकार जैसे वायु सर्वत्र विचरण करता है, परन्तु वह कहीं भी आसक्त नहीं होता; किसीका गुणदोष ग्रहण नहीं करता। गन्ध वायुका गुण नहीं, पृथ्वीका गुण है। परन्तु वायुको गन्ध वहन करना पड़ता है। ऐसा करने पर भी वह सर्वदा शुद्ध ही रहता है, गन्धसे

उसका सम्पर्क नहीं होता; वैसे ही गुरुदासका जब तक इस पार्थिव शरीरसे सम्बन्ध है, तब तक उसे इसकी व्याधि, पीड़ा, और भूख–प्यास आदिका भी वहन करना पड़ता है। परन्तु अपनेको शरीर नहीं आत्माके रूपमें देखनेसे वह मायाके इन धर्मोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है।

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः।
न युज्यते सदाऽऽत्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया।।

(श्रीमद्भा॰ १/११/३२)

(३) आकाशसे शिक्षा

जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापी होनेपर भी घटपटों द्वारा परिच्छिन्न अथवा लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार देहके अन्तर्गत होनेपर भी दीक्षाके प्रभावसे गुरुदास भी असत् सङ्गमें लिप्त न होकर परमात्मासे मिलते हुए भीतर–बाहर सेव्य–सेवक रूपमें स्थित रहे। आकाशसे दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि जिस प्रकार वायुद्वारा चलनेवाले बादलोंसे आकाश सर्वदा अछूता बना रहता है, उसी प्रकार गुरुदास भी कालके प्रभावसे क्षोभित होनेवाले लिङ्ग–देहके प्रति आसक्त न हों।

(४) जलसे शिक्षा

जिस प्रकार जल स्वभावसे ही स्वच्छ, चिकना, मधुर और पवित्र करनेवाला होता है, वैसे ही गुरुदासको भी निर्मल चरित्र, सर्वभूतोंके प्रति दयालु, मधुरभाषी तथा भगवन्नाम–रूप–गुण–लीला कथाओंके कीर्त्तन और उपदेशोंसे सबको पवित्र करनेवाला होना चाहिए।

(५) अग्निसे शिक्षा

(१) गुरुदास अग्निकी भाँति तेजस्वी, गुण द्वारा अविचल और उदासीन होकर पाप या पुण्यके झमेलेमें लिप्त न हों। वे अग्निकी भाँति कभी गुप्त और कभी व्यक्तरूपसे भूत भविष्यके पाप–पुण्यको जलाकर केवल दाताओंके दिए हुए अन्नको ग्रहण करें।

(२) जैसे अग्नि लकड़ी आदिके भीतर वर्त्तमान रहने पर भी केवल मन्थन द्वारा प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान भी अपनी शक्तिके प्रभावसे गुणमय और चेतनमय जगतकी सृष्टि करके उसीमें प्रविष्ट रहनेपर भी केवल श्रवण–कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंके याजनसे ही गुरुदासके शुद्ध चित्तमें उदित होते हैं।

(६) चन्द्रमासे शिक्षा

जिस प्रकार कालके प्रभावसे चन्द्रमाकी कलाएँ घटती–बढ़ती रहती हैं, परन्तु उससे चन्द्रमा न घटता है, न बढ़ता है; उसी प्रकार जन्मसे मरणतककी जितनी भी अवस्थाएँ हैं, सब शरीरकी हैं, आत्मासे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा जानकर गुरुदास आत्माको जन्म–मरण आदि षड्विकारोंसे निर्लिप्त समझकर सर्वदा भगवद्भजनमें तत्पर रहे।

(७) सूर्यसे शिक्षा

(१) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे समुद्रके जलको वाष्पके रूपमें खींचकर समय पर उसे बरसाकर पृथ्वीको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार गुरुदासको भी चाहिए कि विषयी मनुष्योंके पाप–पुण्यद्वारा संगृहीत धनको अथवा अन्यान्य विषयोंको अपनी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके भी उस धन या विषयोंको श्रीगुरुदेव और कृष्णको समर्पण कर दे और समय आनेपर उनका भगवत्–प्रसादके रूपमें सबको वितरण करें। उन विषयोंको अपने भोगके कार्योंमें न लगावें।

(२) जिस प्रकार सूर्यमें सूर्यमण्डल, किरणें और उसकी छाया—ये तीन चीजें होती हैं, उसी प्रकार परतत्त्व भी अपनी स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति और छाया(माया) शक्तिसे समन्वित होते होते हैं। इसे केवल गुरुदेवके कृपाप्राप्त सूक्ष्मदर्शी पण्डित ही समझ या देख सकते हैं। परन्तु स्थूल बुद्धिसम्पन्न कर्मजड़ व्यक्ति जलके कम्पन आदिद्वारा दोषयुक्त सूर्यके प्रतिविम्बको यथार्थ सूर्य समझनेकी भाँति जन्मादि षड्विकारोंसे दोषयुक्त देहादिको ही आत्माका रूप समझते हैं, फलतः वस्तुके निर्मल स्वरूपका अनुभव करनेमें वे समर्थ नहीं होते।

(८) कबूतरसे शिक्षा

गुरुदासको कदापि किसीसे अधिक प्रीति नहीं करनी चाहिए। अथवा पालन-पोषण आदि बन्धनोंमें आसक्त नहीं होना चाहिए। अन्यथा उसे आसक्त और दीन कबूतरकी भाँति अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ता है। किसी जङ्गलमें एक कबूतर अपनी प्यारी भार्य्या कबूतरीके साथ बड़े आनन्दसे रहता था। वे एक दूसरेके प्रति इतने आसक्त हो गये थे कि वे एक साथ ही सोते, बैठते, घूमते-फिरते, ठहरते, बात-चीत करते, खेलते और खाते-पीते थे। वे क्षणभर भी एक-दूसरेको देखे बिना नहीं रह सकते थे। कबूतरीपर कबूतरकी इतनी आसक्ति हो गयी थी कि वह जो कुछ चाहती, कबूतर बड़े-से-बड़ा कष्ट उठाकर भी उसकी कामना पूर्ण करता। वह कबूतरी भी अपने कामुक पतिकी कामनाएँ पूर्ण करती। समय आनेपर कबूतरीके बच्चे हुए। अब दोनों बड़े प्यारसे बच्चोंका पालन-पोषण करने लगे। वे अपने नन्हें-नन्हें बच्चोंके पालन-पोषणमें इतने आसक्त रहते कि उन्हें दीन-दुनिया, लोक-परलोककी याद ही न आती। वे भगवानकी मायासे मोहित हो रहे थे। एक दिन वे दानों बच्चोंके लिए चारा लाने जङ्गलमें गये। इधर एक बहेलिया संयोगवश उनके घोंसलेकी ओर आ निकला। उसने घोंसलेके आस-पास फुदकते हुए कबूतरके बच्चोंको जाल फैलाकर पकड़ लिया। उसी समय कबूतर और कबूतरी—दोनों जङ्गलसे बच्चोंके लिए चारा लेकर लौटे और उन्होंने बच्चोंको जालमें दुःखसे चें-चें करते देखा। कबूतरीके तो दुःखकी सीमा न रही। वह रोती-चिल्लाती उनके पास दौड़ गयी और अपने शरीरकी सुध-बुध खोकर स्वयं भी जालमें फँस गयी। अब कबूतर अपने प्राणोंसे भी प्यारे बच्चों और प्राण-प्रिया पत्नीकी दयनीय दशा देखकर अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगा। अन्तमें वह भी रोते-रोते स्वयं जान-बूझकर जालमें कूद पड़ा। बहेलिया बड़ा ही क्रूर था। उसे गृहस्थाश्रमी कबूतर, कबूतरी और बच्चोंके मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उन सबको लेकर अपने घर लौट गया। इसी प्रकार जो लोग परमार्थ साधनके एकमात्र खुले द्वारके समान परम-दुर्ल्लभ मानव जन्मको पाकर भी कबूतर और कबूतरीकी भाँति घर-गृहस्थी और कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही आसक्त रहते हैं, उन्हें शास्त्रमें आरूढ़च्युत (बहुत ऊँचेतक चढ़कर गिरा हुआ) की पदवी दी गयी है।

(९) अजगरसे शिक्षा

प्राणियोंको जैसे बिना इच्छाके, बिना किसी प्रयत्नके, रोकनेकी चेष्टा करने पर भी पूर्व कर्मानुसार दुःख प्राप्त होते हैं, वैसे ही स्वर्ग

या नरकमें सर्वत्र ही उन्हें प्रारब्धानुसार सुख भी प्राप्त होते हैं। इसलिए उसके लिए व्यर्थके उद्यमोंमें आयुका नाश न करके हर समय कृष्णकी कृपा पानेकी ओर दृष्टि रखनी चाहिए। बिना माँगे, बिना इच्छा किये स्वयं ही अनायास जो कुछ मिल जाय—वह चाहे रूखा-सूखा हो या थोड़ा, बुद्धिमान मनुष्य उसे भगवानको अर्पण करके अजगरके समान उसे ही खा कर जीवन-निर्वाह करें और उदासीन रहें। स्वर्ग-सुख और नरक-क्लेश—दोनोंको समान और क्षणभङ्गुर जानकर उस प्रकारके सुख और दुःखकी अभिलाषा न करें। यदि भोजन न मिले अथवा मिलकर भी नष्ट हो जाए तो उसे दैवगति अर्थात् कृष्णकी इच्छा समझकर धैर्य धारण करें और अजगरके समान केवल प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए भोजनसे ही सन्तुष्ट रहें।

(१०) समुद्रसे शिक्षा

(१) समुद्रकी भाँति गुरुदासको भी सर्वदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए, उनका भाव अथाह, अपार और असीम होना चाहिए तथा क्षोभका कारण उपस्थित होने पर भी क्षुब्ध नहीं होना चाहिए। जैसे ऊपरसे ज्वार-भाटे और तरङ्गोंसे युक्त रहनेपर भी समुद्र सर्वथा शान्त-प्रशान्त बना रहता है, उसी प्रकार गुरुदासको भी आधि-व्याधि, जरा और सुख-दुःखमें भी शान्त रहना चाहिए। (२) जैसे समुद्र वर्षाऋतुमें नदियोंकी बाढ़के कारण बढ़ता नहीं, न ग्रीष्म ऋतुमें घटता ही है; उसी प्रकार गुरुदासको सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे प्रफुल्लित नहीं होना चाहिए और न उनके घटनेसे दुःखी ही होना चाहिए।

राजन् ! इसके पश्चात् रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द और रस—इन पाँच विषयोंसे मोहित हुए पतङ्ग, मधुकर, हाथी, हिरन और मछली—इन पाँच गुरुओंसे जो मैंने सीखा है, उसे भी श्रवण करें। बाहरी विषयोंमें आसक्ति ही जीवोंके पतनका कारण है।

(११) पतङ्गसे शिक्षा

जैसे पतङ्ग रूपपर मोहित होकर आगमें कूद पड़ता है और जल मरता है, उसी प्रकार अजितेन्द्रिय व्यक्ति जब स्त्रीको देखता है, उसके हाव-भावपर लट्टू हो जाता है और घोर अन्धकारमें, नरकमें गिरकर अपना सत्यानाश कर डालता है। वास्तवमें स्त्री भगवानकी वह मूर्त्तिमान माया है, जिससे जीव भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रह जाता है। जो मूढ़ कामिनी, काञ्चन और वस्त्र-आभूषण आदि नाशवान मायिक पदार्थोंमें फँसे हुए हैं, जो सर्वदा उनका उपभोग करनेके लिए लालायित रहते हैं, वे अपनी विवेक-बुद्धि खोकर पतङ्गोंके समान नष्ट हो जाते हैं। अतएव रूपकी आसक्तिको सर्वनाशका मूल कारण जानकर गुरुदासको उससे सदा सतर्क रहना चाहिए।

(१२) मधुकरसे शिक्षा

मधुकर दो प्रकारके होते हैं— (क) भौंरा, (ख) मधुमक्खी।

(क) भौंरा जिस प्रकार नाना प्रकारके फूलोंसे—चाहे वे छोटे हों या बड़े, थोड़ा-थोड़ा मधु संग्रहपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करता है, उसी प्रकार गुरुदासको भी छोटे-बड़े सभी प्रकारके शास्त्रोंसे केवल सारतत्त्व संग्रह कर भगवद्भजनमें लगा रहना चाहिए तथा किसी गृहस्थके प्रति हिंसा-द्वेषका भाव पोषण न करके सबसे मधुकरी भिक्षा लेकर जीवन निर्वाह करते

हुए श्रीगुरुदेव और कृष्णकी सेवा करनी चाहिए।

(ख) भिक्षु गुरुदासको भविष्यके लिए कुछ संग्रह नहीं रखना चाहिए। अन्यथा जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अपने संग्रह (मधु) के साथ अपने जीवनको भी गँवा देती हैं, उसी प्रकार संग्रहकारी साधकको भी अपनी संग्रह की हुई वस्तुओंके साथ अपने प्राणोंको गँवा देना पड़ेगा।

(१३) हाथीसे शिक्षा

स्पर्शकी आसक्ति भी सर्वनाशका मूल है— ऐसा जान कर गुरुदासको स्त्रियोंके स्पर्शसे सदा बचना चाहिए। यदि वह पैरसे भी काठकी बनी हुई स्त्रीका भी स्पर्श करेगा तो जैसे हथिनीके अङ्ग-सङ्गसे हाथी बँध जाता है, उसी प्रकार वह भी बँध जाएगा। बुद्धिमान पुरुषको किसी भी स्त्रीको कभी भी भोग्य रूपमें स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह मूर्त्तिमान् मृत्यु है। यदि साधक किसी स्त्रीसे सम्पर्क रखेगा तो वह बलवान दूसरे पुरुषोंके द्वारा उसी प्रकार मारा जाएगा जिस प्रकार अधिक बलवान हाथियोंके द्वारा हाथी मारा जाता है।

(१४) मधुहारीसे शिक्षा

जिस सञ्चित धनका दान या भोग नहीं किया जाता है, उस धनको कोई दूसरा पुरुष ही भोग करता है। इस विषयमें मैंने शहदकी मक्खीके छत्तेसे शहद निकालने वाले मधुहारीको अपना गुरु बनाया है। जिस प्रकार मधुहारी मधुमक्खियोंके आने-जानेसे, मधु कहाँ है— इसे जानकर उस मधुको निकाल ले जाता है, उसी प्रकार गृहस्थोंके बहुत कठिनाईसे सञ्चित किये पदार्थोंको, जिससे वे सुख भोगकी अभिलाषा रखते हैं, गुरुसेवक छल, बल और कौशलसे संग्रह करके उसे गुरु-कृष्णकी सेवामें अर्पण कर देते हैं। दूसरी बात, गृहस्थोंके संगृहीत पदार्थोंके अग्रभागको गुरुसेवक सन्न्यासी-ब्रह्मचारी (भिक्षा आदिके रूपमें) ग्रहण करते हैं और गुरु एवं कृष्णकी सेवामें लगाकर अपना और साथ ही उस गृहस्थका भी कल्याण करते हैं।

(१५) हिरनसे शिक्षा

ग्राम्य-गीत अर्थात् विषय-सम्बन्धी गीत कभी नहीं सुनना चाहिए; नहीं तो इससे साधकका सर्वनाश हो जाता है। इस विषयमें मैंने हिरनको अपना गुरु बनाया है। जिस प्रकार हिरन व्याधके गीतसे मोहित होकर बँध जाता है, उसी प्रकार ग्राम्य गीतोंके आपात् मधुर स्वर-लहरीको सुननेवाला भी मायाके चक्करमें सदाके लिए बँध जाता है और जन्म-जन्मान्तरों तक नाना प्रकारके दुःखोंको भोगता है। हिरनीके गर्भसे पैदा हुए ऋष्यशृङ्ग मुनि मायाविनी वेश्याओंके नृत्य-गीत आदिसे मोहित होकर उनके वशमें हो गये थे और उनके हाथकी कठपुतली बन गये थे।

(१६) मछलीसे शिक्षा

साधकको प्राकृत रसोंके आस्वादनके वशीभूत नहीं होना चाहिए। जो साधक स्वादके वशीभूत हो जाता है, वह उसी प्रकार मारा जाता है जिस प्रकार मछली काँटेमें लगे हुए माँसके टुकड़ेके लोभसे अपने प्राण गवाँ देती है। असद्बुद्धि वाले मनुष्य अतिशय दुर्जेय जिह्वा-वेगके अधीन हो अपना अर्थ और परमार्थ दोनों गवाँ देते हैं।

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजेतान्येन्द्रियः पुमान्।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे।।

(श्रीमद्भा॰ ११-८-२०)

अर्थात् जब तक जिह्वाके वेगको नहीं जीत

लिया जाता है, तब तक दूसरी इन्द्रियोंको जीत लेने पर भी जितेन्द्रिय नहीं हुआ जाता। जिन्होंने जिह्वाको जीत लिया है, वही सर्वथा इन्द्रिय-विजयी—गोस्वामी कहलानेके योग्य है। क्योंकि यदि आहार करना बन्द कर दिया जाए तो दूसरी इन्द्रियों पर सहज ही विजय प्राप्त की जा सकती है; परन्तु इससे रसनेन्द्रिय वशमें नहीं होती। वह तो भोजन बन्द कर देनेसे और भी प्रबल हो उठती है। अतएव रसनेन्द्रियको वशमें किये बिना जितेन्द्रिय नहीं हुआ जाता। और यदि रसनेन्द्रियको वशमें कर लिया जाए तो मानो सभी इन्द्रियाँ वशमें हो गयीं। परन्तु रसनेन्द्रियको वशमें करना बहुत ही कठिन कार्य है। इसे वशमें करनेके दो ही उपाय हैं—(१) रसनेन्द्रिय द्वारा रसयुक्त भगन्नामका ऊँचे स्वरसे निरन्तर कीर्त्तन और (२) उसके द्वारा सेव्यबुद्धिसे भगवत्-प्रसादका आस्वादन करना। एक औषधि है, तो दूसरा पथ्य है। अतएव गुरुसेवक श्रीगुरुदेव एवं श्रीकृष्णका अनुगमन करता हुआ सदा-सर्वदा भव-रोगकी उक्त औषधि और पथ्यका सेवन करें। श्रीगीतामें भी भगवानने कहा है—

''रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते।''

(१७) पिङ्गला नामक वेश्यासे शिक्षा

राजन्! मैंने विषय-भोगसे वैराग्य एवं त्यागकी शिक्षा पिङ्गला नामक एक वेश्यासे ग्रहण की है। प्राचीन कालकी बात है, विदेह नगरीमें एक वेश्या रहती थी। उसका नाम था पिङ्गला। वह बड़ी ही रूपवती एवं स्वेच्छाचारिणी थी। एक दिन रातके समय किसी पुरुषको अपने रमणस्थानमें लानेके लिए खूब बन-ठनकर—उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सज-धजकर अपने घरकी बाहरी दरवाजे पर खड़ी रही। उसे पुरुषकी नहीं, धनकी कामना थी और उसके मनमें यह कामना इतनी बलवती हो उठी थी वह किसी भी पुरुषको उधरसे आते-जाते देखकर यही सोचती कि यह कोई धनी व्यक्ति है और मुझे धन देकर उपभोग करनेके लिए ही आ रहा है। जब आने-जाने वाले आगे बढ़ जाते तब फिर वह सोचने लगती कि अबकी बार निश्चय ही धनी पुरुष मेरे पास आवेगा और मुझे बहुत-सा धन देगा। इस प्रकार दुराशामें दरवाजे पर आधी रात तक प्रतीक्षा करती। वह कभी बाहर आती तो कभी भीतर। परन्तु उस दिन कोई भी उसके पास न आया। सचमुच आशा बहुत ही बुरी है। धनीकी प्रतीक्षा करते-करते उसका मुँह सूख गया, चित्त व्याकुल हो गया। उस समय उदास और दुःखी पिङ्गलाके हृदयमें ग्लानि उत्पन्न हुई। साथ ही उस वृत्तिके प्रति दुःख-बुद्धि और वैराग्य हुआ। उस समय उसके मुँहसे ये शब्द गीतके रूपमें निकले थे—

'हाय! हाय! मैं इन्द्रियोंके अधीन हो गयी हूँ। मैं कितनी बड़ी अज्ञानी हूँ कि इन दुष्ट और असत् पुरुषोंसे तुच्छ विषय-सुखकी लालसा करती हूँ। यह कितने दुःखकी बात है। मैं सचमुच मूर्ख हूँ। देखो तो सही, निकट-से-निकट हृदयमें मेरे सच्चे स्वामी भगवान विराजमान हैं। केवल वे ही यथार्थ सुख एवं परमार्थरूपी सच्चे धनको देनेवाले हैं। वे नित्योंमें भी परम नित्य हैं। जगतके पुरुष अनित्य हैं। हाय! हाय! मैंने अबतक अपने ऐसे प्राणधनको छोड़कर उन तुच्छ और कामी मनुष्योंका सेवन किया है, जो मेरी एक भी कामना पूरी नहीं कर सकते, उलटे दुःख-भय, आधि-व्याधि, शोक और मोह ही देते हैं। बड़े खेदकी बात है, मैंने अति घृणित और निन्दनीय आजीविका वेश्यावृत्तिका आश्रय लिया और

व्यर्थ ही अपने शरीर और मनको क्लेश दिया। मेरा यह शरीर भी बिक गया है। लम्पट, लोभी और निन्दनीय पुरुषोंने इसे खरीद लिया है और मैं इतनी मूर्ख हूँ कि इसी शरीरसे धन और रति-सुख चाहती हूँ। मुझे धिक्कार है। हाड़-माँस-रुधिर और चर्मसे बने हुए इस शरीररूपी घरको—जिसके आँख, कान, नाक, मुँह, गुदा और उपस्थ आदि नौ द्वारोंसे नाना-प्रकारके घृणित मल आदि निकलते ही रहते हैं—मेरे अतिरिक्त कौन आदर करता है। यों तो यह जीवन्मुक्तोंकी नगरी है तथा इसे बड़ा ही दुर्लभ बतलाया गया है, परन्तु इसमें केवल मैं ही सबसे मूर्ख और आत्मघाती हूँ, क्योंकि अकेली मैं ही इस दुर्ल्लभ मनुष्य शरीरको पाकर भी देह-धारियोंके आत्मस्वरूप और प्रियतम सुहृद् परमात्माको छोड़कर दूसरे कामी पुरुषकी अभिलाषा करती हूँ। नहीं, नहीं अब मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती। अब मैं अपने आपको तथा अपना सब कुछ प्रियतम भगवानके चरणोंमें समर्पण करके उनके साथ लक्ष्मीजीकी भाँति विहार करूँगी। जगतके विषय भोग और उनको देनवाले पुरुष तथा कालके अधीन देवतावृन्द, ये बेचारे तो स्वयं ही कालके गालमें पड़े-पड़े कराह रहे हैं। ये मेरा क्या कल्याण कर सकते हैं। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे किसी शुभ कर्मसे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हैं, तभी तो मेरे हृदयमें सब प्रकारसे सुख प्रदान करने वाला वैराग्य उदय हो रहा है। अहो! यदि मैं मन्दभागिनी होती, तो वह वैराग्य, जिसके उदय होने पर मनुष्य अपना पुत्र-परिवार, धन-जन सब कुछ छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त कर लेता है—आज मेरे हृदयमें कदापि उदित नहीं होता। अब मैं भगवानका यह उपकार सिर झुकाकर स्वीकार करती हूँ और विषय भोगोंकी दुराशा छोड़कर उन्हीं जगदीश्वरकी शरण ग्रहण करती हूँ। मुझे अब प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाएगा, उसीसे निर्वाह कर सन्तोषपूर्वक जीवन बिताऊँगी। अब मैं किसी भी दूसरे पुरुषकी ओर न देखकर अपने हृदयेश्वर आत्मस्वरूप प्रभुके साथ ही विहार करूँगी। मैं ब्रह्मा आदि देवताओंको छोड़कर भगवानकी ही शरण लूँगी। संसार-कूपमें गिरे हुए, विषयमोहसे अन्ध और कालसर्पद्वारा आक्रमण किए गये मुझ जैसे दीन-हीन और असहाय प्राणियोंका उद्धार उनके बिना दूसरा कोई भी नहीं कर सकता। अतएव मैं सब प्रकारकी दुराशाओंका परित्याग कर भगवानकी शरण लेकर सब प्रकारसे सुखी हो जाऊँगी। ऐसा निश्चय करके पिङ्गलाने धन एवं विषयभोग आदि समस्त प्रकारकी आशाओंको त्याग कर दिया और भगवानका स्मरण करती हुई शान्तभावसे अपनी सेज पर सो गयी।

राजन्! सचमुच आशा ही सबसे बड़ा दुःख है और निराशा ही सबसे बड़ा सुख है; क्योंकि पिङ्गला वेश्याने जब पुरुषकी आशा छोड़ दी, तभी वह सुखसे सो सकी—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला।।

(श्रीमद्भा॰ ११/८/४४)

अतएव भगवानके श्रीचरणकमल ही जीवोंके लिए परम आश्रय हैं। उनको छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी सुख-शान्ति नहीं है—ऐसा जानकर गुरुदासको विषय भोगोंसे वैराग्य लाभ कर अनन्य चित्तसे भगवानका भजन करना चाहिए। ❑

(क्रमशः)

विविध संवाद

श्रीश्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीश्रीगौर–जन्मोत्सव

परमदयालु पतितपावन श्रीश्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद द्वारा प्रवर्त्तित एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके वचनोंको मस्तकपर धारणकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रीश्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीचैतन्य महाप्रभुके जन्मोत्सवको अत्यधिक धूमधामके साथ सम्पन्न करती है। अन्यान्य वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी यात्रियोंकी संख्या अत्यधिक होने पर भी यथायोग्य सुव्यवस्था की गई।

श्रीनवद्वीप परिक्रमाके आरम्भ होने से लगभग दस दिन पहले ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज श्रीधाम नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। नित्यप्रति श्रील महाराजजीने सन्ध्या कालमें श्रीचैतन्यचरितामृतके 'श्रीरूप शिक्षा' का पाठ किया एवं अत्यन्त सरल तथा सुबोध भाषामें अत्यन्त गूढ़ सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण किया। हम एक दो उदाहरण यहाँ अवश्य ही देना चाहते हैं। श्रीलमहाराजजीने कहा कि जब तक किसीकी शरीरमें आसक्ति है, तब तक भक्तिलताका बीज कुछ भी काम नहीं करेगा। शिष्यको वंशीके जैसे होना चाहिए अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे खाली। गुरुकी जैसी इच्छा हो वे वैसे ही बजायेंगे। परन्तु गुरु भी वैसे होने चाहिए जिनमें षड्गोस्वामियों जैसा गुरुत्व हो।

श्रीलमहाराजजीने कहा कि यद्यपि हम चारों सम्प्रदायोंकी जय देते हैं, उनके आचार्योंको प्रणाम करते हैं, परन्तु उनके विचारोंको क्या उतना ही समर्थन करते हैं, जितना कि श्रीमन्महाप्रभुने शिक्षा दी है? नहीं। क्योंकि श्रीमध्वाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य इत्यादिके विचारोंके पालनसे कभी भी व्रजप्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हमारे गोस्वामीवर्गने जिस प्रकार शास्त्रकी सभी वाणियोंका सामञ्जस्य किया है, वैसा और किसी भी सम्प्रदायमें देखा नहीं जाता। श्रीलमहाराजजीने कहा कि कभी भी महाभागवतका अनुकरण मत करो। इस विषयको समझाने के लिए श्रीलमहाराजजीने श्रील वंशीदास बाबाजी, श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी, अभिराम ठाकुर, शिव इत्यादिके चरित्र द्वारा इस विषयकी अति सूक्ष्म रूपसे विवेचना की।

चैतन्यचरितामृतके एक पयार "उपाड़े व छिन्डे, तार सुखी जाय पाता" की व्याख्या करते समय महाराजजीने बताया कि उपाड़े अर्थात् समूल रूपसे नाश हो जाना और छिन्डे अर्थात् थोड़ी बहुत नष्ट होने पर भी मूल बचा रह जाना। उपाड़ेका उदाहरण देते हुए महाराजजीने रामचन्द्र खाँका उदाहरण दिया, जिसने नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरके चरणोंमें अपराध करके बादमें श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें भी अपराध किया और उसकी नरकमें गति हुई सदाके लिए। छिन्डेका उदाहरण महाराजजीने

गोपाल चापाल, देवानन्द पण्डित इत्यादिके चरित्रों द्वारा दिया।

४ मार्चसे लेकर ९ मार्च तक अत्यधिक उल्लास, परमानन्दके साथ सभी भक्तोंने श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज तथा समितिके अन्यान्य सन्न्यासियोंके आनुगत्यमें यह परिक्रमा की।

परमपूज्यपाद श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीने परिक्रमाके अधिवास दिवसपर कहा कि हम सुनते हैं और पढ़ते हैं कि गौर धाम और गौर नाम कृष्ण नाम एवं कृष्ण धामकी अपेक्षा अधिक कृपालु हैं, क्योंकि गौर धाम और गौर नाम अपराधोंका विचार नहीं करते, परन्तु कृष्ण नाम और कृष्ण धाम अपराधका विचार करते हैं। परन्तु हमें करना तो फिर भी कृष्ण नाम ही है, इसलिए हमें अपराधोंको ही छोड़ना पड़ेगा न कि नामको।

अनेक सन्न्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंने श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें अनेक स्थानोंपर जाकर वहाँका माहात्म्य गान किया और सुमधुर कण्ठसे कीर्त्तन करके सबको मोहित कर दिया। परिक्रमाके अन्तिम दिन जब सभी भक्त श्रीधाम मायापुरके दर्शनको गये तो श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नूतन स्थलको देखकर सबमें अत्यधिक प्रसन्नता छा गई। श्रील प्रभुपादके समाधिमन्दिरके एकदम पासमें यह स्थान अतीव रमणीय है। महाराजजीने कथाके माध्यमसे बताया कि मेरे हृदयमें बहुत समयसे यह इच्छा थी कि मायापुरमें परिक्रमाकारी भक्तोंके लिए प्रसाद पानेकी एक सुन्दर व्यवस्था हो। आज श्रीश्रीलगुरुदेव, प्रभुपाद, वैष्णवों एवं महाप्रभुकी कृपासे यह सम्भव हो पाया है।

श्रीगौरपूर्णिमाके दिन सैकड़ों भक्तोंका हरिनाम हुआ एवं दीक्षा हुई। श्रीगौरपूर्णिमाके अगले दिन चार सन्न्यास वेश तथा तीन बाबाजी वेश प्रदान किए गये। १५ मार्चको श्रीमाधवजी गौड़ीय मठमें अत्यधिक आनन्दके साथ श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा हुई।

पूर्व नाम	*परिवर्त्तित नाम*
(१) श्रीनिकुञ्ज ब्रह्मचारी—	श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोस्वामी महाराज
(२) श्रीभागवत ब्रह्मचारी—	श्रीमद्भक्तिवेदान्त शान्त महाराज
(३) श्रीश्यामसुन्दर ब्रह्मचारी—	श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमहंस महाराज
(४) श्रीगोविन्दभक्त ब्रह्मचारी—	श्रीमद्भक्तिवेदान्त आश्रम महाराज
(५) श्रीमनोहर व्रजवासी—	श्रीनिमाई दास बाबाजी महाराज
(६) श्रीनरोत्तम व्रजवासी—	श्रीनरोत्तम दास बाबाजी महाराज
(७) श्रीपरीक्षित व्रजवासी—	श्रीनिताई दास बाबाजी महाराज

❑

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुराके दूरभाष नंबर में परिवर्त्तन हो गया है। नया दूरभाष नंबर 502334 है।

श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराजजीसे श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीको प्राप्त पत्र

ALL GLORY TO SRI SRI GURU AND GOURANGA

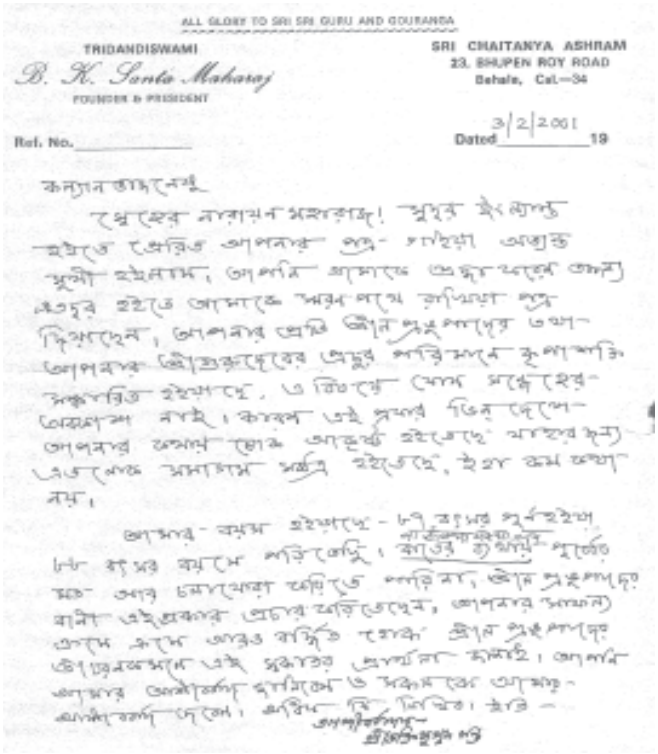

TRIDANDISWAMI
B. K. Santo Maharaj
FOUNDER & PRESIDENT

SRI CHAITANYA ASHRAM
23, BHUPEN ROY ROAD
Behala, Cal.—34

Ref. No.

Dated 3/2/2001 19

कल्याण भाजनेषु,

स्नेहास्पदेषु नारायण महाराज! सुदूर इंग्लैण्डसे प्रेरित आपका पत्र पाकर अत्यन्त सुखी हुआ। आप मुझे श्रद्धा करते हैं इसलिए इतनी दूरसे भी मुझे स्मरण करके पत्र लिखा। आपके प्रति श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' तथा आपके श्रीगुरुदेव श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी कृपा-शक्ति प्रचुर परिमाणमें सञ्चरित हुई है, इस सन्दर्भमें सन्देहका कोई गुञ्जाइश नहीं है, क्योंकि इस प्रकार भारतके बाहर देशोंमें आपकी कथाके द्वारा इतने लोग आकृष्ट हो रहे हैं, जहाँ भी जा रहे हैं सर्वत्र ही इतने लोग एकत्र हो रहे हैं ये साधारण बात नहीं है।

अब मेरा आयु ८७ वर्ष पूर्ण होकर ८८ आरम्भ हुआ है। वार्द्धक्य अवस्थाके कारण पहले जैसा चल-फिर नहीं सकता। श्रील प्रभुपादकी वाणी इस प्रकार आप प्रचार कर रहे हैं, आपका साफल्य क्रमशः और वर्द्धित हो—श्रील प्रभुपादके श्रीचरण कमलोंमें यही कातर प्रार्थना करता हूँ। आप मेरा स्नेहाशीर्वाद ग्रहण करेंगे और सबको कहेंगे। अधिक क्या लिखूँ।

इति आशीर्वादक
श्रीभक्तिकुमुद सन्त

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ वैशाख मास, सन् २००१, ९ अप्रैल — ७ मई
{ संख्या २

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

[गताङ्कसे आगे]

इन्द्रनिवारं व्रजपतिवारं निर्धुतवारं हतघनवारम्।
रक्षित गोत्रं प्रीणितगोत्रं त्वां धृतगोत्रं नौमि सगोत्रम्।।११।।

हे श्रीकृष्ण! आपने ही तो अपने पिता व्रजराज (श्रीनन्दजी) को इन्द्रपूजासे रोका था तथा मख–भङ्गसे रुष्ट हुए इन्द्रका निवारण किया था और अपने संकल्पसे ही उनके द्वारा बरसाई हुई अपार जलराशिका शोषण किया था; आपने ही बादलोंके द्वारा खड़ी की हुई मोटी दीवारको हटाया था और इस प्रकार व्रजकी रक्षा करके अपने कुलको आनन्दित किया था। उन व्रजेन्द्रनन्दन गिरिधारी श्रीकृष्णकी उनके कुलके सहित मैं स्तुति करता हूँ।।११।।

कंसमहीपतिहृद्गतशूलं संततसेवितयामनुकूलम्।
वन्दे सुन्दरचन्द्रकचूलं त्वामहमखिलचराचरमूलम्।।१२।।
मलयजरुचिरस्तनुजितमुदिरः पालितविबुधस्तोषितवसुधः।
मामतिरसिकः केलिभिरधिकः सितसुभगरदः कृपयतु वरदः।।१३।।
उररीकृतमुरलीरुतभङ्गं नवजलधर किरणोल्लसदङ्गम्।
युवतिहृदयधृतमदनतरङ्गं प्रणमत यामुनतटकृतरङ्गम्।।१४।।
नवाम्भोदनीलं जगत्तोषिशीलं मुखासङ्गिवंशं शिखण्डावतंसम्।
करालम्बिवेत्रं वराम्भोजनेत्रं धृतस्फीतगुञ्जं भजे लब्धकुञ्जम्।।१५।।
हृतक्षोणिभारं कृतक्लेशहारं जगद्गीतसारं महारत्नहारम्।
मृदुश्यामकेशं लसद्वन्यवेशं कृपाभिर्नदेशं भजे वल्लवेशम्।।१६।।
उल्लसद्वल्लवीवाससां तस्करस्तेजसा निर्जितप्रस्फुरद्भास्करः।
पीनदोः स्तम्भयोरुल्लसच्चन्दनः पातु वः सर्वतो देवकीनन्दनः।।१७।।
संसृतेस्तारकं तं गवां चारकं वेणुना मण्डितं कीड़ने पण्डितम्।
धातुभिर्वेषिणं दानवद्वेषिणं चिन्तय स्वामिनं वल्लवीकामिनम्।।१८।।
उपात्तकवलं परागशबलं सदेकशरणं सरोजचरणम्।
अरिष्टदलनं विकृष्टललनं नमामि समहं सदैवतमहम्।।१९।।
विहारसदनं मनोज्ञरदनं प्रणीतमदनं शशाङ्कवदनम्।
उरःस्थकमलं यशोभिरमलं करात्तकमलं भजस्व तमलम्।।२०।।

अनुवाद—

आप महाबली राजा कंसके हृदयमें शूलकी भाँति खटकते रहते हैं तथा निरन्तर यमुना तटका ही सेवन किया करते है। आपके श्रीमस्तक पर सुन्दर मयूरपिच्छ सुशोभित रहता है। सम्पूर्ण चराचर जगतके आदि कारण आपकी मैं वन्दना करता हूँ।।१२।।

जिनका श्रीविग्रह चन्दनके लेपसे अत्यन्त सुशोभित है, जो अपनी अंगकान्तिसे नवीन जलधरका भी तिरस्कार करनेवाले हैं, जिन्होंने देववृन्दकी रक्षाका व्रत ले रखा है और जो पृथ्वीके भाररूप दानवोंका संहार करके उन्हें सन्तुष्ट करते रहते हैं, जिनकी दन्तपंक्ति कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल एवं कमनीय है और जो अपनी आनन्ददायिनी विविध लीलाओंमे अन्य सभी भगवत्स्वरूपोंसे आगे बढ़े हुए हैं, वे रसिकशिरोमणि वरदाता श्रीकृष्ण मुझपर कृपा करें।।१३।।

जो मुरलीरवकी उन्मादकारी तरङ्गोंका सृजन करते रहते हैं, जिनके श्रीअङ्गोंसे नवीन जलधरकी–सी कान्ति फूटती रहती है, जो व्रजयुवतियोंके हृदयमें प्रेमकी लहरें उठाते रहते हैं और जो यमुनातटपर क्रीड़ा करते रहते हैं, उन भगवान श्रीश्यामसुन्दरको प्रणाम करो।।१४।।

जिनका नवीन जलधरके समान श्यामवर्ण है, जो अपने मधुर स्वभाव एवं आचरणसे समस्त ब्रह्माण्डको सन्तुष्ट करते रहते हैं, जिनके श्रीमुखसे वंशी कभी अलग नहीं होती, जो मयूरपिच्छका मुकुट धारण किये रहते हैं, जिनके करकमलमें वेत्रदण्ड सुशोभित है, जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, जो गुञ्जाओंकी बड़ी-बड़ी मालाएँ धारण किये रहते हैं और जो वृन्दावनके कुञ्जोंमें विहार करते रहते हैं, उन श्रीकृष्णका ही मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।१५।।

जो महाबलशाली दानवोंका संहार करके पृथवीका भार हरण करते हैं और प्रणत एवं साधुजनोंका क्लेश दूर करते हैं, जिनके बलका जगतमें यशोगान होता है, जो अमूल्य रत्नोंके हार धारण किये रहते हैं; जिनके केश अत्यन्त मृदु एवं श्याम हैं; जो वनवासियोंका-सा वेश धारण किये रहते हैं तथा कृपाके पारावार हैं, उन गोपेन्द्रकुमारका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।१६।।

जो गोपबालाओंके चमकीले वस्त्रोंका हरण करते हैं तथा अपने दिव्य प्रकाशसे परम तेजोमय भास्करको भी पराजित करते हैं, जिनकी पीन भुजाओंमें चन्दनका लेप सुशोभित है, वे भगवान यशोदानन्दन आप लोगोंकी सब प्रकार रक्षा करें।।१७।।

जो प्रणतजनोंको संसारसे तार देते हैं तथा गौओंके वृन्दको वन-वनमें घूमकर चराते हैं, वंशीसे विभूषित रहते हैं और विविध प्रकारकी क्रीड़ाओंमें अत्यन्त कुशल है, जो गैरिक धातुओंसे अपने श्रीअङ्गोंको मण्डित किये रहते हैं तथा दानवोंके शत्रु हैं, उन गोपीजनोंके प्रेमी श्रीकृष्णका ही चिन्तन किया करो।।१८।।

जो हाथमें दही-भातका कौर लिए हुए हैं, जिनके श्रीअङ्ग रेणुसे चित्र-विचित्र बने रहते हैं, जो सज्जनोंके एकमात्र आश्रय हैं, जिनके पाद-पल्लव कमलके सदृश कोमल हैं, जो अरिष्टासुरका विनाश करने वाले हैं, जो अपनी प्रेमभरी चेष्टाओंसे कामिनियोंका चित्त चुराने वाले हैं, और जो सदा ही आनन्दसे पूर्ण रहते हैं, उन नन्दनन्दनको मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।।१९।।

जो विविध प्रकारकी लीलाओंके धाम हैं, जिनकी दन्त-पंक्ति बड़ी ही मनोहर है, जो व्रजयुवतियोंके हृदयमें प्रेमका सञ्चार करते हैं, जिनका मुखमण्डल चन्द्रविम्बके समान है, जिनके वक्षःस्थल पर स्वर्ण रेखाके रूपमें भगवती लक्ष्मी सदा निवास करती हैं, जिनकी निर्मल कीर्त्ति समस्त दिशाओंमें फैली हुई है, और जो हाथमें लीला-कमल फिराते रहते हैं, उन श्रीकृष्णका ही सर्वतोभावेन भजन करो।।२०।। ❑

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

आविर्भाव और गृह–त्याग

कृष्ण–प्रेमकी बड़ी विचित्र गति है। इसका रङ्ग इतना गहरा होता है कि जिसपर यह चढ़ जाता है, उसको सुन्दर–से–सुन्दर रूप, माता–पिताका स्नेह, स्त्रीका प्यार, बन्धु–बान्धवों, पुत्र–परिवार एवं अतुल सम्पत्तिका मोह—ये सब मिलकर भी बाँधनेमें असमर्थ होते हैं। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी एक ऐसे ही परम उच्च कोटिके प्रेमी भक्त हुए हैं। लगभग १४१६ शकाब्दमें बङ्गालके एक प्रसिद्ध नगर सप्तग्रामें कायस्थकुलमें इनका आविर्भाव हुआ था। इनके पिता श्रीगोवर्द्धन मजूमदार बड़े ही धनवान व्यक्ति थे। श्रीरघुनाथ दासजी बचपनसे ही बड़े बुद्धिमान और होनहार थे। साथ ही उसी समयसे भगवद्भक्तिके लक्षणसमूह इनमें प्रकाशित होने लगे थे। उसी समय सौभाग्यसे उस समयके उच्चकोटिके प्रेमी–सन्तोंका सङ्ग भी प्राप्त हुआ। युवावस्थामें पहुँचते–पहुँचते कृष्ण–प्रेमका ऐसा रङ्ग चढ़ा कि पिताकी विपुल सम्पत्ति, सर्वगुण–सम्पन्ना परमरूपवती पूर्णयुवती स्त्री और घर–बार सब कुछ छोड़कर प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके पास चले आये। जङ्गलका भयानक रास्ता, बिना खाये–पिये, लगभग ३०० मील बारह दिनमें सिर्फ तीन दिन खाये हुए पैदल चलकर पुरी उपस्थित हुए। चिर–दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। श्रीमन्महाप्रभुकी प्रचुर कृपा पाकर वे धन्य हो गये।

दास गोस्वामीका वैराग्य

श्रीरघुनाथ दासका वैराग्य बड़ा ही कठोर था। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने रघुनाथ दासके वैराग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि 'रघुनाथ जैसा वैराग्य किसी जीवमें सम्भव नहीं है।' रघुनाथ दास अयाचक थे अर्थात् किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाता, उसीसे जीवन–निर्वाह करते हुए निरन्तर भगवानका भजन करते थे। श्रीजगन्नाथ पुरीमें पहुँचकर वे कुछ दिनोंतक श्रीजगन्नाथदेवके सिंहद्वार पर खड़े रहते थे, लोग उनकी अञ्जलीमें महाप्रसाद भिक्षाके रूपमें देते थे। जब उनकी अञ्जली पूर्ण हो जाती, तब वे अपनी कुटीमें लौट आते और भोजन करते। परन्तु ऐसा करने पर भी उनको सन्तोष न हुआ। उन्होंने सोचा कि उनका सिंहद्वारपर अञ्जलिबद्ध होकर प्रसादकी प्रतीक्षामें खड़ा रहना उस व्यभिचारिणी वेश्याके समान है, जो जीविका निर्वाहके लिए द्वारपर खड़ी होकर बड़ी व्यग्रतासे पर–पुरुषोंकी प्रतीक्षा करती है। अतः मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसा सोचकर दूसरे दिनसे श्रीमन्दिरके एक भागमें फेंके हुए बासी और सड़े–गले प्रसादको उठा लाते और उसे पानीमें धोकर भोजन करते। अब प्रतिदिन उनका ऐसा ही नियम चलने लगा।

एक दिन करुणावरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अकस्मात् श्रीरघुनाथ दासकी कुटीमें पधारे। उस समय रघुनाथ दास फेंके गये प्रसादको पानीमें धोकर बड़े प्रेमसे खा रहे थे। यह देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने पूछा—"रघुनाथ! तुम क्या खा रहे हो?"

रघुनाथ दासने अकस्मात् महाप्रभुको देखकर स्पष्ट शब्दोंमें कुछ उत्तर न देकर केवल इतना ही उत्तर दिया—"जी।" सर्वान्तर्यामी महाप्रभुजी उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही हँसते-हँसते उनके पत्तेसे एक मुट्ठी प्रसाद लेकर खाते हुए बोले—"रघुनाथ! तुम मुझे छोड़कर प्रतिदिन अकेले ही ऐसा अमृत सदृश प्रसाद पाते हो!" महाप्रभुजीके इस व्यवहारसे रघुनाथदास बड़े लज्जित हुए। भगवान श्रीचैतन्यदेव रघुनाथ दासको कितना प्यार करते थे—यह विज्ञ-वैष्णवोंसे छिपा हुआ नहीं है। श्रीस्वरूप गोस्वामीके आनुगत्यमें रघुनाथदास श्रीगौरसुन्दरकी अन्तरङ्ग सेवा करने लगे।

श्रीराधाकुण्डमें

श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीस्वरूपदामोदर प्रभुकी अप्रकट लीलाके पश्चात् रघुनाथ दासकी स्वतःसिद्ध विरहाग्नि और भी बढ़ गयी। वे श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञानुसार पुरुषोत्तम क्षेत्रसे श्रीवृन्दावन पधारे। यहाँ वे व्रजके प्रसिद्ध प्रेमी भक्त श्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामियोंसे मिले तथा उनके आज्ञानुसार श्रीश्रीराधाकुण्डके तटपर रहकर भजन करने लगे। अकस्मात् एक दिन उनके हृदयमें एक ऐसी अभिलाषा उत्पन्न हुई कि यदि श्रीश्यामकुण्ड और श्रीराधाकुण्डको पुनः खुदवाकर उनके चारों ओर पक्के घाट बनवा दिये जाँय, तो बहुत ही अच्छी बात होगी। भक्तोंकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहती। रह भी कैसे सकती है, जब कि साक्षात् कृष्ण ही उनके प्रेमके अधीन हैं। इधर बद्रिकाश्रमसे श्रीबद्रीनारायणजीने एक सन्तको कुछ स्वर्ण मुद्राएँ देकर कहा—"तुम व्रजमण्डलस्थित श्रीराधाकुण्ड जाओ। वहाँ पर एक बड़े ही प्रेमी सन्त हैं। उनका नाम श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी है। तुम उनको ये स्वर्ण मुद्राएँ दे देना। यदि वे इन्हें ग्रहण करनेसे अस्वीकार करें, तो तुम उनसे कहना कि श्रीबद्रीनारायणजीने इन स्वर्ण मुद्राओंको भेजा है। आप इस धनसे श्यामकुण्ड और राधाकुण्डका अपनी इच्छानुसार संस्कार करवा लें।"

श्रीबद्रीनारायणजीके आज्ञानुसार वे सन्त व्रजमण्डलमें उपस्थित हुए और श्रीराधाकुण्डमें श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीसे मिले। परन्तु जब वे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीको स्वर्ण मुद्राएँ देने लगे तब उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अन्तमें उन सन्तने रघुनाथदासजीको श्रीबद्रीनारायणका आदेश सुनाया। श्रीबद्रीनारायणकी आज्ञा सुनकर रघुनाथ दासकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी। वे 'हा प्रभो! हा नाथ! हा शरणागत-वाञ्छापूरणकारी!' कहते-कहते जोरोंसे रोने लगे। थोड़ी देरके पश्चात् कुछ स्थिर होनेपर उन्होंने व्रजवासियोंको बुलाया। उनके आनेपर दोनों कुण्डोंको खुदवानेके सम्बन्धमें वे उनसे परामर्श करने लगे।

महाराज युधिष्ठिरकी श्रीरघुनाथदासके पास स्वप्नमें प्रार्थना

परामर्शके समय ग्रामवासियोंने यह कहा कि श्रीराधाकुण्ड तो चौकोण हैं ही, इनको इसी प्रकार खुदाईकर पक्के घाट बनवा दिये जाँय। परन्तु श्यामकुण्डके तीरपर एक प्राचीन वृक्ष है । इस वृक्षको काटकर श्यामकुण्डको भी चतुष्कोण बनवाकर तब पक्के घाट बनवाये जाय। नहीं तो श्यामकुण्ड टेढ़े रह

जाएँगे। स्थिर हुआ, कल उस प्राचीन वृक्षको काटा जाएगा। साथ ही कुण्डोंकी खुदाई भी आरम्भ हो जाएगी। इधर रातमें महाराज युधिष्ठिर स्वप्नके बहाने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीसे बोले—"आप हमें कटवायें नहीं। हम पाँचों भाई वृक्षके रूपमें श्यामकुण्डके तटपर वासकर भजन कर रहे हैं।" श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीने दूसरे दिन प्रातःकाल सबको बुलाकर उस पेड़को काटनेके लिए मना कर दिया। इसलिए श्यामकुण्ड वक्र रह गये। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी कुण्डोंको सुनिर्मल जलसे पूर्ण देखकर बड़े आनन्दित हुए।

राधाकुण्डवासी श्रीरघुनाथ दास

अब वे दिन-रात युगलकुण्डके तीरपर वृक्षोंके नीचे ही रहकर भजन करने लगे। एक दिन श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु वृन्दावनसे राधाकुण्ड उपस्थित हुए और मानस पावन घाटपर स्नान करने गये। वहाँ उन्होंने एक बाघको उसी घाटपर पानी पीते हुए देखा। पास ही रघुनाथ दासजी बाह्य-स्मृतिशून्य कृष्ण-स्मरणमें विभोर बैठे हुए थे। बाघ पानी पीकर उनके पाससे होकर ही जङ्गलकी ओर चला गया। थोड़ी देर बाद जब रघुनाथ दासकी बाह्य दशा आ गयी, तब उन्होंने पास ही श्रीसनातन गोस्वामीको खड़ा देखा। रघुनाथ दासने श्रद्धापूर्वक उनको दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीसनातन गोस्वामी भी रघुनाथ दासको स्नेहालिङ्गनमें बाँधकर धीरे-धीरे बोले—"रघुनाथ! मेरा एक अनुरोध स्वीकार करना पड़ेगा। यह वह कि तुम आजसे कभी भी वृक्षके नीचे जहाँ तहाँ न रह कुटीमें भजन करना।" रघुनाथ दासजी सनातन गोस्वामीके आज्ञानुसार उस दिनसे एक कुटीमें रहकर भजन करने लगे।

श्रीरघुनाथका वैराग्य बड़ा ही तीव्र एवं उच्च कोटिका था। वे दिन रात २४ घण्टेमें केवल डेढ़ घण्टे ही शयन और भोजनका कार्य समाप्तकर बाकी २२॥ घण्टे भजनमें विभोर रहा करते थे। दिन रातमें केवल एक बार एक दोना मट्ठा पीते थे, वह दोना भी एक छोटे से पत्तेका बना होता था। माथुर-विरह भावमें विभावित रहनेके कारण उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा प्रवाहित होती रहती थी। इस प्रकार अश्रुतपूर्व तीव्र वैराग्यका अवलम्बनकर निरन्तर व्रज-रस चिन्तनमें निमग्न रहते थे।

रचित ग्रन्थ

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी परम वैरागयवान एवं रसिक भक्तके अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान भी थे। उनके द्वारा रचित—(१) स्तवमाला या स्तवावली, (२) दान चरित और (३) मुक्ताचरित माधुरी—ये तीन ग्रन्थ वैष्णवोंके कण्ठहार हैं। श्रीगौड़ीय वैष्णव-समाजमें इन ग्रन्थोंका बड़ा सम्मान है।

इन विख्यात महात्माके परम अद्भुत जीवन-चरित्रसे सभी परिचित हैं। अतः मैंने यहींपर लेखनीको विश्राम दिया। ❑

भगवानकी अप्रकट लीलाका रहस्य

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

तन्त्र-भागवतमें कहते हैं—"कृष्णावतार और रामावतार आदिमें परमेश्वर भगवानने शरीर धारण किया तथा शरीर त्याग किया—ऐसी बातें जो शास्त्रमें दिखलायी पड़ती हैं, वे केवल मूढ़ लोगोंकी बुद्धिके अनुसार ही पढ़ी जाती हैं अर्थात् मूर्ख लोगोंके लिए ही हैं।" वराह पुराणमें भी कहा गया है—"भगवान या उनकी स्वरूपशक्तिकी हाड़-चाम और मांससे बनी कोई प्राकृत मूर्त्ति नहीं होती। महायोगी होनेके कारण अथवा योग-ऐश्वर्यके प्रभावसे ही उनका वैसा अप्राकृत रूप है—केवल ऐसी बात नहीं है; बल्कि स्वयं साक्षात् ईश्वर होनेके कारण वे सत्यस्वरूप, अच्युत और विभु हैं।"

उन परमात्मारूपी भगवानके अवतारोंके शरीर आदि सब कुछ नित्य और शाश्वत हैं; साथ ही जड़ीय हेयता और उपादेयता—दोनों भावोंसे रहित हैं एवं कदापि प्राकृत नहीं हैं। वे सर्वतोभावसे अखण्ड परमानन्दराशि (समष्टि), केवल चिन्मय एवं सभी अप्राकृत सर्व सद्गुणोंसे पूर्ण और परस्पर भेदरहित अर्थात् अभिन्न हैं। वे सभी सब गुणोंद्वारा परस्पर एक-दूसरेके निकट न्यूनताधिक्य-शून्य हैं अर्थात् उनमें छोटे-बड़ेका भेद नहीं है। भगवानमें देह और देहीका भी भेद नहीं है। फिर ईश्वर विष्णुने शरीर ग्रहण किया—ऐसा जो सुना जाता है, उसे नट द्वारा अभिनयके लिए पहने हुए कुर्त्तेके हाथके समान समझना चाहिए। केवल अर्थात् अविमिश्र (शुद्ध) चिन्मय ऐश्वर्यके संयोग हेतु प्रकृतिके अतीतवस्तु ईश्वर—विष्णु अवतीर्ण और अन्तर्हित होकर भी "उनका यह रामरूप", "उनका यह कृष्णरूप" आदि उक्तियाँ उनके सम्बन्धमें प्रयुक्त होती हैं। कूर्म पुराण कहते हैं—"भगवान स्थूल भी नहीं हैं, अणु भी नहीं हैं, अथच वे सर्वतोभावेन स्थूल और अणु हैं।" चिन्मय ऐश्वर्य-संयोग हेतु भगवान यद्यपि विरुद्धार्थ कहे जाते हैं, तथापि परमेश्वर तत्त्वमें किसी प्रकारके जड़ीय दोषका आरोप करना उचित नहीं है। बाह्य दृष्टिसे उनमें आपात-विरुद्ध गुणसमूह रहने पर भी वे गुण समूह परस्पर अचिन्त्यरूपमें अविरुद्ध (समन्वित) भावसे ही अवस्थित हैं—ऐसा समझना चाहिए।

विष्णुधर्मोत्तरमें कहते हैं—"भगवान पुरुषोत्तमके ऐश्वर्यके कारण उनमें अप्राकृत समस्त गुणराशि विराजमान हैं। परन्तु उनमें किसी प्रकारका दोष नहीं है। क्योंकि वे परम वस्तु हैं। कोई-कोई निर्बोध व्यक्ति ऐसा कह उठते हैं कि उनमें गुण और दोष दोनों ही माया द्वारा प्राप्त हैं या आरोपित हैं। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि भगवद्वस्तुमें जब मायाका लेश भी नहीं है, तब माया सम्बन्धी गुण ही उनमें कैसे सम्भव हो सकते हैं? इसलिए भगवानकी गुण-राशि मायाद्वारा प्राप्त या आरोपित नहीं है; बल्कि उनके ऐश्वर्यसे ही उत्पन्न हैं। मायासे परे होनेके कारण ही भगवानको तत्त्वविद् पुरुष परम वस्तु मानते हैं।"

मायाद्वारा मोहित कुछ अज्ञानी पुरुष ऐसा संशय करते हैं कि बहेलियेके बाणसे चोट खाकर श्रीकृष्णने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया। इस संशयको दूर करनेके लिए सर्वशास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवत और तदनुग आचार्योंने बड़े ही गूढ़ और सुसिद्धान्तपूर्ण रहस्यका भेद खोला है।

श्रीमद्भागवत (१/१४/८)में भीमसेनके प्रति युधिष्ठिर कह रहे हैं—

'यदात्मनोऽङ्गमाक्रीड़' भगवानुत्सिसृक्षति।'

इस श्लोककी कुछ व्याख्याएँ इस प्रकार हैं—

'अङ्गं=पृथिवीम्। यदा त्यागादिरुच्येत् पृथिव्याद्यङ्गकल्पना। तदा ज्ञेया न हि स्वाङ्गं कदाचिद्विष्णुरुत्सृजेत्।।—इति ब्रह्मतर्के।'

अर्थात् 'अङ्ग'-शब्दका अर्थ पृथ्वीसे है। ब्रह्मतर्कमें कहते हैं—शास्त्रोंमें भगवानके अन्तर्द्धान-प्रसङ्गमें जब त्याग-शब्दका प्रयोग होता है, तब पृथ्वी आदिको ही अङ्ग समझना चाहिए; क्योंकि भगवान विष्णु अपने स्व-अङ्गका कभी भी परित्याग नहीं करते। (श्रीमध्वाचार्य कृत भागवत-तात्पर्य) 'अक्रीड़-शब्दसे—क्रीड़ा(लीला)-स्थान अर्थात् विश्व प्रपञ्चका बोध होता है और 'अङ्ग'-शब्दसे निजभूमि; 'क्योंकि पृथ्वी जिनका शरीर है'—इत्यादि शास्त्र वाक्य ही इस विषयमें प्रमाण हैं। (श्रीविजयध्वज) अथवा महाराज युधिष्ठिर कह रहे हैं—"क्या वह समय आ गया है, जब भगवान अपने क्रीड़ा-साधन अर्थात् लीला-सम्पादक 'अङ्ग' अर्थात् मनुष्य नाट्य (मनुष्यकी भाँति प्रपञ्चमें परिलक्षित लीलानुकरण) को परित्याग करने की इच्छा करेंगे?"—(श्रीधरस्वामीपाद)

"अङ्ग अर्थात् स्वधामगमन हेतु प्राकृत विराट् रूप।" क्रम सन्दर्भ। भागवतके ११/१५/३४-३६ श्लोकमें शौनकादि मुनियोंके प्रति श्रीसूत गोस्वामीकी उक्ति—***"यया ऽहरद्भुवो भारं तां ततुं विजहावजः। कण्टकं कण्टकेनेव द्वयाञ्चापीशितुः समम्। यथा मत्स्यादिरूपानि धत्ते जह्याद् यथा नटः। भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम्।। यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीय सत्कथाः।"***

अर्थात्—(जो नित्यसिद्ध पार्षद नहीं हैं, ऐसे साधारण मरणशील जीव) यादवोंसे भगवानकी विलक्षणता अर्थात् विशेषता न समझकर जो मन्दमति मूर्ख बहिर्मुख व्यक्ति दोनोंको 'समान' मानते हैं, उनके समीप श्रीसूत गोस्वामी इन दो श्लोकोंमें जीवसे भगवानकी विलक्षणता स्पष्ट रूपसे निर्देश कर रहे हैं। 'यया' शब्दसे (मायाद्वारा मोहित साधारण मरणशील जीवके समान) यादवरूपा तनु द्वारा पृथ्वीका भार (काँटा द्वारा काँटा निकालनेकी भाँति) हरण किये थे। 'यादवतनु' और 'भूभारतनु'—ये दोनों शरीर ही भगवान द्वारा संहारयोग्य होनेके कारण एक समान हैं अर्थात् प्राकृत हैं।

वे मत्स्य आदि शरीरोंको जिस प्रकार धारण करते हैं या त्यागते हैं, उसे उदाहरण द्वारा बतला रहे हैं—जिस प्रकार नट अपने रूपमें स्थित रहकर ही एक रूप छोड़ता है और दूसरा रूप धारण करता है, उसी प्रकार भगवान भी (प्राकृत लोगोंद्वारा देखे जाने वाले) शरीरका परित्यागकर स्वरूपमें ही अर्थात् अप्राकृत निज श्रीमूर्त्तिमें ही प्रकटित थे।

"भगवानका स्वशरीर ही वैकुण्ठमें आरोहण होनेके कारण पृथ्वीका परित्याग किया था।"

(—श्रीधरस्वामीपाद)

"यहाँ 'तनु', 'रूप' और 'कलेवर'—इन तीन शब्दोंसे भगवानके भू-भार हरणकी इच्छारूप लक्षणविशिष्ट और देवादिपालनकी इच्छारूप लक्षणविशिष्ट दोनों प्रकारके भावोंको ही बतलाया गया है ('देह' को नहीं बतलाया गया है।)। जैसे श्रीमद्भागवतके ३/२०/२८,३९,४१,४६,४७ आदि श्लोकोंमें उन शब्दोंसे ब्रह्माके भावका ही लक्ष्य किया गया है (देहका नहीं)। यदि वहाँ ब्रह्माके सम्बन्धमें उस प्रकार व्याख्या की जाएगी, तो यहाँ पर श्रीभगवानके सम्बन्धमें भी वैसी ही व्याख्या करनी सुसङ्गत है। इसलिए भगवानमें यह भाव (स्वरूपगत 'वास्तव' नहीं है, बल्कि) आभासरूप होनेके कारण कण्टकसे कण्टकका दृष्टान्त सुसङ्गत हुआ है (अर्थात् काँटासे चुभे हुए काँटेको बाहर कर लेनेवाले व्यक्तिके लिए दोनों ही काँटे समान होते हैं, वह दोनोंको फेंक देता है। इसी प्रकार ईश्वरके लिए भूभारतनु अर्थात् भूभार स्वरूप असुरगण या विराटरूप विश्व प्रपञ्च एवं प्राकृत मर्त्यजीव सदृश यादवतनु—दोनों ही समान हैं)। इस विषयमें विस्तृत विचारके लिए 'परमात्म-सन्दर्भ' देखिये।"

मत्स्यादि अवतारमें 'मत्स्यादिरूप' शब्दसे दैत्य-वधेच्छामय भावको लक्ष्य किया गया है। जिस प्रकार कोई अभिनेता अपने एक ही वेशमें रहकर भी अपनी भाव-भङ्गी और कथानकोंके द्वारा कभी नायककी भूमिका करता है, तो कभी नायिकाका और कभी दूती आदिका, इसके लिए केवल वह अपने भावोंका परिवर्त्तन करता है; उसी प्रकार ईश्वरके विषयमें समझना चाहिए। अथवा "मैं योगमायाद्वारा ढँका होनेके कारण सबके सामने प्रकट नहीं होता।"—इस गीता वाणी (७/२५) से यह स्पष्ट है कि भगवान श्रीजनार्द्दन भक्तिके बलसे ही योगियों द्वारा देखे जाते हैं, वे अभक्ति मार्गमें कभी भी दिखलायी नहीं पड़ते। "क्रोध और मात्सर्य द्वारा कोई भी उनका दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकता है।"—पद्मोत्तर खण्डके इस विचारसे एवं "मल्लयोद्धाओंकी दृष्टिमें कृष्ण वज्रस्वरूप दिखलायी पड़े"—इस भागवत सिद्धान्त वाक्यके अनुसार असुरोंके सामने भगवानकी जो मूर्त्ति दिखायी पड़ती है, वह उनका अपना स्वरूप नहीं है, बल्कि वह स्वरूप मायाद्वारा कल्पित होता है। भगवानका स्वरूप दर्शन करनेसे प्राकृत द्वेष-भाव दूर हो जाता है। अतएव असुर लोगोंकी दृष्टिमें भगवानने जिस शरीर द्वारा पृथ्वीके भार स्वरूप असुरोंका संहार किया था, उसी शरीरको भगवानने त्याग किया था और फिर उस शरीरको उनके सामने प्रकट नहीं किया। दूसरी ओर भक्ति द्वारा दिखलायी पड़नेवाला जो भगवानका शरीर होता है, वह नित्यसिद्ध है; इसलिए उसके लिए 'अज' शब्दका प्रयोग हुआ है। अतः कोई नट या जादूगर जिस प्रकार अपने स्वरूपमें स्थित रहकर ही नाना प्रकारके रूपोंको धारण करता है और त्याग करता है, उसी प्रकार पृथ्वीके भार स्वरूप असुरोंका विनाशकर अज और सनातन भगवान स्वरूपमें स्थित रहकर ही अपने उस प्राकृत रूपका अर्थात् जिस कलेवरद्वारा असुरोंका विनाश किया था, उस कलेवरका त्याग किये थे। गीताके ७/२५ श्लोकमें 'योगमाया समावृतः'—पदका अर्थ है—साँपकी केंचुलकी भाँति मायाद्वारा रचित देहाभास द्वारा भलीभाँति आवृत अर्थात् आच्छादित।

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्गसुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

महाप्रभुकी गया यात्रा

गौरसुन्दरके विवाहसे शचीमाता निश्चिन्त हो गयीं। अपने पुत्र एवं पुत्रवधुकी अपूर्व जोड़ी देखकर वे फूली नहीं समा रही थीं। विष्णुप्रियाने भी अपनी सेवा एवं मधुर स्वभावसे परिवारके सभी सदस्योंको अपने वशमें कर लिया था। उनकी सेवा, सरलता एवं उज्ज्वल चरित्रसे गौरसुन्दर भी अति प्रसन्न थे।

उस समय संसारमें भक्ति प्रायः लुप्त हो गयी थी। सर्वत्र ही ज्ञान, कर्म, योग अथवा नास्तिकताका साम्राज्य फैला हुआ था। मात्र गिने–चुने लोग ही वैष्णव थे। पाषण्डी लोग मार्गमें उनके साथ भी दुर्व्यवहार करते थे। वैष्णवोंको अपमानितकर वे पाषण्डीलोग आनन्द मनाते थे। ये सभी बातें श्रीगौरसुन्दरके पास पहुँचती थीं। इसके अतिरिक्त अन्तर्यामी होनेके कारण वे स्वयं भी भक्तोंपर होनेवाले अत्याचारोंसे भलीभाँति परिचित थे। इससे उनके दुःखकी सीमा नहीं रही, क्योंकि भगवानका स्वभाव ही है कि वे स्वयं कष्ट सहनकर सकते हैं, परन्तु अपने भक्तोंके कष्ट सहन नहीं कर सकते। अपने इसी स्वभावके वश होकर प्रभु विचार करने लगे कि अब समय आ गया है, स्वयंको प्रकाश करनेका। फिर विचार किया कि नहीं, पहले मैं एकबार गया यात्रा कर आऊँ, उसके बाद अपने स्वरूपको प्रकाशित करूँगा।

ऐसा विचार करके पिताके श्राद्धके छलसे शचीमातासे आदेश प्राप्तकर अपने कुछ छात्रोंको साथ लेकर चल पड़े। वे मार्गमें आनेवाले सैकड़ों गाँवों, कस्बों व नगरोंको पवित्र करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे तथा परस्पर हरिकथाओंकी आलोचना एवं कीर्त्तन कर रहे थे। कुछ दिन चलनेके पश्चात् प्रभु मन्दार पर्वतपर पहुँचे। मन्दार पर्वतपर भगवान मधुसूदन विराजमान रहते हैं। अतः लोकशिक्षक भगवान श्रीगौरसुन्दरने लोकशिक्षाके लिए मधुसूदनको प्रणाम किया एवं सारे पर्वतपर घूमे फिरे। तत्पश्चात् वहाँसे आगे बढ़नेपर मार्गमें एक स्थानपर प्रभुने ज्वरसे पीड़ित होनेकी लीला प्रकट की। प्रभुको ज्वरसे (बुखारसे) पीड़ित देखकर उनके साथ आए हुए सभी छात्र बहुत चिन्तित हो गये। सभीने मिलकर ज्वरको दूर करनेका बहुत प्रयास किया परन्तु ज्वर कम होना तो दूर, इसके विपरीत और भी अधिक बढ़ने लगा। क्योंकि वह तो कोई साधारण ज्वर नहीं था। वह तो प्रभुकी इच्छा थी। अतः जगतमें ऐसा कौन है जो प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध चल सके। इसलिए जब वे सभी प्रयास करते–करते थक गये तो प्रभु स्वयं ही बोले—"मेरा ज्वर किसी भी औषधिसे ठीक नहीं हो सकता। इसे दूर करनेका एक ही उपाय है—यदि मुझे किसी शुद्ध ब्राह्मणका चरणामृत मिल जाए तो उसे पानकर मैं अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊँगा।"

यह सुनकर छात्र गये तथा किसी आचरणशील एवं शुद्ध ब्राह्मणका चरणामृत लाकर प्रभुको प्रदान किया। प्रभुने प्रसन्न होकर उसे पान किया। पान करते ही ज्वर

दूर हो गया।

इस लीलाके माध्यमसे प्रभुने दिखाया कि ब्राह्मण भगवानको कितने प्रिय हैं। जिस प्रकार नारायण लीलामें भृगुऋषिने भगवान नारायणके वक्षस्थलपर पदाघात किया, परन्तु भगवान उनपर रुष्ट नहीं होकर उनके चरणचिह्नोंको अपने वक्षस्थलपर सदाके लिए धारण कर लिया था, ठीक उसी प्रकार प्रभुने भी इस लीलामें ब्राह्मणका चरणामृत पानकर ब्राह्मणोंकी महिमा जगतको दिखायी कि सभी व्यक्तियोंको ब्राह्मणोंका आदर करना चाहिए। चारों वर्णोंमें ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ है। ब्राह्मण तीनों वर्णोंका गुरु होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणके घरमें जन्मग्रहण करनेवाले व्यक्तिमात्रको ही ब्राह्मण मानकर उसका ऐसा आदर किया जाय। यदि ब्राह्मणके घरमें जन्मग्रहण करनेपर भी किसी व्यक्तिमें शास्त्रोंमें उल्लिखित ब्राह्मणोंके गुण नहीं हैं, तो उसे कदापि ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। ऐसे व्यक्तिका चरणामृत पान करनेसे अथवा आदर करनेसे कदापि कल्याण सम्भव नहीं है; अपितु अकल्याण निश्चित है। परन्तु इसके विपरीत जिस किसी भी वर्णमें चाहे शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियवर्णमें ही क्यों न हो, यदि उसमें पवित्रता, दयालुता आदि तथा सर्वोपरि भगवानके चरणोंमें भक्ति है तो वही ब्राह्मण है। उसका एक ब्राह्मणके रूपमें सम्मान करना कर्त्तव्य है। नहीं करनेपर अवश्य ही अकल्याण होगा। इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें वर्णन है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसोवर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तैनेव विनिर्दिशेत।।

(श्रीमद्भा॰ ७/११/३५)

अर्थात् शास्त्रोंमें जिस वर्णके जैसे लक्षण बताये गये हैं, उन लक्षणोंके अनुसार ही किसीका वर्ण निरूपण करना चाहिए। यदि ब्राह्मणके अतिरिक्त किसी अन्य वर्णमें भी ब्राह्मणके लक्षण हों, तो उसे ब्राह्मण ही मानना होगा।

परन्तु बहुत ही दुःखका विषय है कि आजकल शास्त्रज्ञानका अभाव होनके कारण जगतके प्रायः सभी लोग जातिके अनुसार ब्राह्मणका वरण करते हैं, न कि गुणोंके आधारपर। इससे भी अधिक दुःखका विषय है कि ऐसे मूढ़ लोग भगवानके प्रिय वैष्णवोंको भी ऐसे नाममात्रके ब्राह्मणोंसे तुच्छ मानते हैं। वे वैष्णवोंमें जाति–बुद्धि करते हैं, जो कि नरक फलदायक है। अतः यह विश्वासकर कि वैष्णव ही शुद्ध ब्राह्मण है, उनको यथोचित सम्मान प्रदान करना चाहिए। क्योंकि जिसकी भगवानके चरणोंमें ऐकान्तिकी भक्ति है, वही ब्राह्मण है तथा वही वैष्णव है।

इस प्रकार ज्वरविनाशलीला कर प्रभु आगे चलते हुए पुनपुना तीर्थमें उपस्थित हुए। वहाँपर स्नानकर पितृपुरुषोंका अर्चन किया। वहाँसे कुछ आगे बढ़नेपर तीर्थराज गयामें प्रविष्ट हुए। गयामें प्रवेश करते ही प्रभुने हाथ जोड़कर तीर्थको प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्मकुण्ड जाकर पितरोंका तर्पण किया। वहाँसे वे चक्रवेड़ गये, जहाँपर विष्णुके चरणकमल विद्यमान हैं। वहाँ मालाओंका ढेर लगा हुआ था। इसके अतिरिक्त सुगन्धित वस्तु, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं अलङ्कार इत्यादिके भी ढेर लगे हुए थे। चारों ओरसे दिव्य रूपधारी विप्रगण विष्णुके चरणकमलोंकी

महिमाका गान कर रहे थे—"जिन श्रीचरण-कमलोंको काशीनाथ (शिव)ने अपने हृदयमें धारण किया है, लक्ष्मी जिन चरणकमलोंकी निरन्तर सेवा करती हैं, जिन्हें राजा बलिने अपने सिरपर धारण किया, जिन चरणकमलोंसे भागीरथी गङ्गाजी आविर्भूता हुईं, एक क्षणके लिए भी जिनका दर्शन करनेसे व्यक्ति यमदण्डका अधिकारी नहीं रहता, योगेश्वरोंके लिए भी दुर्लभ इन श्रीचरणकमलोंका दर्शन कीजिए।"

ब्राह्मणोंके मुखसे उन चरणचिह्नोंकी महिमा श्रवणकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर प्रेममें आविष्ट हो गये। उस समय उनके नयनोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा सारा शरीर काँपने लगा। इस प्रकार जगतवासियोंके सौभाग्यसे प्रभुने अब अपनी प्रेमभक्तिको प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। उनके नेत्रोंसे गङ्गा एवं यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। इस अद्भुत दृश्यको दर्शनकर वहाँपर उपस्थित सभी ब्राह्मण दङ्ग रह गये। सौभाग्यसे उसी समय वहाँपर श्रीईश्वरपुरीजी उपस्थित हुए। श्रीगौरसुन्दरने उन्हें अपने सम्मुख देखकर आदरपूर्वक प्रणाम किया। ईश्वरपुरीने भी गौरसुन्दरको देखकर प्रसन्नतापूर्वक आलिङ्गन किया। दोनोंके ही नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी जो एक दूसरेके श्रीअङ्गोंको भिगो रही थी। कुछ समय पश्चात् प्रभु बोले—"मेरी गयायात्रा वास्तवमें आज आपके श्रीचरणोंके दर्शनसे ही सफल हुई। क्योंकि तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे केवल उसीका उद्धार होता है जिसके नामका पिण्डदान किया जाता है। परन्तु आपके दर्शनसे कोटि-कोटि पितृगणका उद्धार हो जाता है। अतः तीर्थोंके साथ आपकी तुलना सम्भव ही नहीं है। आप तो तीर्थोंको भी पवित्र करनेमें समर्थ हैं—गङ्गार परश हइले पश्चाते पावन; दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण। अर्थात् गङ्गामें आचमन अथवा स्नान करनेपर व्यक्ति पवित्र होता है। परन्तु वैष्णवोंका ऐसा अमित प्रभाव है कि उनके दर्शनमात्रसे ही पापीसे पापी व्यक्ति भी परम पवित्र हो जाता है। अतः हे वैष्णव ठाकुर! आप मेरा भी इस संसारसे उद्धार कीजिए। मैंने अपना शरीर आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया है। आप मुझे कृष्णप्रेमरस पान करायें।

ईश्वरपुरी—"हे पण्डित! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप कोई साधारण जीव नहीं, अपितु भगवानके अवतार हैं। क्योंकि जैसा आपका पाण्डित्य है, वैसा साधारण मनुष्योंमें नहीं हो सकता। आपका दर्शनकर जैसा आनन्द होता है, साधारण मनुष्यके दर्शनसे वैसा असम्भव है। जबसे मैंने नवद्वीपमें आपका दर्शन किया तबसे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता; सब समय आपका ही स्मरण होता रहता है। मैं सत्य कह रहा हूँ कि मुझे आपका दर्शनकर कृष्णदर्शनका सुख प्राप्त होता है।"

उनकी बातें सुनकर प्रभु मुस्कराते हुए बोले—"यह तो मेरा सौभाग्य है।"

इस प्रकार उन दोनोंमें अनेक हास्य-कौतुक हुए। तत्पश्चात् प्रभु उनसे अनुमति लेकर पिताका श्राद्ध करनेके लिए बैठ गये। वहाँपर फल्गु नदीमें बालुका पिण्ड प्रदानकर प्रेतगया गये तथा वहाँपर भी पिण्डदानकर दक्षिणा एवं मधुर वाक्योंसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया। इस प्रकार पिण्डप्रदानके द्वारा पितरोंका उद्धारकर

रामगया गये। वहाँपर भगवान रामचन्द्रजीने श्राद्ध किया था। वहाँसे युधिष्ठिरगया गये, जहाँपर महाराज युधिष्ठिरने श्राद्ध किया था। प्रभुने वहाँपर भी पिण्ड प्रदान किया।

ब्राह्मणवृन्द उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनसे विधिपूर्वक श्राद्ध करवा रहे थे। श्राद्धकर प्रभु पिण्डको जैसे ही जलमें फेंकते थे, उसी समय वहाँके अधिवासी अथवा वहाँके पाण्डालोग पानीमेंसे निकालकर उसे खा लेते थे। यह देखकर प्रभु हँसने लगे। प्रभुके हाथका पिण्ड ग्रहणकर उन सभी ब्राह्मणोंका मायाबन्धन खण्डन हो गया। उसके बाद प्रभुने भीमगया, शिवगया तथा ब्रह्मगया आदि जितने भी गया हैं, सभी स्थानोंपर जाकर पिण्डदान किया। इस प्रकार सोलह गयाओंमें सोलह श्राद्धकर प्रभुने ब्रह्मकुण्डमें जाकर स्नान किया। तत्पश्चात् गयासुरके सिरपर पिण्डदान किया। दिव्यमाला एवं चन्दनके द्वारा प्रभुने विष्णुके चरणकमलोंकी पूजा की। इन सब कार्योंको पूर्णकर प्रभु अपने वासस्थानपर आ गये। कुछ समय विश्राम करनेके बाद प्रभुने स्वयं रसोई बनाना आरम्भ कर दिया। जैसे ही उन्होंने रसोई तैयार की, उसी समय ईश्वरपुरीजी वहाँपर आ पहुँचे। प्रभुने उनका दर्शन करनेपर आदरपूर्वक उन्हें बैठनेके लिए उत्तम आसन प्रदान किया। ईश्वरपुरी हँसते हुए बोले—"हे पण्डित! मैं तो अच्छे समयपर ही आया हूँ।"

प्रभु—"हे महाशय! आज मेरे भाग्यका उदय हुआ है, जो आप इस समय यहाँ उपस्थित हुए। कृपाकर आप इस अन्नको ग्रहण कीजिए।"

पुरी—"हे पण्डितवर! यदि इसे मैं ही खा लूँगा, तो आप क्या खाएँगे?"

प्रभु—"आप चिन्ता न कीजिए। मैं अपने लिए पुनः रसोई बना लूँगा।"

पुरी—"आप दोबारा रसोई क्यों बनाएँगे? इसी अन्नको दो भाग कीजिए।"

प्रभु(हँसते हुए)—"यदि आप मुझे अपना मानते हैं तो यह सारा अन्न आप अकेले ही ग्रहण करें। मैं कुछ ही क्षणोंमें पुनः रसोई बना लूँगा। अतः आप बिल्कुल चिन्ता न कीजिए।"

प्रभुके पुनः पुनः अनुरोध करनेपर ईश्वरपुरीजी भोजनके लिए बैठ गये। प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक सारा अन्न एवं अन्यान्य व्यञ्जन उनके सम्मुख परोस दिये। पुरीजी बहुत आनन्दित होकर भोजन करने लगे। यही है भगवानके अपने ऐकान्तिक शरणागत भक्तोंके प्रति स्नेह, जिसके वशीभूत होकर प्रभु अपना सबकुछ अपने प्रिय भक्तको समर्पित कर देते हैं। इधर तो प्रभु अपने भक्तको खिला रहे थे। परन्तु उधर रसोईमें गुप्तरूपसे स्वयं लक्ष्मीदेवीने अपने हाथोंसे प्रभुके लिए रसोई तैयार कर दी। ईश्वरपुरीको सन्तुष्ट करनेके बाद प्रभुने स्वयं भी भोजन किया। भोजनके पश्चात् प्रभुने ईश्वरपुरीपादके उच्छिष्ट (जूठन)को अपने समस्त शरीरपर मल लिया। इसके द्वारा प्रभुने शिक्षा प्रदान की कि शिष्यको भगवानके प्रकाशविग्रह श्रीगुरुदेवके प्रति साधारण मनुष्यबुद्धि नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार भगवानका प्रसाद ग्रहण करनेसे मायाको जय किया जा सकता है, उसी प्रकार सद्गुरुका प्रसाद ग्रहण करनेसे भी मायाको जय किया

जा सकता है। दूसरे दिन प्रभु अपने शिष्योंके साथ ईश्वरपुरीके जन्मस्थान कुमारहट्टका दर्शन करनेके लिए गये। वहाँ जाकर प्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये। उनके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। गला अवरुद्ध हो गया। उनके मुखसे केवल 'ईश्वरपुरी! ईश्वरपुरी' ही निकल रहा था। रोते-रोते प्रभुने अपने दुपट्टेके आँचलमें वहाँकी मिट्टी बाँध ली तथा सबसे बोले—"यह स्थान श्रीईश्वरपुरीका जन्मस्थान है। अतः यहाँकी मिट्टी मेरे प्राणस्वरूप है।" इस लीलाद्वारा जगद्गुरु श्रीगौरसुन्दरने दिखाया कि जिस प्रकार भगवानका धाम पूज्य है, उसी प्रकार वैष्णवोंके जन्मस्थान भी पूज्य हैं। वहाँसे लौटकर प्रभु दूसरे दिन पुरीजीसे एकान्तमें बोले—"हे महाशय! यदि आप मुझे योग्य समझें तो कृपाकर मुझे मन्त्रदीक्षा प्रदान करें।"

पुरी—"हे पण्डित महाशय! मन्त्रकी तो बात ही क्या, यदि आप मुझसे मेरे प्राण भी माँगें तो उन्हें भी प्रसन्नतापूर्वक आपको दे सकता हूँ। क्योंकि मैं तो आपका आज्ञाकारी दासमात्र हूँ।"

इसप्रकार शिक्षागुरु नारायण (महाप्रभु)ने ईश्वरपुरीसे मन्त्रग्रहण किया। मन्त्र ग्रहणकर प्रभुने पुरीजीकी परिक्रमा की तथा हाथ जोड़कर बोले—"हे गुरुदेव! आज मैंने अपना शरीर आपको अर्पित कर दिया है। अतः आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं कृष्णप्रेमके सागरमें डूब सकूँ।"

ये बातें सुनकर ईश्वरपुरीजीका हृदय गद्गद हो गया। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा उन्होंने प्रभुको आलिङ्गन कर लिया। इस प्रकार ईश्वरपुरीपर कृपा करनेके लिए प्रभु कुछ दिन गयामें ही रहे। अब वे धीरे-धीरे स्वयंको तथा प्रेमभक्तिको प्रकाश करने लगे। एकदिन प्रभु एकान्तमें अपना इष्टमन्त्र जपते हुए इष्टका ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते-करते प्रभु अकस्मात्—हे कृष्ण! हे मेरे प्राणधन! आप मेरे प्राणोंको चुराकर कहाँ चले गये? अहो! अभी तो मैंने उन्हें पा लिया था, फिर अचानक वे कहाँ छिप गये?—इस प्रकार करुणस्वरसे रोते-रोते जमीनपर गिरकर लोट-पोट खाने लगे। कुछ समय पश्चात् छात्रोंने बहुत कष्टसे प्रभुको शान्त किया। शान्त होनेके पश्चात् प्रभु बोले—"तुमलोग अब वापस नवद्वीप लौट जाओ। मैं अब संसारमें नहीं आऊँगा। मैं अब यहींसे मथुरा-वृन्दावन दर्शनके लिए जाऊँगा। वहाँ जाकर कृष्णका दर्शन करूँगा।" यह सुनकर सभी छात्रोंने प्रभुको बहुत समझाया। उस समय तो प्रभु कुछ बोले नहीं। परन्तु रात्रिके समय जब सभी लोग सो रहे थे, उस समय किसीसे कुछ भी न कहकर चुपचाप उठे तथा प्रेममें आविष्ट होकर वृन्दावनकी ओर चल पड़े। मार्गमें वे 'हे कृष्ण! मैं आपको कैसे प्राप्त करूँ?'—इस प्रकार कहते-कहते जा रहे थे। परन्तु कुछ दूर जानेके पश्चात् उन्हें आकाशवाणी सुनाई पड़ी—"हे द्विजमणि! आप अभी मथुरा न जाइए। जब उपयुक्त समय आएगा, तब अवश्य ही जाएँगे। अतः अभी आप शान्त होकर नवद्वीप वापस जाइए। आप अपनेको पहचानिए—आप साक्षात् वैकुण्ठनाथ नारायण हैं तथा जीवोंका उद्धारके लिए ही आप इस जगतमें ब्राह्मणरूपमें अवतीर्ण हुए

हैं। आप इस अवतारमें ब्रह्मा, शिवादिके लिए भी दुर्लभ प्रेमभक्ति जगतको सहजमें ही प्रदान करेंगे। ब्रह्मा, शिव, सनकादि जिस रसमें प्रमत्त रहते हैं, वही रस आप इस जगतको प्रदान करेंगे। हे प्रभो! यद्यपि हम आपके सेवक हैं, अतः आपको उपदेश देना हमारे लिए अपराधजनक है। परन्तु फिर भी हम आपसे निवेदन कर रहे हैं। क्योंकि आप स्वयं इच्छामय हैं, त्रिभुवनमें ऐसा कौन है जो आपकी इच्छाके विरुद्ध चल सके। इसलिए हे प्रभो! हम आपको उपदेश नहीं, बल्कि जीवोंके लिए आपके श्रीचरणोंमें प्रार्थना कर रहे हैं। अतः आप अभी नवद्वीप लौट जाइए।"

यह सुनकर प्रभु शान्त हो गये तथा प्रसन्न मनसे अपने वासस्थानपर छात्रोंके पास आ गये। दूसरे दिन सभी लोग नवद्वीपके लिए चल पड़े। परन्तु अब वे पहलेवाले निमाई पण्डित नहीं थे जो सदा-सर्वदा व्याकरण-शास्त्रको लेकर सारा दिन तर्क-वितर्कमें ही अपना समय व्यतीत करते थे। अब तो सदा-सर्वदा उनके मुखकमलसे श्रीकृष्णनाम निकलता रहता था, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी। वे सर्वदा गम्भीर रहने लगे। यहाँतक कि वे शचीमाता एवं श्रीविष्णुप्रियाजी से भी अधिक बातें नहीं करते थे तथा विरक्त जैसे रहने लगे।

(क्रमशः)

अवधूत गीता

(गताङ्कसे आगे)

(१८) कुरर पक्षीसे शिक्षा

मनुष्यको जो वस्तुएँ अधिक प्रिय लगती हैं, उनका वह बड़े परिश्रमसे संग्रह करता है तथा उनके प्रति अतिशय आसक्त रहता है, यह संग्रह और आसक्ति ही मनुष्योंके दुःखका कारण है। जो मनुष्य इन दोनोंसे अलग रहता है अर्थात् निष्किञ्चन भावसे रहकर जो कुछ भी मिल जाता है, उसीसे सन्तुष्ट होकर भगवानका भजन करता है, उसे अनन्त सुख-स्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है। एक कुरर पक्षी एक माँसका टुकड़ा लिए हुए था। यह देखकर उससे बलवान पक्षी, जिनके पास माँसका टुकड़ा न था, उस पर झपट पड़े और उससे माँसका टुकड़ा छीननेके लिए चारों ओर से घेरकर चोंचसे मारने लगे। कुरर पक्षीने अपने बचनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर अपनी चोंचसे माँसका टुकड़ा फेंक दिया। दूसरे पक्षी उसे छोड़कर माँसके टुकड़ेको लेनेके लिए परस्पर झगड़ने लगे। इस प्रकार कुरर पक्षी अपने प्रिय संग्रहको फेंककर ही सुखी हो सका। उसी प्रकार मनुष्योंको संग्रह और आसक्तिसे दूर रहकर भगवानका भजन करना चाहिए।

(१९) बालकसे शिक्षा

राजन्! मुझे मान या अपमानका कोई ध्यान नहीं और घर एवं परिवार आदिके लिए भी कोई चिन्ता नहीं है। इस प्रकार मैं सर्वदा निश्चिन्त और सुखी रहता हूँ। इस विषयकी शिक्षा मैंने बालकसे ग्रहण की है। संसारमें दो ही प्रकारके व्यक्ति निश्चिन्त और सुखी हैं—एक तो छोटा-सा बालक और दूसरा गुणातीत

परमहंस पुरुष। गुरुदासको इनसे शिक्षा लेनी चाहिए।

(२०) कुमारीसे शिक्षा

(१) बहुतसे मनुष्योंका एकत्र वास जिस प्रकारसे झगड़ेका कारण होता है, उसी प्रकार दो मनुष्योंका एकत्रवास भी व्यर्थकी चर्चाओंका कारण होता है। इसलिए कुमारी कन्याकी चूड़ीकी भाँति अकेले ही विचरना चाहिए। एक समय किसी कुमारी कन्याके घर उसे वरण करनेके लिए कई लोग आए हुए थे। उस दिन दैववश कुमारीके घरके लोग कहीं बाहर गये हुए थे। इसलिए उसे स्वयं ही उनका आतिथ्यसत्कार करना पड़ा। उनको भोजन करानेके लिए वह घरके भीतर धान कूटने लगी। उसकी कलाईयोंमें शङ्खकी चूड़ियाँ थीं। इसलिए जोरोंसे शब्द होने लगा। इससे कुमारीको बड़ी लज्जा प्रतीत हुई कि बाहर बैठे हुए लोग क्या सोचेंगे? इसलिए एक–एक करके अपने सब चूड़ियाँ तोड़ दी और दोनों हाथोंमें केवल दो–दो चूड़ियाँ रहने दी। अब फिर वह धान कूटने लगी। परन्तु फिर वे दो चूड़ियाँ भी बजने लगीं। तब उसने एक–एक चूड़ी और भी तोड़ दी। अब उसकी दोनों कलाईयोंमें केवल एक–एक चूड़ी रह गयी। तब फिर किसी प्रकारका शब्द नहीं हुआ। अतएव ज्ञानी व्यक्ति कुमारीकी चूड़ीकी भाँति सर्वदा एकान्तमें वास करें।

(२) परन्तु जिस प्रकार कोई सधवा राजकुमारी अपनी चूड़ियोंके झङ्कारसे अपने पतिदेवको वशीभूत कर लेती है, उसी प्रकार भक्तिदेवी अपने प्रियतम श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिए अपनी कलाईयोंमें अगणित वैष्णवरूपी चूड़ियाँ धारण करती हैं, जिनके सम्मिलितकण्ठ–स्वरसे मधुरसे भी सुमधुर नाम–सङ्कीर्त्तन होता है। इस नाम–सङ्कीर्त्तन द्वारा भगवान श्रीकृष्ण जैसे वशीभूत होते हैं, वैसे ज्ञान, योग, तपस्या आदिसे नहीं। इसलिए वैष्णवलोग मुनियों एवं योगियोंकी भाँति एकान्त–सेवी न होकर अधिक–से–अधिक वैष्णवजनके साथ एकत्र होकर भगवानकी लीला–कथाओं और उनके मधुर नामोंका कीर्त्तन करते हैं। निर्जनका तात्पर्य जन–शून्य नहीं, वरन् सत्सङ्ग है और इसीका सेवन करना चाहिए।

(२१) बाण बनानेवालेसे शिक्षा

गुरुसेवकको बाण बनानेवालेके समान आलस्यरहित, एकाग्रचित्त और अपने मनकी सारी वृत्तियोंको अपने साध्यकी प्राप्तिकी ओर लगा देनेवाला होना चाहिए। एक बाण बनानेवाला कारीगर एक समय बाण बना रहा था। अपने कार्यमें वह इस प्रकार तन्मय हो रहा था कि उससे पाससे ही दलबल के साथ राजाकी सवारी निकल गयी और उसे पता तक नहीं चला।

(२२) सर्पसे शिक्षा

राजन्! गुरु सेवकको साँपकी भाँति अकेले ही विचरण करना चाहिए, अपने लिए घर नहीं बनाना चाहिए तथा एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। साथ ही प्रमाद नहीं करना चाहिए, गुहा आदिमें या दूसरेके बनाये हुए घरमें वास कर लेना चाहिए तथा एक स्थानमें वास नहीं करना चाहिए। उसे इस प्रकार रहना चाहिए कि बाहरी आचारोंसे पहचाना न जाए।

(२३) मकड़ी से शिक्षा

मकड़ी जिस प्रकार अपने पेटसे जाला निकालकर बाहर फैलाती है, उसमें विहार

करती है और फिर उसे निगल जाती है, उसी प्रकार महत्स्रष्टा कहलानेवाले सब ब्रह्माण्डोंके अन्तर्यामी आदिपुरुषावतार अपनी मायाद्वारा सृष्ट इस संसारको कल्पके अन्तमें अपनी कालशक्तिद्वारा संहार करके फिरसे एक और अद्वितीय अर्थात् सजातीय और विजातीय भेदरहित अद्वितीय और अखिलाश्रय अर्थात् समस्त शक्तियोंके एकमात्र आश्रयके रूप में विराजमान होते हैं। वे प्रधानपुरुषेश्वर अर्थात् प्रकृति और जीवके नियन्ता हैं।

(२४) भृङ्गी (बिलनी) कीड़ेसे शिक्षा

जैसे भृङ्गी एक दूसरे कीड़ेको पकड़ कर दीवार पर अपने रहनेकी जगह बन्द कर देता है और वह कीड़ा भयसे उसीका चिन्तन करते—करते अपने पहले शरीरका त्याग किये बिना ही उसका स्वरूप प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार यदि कोई जीव स्नेहसे, द्वेषसे, अथवा भयसे भी जानबूझकर एकाग्ररूपसे अपना मन भगवानके चरणकमलोंमें लगा दे, तो वह भगवानके स्वरूपको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

राजन्! यह शरीर भी मेरा गुरु है। इससे मैंने जो कुछ सीखा है, तुम्हें बतला रहा हूँ। यह शरीर मुझे विवेक और वैराग्यकी शिक्षा देता है। इसके साथ सर्वदा जीना और मरना लगा हुआ है। जन्मसे मृत्यु तक दुःख इसका कभी पीछा नहीं छोड़ता। मरने पर सियार-कुत्ते खा जाते हैं। इससे वैराग्यकी शिक्षा मिलती है। इतना होने पर भी मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इस शरीरसे ही तत्त्वविचार करनेमें सहायता मिलती है। तथापि मैं कभी भी इसे अपना नहीं समझता और इससे असङ्ग होकर विचरण करता हूँ।

जीव जिस शरीरका प्रिय करनेके लिए ही अनेकों प्रकारकी कामनाएँ और कर्म करता है तथा स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर, घर-द्वार और भाई-बन्धुओंका विस्तार करते हुए उनके पालन-पोषणमें ही सदा लगा रहता है; बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सह कर धन-सञ्चय करता है, वही शरीर आयु पूरी होने पर स्वयं तो नष्ट होता ही है, वृक्षके समान दूसरे शरीरके लिए बीज बोकर उसके लिए भी दुःखकी व्यवस्था कर जाता है। जैसे बहुत-सी सौतें अपने एक पतिको अपनी-अपनी ओर खींचती हैं, वैसे ही जीवको रसना(जीभ) स्वादिष्ट पदार्थोंकी ओर खींचती है, जननेन्द्रिय स्त्री सम्भोगकी ओर ले जाना चाहती है, त्वचा कोमल स्पर्श, पेट सुस्वादु भोजन और कान मधुर शब्दकी ओर खींचते हैं। नाक सुन्दर गन्धकी ओर खींचती है, तो चञ्चल नेत्र सुन्दर रूपोंकी ओर। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों ही इसे सताती रहती हैं।

यों तो भगवानने अपनी मायाशक्ति द्वारा वृक्ष, साँप, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि अनेक प्रकारके शरीरोंकी रचना की है, परन्तु उनसे उन्हें सन्तोष न होनेपर अन्तमें उन्होंने मनुष्य शरीरकी सृष्टि की। इसीसे उनको सन्तोष प्राप्त हुआ। यद्यपि मनुष्य शरीर है तो अनित्य ही—कब इसकी मृत्यु हो जाए कुछ ठीक नहीं, परन्तु इससे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिए अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमान पुरुषको चाहिए कि शीघ्र-से-शीघ्र मृत्युसे पहले ही मोक्ष-प्राप्तिका प्रयत्न कर ले। इस जीवनका

मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए उनके संग्रहमें यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिए।

राजन्! ये सब सोच-विचार करके ही मुझे जगतसे वैराग्य हो गया। अनेकों गुरुओंसे ज्ञान प्राप्त कर मेरे हृदयमें ज्ञान-विज्ञानका आलोक फैला रहता है। अब न तो कहीं मेरी आसक्ति है और न कहीं अहङ्कार ही। इस प्रकार मैं स्वच्छन्द रूपसे इस पृथ्वीपर विचरण करता हूँ।

इस प्रकार गम्भीर-बुद्धि अवधूत दत्तात्रेय राजा यदुको उपदेश करके बड़ी प्रसन्नतासे इच्छानुसार पधार गये। ❑

उड़त गुलाल, लाल भये बदरा

—डा॰ मधु खण्डेलवाल

जयदेवकी आराध्या वासन्तिकी रासलीलाकी अनन्यताको जब विराम दिया गया तो अति मनोहारिणी, श्रमनिवारिणी, कुतूहलवर्द्धिनी होलिकालीला प्रारम्भ हुई। हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता—रसीली रङ्गभरी चित्तवन, अनुरागमय कटाक्ष, प्रेममें अतिशय सरोवारताकी उमङ्ग, छेड़छाड़, वाक्-युद्ध, दम्भ, राधा-कृष्ण और उनके सखी-सखाओंके मध्यमें हुई यह होलिकालीला आज भी विश्वके जन-मानसको अपार आनन्द प्रदान करती है। रसकी पराकाष्ठा 'रसस्तु परकीयायाम्'—अप्रकट लीलाकी यह नित्यसिद्धता प्रकट लीला वृन्दावनमें पारस्परिक हास्य-व्यङ्गके मध्य सम्पन्न हुई—अपने भक्तोंमें उल्लसित रस सञ्चरण हेतु।

फाल्गुन मासमें यह लीला प्रतिक्षण होती रहती है। कृष्ण और बड़े भइया बलराम दोनों अपने-अपने यूथोंके साथ और दोनोंकी ही प्रेमिकाएँ अपने मण्डलके साथ इस महोत्सवको विदग्धतापूर्ण रीति-नीतिसे मनाती हैं। शंखचूड़के वधके पश्चात् कृष्णकी वंशी अनिर्वचनीय रागका आलाप करने लगती है—साथ ही बज उठते हैं ढप(डफ), ढोल मृदङ्ग आदि वाद्य-यन्त्र। तरुण, अभिराम, नृतन वृक्ष-समूहके मध्य होने वाली यह लीला देवताओंमें भी आकांक्षा और लालसा उत्थापित कर देती है।

वारुणी मदसे मतवाले बलरामजी तो मूर्त्तिमान मद ही दृष्टिगोचर होते हैं। उनके गौर-वर्णसे तनिक शिथिल हुआ नीलाम्बर ऐसा प्रतीत होता है मानो किञ्चित् अन्धकारके द्वारा चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा हो। हँसते-गाते जब वे गोपियोंके ऊपर परम सुगन्धित कुङ्कुम-धूलिको, अबीर-गुलालको फेंकते हैं तो प्रतीत होता है मानो कामदेवका सिन्दूर ही फेंका जा रहा है। उतना ही दृढ़ उत्तर गोपियोंकी ओरसे भी हो रहा था।

स्वपक्ष, विपक्ष, सुहृत्पक्ष एवं तटस्थपक्ष सभी गोपियोंमें इस मङ्गलमय उत्सवमें पारस्परिक सौहार्द उत्पन्न हो गया था। चन्द्रावली, राधिका, श्यामा और भद्रा भी जमके अबीर-गुलाल उड़ा रही थीं और रसपूर्वक 'द्विपदिका' नामक गानको मुक्तकण्ठसे गा रही थीं। श्रीकृष्ण उनके गानके गर्वको अपनी वंशी-ध्वनिसे खण्डित करना चाहते थे। अचानक उन गोपियोंने श्रीकृष्णके ऊपर एकसाथ ही पुष्प केसर-राशि विक्षिप्त कर दी। गोपियोंके द्वारा पुष्प-विक्षेपण कालमें हुई कङ्कणोंकी झङ्कारसे, कल (अस्पष्ट मधुरध्वनि)से कृष्ण आकुल तो हो रहे थे, परन्तु अपना मुख नीचा किए सब सह रहे थे।

श्रीबलराम-अनुरागिनी गोपियाँ गाती हुई, करताल मिलाती हुई, नूपुरोंकी झङ्कारसे झङ्कार मिलाती मदान्ध हलधरके साथ झूम रही थीं; तभी लौकिक उपहाससे प्रेरित हो श्रीकृष्णके ऊपर कुङ्कुम-धूलि फेंकने लगीं। अब कृष्णका कटाक्ष

हुआ, सारे सखागणने एकत्र हो गोपियोंके ऊपर लाल-सफेद एवं पीले रङ्गोंके सुगन्धित अबीर-गुलाल फेंकने लगे और श्रीकृष्ण वेणु-ध्वनिसे ही उन गोपियोंका परिहास करने लग गये। अब तो उत्कट रूपसे श्रेष्ठ तालपूर्वक हो-हो-ही-ही हास-परिहासमयी होलीकी परिपाटीका शुभारम्भ हो गया। बलदेव भइया भी इस क्रीड़ारूपी युद्धमें विजयी भावसे अबीर-गुलाल फेंकने लगे। लज्जा तो हृदयोंका त्याग करके कबसे पलायन कर गयी थी, परन्तु बलदेवजीको ऐसा करते देख सिंहावलोकन न्यायसे उनकी लज्जा वापिस आ गयी और वे एक तरफ हट गयीं। तब बलदादाने कृष्ण-सखाओंको ही क्रीड़ामयी धूलियों द्वारा हँसते-हँसते धुमैले रङ्गसे धूसरित कर दिया। खेल यहीं खत्म नहीं हुआ; उन सखाओंने एकसाथ मिलकर बलदेवजीके हाथसे स्वयंको बलपूर्वक छुड़ाकर बड़ी निर्भयतासे उन्हें पराजित कर दिया। खुशीके मारे वे इधर-उधर कूदने लगे। कृष्णसे रहा न गया और उन्होंने बलदेवजीके पाससे सब सखाओंको हटा दिया। सर्वमनमुग्धकारी श्रीकृष्णकी अद्भुत शोभाका वर्णन करना तो असम्भव ही सा है। पद्मरागमणिकी लालिमासे आलिङ्गित तो वे थे ही, जवासेके पुष्पकी भी रक्तिम कान्ति उसमें सम्मिलित हो गयी थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो महास्फटिकमणिका अङ्कुर हो या प्रातःकालीन अरुण वर्णीय सूर्य हो अथवा सन्ध्याकालकी लालिमाके परभाग (उत्कृष्ट भाग)से युक्त हो। बलदेव वधुएँ विहारमय विक्रयसे जब थोड़ी दूर चली गयीं तब श्रीकृष्ण समीपस्थ गोपियाँ 'कामहेला'से उल्लसित हो उठीं। इस दिव्य होलीका चिन्तन दिव्य-चक्षुओंका खेल हैं—परमोपास्य रसिकोंकी रस-साधना है और हमारे जैसे दीन-हीन, मोह-मायाग्रस्तोंके लिए कल्मषताका विनाशक है। तथापि इन दिव्य भक्तिभावमय रङ्गोंमें रङ्गना ही हमारा एकमात्र ध्येय होना चाहिए।

इस महोत्सवकी महती उत्कण्ठासे उल्लसित एक अन्तरङ्ग गोपीके मनमें यह विचार आया कि श्रीकृष्णकी वंशी चुरा ली जाय। श्रीकृष्णके उन करोंसे सदैव गुग्गुलकी सी सुगन्ध आती रहती है, भुजा सर्पके फण जैसी है—उन कर-कमलोंसे उनकी प्रेयसीका आहरण क्या इतना आसान है? कृष्णके हाथसे इस मुरलीका कभी विराम ही नहीं होता है। यह वंशी हमारे गानको विद्ध कर देती है। अब सब मिलकर कानाफूसी करने लगीं। इसके लिए तीन उपाय सोचे गए—

१. श्रीकृष्णसे यह वंशी बलपूर्वक खींच ली जाय।

२. जब वे इस वंशीको कभी अन्यत्र धरें तब चुपचाप उठा ली जाय।

३. जब वे किसी प्रकार विवश हों, तब चुरा ली जाय।

तीसरा उपाय ही प्रबल एवं सरल निर्णीत कर लिया। अब ये गोपियाँ भानुकुँआरीके पास पहुँचीं और निवेदन करने लगीं—हे सौभाग्यवती राधे, देखो, आज थोड़ी कुटिलता धारण करो, बनावटी मान करो, आपके मानसे श्रीकृष्णकी वंशीवादन-प्रगल्भता स्वतः दूर भाग जाएगी और हमारी सङ्गीत निपुणता महती पराकाष्ठा पर पहुँच जाएगी। एकान्तमें ऐसा विचार चल ही रहा था कि मधुमङ्गल वहाँ आ पहुँचा। उसे कुछ पता तो था नहीं, परन्तु निर्भयता, वाचालता, गन्ध-मात्रसे ही सब कुछ जान लेने वाली प्रतिभाके कारण श्रीकृष्णसे बोला—हे मित्रवर्य, देखो, इन गोपियोंका गान तुम्हारी मुरलीकी तानकी तुलना तो कर नहीं सकता; अतः वे इस मुरलीको चुरानेकी गुप्त योजना बना रही हैं। इस मुरलीको आप मुझे दे दो। मेरे ब्राह्मणत्वकी प्रभाके प्रभावसे ये निकट नहीं आ पाएँगीं।

कृष्ण—(कटाक्षपूर्वक) इसमें क्या सन्देह है?

मधुमङ्गल—सुनो, मेरे विचारके प्रभावसे ही तुम इतने सर्वोत्कृष्ट हो गए हो, ऐसा मैं, क्या तुम्हारी

मुरलीकी रक्षा नहीं कर सकता? अरे, इस संसारमें कोई भी, ब्रह्मा भी मुझे देखनेमें समर्थ नहीं है, फिर पकड़नेकी बात तो बहुत दूर है। तुम मुझपर अविश्वास न करो। (श्लेषमें, कोई आया तो मैं डरकर भागनेकी विद्यामें बड़ा निपुण हूँ)।

श्रीकृष्ण—इस होली महोत्सवमें ये मतवाली गोपियाँ तुम्हारे हाथोंसे यह मुरली छीन लेंगी, तब तुम क्या कर सकोगे और फिर यह मुरली पुनः कैसे प्राप्त होगी?

मधुमङ्गल—मेरे तपका प्रभाव देखिए—(ऐसा कहकर मुरली छीन ली और बगलमें लगा ली) अब आप कण्ठसे गायन कीजिए।

श्रीकृष्ण—ठीक है, जैसा तुम्हें रुचिकर लगे।

तब वीणाविजयी श्रीकृष्णने अतिशय कलात्मक 'चर्चरी' राग गाया। गानके प्रभावसे यमुनाजी स्तम्भित हो गयीं, लताएँ अश्रु-वर्षा करने लगीं, मृगी अपने कानोंके निकट प्रवाहित होनेवाली माधुरी धाराके स्वेद-झरनाका आस्वादन करने लगीं। यह देख मधुमङ्गल कहने लगा—हे सखि, ललिते, तुम्हें अपने गानपर कितना भी गर्व क्यों न हो, लेकिन ऐसा सुख-प्रकाशक राग गानेमें तुम समर्थ नहीं हो। मधुमङ्गलकी गर्वोक्ति सुन सङ्गीतविद्या नामकी सखी बोली—अरे अबोध, अरे बुद्धिहीन, यदि हमारी सखी ललिताने तेरे सखाकी 'चर्चरी'से भी सुन्दर राग गा दी तो शर्त्त(पण) लगाते हो! बोलो, वंशी देनी पड़ेगी।

मधुमङ्गल—तुमलोग 'सङ्गीतविद्या'को जानती भी हो! मैं ही बस इस विद्यामें निपुण हूँ। मैं ही जब कहूँ कि 'यह गाना ठीक है' तब वह रोचक माना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

सङ्गीतविद्या—क्या यह वेद-गायन है, तुम्हें सङ्गीत-गायनकी जानकारी कहाँसे हो गयी? अब कृष्णने मधुमङ्गलको आँखों ही आँखोंमें समझाया जिसका अभिप्राय यह था कि हे मित्र, मेरे गायनसे उत्पन्न हुए तरु-लता आदिके सात्त्विक विकारोंको दिखा दो, वंशीके बदलेमें राधिकाको दाव पर लगा दो, ललिताको जीत लो। इस अभिप्रायको समझ मधुमङ्गलने कहा—हे गानगर्वयुक्ते! सङ्गीतविद्ये! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सङ्गीतके रहस्यको केवल मैं ही जानता हूँ। यदि तुम इसे प्रमाणित नहीं मानती हो तो मेरे मित्रके गानके प्रभावसे उत्पन्न हुई 'स्तब्धता'को देखो, यह जीव-जन्तु-प्रकृतिमें भारी पुलकावलीका सञ्चार हो रहा है, तभी तो मैंने मुरली बाजी पर लगा दी है। यदि तुम गानको ही द्यूत(जूआ) मानती हो तो तुम राधिकाको ही दाव पर लगा दो। बोली ठीक है, हमारी वंशी, तुम्हारी राधिका।

ललिता—हे कुबुद्धि! जो नितान्त मूर्ख होता है वही सरसताको विरस बना देता है। दाँवपर समान वस्तु लगाई जाती है। भला कहाँ काँच और कहाँ काञ्चन!

मधुमङ्गल—हे भवति! ललिते! इसका मतलब मेरे प्रियसखाकी मुरली काँच हुई और तुम्हारी सखी राधा काञ्चन!

ललिता—इसमें कौनसा सन्देह है? दावेकी समानता चाहते हो तो अपने मित्र श्रीकृष्णको दावपर लगाओ।

मधुमङ्गल—अच्छा! तो आप गाना गाइए। मैं अपने मित्रको बाजीपर लगाता हूँ।

तत्पश्चात् सखी ललिता गानका प्रारम्भ करती है। ललिताने बड़े साहस एवं उत्साहके साथ अतिशय सुन्दर तथा परमोदार 'केदार' नामक राग गाया। यह 'केदार' राग गन्धर्वोकी भी 'गान-विद्या'को खण्डित करनेवाला था। इसमेंसे कई गमक प्रकाशित हो रहे थे। रागके बाद ललिताजुने रसकी नीतिमें परमसुन्दर शौरसेनी भाषामें एक लयात्मक गीत भी गाया जो श्लेषार्थक था।

ललिताके गीताको सुनकर मधुमङ्गल गर्वपूर्वक बोला—ही ही, हा हा, हो हो—ललिताकी पराजय हो गयी। अरी देखो, ललिता हार गयी, हार गयी।

यह कहते हुए मारे प्रसन्नतासे अपनी दोनों भुजाएँ उठा लीं और बगलसे मुरली गिर पड़ी। सङ्गीतविद्याने वेगपूर्वक अनायास ही वह मुरली उठाकर छिपाकर रख दी। और उपनी किसी भी सखीको बताया नहीं। कहने लगी—हे कुसुमासव! अकारण ही इतने उन्मत्त क्यों हो रहे हो? लय और वेगकी तुलनामें विजय किसकी?

मधुमङ्गल— अपनेको सङ्गीतविद्याकी पण्डित मानने वाली! देख, यह पराजय साक्षात् आप सब गोपियोंकी हुई है। 'चर्चरी'की बाजी लगाई थी, तुम्हारी सखीने तो द्विपदिका केदारराग गाया है। तुम 'चर्चरी' गा ही नहीं सकतीं, तुम्हारी हार हुई कि नहीं?

सङ्गीतविद्या—हे अविदग्ध, अरे मूर्ख! देख, चर्चरी हो या द्विपदी हो गानेके नाममात्रसे कौन सी विचित्रता है? ललिताने जो भी गाया, उसके ग्राम-स्वर और मूर्च्छनाओंमें तो काई हेर-फेर नहीं हुआ न? फिर, हमारी पराजय कैसी? अरे मूर्ख! ललिताके गानके माधुर्यकी महिमा तो देख, मणियोंके पत्थर पिघलकर पानी उगल रहे हैं। पुनः स्तम्भित होकर वृक्षके चारों ओर दृढ़ मणियोंकी वेदीके रूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। अरे सुन! कालिन्दी देवतास्वरूप हैं, वृन्दावनस्थ तरु-लता ज्ञानस्वरूप हैं, पक्षी-मृग चेतनस्वरूप हैं। उनका स्तम्भित होना तो उचित ही है। हमारी सखीने तो जड़को पिघलाकर पुनः वेदीरूपमें परिणत कर दिया। अतः विजय हमारी हुई, तुम अपने सखा श्रीकृष्णको स्वयं लाकर हमें दे दो।

सुबल—हे सङ्गीतविद्ये! तुम जानबूझकर जड़ क्यों बन रही हो? तुम पहले जैसी सङ्गीतविद्या प्रतीत नहीं हो रही हो। अरे, सेवक कहीं स्वामीको दाँवपर लगा सकता है! श्रीकृष्ण मधुमङ्गलको दाँव पर लगा सकते हैं। मधुमङ्गल तो अधीन है, वह स्वामीको बाजीपर कैसे लगा सकता है?

इस विवादको सुनकर श्रीकृष्ण स्वयं बोले—हे सखे, मधमङ्गल, तुम्हें तो अब इन गोपियोंने जीत लिया, अब तुम इससे स्वयंको छुड़ा नहीं सकते हो। तुम मेरी मुरली दे दो, नहीं तो तुम्हारे साथ मेरी मुरली भी चली जाएगी।

मधुमङ्गल—नहीं सखे, विजय मेरी ही हुई है, आप हर्षपूर्वक इन गोपियोंकी प्रियसखी राधिकाको भली प्रकार ले जाइए।

ललिता—हे निर्ल्लज! वाहनरूप पशो! वियार शून्य गानको ही मूल बनाकर तुमने जो शर्त्त लगाई, वह शर्त्त ही मेरी विजय प्रदर्शित कर रही है।

मधुमङ्गल—हे सखे! कृष्ण! तुम्हें कोई लोभ उत्पन्न हो गया है, मेरे द्वारा दी हुई विजयश्रीको ठुकरा रहे हो, लोभके वशीभूत हो इन गोपियोंकी अधीनता स्वीकार कर रहे हो, अपने ही सिद्धान्तकी मर्यादाके विरुद्ध बोल रहे हो। यह लो तुम्हारी मुरली, मैं तो अपना पिण्ड छुड़ाकर भाग रहा हूँ। (बगल में मुरली न देखने पर) हे सखे! ऐसा लगता है, यह मुरली मेरे भागनेसे पहले ही डरके मारे भाग गयी है। यह सुनकर सब गोपियाँ मुस्कराने लगीं।

श्रीकृष्ण अपनी खोई मुरलीको चन्द्रावलीकी सभामें अनुसन्धान करने लगे। गोपियोंके वस्त्रोंमें जब खोजने लगे तब गोपियोंने उन्हें इस प्रकार फटकारा—हे मधुमङ्गलके सखा श्रीकृष्ण, मर्यादाका अतिक्रमण करना क्या तुम्हें शोभा देता है? यह तुम्हारी मुरली तुम्हारे करतलसे हमारी चुनरीमें किस प्रकार प्रविष्ट हो सकती है? सबके मनको चुरानेवाली मुरलीको यदि चुराया हो तो हमें दण्ड दे सकते हो और यदि नहीं चुराई तो तुम्हारा कण्ठहार, कौस्तुभमणि हम सब हर लेंगी। यह शर्त्त लगा लो।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। चन्द्रावली बोली—हे कृष्ण! तुम अति निश्शङ्क हो गए हो। जो मुरली हमारे द्वारा चुराई जाने योग्य थी, वह तो हठपूर्वक मधुमङ्गलने चुरायी थी। तुम इसका स्मरण भी नहीं

कर रहे हो!

मधुमङ्गल—हे चन्द्रावलि! यह मुरली हमारे द्वारा चुरायी जाने योग्य थी—यह तुम्हारा वचन ही उस मुरलीकी चोरीका प्रमाण है। मैंने श्रीकृष्णके हाथसे हठपूर्वक चुरायी है, इसका प्रमाण दो।

चन्द्रावली—इस विषयमें सभी गोपियाँ ही प्रमाण हैं?

मधुमङ्गल—ये सब तो मेरे विपक्षवाली हैं!

चन्द्रावली—तो, तुम्हारे मित्र श्रीकृष्ण ही प्रमाण हैं!

मधुमङ्गल—यह भी सम्भव नहीं है, यदि ऐसा होता तो इस निर्दोष श्रीकृष्णने तुम्हारी ओढ़नी क्यों ढूँढी? तुमने ही उस मुरलीको चुरा लिया है।

श्रीकृष्ण—हे सखे! मधुमङ्गल! तुम्हारे करकमलमें स्थित उस मुरलीको सङ्गीतविद्या ने चुराया है, दूसरी सखियोंने नहीं।

यह सुनते ही सङ्गीतविद्याने दूसरोंसे अलक्षित होकर धूर्त्ततापूर्वक धीरे-धीरे चलते हुए मुरली ललिताके हाथोंमें समर्पित कर दी। सङ्गीतविद्याके आकार-विकारको देख ब्रह्मचारी मधुमङ्गल गर्दनको टेढ़ी करके बोला—देखो श्रीकृष्ण! मुरली चुरानेवाली यह सङ्गीतविद्या स्वयं ही स्पष्ट हो गयी। हमने तो सङ्गीतशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी 'सङ्गीतविद्या'का नाम लिया, उसीको लक्ष्य करके परिहास किया, पर नामकी समानताके कारण इसको सङ्कोच हो गया। चोरकी दाढ़ीमें तिनका।

सङ्गीतविद्या—ओ ब्रह्मचारी! क्या कह रहा है? मालुम पड़ता है कि तू कपटका तो 'अवट' (गड्ढा) है। मैं तो होली महोत्सवमें समपा खेल रही थी, अतः मैंने वह मुरली कब और किस प्रकार चुराई? अरे अविनीत! उस मुरलीको चुरानेसे मेरा क्या प्रयोजन! मिथ्या ही आरोप लगा रहा है। अन्यायस्वरूपा तेरी इस वाणीका क्या प्रयोजन! अरे वाचाल! निरर्थक मत बोल। तुझपर तरस खाकर हम तुझपर शासन नहीं कर रही हैं।

सङ्गीतविद्याकी बातपर सब हँसने लगीं। मुरलीके अपहरण रूप 'रण'में सभी अतिशय आनन्दसे प्रफुल्लित हो रहे थे। वनमाली श्रीकृष्ण सबकी तलाशी लेने लगे। जब वे ललिताके समीप जा ही रहे थे, तब ललिताने उस मुरलीको अलक्षित रूपसे श्रीवृषभानुनन्दिनीके हाथोंमें सौंप दिया। निःसङ्कोच होकर सम्मुख आकर बोली—हे अघामर्दन श्रीकृष्ण! मुझ निरपराधको छूनेकी कोशिश मत करो, मेरे पास मुरली नहीं है, मेरी वाणी मिथ्या नहीं है और यह कहकर अपनी ओढ़नीको हिलाकर दिखा दिया।

श्रीकृष्ण! स्मरण करो, जब तुम शंखचूड़के पीछे भाग रहे थे, तभी यह मुरली पृथ्वीपर गिर गयी होगी। तुम हम गोपियोंपर सन्देह मत करो।

मधुमङ्गल—हे मित्र! तब तो मुरली चुरानेवाली गोपी-साम्राज्ञी राधिका ही है।

श्रीकृष्ण—हे मित्र! तुम ठीक ही कहते हो। पारिशेष्य प्रमाणसे यह मुरली राधिकाके पास ही होनी चाहिए। क्योंकि सबकी तलाशी हमने ले ली है। अब उनकी तलाशी लेते हैं।

श्रीकृष्ण जब राधिकाकी तलाशीका उपक्रम कर रहे थे, तभी उसी समय नीतिकुशल श्रीबलदेवजीने श्रीकृष्णके द्वारा शंखचूड़के मस्तकसे निकाली हुई मणिको राधिकाके लिए उपहारमें भेज दिया। श्रीबलदेवप्रियाने राधिकाको मणि प्रदान करते हुए कहा—हे गुणभराधिके! यह मणि श्रीबलदेवजीने तुम्हें उपहारके रूपमें भेजी है। इसको सहर्ष स्वीकार करो।

यह सुनकर राधिका आनन्दमें सरोबार हो गयीं। वह अपने हाथोंसे मणि ग्रहण कर रही थी कि ओढ़नी शिथिल हो गयी और मुरली धरतीपर गिर पड़ी। अब तो हो-हल्ला हो गया। 'मुखर' श्रीकृष्ण ललिताका उपहास करने लगे। मधुमङ्गल अपने मुखकी कान्तिको और अधिक विस्तारित करने लगा, बगल बजाकर, गलेको हिलाकर, टेढ़ी चाल

चलकर, कमर मटकाकर विकृत हाव-भाव प्रकट करके अति उच्च स्वरसे हँसने लगा। सब सखा 'ही ही'का कोलाहल करने लगे। श्रीकृष्ण ललितासे कहने लगे—ललिता, तुमने ठीक ही कहा था, यह मुरली धरती पर गिर पड़ी होगी। हलधरजीके द्वारा वात्सल्यके कौतूहलपर विमुग्धा राधिकाके द्वारा मेरी मुरलीकी अवहेलना हुई, अतः मानवती यह मुरली धरतीपर गिर पड़ी।

मधुमङ्गल—जो राधिका मेरे मित्र श्रीकृष्णकी बुद्धि चुरा लेती है, वही यदि मुरली चुरा लें तो आश्चर्यकी बात क्या है! मुझे तो ऐसा लगता है राधिका मानो मूर्त्तिमती नवीन-चोरीकी विद्याके समान ही हैं। हे सखे, कृष्ण! अपनी मुरलीको सम्भाल लो। तुमने तो निर्णय किया था कि यह मुरली मधुमङ्गलने चुराई है, इन गोपियोंने भी यही निर्णय कर लिया था। इस विषयमें मैं क्या कहूँ? पर देखो, चोरीका माल किसी दूसरेकी बगलसे निकल रहा है।

श्रीकृष्ण मधुमङ्गल द्वारा दी उस मुरलीको सादर ग्रहणकर अतिशय उल्लसित होकर मधुरतापूर्वक बजाने लगे और अनेक हाव-भावों, रमणीय विलासोंके मध्य यह होलिका महोत्सव सम्पन्न हुआ। ❑

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ

निज-निकट-निवासं देहि गोवर्द्धन! त्वम्

"हे गोवर्द्धन! कृपया मुझे अपने निकट वास प्रदान कीजिए।"

"चालीससे अधिक वर्षोंसे हम गिरिराजजीसे प्रार्थना करते आ रहे हैं एवं आज दयापूर्वक उन्होंने वह प्रार्थना सुनी है तथा अपने आश्रयमें एक स्थान दिया है।" श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने यह प्रसन्नोक्ति श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें २५ मार्च २००१को समवेत भक्तमण्डलीको सुनायी। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग- गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधा-विनोद-विहारीजीकी अहैतुकी कृपासे श्रीगिरिराजजी हमें अपने पार्श्वदेशमें एक स्थान दिए हैं। अतिशीघ्र यहाँ श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठका निर्माण होगा।

दूसरे दिन सुबह छः बजे दो बस व्रजभजन गाते हुए उत्साही भक्तोंको लेकर नूतन स्थलकी ओर चल पड़ी। अपनी छोटी मारुतिमें गुरुदेवने भी विजयाभियान किया। यह स्थल श्रीराधाकुण्ड परिक्रमा मार्गपर तथा मानसी गङ्गासे थोड़ी ही दूरीपर स्थित है। वहाँपर पहुँचनेके पश्चात् श्रीलमहाराजजीने उस स्थानका नाम श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ रखा। वहाँ प्रणाम करनेके बाद लगभग दो सौ भक्त श्रील गुरुदेवका अनुसरण करते हुए उच्च सङ्कीर्त्तनके साथ मानसी गङ्गाकी ओर चल पड़े। हमलोगोंने आनन्दसहित मानसी गङ्गाकी परिक्रमा की एवं मुखारविन्द मन्दिरमें प्रवेश किया, जहाँ श्रील गुरुदेवने भक्तोंकी भीड़के साथ माखन, दधि एवं मधु इत्यादि श्रीगिरिराजजीके श्रीअङ्गपर अर्पित किया तथा चीनी, दूध और कई कलस मानसी गङ्गाके जलसे उनका अभिषेक किया। अभिषेकके बाद हमलोगोंने श्रीमुखारविन्दकी चार बार परिक्रमा की एवं उसके बाद श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठमें आकर बालभोग महाप्रसादका सेवन किया।

श्रील गुरुदेवने इस स्थलसे सम्बन्धित कई ऐतिहासिक घटनाएँ उपस्थापित कीं, जो स्थान अभी गेहूँकी खेती तथा एक दो-मञ्जिलके मकानके साथ सुशोभित है। उन्होंने कहा कि उनके गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे पहली व्रजमण्डल परिक्रमा १९५१में

आयोजित की। १५० सन्यासी एवं ब्रह्मचारी तथा ३५० गृहस्थ भक्त सहित कुल ५०० भक्तोंको लेकर उन्होंने पूरी परिक्रमा पैदल ही की । उस समय उनलोगोंने इस जगहपर चार दिन डेरा डाला था। उस ऐतिहासक परिक्रमामें श्रील प्रभुपादके बहुत शिष्य अंशग्रहण किए थे, जिनमें श्रील भक्तिकमल मधुसूदन महाराज (जो कि उस समय श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीके नामसे परिचित थे), श्रील परमहंस महाराज (श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी), श्रील भक्तिकुशल नरसिंह महाराज, श्रील भक्तिप्रपन्न दामोदर महाराज, श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराज, श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज, श्रील जगन्नाथ वल्लभ महाराज, श्रील त्रिगुणातीत बाबाजी महाराज आदि शामिल थे।

पूज्यपाद भक्तिवेदान्त वामन महाराज (श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी), पूज्यपाद भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज (श्रीराधानाथ दासाधिकारी) एवं श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज (श्रीगौरनारायण दासाधिकारी) अग्रणी दलके सदस्य थे। ये लोग तम्बु लगाना, प्रकाश तथा प्रसादकी व्यवस्था करना एवं अन्यान्य आनुषङ्गिक सेवाएँ करते थे। रातमें ब्रह्मचारी लोग क्रमानुसार पहरा देते थे। ठीक इसी जगहसे यात्रा शुरु होती थी गोवर्द्धन परिक्रमाके लिए (उनके समस्त लीलास्थलियोंका दर्शन करते हुए), राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, सूर्यकुण्ड, नारदकुण्ड, चन्द्र सरोवर, पैठा, यमुनावती, रासौली, ढाक कदम्ब, गुलाल कुण्ड, सखी–स्थली एवं अन्यान्य स्थानोंके लिए भी।

इस जगहकी गरिमा बढ़ाते हुए श्रीलगुरुदेवने बताया—"यह वह स्थान है जहाँ मैंने अनेक वर्ष पहले एकान्तमें दो महीने रहकर भजन किया था।" यहाँ रहकर उन्होंने बहुत गंभीरतासे श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीचैतन्य भागवत तथा श्रीमद्भागवतम्का अध्ययन किया तथा दैनिक गोवर्द्धन परिक्रमा की। यह वर्षाऋतुकी बात थी। वहाँ परिक्रमा रास्ता वर्षाजलसे डूबा हुआ रहता था। फिर भी वे बड़ी कठोरतासे अपने प्रतिज्ञाको पालन करते थे तथा वन्याजलमें तैरते हुए परिक्रमा पूरी करते थे। बादमें, श्रील गुरुदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे यहाँ नियमितरूपसे एकसाथ कुछ दिनोंके लिए भजन करनेके लिए आते–जाते रहते थे।

नूतन मन्दिरके लिए योजना प्रस्तुत हो रही है। निर्माण गुरुपूर्णिमाके बाद ही शुरु हो जाएगा।

जय गिरिराज महाराजकी! जय! ❑

Srila Bhaktivedanta Narayana Maharaj

Tentative Summer Schedule

April - June 2001

Honolulu	**17-19 April**
Canada (Vancouver)	**21 - 27 April**
Eugene	**28 April - 2 May**
Badger	**4 - 11 May**
Los Angeles	**12 - 14 May**
Houston	**15 - 21 May**
Alachua	**23 - 28 May**
Washington DC	**30 May - 4 June**
Holland	**5 - 11 June**
Italy	**12 - 18 June**
UK	**22 - 29 June**

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ ज्येष्ठ मास, सन् २००१, ८ मई — ६ जून
{ संख्या ३

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

(गताङ्कसे आगे)

दुष्टध्वंस कर्णिकारावतंसः खेलद्वंशीपञ्चमध्वानशंसी।
गोपीचेतः केलिभङ्गीनिकेतः पातु स्वैरी हन्त वः कंसवैरी।।२१।।

जो दुष्टोंका दलन करते हैं एवं कनेरके फूलोंको कर्णभूषणके रूपमें धारण किये रहते हैं, जो अपनी जगन्मोहिनी मुरलीसे पञ्चम स्वरका सर्वत्र विस्तार करते रहते हैं, गोपीजनोंका चित्त जिनकी विविध विलासपूर्ण भङ्गियोंका निकेतन बना हुआ है, वे परम स्वतन्त्र कंसारि श्रीकृष्ण सबकी रक्षा करें।।२१।।

वृन्दाटव्यां केलिमानन्दनव्यां कुर्वन्नारीचित्तकन्दर्पधारी।
नर्मोद्गारी मां दुकूलापहारी नीपारूढ पातु बर्हावचूड़ः।।२२।।
रुचिरनखे रचय सखे वलितरतिं भजनततिम्।
त्वमविरतिस्त्वरितगतिर्नतशरणे हरिचरणे।।२३।।
रुचिरपटः पुलिननटः पशुपगतिर्गुणवसतिः।
स मम शुचिर्जलदरुचिर्मनसि परिस्फुरतु हरिः।।२४।।
केलिविहितयमलार्जुनभञ्जन सुललितचरितनिखिलजनरञ्जन।
जोचनर्त्तनजितचलखञ्जन मां परिपालय कालियगञ्जन।।२५।।
भुवनविसृत्वरमहिमाडम्बर विरचितनिखिलखलोत्कर संवर।
वितर यशोदातनय वरं वरमभिलषितं मे धृतपीताम्बर।।२६।।
चिकुरकरम्बितचारु शिखण्डं भालविनिर्जितवरशशिखण्डम्।
रदरुचिनिर्धुतमुद्रितकुन्दं कुरुत बुधा हृदि सपदि मुकुन्दम्।।२७।।
यः परिरक्षितसुरभीलक्षस्तदपि च सुरभीमर्दनदक्षः।
मुरलीवादनखुरलीशाली स दिशतु कुशलं तव वनमाली।।२८।।
रमितनिखिलडिम्बे वेणुपीतोष्ठविम्बे हतखलनिकुरम्बे वल्लवीदत्तचुम्बे।
भवतु महितनन्दे तत्र वः केलिकन्दे जगदविरलतुन्दे भक्तिरुर्वी मुकुन्दे।।२९।।
पशुपयुवतिगोष्ठी चुम्बितश्रीमदोष्ठी स्मरतरलित दृष्टिर्निर्मितानन्दवृष्टिः।
नवजलधरधामा पातु वः कृष्णनामा भुवनमधुरवेशा मालिनी मूर्त्तिरेषा।।३०।।

अनुवाद–

वृन्दाकाननमें नित्य नवीन आनन्द देनेवाली क्रीड़ाएँ करते हुए जो गोपाङ्गनाओंके चित्तमें नित्यनूतन अनुराग उत्पन्न करते रहते हैं, गोपबालाओंकी प्रेमवृद्धिके लिए जो मधुर परिहास करते हुए उनके वस्त्रोंका अपहरण करके कदम्बके वृक्षपर चढ़ जाते हैं, वे मयूरपिच्छका मुकुट धारण करनेवाले श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें।।२२।।

जिनके नख अत्यन्त सुन्दर हैं, जो प्रणतजनोंके आश्रय हैं, उन श्रीहरिके चरणोंका, हे मित्र! तुम जल्दी–से–जल्दी एक क्षणका भी विराम न लेकर अनुराग सहित निरन्तर भजन करो।।२३।।

जिनके वस्त्र अत्यन्त सुन्दर हैं, जो यमुनाजीके तीरपर नृत्य करते रहते हैं, जो व्रजवासी गोपोंकी एकमात्र गति हैं और अनन्त कल्याण गुणोंके सद्म हैं, वे जलद–कान्ति एवं अत्यन्त निर्मल स्वरूप श्रीहरि मेरे चित्त पटलपर सदा ही प्रकाशित रहें।।२४।।

हे कालियमर्दन श्रीकृष्ण! आप खेल–ही–खेलमें दो जुड़वाँ अर्जुन वृक्षोंको जड़से उखाड़ देते हैं, अपने अत्यन्त मनोहर चरित्रोंसे समस्त जनोंको आनन्दित करते रहते हैं, आप अपने नेत्रोंके नर्त्तनसे चपल खञ्जनका तिरष्कार करते हैं। आप मेरा सब ओरसे पोषण करें।।२५।।

हे यशोदानन्दन! आपकी महिमाका विस्तार सम्पूर्ण भुवनोंमें व्याप्त हो रहा है, आप समस्त दुष्टजनोंका संहार करनेवाले हैं तथा पीताम्बर धारण किए रहते हैं। आप कृपा करके मुझे मनचाहा उत्तम-से-उत्तम वरदान दीजिए।।२६।।

जिनके घुँघराले बालोंमें मनोहर मयूरपिच्छ खोंसा रहता है, जिनका ललाट सुन्दर अष्टमीके चन्द्रका भी पराभव करनेवाला है, जिनकी दशनकान्ति कुन्दकलियोंको मात करती है, हे विचारवान पुरुषो! उन श्रीमुकुन्दको शीघ्र-से-शीघ्र अपने हृदय-आसनपर विराजमान कराओ।।२७।।

जो लाखों गौओंका पालन करते हैं और देवताओंके भयको दूर करनेमें अत्यन्त कुशल हैं तथा जिन्हें निरन्तर मुरली बजानेका अभ्यास हो गया है, वे वनमालाधारी भगवान श्रीकृष्ण आपका सब प्रकारसे कुशल करें।।२८।।

जो अपने प्रेमी-स्वभाव एवं मधुर व्यवहारसे समस्त गोपबालाओंका रञ्जन करते रहते हैं, भाग्यवती मुरली जिनके अधरामृतका निरन्तर पान करती रहती है, जो दुर्जनवृन्दका नाश करते रहते हैं, गोपरमणियाँ जिन्हें अपने हृदयका प्यार देती रहती हैं, जो पितृभक्तिके कारण नन्दरायजीका आदर करते हैं, जो विविध लीलारसकी वर्षा करनेवाले मेघके समान हैं और अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें समाये रहते हैं, मुक्तिको भी हेय दिखलाकर प्रेमानन्द प्रदान करनेवाले उन भगवान श्रीकृष्णमें आप लोगोंकी प्रचुर भक्ति हो।।२९।।

गोप युवतियोंका वृन्द जिसे सब ओरसे प्यार करता है और जिसकी दृष्टि उनके प्रति अनुरागसे भरी रहती है तथा जो उनपर सदा आनन्दकी वर्षा करती रहती है, जिसकी अङ्गकान्ति नवीन जलधरके समान है, जो अपने वेशसे त्रिभुवनको मोहित करती है, वह श्रीकृष्णनामकी वनमाला विभूषित दिव्यमूर्त्ति आपलोगोंकी रक्षा करे।।३०।।

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्।
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे।।४।।

हे केशव! हे नृसिंहरूप धारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका कष्ट हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम्हारे श्रेष्ठकरकमलमें अद्भुत अग्रभागवाला एक नख है, जिसने हिरण्यकशिपुके शरीररूप भ्रमरको विदीर्ण कर दिया। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि साधारणतः कमलके अग्रभागको भ्रमर ही विदीर्ण करता है, किन्तु यहाँ तो कमलके अग्रभागने ही भ्रमरको विदीर्ण कर डाला है।।४।।

आचार और प्रचार

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

आचरणकारी प्रचार–प्रधान भक्त ही सर्वश्रेष्ठ हैं

श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करते थे। साथ ही वे श्रीचैतन्य महाप्रभुके आदेशानुसार श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ गाँव–गाँव और घर–घरमें जाकर हरिनामका प्रचार करते थे। इनके प्रचारका लोगोंपर बहुत ही प्रभाव पड़ता था। बड़े से बड़े पापी और सुदुराचारी लोगोंकी जीवनधारा भी इनके आचारयुक्त प्रचारसे प्रभावित होकर बदल गयी थी। एक नवयौवन–सम्पन्ना परमासुन्दरी वेश्या भी इनके सम्पर्कमें आकर परम वैष्णवी हो गयी थी। श्रीमन्महाप्रभुके परम प्रिय पण्डितप्रवर श्रीसनातन गोस्वामीने इन भक्ताग्रगण्य हरिदास ठाकुरसे कहा था—

आपनि आचरे केह ना करे प्रचार।
प्रचार करये केह ना करे आचार।।
आचार प्रचार नामेर कर दुई कार्य।
तुमि सर्व गुरु तुमि जगतेर आर्य।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

—हरिदासजी! संसारमें कुछ ऐसे लोग हैं जो स्वयं श्रीहरिनाम तो करते हैं, परन्तु वे श्रीहरिनामका प्रचार नहीं करते; कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो केवल नामका प्रचार तो करते हैं, परन्तु स्वयं उसका आचरण नहीं करते अर्थात् स्वयं हरिनाम नहीं करते; किन्तु आप धन्य हैं, आप तो स्वयं भी श्रीहरिनाम करते हैं तथा श्रीहरिनामका प्रचार भी करते हैं। इसलिए आप सबसे श्रेष्ठ हैं, आप जगद्गुरु हैं।

साधु पाठको! श्रीसनातन गोस्वामीकी उक्तिका आप भलीभाँति विवेचन करें। रुचि भेदसे भक्त तीन प्रकारके होते हैं— (१) आचार–प्रधान भक्त, (२) प्रचार–प्रधान भक्त और (३) आचार–प्रचार–सम्पन्न भक्त। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठके विचारसे आचार–प्रचारसम्पन्न भक्त ही सर्वश्रेष्ठ होते हैं। केवल आचार–प्रधान भक्त मध्यम श्रेणीके हैं तथा केवल प्रचार–प्रधान भक्त कनिष्ठ श्रेणीके हैं। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आचार किसे कहते हैं। साधुओंके धर्माचरणका नाम ही आचार है अर्थात् साधुपुरुष जिस प्रकारसे धर्मका आचरण करते हैं वैसे आचरणका नाम 'आचार' है। उसी धर्मका जगतमें दूसरे जीवोंके निकट प्रचार करनेका नाम ही 'प्रचार' है। आचार और प्रचार कार्यमें नियुक्त होनेसे पहले साधु–पुरुषोंके धर्मकी शिक्षा लेना आवश्यक है। कोई–कोई यह शिक्षा लेकर अर्थात् साधुका धर्म क्या है, इसे जानकर स्वयं आचरण करनेसे पहले ही प्रचार कार्यमें जुट जाते हैं। परन्तु इसका जैसा चाहिए वैसा फल नहीं होता। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें भी कहा गया है—

उपदेशं करोत्येव न परीक्षां करोति यः।
अपरीक्षोपदिष्टं यत् लोकनाशाय तद्भवेत्।।

जो लोग उपदेश तो करते हैं, परन्तु स्वयं उसकी परीक्षा नहीं करते अर्थात् आचरण

नहीं करते, उनके थोथे उपदेशसे संसारमें विविध प्रकारके उत्पात ही उपस्थित होते हैं। इतिहासमें तथा मनुष्यके दैनन्दिन चरित्रसे इस कथनके भूरि-भूरि उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। आज ऐसे उदाहरणोंकी भी भरमार है कि गृहस्थ भक्त आचार्य बनकर संन्यास-लिङ्ग और मन्त्र प्रदान करते हैं और उससे संन्यास ग्रहण करनेवालोंका विशेष अमङ्गल होता है। जो लोग स्वयं भिक्षाश्रम ग्रहणपूर्वक संन्यास-धर्मका आचरण करते हैं, वे ही भिक्षाश्रम—संन्यास-आश्रमके यथार्थ गुरु हैं। गृहस्थोंमें जो लोग नवधाभक्तिका आचरण करनेमें पटु हैं, वे ही भक्तिकाण्डकी आचार्यता ग्रहण करनेके योग्य हैं। कोई-कोई स्वयं शुद्धभक्तिका आचरण नहीं करते, बल्कि कर्मकाण्डमें जिन स्मार्त्त-सम्मत आचार्योंका आदर है, उन्हीं आचार्योंका आचरण करते हैं। ऐसे लोग यदि भक्ति-तत्त्वका उपदेश दें, तो उनका यह कार्य सर्वशास्त्रविरुद्ध है। इसलिए प्रचार करनेसे पूर्व उसका स्वयं आचरण करना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ भक्तजन साधुपुरुषोंके धर्मका आचरण करते-करते भजनानन्दमें मग्न होकर प्रचार कार्यकी अवज्ञा करते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि केवल भजनानन्दीकी अपेक्षा आचार-प्रचारकारी जगतका अधिक कल्याण करते हैं। श्रीचैतन्यभागवतमें भी कहा गया है—

जपकर्त्ता हइते उच्च सङ्कीर्त्तनकारी।
शतगुणाधिक फल पुरानेते धरि।।
शुन विप्र मन दिया इहार कारण।
जपि आपनारे सबे करये पोषण।।
उच्च करि करिले गोविन्द-सङ्कीर्त्तन।
जन्तुमात्र सुनिया पाय विमोचन।।

अर्थात् पुराणोंमें ऐसा कहा गया है कि भगवन्नाम जपकी अपेक्षा उसका सङ्कीर्त्तन सैकड़ों गुणा अधिक फल प्रदान करता है। विप्र! इसका कारण यह है कि जपकर्त्ता केवल मात्र अपना ही कल्याण करता है। परन्तु उच्च सङ्कीर्त्तनकारीके मुखसे गोविन्द आदि भगवन्नामोंका कीर्त्तन सुनकर कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी, स्थावर और जङ्गम समस्त प्राणियोंको संसारसे सदाके लिए मुक्ति मिल जाती है।

अतएव आचार-प्रचार सम्पन्न वैष्णवोंके चरणों में हमारा करोड़ों-करोड़ों दण्डवत्-प्रणाम है।❑

भगवानकी अप्रकट लीलाका रहस्य

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

(गताङ्कसे आगे)—

यहाँ, (पृथ्वी) त्याग लीला भगवानके स्व-शरीर द्वारा ही सम्पादित हुई थी (अर्थात् 'स्वतन्वा'—यह पद तृतीया विभक्ति करण-कारकमें बना है)। उनके स्वतनु अर्थात् अपने शरीरके साथ पृथ्वीका (शरीरको पृथ्वी पर छोड़ कर) त्याग नहीं हुआ था (अर्थात् स्वतन्वा—यह तृतीया विभक्ति 'सह' अर्थमें व्यवहृत नहीं है)—इसी प्रकार व्याख्या करनी होगी, क्योंकि 'सह' शब्द मूल श्लोकमें न रहनेके कारण, अकारण ही (अर्थ सङ्गतिका

नाश करके) अध्याहार करनेसे अध्याहार्य-शब्दका ही गौरव प्रदर्शित होता है; विशेषतः 'सह' आदि शब्द-निष्पन्न उपपद विभक्तिसे कत्तृ-कर्म-करण आदि कारकनिष्पन्न विभक्ति अधिकतर बलवान होता है, यह व्याकरण-न्याय भी इस विषयमें प्रमाण है। (—क्रमसन्दर्भ और कृष्णसन्दर्भ १०६ संख्या)

यादवोंकी अन्तिम दशाका वर्णन सुनकर शौनक आदि मुनियोंको अत्यन्त दुःखित और अधीर देखकर सूत गोस्वामी इन दो श्लोकों द्वारा उस लीलाका गूढ़ रहस्य बतलाकर उनको सान्त्वना दे रहे हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार किसी अङ्गमें एक काँटा चुभ जाए तो उसको दूसरे एक काँटेसे निकाला जाता है और कार्य होनेपर उन दोनों काँटोंको फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार जिन यादव आदि शरीरोंसे भगवानने अपनी एकपादभूता पृथ्वीका भार हरण किया था, उन शरीरोंका भी उन्होंने त्याग किया था। जिस प्रकार कोई अपने वस्त्रोंका त्याग करता है, उसी प्रकार भगवानने अपने सङ्गसे यादवरूपी शरीरोंका त्याग कर दिया। परन्तु जिस श्रीअङ्ग द्वारा भगवान नित्य क्रीड़ा करते हैं, उसका त्याग उन्होंने नहीं किया। अतएव भगवानके अंशावतरणके समय जो देवतागण नित्य विराजमान रहनेवाले यादवोंमें प्रविष्ट हुए थे, भगवानने उन्हीं देवताओंको नित्य यादवोंसे निकालकर प्रभासमें भेज दिया था और अपनी मायाके बलसे उनका शरीर त्याग दिखलाकर उन सबको देवताओंके रूपमें बदल कर स्वर्गमें भेज दिया था—एकादश स्कन्धका अनुशीलन करने से ऐसा जाना जाता है।

श्रीकृष्णकी नित्यलीलाके पार्षद यादवगण सांसारिक लोगोंसे अदृश्य रह कर श्रीकृष्णके साथ द्वारकापुरीमें ही पहलेकी भाँति अप्रकट लीलामें क्रीड़ा किया करते हैं—ऐसा श्रीभागवतामृतमें वर्णन किये गये सिद्धान्तोंसे जानना आवश्यक है। 'भूभारतनु' और 'यादवतनु' आर्थात् असुरगण और यादवरूपोंमें देवगण—दोनों ही परमेश्वरके निकट समान हैं। फिर भी भूभार-स्वरूप असुरोंकी अपेक्षा भूभार हरणकारी यादवोंकी श्रेष्ठता स्वीकृत है। पैरोंमें चुभे हुए काँटोंकी अपेक्षा उन्हें बाहर निकालनेवाले काँटोंकी उपकारिता और श्रेष्ठता स्वतःसिद्ध है।

ऐन्द्रजालिक नटकी भाँति भगवान श्रीकृष्णने जो झूठ-मूठ ही स्वदेह-त्याग लीलाका अभिनय किया था, उसका वर्णन इन श्लोकोंमें करते हैं। भावार्थ यह है कि भगवान रूप या तनु धारण (प्रकट) भी करते हैं और परित्याग (अप्रकट) भी करते हैं (अर्थात् देह-धारण और देह-त्यागका भानमात्र करते हैं), वास्तवमें वे रूप या तनु धारणकर उसका त्याग नहीं करते। इससे यह सिद्ध होता है कि तनुत्याग (अप्रकट)के समय भी उनका अप्राकृत तनु (शरीर) वर्त्तमान ही रहता है। यदि कोई शङ्का करे कि इसे कैसे माना जा सकता है, तो इसके उत्तरमें कहते हैं—नट अर्थात् ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार अपने शरीरको काट कर, जला कर अथवा मूर्च्छा आदिके द्वारा उसका त्याग कर देता है और दर्शकोंको ऐसा विश्वास करा देता है, मानो वास्तवमें ही उसने अपना शरीर त्याग कर दिया है,

परन्तु वास्तवमें वह जीवित ही रहता है, अपना शरीर धारण किए हुए ही रहता है; उसी प्रकार भगवानका भी मत्स्यादि शरीर धारण ही वास्तविक सत्य है और शरीर-त्याग ही वास्तवमें मिथ्या है—यही भावार्थ है। जिस प्रकार भगवान मत्स्य आदि अपने आगन्तुक शरीरोंका त्याग करते हैं, उसी प्रकार जिस प्राकृत कलेवर द्वारा उन्होंने भू-भारका हरण किया था, उसीका उन्होंने परित्याग किया था। अतएव भगवान श्रीकृष्णका शरीर-त्यागका सारा व्यापार ही मोह-जनक और मिथ्या होनेके कारण नराकृति परब्रह्म होकर भी वे नटरूप नर-देह त्यागका अभिनय मात्र करते हैं, तत्त्वतः नहीं करते। क्योंकि उनका श्रीविग्रह भौतिक नहीं होता, इसलिए उसका विनाश भी नहीं होता। पाञ्चभौतिक शरीरका ही विनाश होता है, पाञ्चभौतिकसे परे अप्राकृत शरीरका विनाश नहीं होता। जैसे, महाभारतमें कहते हैं—"इन परमात्मा कृष्णके शरीरमें प्राकृत पञ्चभूतराशिकी समष्टि या स्थिति नहीं है।" वृहद्विष्णुपुराणमें भी कहते हैं—"जो व्यक्ति परमात्मा श्रीकृष्णके शरीरको 'भौतिक' मानता है, सब प्रकारके श्रौत या स्मार्त्त विधानोंसे उसका बहिष्कार कर देना ही कर्त्तव्य है। उसका मुख दर्शन करने पर वस्त्रके साथ ही स्नान करना कर्त्तव्य है।" वैशम्पायन द्वारा कहे गये विष्णुसहस्रनाममें भी ऐसा कहा गया है—"अमृत जिनका अंश है, वे स्वयं ही अमृत-तनु हैं।"

श्रीकृष्णके शरीरत्याग-कार्यको अवास्तविक और मिथ्या बतलाते हुए यह श्लोक कह रहे हैं। यहाँ श्रीधर स्वामी-पादकी टीका और श्रीजीवपादकी सन्दर्भ-व्याख्या द्रष्टव्य है।

—श्रीविश्वनाथ

—"आदायान्तरधाद्यस्तु स्वविम्बं लोकलोचनम्।"

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (३/२/११) का है, जो श्रीउद्धव द्वारा विदुरजीके प्रति कहा गया है। इस श्लोककी व्याख्या इस प्रकार है—

"स्वविम्ब अर्थात् अपनी श्रीमूर्त्तिको अब तक दिखलाकर भगवान लोगोंकी आँखोंको ढककर अन्तर्द्धान हो गए, क्योंकि वैसा कोई दूसरा दर्शन योग्य पदार्थ नहीं था।"

—श्रीधरस्वामी

"वे नेत्रोंके भी नेत्र हैं"—इस श्रुतिमन्त्रके अनुसार लोकलोचनरूप स्वविम्ब अर्थात् अपनी मूर्त्तिको ग्रहणकर भगवान अन्तर्द्धान हुए थे। जैसे महाभारत मौषलपर्वमें भी कहते हैं—

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः।
मोचयित्वा तनुं कृष्णः प्राप्तः स्वस्थानमुत्तमम्।।

"यहाँ 'मोचयित्वा' (मोचन कराकर)का प्रयोग "भूभार-अवतरण कार्यसे छुड़ा करके अर्थात् अवसर प्रदान करके"—इस अर्थमें हुआ है, न कि भू-भार अवतरण कार्यसे मुक्त हो कर—इस अर्थमें प्रयोग हुआ है।—क्रम सन्दर्भ।

'स्वविम्ब' शब्दसे सच्चिदानन्द लक्षण-स्वरूप और उनकी प्रतिमा दोनोंका बोध होता है। 'यस्तु'—पदके अन्तर्गत 'तु' शब्द 'द्वे बार ब्रह्मणो रूपे'—इत्यादि श्रुतियोंको सूचित कर रहा है। (—विजय-ध्वजतीर्थ)

यहाँ 'लोगोंके सामने अपनी श्रीमूर्त्ति प्रदर्शित या प्रकटित कर और फिर उसे लेकर ही अन्तर्द्धान हो गये'—इस वाक्यके द्वारा भगवान

श्रीकृष्ण अपने शरीरका परित्यागकर अन्तर्हित हुए—विरुद्धवादियोंके इस विचारकी भ्रान्ति सिद्ध हुई। अगले श्लोकोंमें निज मूर्त्तिका विशेषण-प्रयोगके कारण श्रीकृष्ण नर-वपु त्यागकर तथा दिव्य शरीर धारणकर महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे—इस वाक्यसे जो लोग कृष्णका नर-शरीर नहीं मानते, उनका विचार गलत सिद्ध हुआ। फिर 'अपनी श्रीमूर्त्ति दिखला कर उसे लेकर ही अन्तर्द्धान हो गए'—इसके द्वारा प्रदर्शन और अन्तर्द्धान—दोनों लीलाओंमें उनकी इच्छा ही कारण है। अतएव जो लोग भगवानको कर्मके अधीन मानते हैं, उनका मत भी गलत सिद्ध हुआ।' (—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती)।

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

गयायात्राके बाद प्रभुकी अवस्था

प्रभुके आगमनका समाचार देखते ही देखते सर्वत्र फैल गया। जिसने भी सुना वही अपना सब कार्य छोड़कर प्रभुके दर्शनके लिए दौड़ पड़ा। कुछ ही समयमें प्रभुके घरपर हजारों लोगोंकी भीड़ लग गई। प्रभुका दर्शनकर सभीका हृदय उल्लसित हो गया। प्रभु भी मुस्कराते हुए बोले—"आपलोगोंके आशीर्वादसे मेरी गयायात्रा निर्विघ्नरूपसे सम्पन्न हुई तथा मैं सकुशल लौट आया हूँ।"

प्रभुके श्रीमुखसे ऐसी सुनम्रतापूर्ण वाणीको सुनकर उपस्थित सभी लोग प्रसन्न हो गये। कोई प्रभुके सिरपर हाथ फेरते हुए प्रभुको 'चिरञ्जीवी रहो' कहकर आशीर्वाद देने लगा, तो कोई उनके श्रीअङ्गोंपर हाथ घुमाते हुए मन्त्र पढ़ने लगा। शचीमाताकी प्रसन्नताके विषयमें क्या कहा जाय, अपने लाड़ले पुत्रको अपने सम्मुख देखकर आनन्दसे वे सुध-बुध खो बैठीं। अपने पतिका दर्शनकर विष्णुप्रियाके भी सभी दुःख दूर हो गये। इस प्रकार कुछ समयतक सभीसे मीठी-मीठी बातें करनेके पश्चात् प्रभुने सभीको बिदा किया। अब वहाँपर मात्र कुछ वैष्णव ही रह गये। प्रभु उन्हें लेकर एकान्तमें गये तथा गयायात्राकी चर्चा करने लगे। परन्तु बोलते-बोलते भगवानके चरणकमलोंका स्मरण होते ही उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। कुछ ही क्षणोंमें प्रभु अधीर हो गये तथा अपने भावको छिपानेमें असमर्थ हो गये। वे 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए जोर-जोरसे विलाप करने लगे। नेत्रोंसे इतने अश्रु प्रवाहित हो रहे थे कि वहाँकी भूमि भींग गई। प्रभुके इन भावोंको देखकर वहाँ उपस्थित सभी भक्तोंको महान आश्चर्य हुआ। सदा-सर्वदा व्याकरण एवं तर्क-वितर्कमें रत रहनेवाले निमाई पण्डित, जिसे कि भक्तिसे कोई लेना-देना नहीं था, आज उनके इस बदले हुए अद्भुत स्वरूपका दर्शनकर सभी आनन्दसे रोमाञ्चित हो गये, उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा वे भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए जोर-जोरसे आर्त्तनाद करने लगे। कुछ देर बाद प्रभुका भाव शान्त हुआ। वे सभीसे कहने लगे—"मेरे प्यारे बन्धुओ! आज आप सबलोग अपने-अपने घरको जाइए, कल पुनः आप सभी लोग शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घरमें उपस्थित होइए। मैं वहींपर एकान्तमें आपलोगोंके समक्ष अपना दुःख प्रकट करूँगा।"

सभीको बिदाकर प्रभु अपने कार्यमें संलग्न हो गये। सब समय उनके श्रीमुखसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चरित हो रहा था तथा सबसे महा वैरागीकी भाँति व्यवहार कर रहे थे। बीच-बीचमें 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए रोने लगते। उनकी ऐसी अवस्था देखकर शचीमाता कुछ समझ नहीं पातीं तथा दुःखी होकर भगवानके मन्दिरमें जाकर भगवानसे प्रार्थना करने लगतीं। इस प्रकार प्रभुने प्रेमभक्तिका प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। जितने भी वैष्णव प्रभुके दर्शनके लिए जा रहे थे, सभीसे प्रभु अगले दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर आनेको कह रहे थे।

अगले दिन धीरे-धीरे सभी वैष्णव शुक्लाम्बरके घरमें एकत्रित होने लगे। सभीके मनमें यह जानने की बहुत उत्कण्ठा थी कि प्रभु हमें क्या बताएँगे? प्रभुके प्रिय गदाधरने जब सुना कि प्रभु शुक्लाम्बरके घरमें कुछ कहेंगे, तो वे भी शुक्लाम्बरके घरके अन्दर एक कोनेमें छिप गये। वे भी यह जाननेके लिए उत्कण्ठित थे कि आखिर प्रभु क्या कहेंगे?

उसी समय उस वैष्णवमण्डलीके मध्य प्रभु विश्वम्भर उपस्थित हुए। उस समय भी वे अन्तर्भावमें डुबे हुए थे। वैष्णवोंको देखते ही प्रभु श्लोकोंको उच्चारण करने लगे तथा रोते-रोते कहने लगे—"अहो! मैंने अभी अपने प्राणनाथ कृष्णको पा लिया था, फिर वे अचानक कहाँ छिप गये?" ऐसा कहते हुए उन्होंने विरहातुर होकर एक स्तम्भका आलिङ्गन किया, जिससे वह स्तम्भ टूट गया तथा स्तम्भके साथ ही प्रभु भी भूमिपर गिर पड़े। प्रभुकी ऐसी अवस्था दर्शनकर भक्तवृन्द भी भावाविष्ट होकर 'कृष्ण-कृष्ण' बोलते हुए आनन्दसे मूर्च्छित हो गये। यह दृश्य देखकर जाह्नवा (गङ्गाजी) देवी भी विस्मित हो गईं। प्रभु पुनः पुनः 'हा कृष्ण—आप मुझे त्यागकर कहाँ चल गये'—ऐसा कहकर रोते-रोते भूमिपर पछाड़ खाकर गिर पड़ते। यह देखकर भक्तवृन्द उन्हें चारों ओरसे घेरकर कीर्त्तन करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बाद प्रभु कुछ शान्त हो गये, परन्तु अब भी उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अकस्मात् प्रभु बोले—"घरके भीतर कौन है?"

गदाधर—"आपका गदाधर।"

उस समय गदाधर सिर नीचाकर रो रहे थे। उन्हें इस प्रकार रोता देखकर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु बोले—"गदाधर! तुम अति सुकृतिवान हो। बाल्यावस्थासे ही कृष्णके चरणोंमें तुम्हारी भक्ति है। परन्तु मेरा जन्म तो व्यर्थकी ही बातोंमें चला गया। आज बड़े सौभाग्यसे अमूल्य वस्तुको पाया था, परन्तु वह भी मेरे दुर्भाग्यसे कहीं खो गयी।" ऐसा कहते हुए प्रभु पुनः पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़े तथा रोते-रोते कहने लगे—"आपलोग मेरे बन्धु हैं। अतः मेरे कृष्ण कहाँ गये, कृपाकर उन्हें खोजकर लाइए तथा मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिए।" ऐसा कहकर लम्बी साँस छोड़ते हुए पुनः रोने लगे। इस प्रकार आनन्दसे सारा दिन एक क्षणके समान व्यतीत हो गया तथा सभी लोग अपने-अपने घरको चल दिये।

अब तो वैष्णवोंकी खुशीका ठिकाना न रहा। सभी लोग प्रभुके बदले स्वरूपके विषयमें विभिन्न प्रकारके विचार व्यक्त करने लगे। कोई कहता कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भगवान ही निमाई पण्डितके रूपमें पाषण्डियोंका दलन एवं वैष्णव धर्मकी रक्षाके लिए अवतीर्ण हुए हैं। कोई कहता—"अच्छा हुआ निमाई पण्डित परम वैष्णव हो गये। अब ये समस्त पाषण्डियोंका मान सहज ही मर्द्दन कर देंगे।" कोई कहता—"अब तो अवश्य ही कृष्णकी लीलाएँ होंगी। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है।" कोई कहता—"लगता है

श्रीईश्वरपुरीके सङ्गसे ही निमाईकी ऐसी अवस्था हुई है अथवा गयामें इन्होंने अवश्य ही कृष्णका दर्शन किया है।" इस प्रकार सभी भक्तलोग मिलकर प्रभुको आशीर्वाद करने लगे—"भगवान निमाईकी भक्तिको इसी प्रकार बढ़ाते रहें।"

दूसरे दिन प्रभु कुछ शान्त होकर गङ्गादास पण्डितके घर गये तथा अपने गुरुको प्रणाम किया। गङ्गादासने भी प्रेमसे प्रभुका आलिङ्गन किया। गङ्गादास बोले—"पुत्र, तुम्हारा जीवन धन्य हो गया। तुमने अपने मातृ एवं पितृ दोनों कुलोंका उद्धार कर दिया। जबसे तुम गये हो, तबसे तुम्हारे छात्रोंने पुस्तकको हाथ नहीं लगाया। अब तो तुम आ गये हो, अतः कलसे पुनः सबको पढ़ाना आरम्भ कर दो। आज अपने घर लौट जाओ।" गुरुसे आदेश पाकर प्रभु अपने घर लौट आये। जो भी व्यक्ति प्रभुके दर्शनके लिए आता, वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाता कि निमाई पण्डित तो पहले जैसे चञ्चल नहीं रहे। ये तो एक महाविरक्तकी भाँति हो गये। अपने प्यारे पुत्रके बदले हुए भावको देखकर शचीमाता कुछ समझ नहीं पा रही थीं।

वह तो अपने पुत्रके मङ्गलके लिए गङ्गाजी एवं विष्णुकी पूजा करतीं तथा रोते-रोते कहतीं—"हे कृष्ण! आपने मेरे स्वामीको एवं मेरे पुत्रोंको तो पहले ही ले लिया। अब तो मरे पास इस जगतमें एकमात्र मेरा निमाई है। इसका ही मुख देखकर मैं जीवित हूँ। अतः मैं आपसे वर माँगती हूँ कि मेरा निमाई सब समय मुझ अनाथिनीके पास ही रहे।" इस प्रकार अपने पुत्रको विरक्त देखकर शचीमाता उसके भावोंको बदलनेके उद्देश्यसे प्रभुके निकट विष्णुप्रियाको लाकर बिठा देतीं। परन्तु प्रभु विष्णुप्रियाकी ओर एकबार देखते तक नहीं। कभी-कभी प्रभु भीषण हुङ्कार करते, जिससे भयभीत होकर विष्णुप्रिया वहाँसे भाग जातीं।

प्रभुका विद्यार्थियोंको कृष्णनामकी महिमा समझाना

अब प्रभुको तो अपनी ही सुध-बुध नहीं थी, फिर अध्यापनाकी तो बात ही क्या? परन्तु छात्रोंके द्वारा पुनः पुनः अनुरोध किये जानेपर उन्होंने पढ़ाना आरम्भ कर दिया। जैसे ही विद्यार्थियोंने 'हरि-हरि' कहकर पुस्तक खोली, उनके मुखसे उच्चरित 'हरि-हरि' सुनकर प्रभु पुनः आविष्ट हो गये। इसी अवस्थामें उन्होंने पढ़ाना आरम्भ कर दिया। प्रभु बोले—"समस्त कालोंमें कृष्णनाम ही एकमात्र सत्य है। सभी शास्त्र कृष्णनामकी महिमाका ही गान करते हैं। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करनेवाले तो मूलमें एकमात्र कृष्ण ही हैं। ब्रह्मा, शिव आदि तो सब उनके दास हैं। ऐसे कृष्णको छोड़कर जो व्यक्ति शास्त्रोंकी व्याख्या अन्य प्रकारसे करता है, यह निश्चितरूपसे जानो कि उसका जीवन व्यर्थ चला गया। वेद, उपनिषद, पुराण आदि जितने भी शास्त्र हैं, सभीमें एकमात्र कृष्णभक्तिके विषयमें ही कहा गया है। परन्तु भगवानकी मायासे विमोहित होनेके कारण बड़े-बड़े पण्डित शास्त्र पढ़कर भी कृष्णभक्तिको छोड़कर कर्म-ज्ञान आदिकी ओर जा रहे हैं। शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ न जानकर शास्त्रोंका अध्यापन (पाठ) करनेवाला व्यक्ति गधेकी भाँति केवल बोझ ही ढोता रहता है। जिस प्रकार गधा अच्छी-अच्छी वस्तुओंको ढोता है, परन्तु स्वयं उसका आस्वादन नहीं कर पाता, उसको तो वही रूखी-सुखी घास ही खानेको मिलती है, ठीक इसी प्रकार जिस व्यक्तिको शास्त्रज्ञान तो बहुत है, परन्तु शास्त्रज्ञानका फल भक्तिरसका आस्वादन नहीं कर भुक्ति, मुक्ति इत्यादि अनित्य वस्तुओंमें ही उलझकर रह जाता है, उसका शास्त्रज्ञान बोझमात्र ही है। कितने आश्चर्यकी बात है, जिन्होंने हिंसक भावसे आई पूतनाका तथा अघासुर जैसे असुरोंका भी उद्धार किया, जिनके नामका आश्रयकर ब्रह्मा, शिव,

नारद आदि भी अपनी चेतना खो देते हैं, जिनके एक नामाभाससे ही अजामिलका उद्धार हो गया, ऐसे शक्तिशाली नामके प्रति लोगोंका विश्वास नहीं होता।"

इस प्रकार प्रभु बोल रहे थे तथा विद्यार्थिगण प्रभुकी अमृतमय वाणीको मुग्ध होकर एकाग्रचित्तसे श्रवण कर रहे थे। कुछ देर बाद जब प्रभुका भावावेश कुछ शान्त हुआ तो वे बहुत लज्जितसे होकर बोले—"आज मैंने कैसी व्याख्या की?"

विद्यार्थिगण—"हे पण्डितजी! आपने जो व्याख्या की हम कुछ नहीं समझ पाये। क्योंकि आपकी बातोंको समझनेकी शाक्ति किसमें है?"

प्रभु हँसते हुए बोले—"अब आप सभी अपनी पुस्तकें बन्द करें। आज हम सभी अब गङ्गास्नानके लिए चलेंगे।" यह सुनकर सभी विद्यार्थी पुस्तकें बन्दकर प्रभुके साथ गङ्गास्नानके लिए चल पड़े। गङ्गामें जाकर प्रभु विश्वम्भर नाना प्रकारकी जलक्रीड़ाएँ करने लगे। यह दृश्य दर्शनकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे समुद्रके बीचमें चन्द्र अपनी सोलह कलाओंसे युक्त होकर विराजमान हों। ब्रह्मा आदि देवतावृन्द भी जिस रूपका दर्शन करनेके लिए तरसते हैं, आज गङ्गाके घाटपर स्नान तथा जल लेनेके लिए आए हुए नर-नारी सहजरूपमें ही उस अपूर्व रूपका दर्शन कर रहे थे। मुक्तकण्ठसे प्रभुकी प्रशंसा करते हुए स्वतः ही सबके मुखसे निकला—"धन्य हैं वे माता-पिता जिनको ऐसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्रकी प्राप्ति हुई।"

भगवान कपिलदेवके भावमें माताको उपदेश

इस प्रकार गङ्गास्नानकर सभी छात्र अपने-अपने घरको चल दिये। प्रभु भी अपने घर आ गये। सर्वप्रथम उन्होंने अपने वस्त्र बदलकर अपने चरण धोये। तत्पश्चात् तुलसीको जलप्रदान, प्रणाम एवं उसकी परिक्रमा की। तुलसी सेवाके पश्चात् प्रभुने यथाविधि भगवानकी पूजा की। तब वे भोजनके लिए बैठ गये। शचीमाताने अन्न एवं अन्यान्य व्यञ्जन प्रभुके सम्मुख रख दिए। प्रभुने पहले वे सभी वस्तुएँ भगवानको अर्पित कीं। तत्पश्चात् स्वयं प्रसाद-ग्रहण करने लगे। शचीमाता उनके सामने बैठ गईं। विष्णुप्रिया घरके भीतरसे अपने स्वामीके मुखकमलका अवलोकन कर रही थीं। कुछ क्षण मौन रहनेके पश्चात् माताने पूछा—"पुत्र! आज तुमने क्या पढ़ाया?"

प्रभु—"आज मैंने कृष्ण नाम पढ़ाया। क्योंकि जगतमें एकमात्र कृष्णका नाम, गुण एवं उनका श्रवण कीर्त्तन ही सत्य है। इसके अतिरिक्त यदि कुछ सत्य है, तो कृष्णके प्रिय सेवक, जिन्होंने सत्यवस्तु भगवानके अमित प्रभावशाली नामका आश्रय ग्रहण किया है। अथवा वे शास्त्र जिनमें भगवानकी विशुद्ध भक्तिका वर्णन है—

यस्मिन शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्।।

अर्थात् जिस शास्त्र अथवा पुराणमें भगवद्भक्तिका वर्णन नहीं है, उसे यदि साक्षात् ब्रह्मा भी बोलें, फिर भी वह शास्त्र सुनने योग्य नहीं है।

चण्डाल 'चण्डाल' नहे, यदि कृष्ण भजे।
विप्र 'विप्र' नहे, यदि असत् पथे चले।।

अर्थात् चण्डाल भी यदि कृष्णकीर्त्तन करता है तो वह चण्डाल नहीं है। ऐसे ही विप्र भी असत् मार्गपर चल पड़े तो वह विप्र नहीं है। हे माता! आप कृष्णभक्तिका प्रभाव सुनिये तथा स्वयं भी कृष्णके प्रति अनुराग कीजिए। कृष्णके सेवकोंका कभी भी विनाश नहीं होता। स्वयं काल भी कृष्ण भक्तोंसे भयभीत रहता है। गर्भमें जीवको जितने दुःख कष्ट होते हैं, कृष्णभक्तको वे दुःखकष्ट स्पर्श नहीं कर पाते। सारे जगतके पिता कृष्ण हैं। परन्तु जो उनका भजन नहीं करता, पितृद्रोहके पापसे वह पुनः पुनः गर्भमें प्रवेशकर असहनीय दुःख कष्ट झेलता है। उस समय माँ मिर्च, खट्टाई तथा गर्म-गर्म जितनी वस्तुएँ खाती है, वे सभी वस्तुएँ बच्चेके

कोमल त्वचाको स्पर्श करती हैं, जिससे उसे बहुत पीड़ा होती है। इसके अलावा नाना प्रकारके कृमि, कीट उसकी त्वचाको काटते हैं। उस समय वह हिल-डुल भी नहीं सकता। बस तड़पता रहता है।"

"हे माता! जो बहुत बड़े पापी होते हैं, उनका तो जन्म भी नहीं हो पाता। वे तो गर्भमें ही दुःख कष्ट झेलते हुए मर जाते हैं। पुनः गर्भमें आते हैं तथा गर्भमें ही मर जाते हैं। इस प्रकार उनका गर्भमें ही जन्म-मरण होता रहता है। हे माता! सात महीनेमें गर्भस्थित बच्चेको ज्ञान होता है। तब वह अपने कियेपर पछताता है तथा भगवानसे प्रार्थना करता है—'हे कृष्ण! मैं इस मायाके चक्करमें पड़कर आपको भूल गया। आज इसीका दण्ड भोग कर रहा हूँ, जो उचित ही है। इसके लिए मैं आपसे शिकायत नहीं करूँगा। अब आपके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना है कि आप ऐसी कृपा कीजिए कि मैं इस नरक यातनासे बाहर निकलकर सब समय आपकी सेवा कर सकूँ। आप कृपाकर मुझे ऐसे स्थानपर जन्म दें कि जहाँपर मुझे आपके प्रिय भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो। नहीं तो मेरे लिए यह गर्भ ही अच्छा है, जहाँपर कि दुःखके कारण आपका स्मरण तो हो रहा है। प्रभो! आपके चरणोंमें मैं बार-बार निवेदन करता हूँ कि आप मुझे ऐसे स्थानपर न भेजें, जहाँ कि आपका स्मरण न हो।"

"हे माता! इस प्रकार जीव गर्भमें नाना प्रकारकी स्तुतियाँ करता है। परन्तु बहुत दुःखकी बात है कि समय आनेपर जब वह गर्भसे बाहर इस मायिक जगतमें आता है, तो मायाकी चकाचौंधमें सबकुछ भूल जाता है तथा पुनः विषयोंमें प्रमत्त हो जाता है। उनमेंसे कोई भाग्यवान ही होता है जो कि कृष्णकी सेवा करता है। इसके अतिरिक्त सभी जीव दुःसङ्गमें पड़कर नाना प्रकारके पाप करते हैं तथा फलस्वरूप पुनः गर्भवासरूप नरकयातनाको प्राप्त करते हैं।"

(क्रमशः)

मनभावन द्वन्द्व

—डा॰ मधु खण्डेलवाल

भजन साम्राज्यमें द्वन्द्व कैसा? अन्याभिलाषी भक्तोंमें तो एकनिष्ठता ही सुशोभित होती है, परन्तु इनमें भी कभी-कभी द्वन्द्वकी ऐसी रङ्गीली छेड़छाड़ होती है कि श्रोतागण रसास्वादन करते थकते नहीं। सङ्कल्प-विकल्प-निर्विकल्प ये दोष शुद्ध भक्तोंमें नहीं होते, वहाँ तो बहाव होता है, अवगाहन होता है, तत्सुखसुखित्व होता है, प्रिया-प्रियतमकी हर क्रिया प्रिय प्रतीत होती है। फिर भी द्वन्द्व, जी हाँ, भोजन पा लेनेके बाद श्यामसुन्दर पर्यङ्कपर जाकर सो गए। सखियोंने सोचा कि राधा उनको देखे बिना बड़ी विकल हो रही हैं तो उपने साथ उन्हें लिवा ले गईं। कहीं प्यारेजुकी नींद टूट न जाय, अतः पलङ्गसे सात-आठ हाथ हटकर राधाजु एक पाटेपर बैठकर उनका मुखारविन्द अवलोकन करने लगती हैं। सोचने लगती हैं—"आह! यदि मेरे कोटि चक्षु होते और निर्निमेष दृष्टिसे मैं प्रियतमकी रूप-सुधाका कुछ कुछ आनन्द ले पाती।" पुनः—"हाय! यह मैं क्या सोच रही हूँ! हे विधाता, मैं तो भूल गयी, ऐसा कभी मत करना—मेरा ऐसा विकृत मुख देखकर श्यामसुन्दरको कितना कष्ट होगा, मेरी विकृत आकृतिको देखकर वे घबरा नहीं जाएँगे—मेरी दो ही आँखें ठीक हैं।" सखियाँ उनके मनके भावोंकी कल्पना भी नहीं कर पातीं।

सखियाँ अतिशय प्रेमभरी चर्चा चलाती हैं। इन्दुलेखा पलंगके दोनों ओर खड़ी मञ्जरियोंसे पूछती हैं। मञ्जरियाँ इशारा करती हैं कि हाँ, वे

गाढ़ी नींदमें सोए हैं। इधर श्यामसुन्दरको नींद बिल्कुल नहीं आई है, प्रेमवर्षिणी रस-कथाओंको सुननेके लिए नींदका बहाना किए हैं। सखियाँ निःसङ्कोच भावसे अनुरागी आयोजनकी सलाह गाँठती हैं।

राधा—"चित्रे! तू सुन रही है न!"

चित्रा—"हाँ सखी, सुन रही हूँ।"

ललिता—"जब वे पहुँच जायें, तुम निकुञ्जको बंद कर देना, समझीं।"

चित्रा—"बहुत ठीक।"

ललिता—"मैं उस समय राधाजुके साथ मदनकुञ्जमें रहूँगी। तुम श्यामसुन्दरको वहाँ बंद करके मेरे पास चम्पकलताको भेज देना।"

चम्पकलता—"ललिते, पर सुबलका क्या करेंगे?"

विशाखा—"अरे, उसे तो मैं मधुमङ्गलके द्वारा जालमें फाँस लूँगी। मधुमङ्गलको केले खिलाकर शरीफा खानेका आमन्त्रण दूँगी। सुबलका लालचमें आना कठिन है, पर उसे किसी उपायसे अपने निकुञ्जमें रोके रखूँगी।"

इतनेमें ही श्यामसुन्दर करवट लेते हैं और उनकी कपट-निद्राकी पोल खुल जाती है। राधाजु ललितासे कहती हैं—"सब गुड़ गोबर हो गया।"

ललिता—"कोई बात नहीं, दूसरा उपाय सोचेंगे, बड़े कपट-शिरोमणि हैं ये।"

राधा—"कृष्ण, यह बताओ, तुमने हमारी कौन-कौनसी बात सुनी हैं?"

कृष्ण—"कैसी बातें?"

ललिता—"चालाकी मत करो, देखो अब हम भी क्या करती हैं।"

कृष्ण—"चलो, अच्छी बात है।"

इतनेमें ही वृन्दा आती है। जोर-जोरसे हँसती हुई कहती है—"कृष्ण, एक तमाशा देखोगे?"

कृष्ण—"हाँ, हाँ, अवश्य देखूँगा, दिखाओ!"

वृन्दा—"अच्छा देखो, बिल्कुल दबे पाँव मेरे पीछे-पीछे सभी चले चलो, सावधान, तनिक भी शब्द न हो, नहीं तो सारा खेल बिगड़ जाएगा।"

सभी निकुञ्जमें जाकर शान्तिसे बैठ जाते हैं। निकुञ्ज सखियों एवं मञ्जरियोंसे ठसाठस भरा हुआ है, नीरवता भरे वातावरणमें वृन्दा पुनः बहुत धीरेसे कहती है—"देखो, उस वृक्षकी ओर सब देखो।"

एक बड़े वृक्षकी मोटी-मोटी डालियोंपर पक्षी-सभा बैठी है। मुद्रा ऐसी है, मानो कोई पञ्चायत हो। कभी-कभी एकसाथ सब बोल उठते हैं—ठीक है, ठीक है—सब रोमाञ्चित, स्तब्ध होकर सुन रहे हैं—तोता और मैनाका प्रबल द्वन्द्व चल रहा है।

शुक—"कृष्ण हमारे, हम कृष्णके, कृष्ण हमारे, कृष्ण हमारे।"

सारी—"राधा हमारी, राधा हमारी, हम राधाके, राधा हमारी।"

शुक—"हमारे कृष्ण तो मदनमोहन हैं, कामदेवको भी आकर्षित करनेवाले हैं।"

सारी—"जबतक हमारी राधा कृष्णके वाम भागमें रहती हैं, तभीतक। उनके बिना वह मदनका शोधन कैसे कर सकते हैं।"

शुक—"हमारे कृष्णने गिरिराज पर्वतको धारण कर लिया था।"

सारी—"अरे, वो तो हमारी राधाने उनमें शक्तिका सञ्चार कर दिया था, कृष्णमें इतनी सामर्थ्य कहाँ?"

शुक—"हमारे कृष्णके मस्तकपर मयूर-पिच्छ विद्यमान है।"

सारी—"अरे शुक, हमने तो यही देखा है कि उसपर राधाका ही नाम लिखा है।"

शुक—"हमारे कृष्णका चूड़ा वाम भागकी

ओर हिलोरें खाता है।"

सारी—"अरे, चूड़ा तो वामभागमें इसीलिए हिल रहा है कि वह हमारे राधाके पैरोंमें गिरना चाहता है।"

शुक—"हमारे कृष्ण इस जगतके चिन्तामणि हैं, संसारकी सारी चिन्ताओंको दूर करनेवाले हैं।"

सारी—"राधा प्रेम प्रदान करनेवाली हैं—तुम्हारे कृष्ण उन्हींकी आह्लादिनी शक्तिसे सारे जगतको चिन्ताओंसे मुक्त करते हैं।"

शुक—"हमारे कृष्णकी वंशी कितना मधुर गान करती है।"

सारी—"सत्य है, लेकिन उस वंशीसे तो राधाका ही नाम निकलता है, राधाके नामके बिना तो गान ही बेकार है।"

शुक—"हमारे कृष्ण सारे संसारके गुरु हैं।"

सारी—"हमारी राधा तो सबकी मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाला 'कल्पवृक्ष' हैं—नहीं तो वे किस बातके गुरु हैं?"

शुक—"हमारे कृष्ण तो प्रेमके भिखारी हैं।"

सारी—"हमारी राधा तो प्रेमकी लहरी हैं, हमारी किशोरी प्रेमकी तरङ्ग हैं।"

शुक—"हमारे कृष्णका वास कदम्बके तले है।"

सारी—"अरे, उस कदम्बके तले तो हमारी राधाका आवागमन लगा रहता है, उनके आवागमनसे ही वहाँ रहना सार्थक है, नहीं तो बेकार है।"

शुक—"हमारे कृष्ण सारे जगतको आलोकित करनेवाले हैं।"

सारी—"अरे, हमारी राधासे सारा जगत प्रकाशित हो रहा है, नहीं तो तुम्हारे काले कृष्णसे तो अँधेरा ही रहनेवाला है।"

शुक—"राधिका हमारे कृष्णकी सेविका है।"

सारी—"तुम सत्य बोल रहे हो? अरे, वंशी ही इस बातकी साक्षिणी है कि कौन सेवक है और कौन सेविका। राधा नहीं होतीं तो कृष्ण परम शुष्क वैरागी होकर काशीवास करते।"

शुक—"हमारे कृष्णसे ही वर्षा होती है।"

सारी—"राधा जब पवनको स्थिर कर देती हैं, तब ही वर्षण हो सकता है।"

शुक—"हमारे कृष्ण सम्पूर्ण जगतके जीवन हैं।"

सारी—"हमारी राधा तुम्हारे जीवनकी भी जीवन हैं। राधाके बिना कृष्णका जीवन किस कामका? वे ही सारे जीवनोंका स्रोत हैं।"

शुक—"हमारे कृष्ण कालिन्दीके जल हैं।"

सारी—"हमारी राधा उस जलकी कमलस्वरूपा हैं। बिना कमलके यह जल निरर्थक है, निष्प्रयोजन है।"

शुक—"हमारे कृष्ण वृन्दावनके चाँद हैं।"

सारी—"हमारी राधा चाँदको धारण करनेवाली फंदा हैं, जिन्होंने चलायमान चाँदको बाँध कर रखा है। जाओ शुक, मैं तुमसे बात नहीं करती, तुम व्यर्थ ही कृष्णकी प्रशंसा करते हो। वे तो बड़े निष्ठुर भी हैं।"

शुक—"पर तुम्हारी खुशीके लिए मैं झूठ तो नहीं कह सकता न। बात करना या न करना तुम्हारी इच्छा है।"

सारी—"झूठ मत बोलो, सत्यधर्मका पालन करो। तुम 'हाँ' कहो कि कृष्ण बड़े निष्ठुर हैं।"

शुक—"यह कोई सत्य धर्म नहीं है।"

सारी—"वाह! वाह! वाह! कृष्ण बड़े करुण हैं, शीतल हैं—बस, अब मुझसे मत बोलना।"

शुक—"सारी, तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करो, क्या तुम उन्हें जो निष्ठुर कह रही हो, वह ठीक है? तुम उनकी पीयूषती आँखोंको तो देखो।"

सारी कुछ जवाब नहीं देती, पर प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ सब हँसने लगते हैं। वृन्दा उनको सावधान करती है।

शुक—"कुछ बोलोगी नहीं?"

सारी—"व्यर्थमें बात क्यों बढ़ा रहे हो, बस मेरी भूल थी, अब ठीक है—(पूर्वकी ओर मुख फेरकर बैठ जाती है)।"

शुक—(गम्भीर-सा आँखें बन्द करके) "प्राणप्यारे श्यामसुन्दर, श्यामसुन्दर---।"

सारीके हृदयमें इस मधुर कण्ठध्वनिसे मधुरता भर जाती है। वह शुककी ओर देखने लगती है।

शुक—"सारी, सच, तुम मेरे हृदयको देख तो, मेरे मनमें ऐसा कभी नहीं आया कि श्याम निष्ठुर हैं, बल्कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि तुम्हारी राधा ही निष्ठुर हैं। देखो, उस दिनकी बात है। राधा रूठ गई थीं—अरे राधाका सौन्दर्य तो मुझे भी भ्रममें डाल देता है—उनके सौन्दर्यके सम्मुख तो नव-विकसित कमलोंकी शोभा फीकी है, अनन्त चन्द्रमण्डलकी शोभा भी एकदम नगण्य है, आनन्दसे मेरा रोम-रोम भर ही रहा था कि ललिता कृष्णकी बाहें पकड़े वहाँ आईं। मेरे कृष्ण श्रीराधाके चरणोंमें बैठ गए, हृदयके समस्त प्यारसे प्रार्थना की, पर राधाने आँखें तक नहीं खोलीं। तुम भी तो वहाँ थीं—तुमने भी सब देखा था, तुम ही बोलो, निष्ठुर कौन हैं?"

सारी—"शुक, तुम्हें भीतरी बातका कुछ पता ही नहीं है, ऊपरसे ही देखकर तुमने राधाको निष्ठुर मान लिया है। तुम्हारा हृदय पुरुषका है, राधाके प्रेममय हृदयकी रूपरेखाको समझनेके लिए रमणी-सुलभ हृदय चाहिए। और---।"

शुक—"चुप क्यों हो गई, बात पूरी करो।"

सारी—"तुम नासमझ हो, अभी मैं तुम्हें अपने मनका घाव दिखला दूँ तो तुम्हारी सारी बोलती बंद हो जाएगी।"

शुक—"सुनाओ तो सही, कौन सी निष्ठुरता तुमने कृष्णमें देखी है?"

सारी—(करुणाकी मुद्रामें) "शुक, कल दोपहरको सूर्य-मन्दिरमें राधा अकेली बैठी थीं। ललिता आदि सखियाँ उपवनमें गई हुई थीं। राधाके हाथमें माला ऐसे ही पड़ी थी और आलाप कर रही थीं—मेरे जीवन सर्वस्व! सभी अवस्थाओंमें मैं तुम्हारी हूँ। पुनः अपने श्रीमुखसे ही निज श्रीशोभाका चित्रण करने लगीं। कृष्णमें आविष्ट होकर स्वयंको कृष्ण ही मानकर कहने लगीं—ओह! व्रजका प्रत्येक कुञ्ज छान डाला, घरका कोना-कोना देख लिया, पर प्रिया कहीं नहीं मिली, कहाँ गयी। प्रिये, हृदयेश्वरि! क्या कहूँ, किससे कहूँ—मेरी प्रियाके पास मुझको पहुँचा दो।

मैं पत्र लिखता हूँ—मेरी प्रियाको पत्र दे देना, पत्रोत्तर आनेतक प्राणोंको रोक रखूँगा। अनन्तर वह बैठ गयीं। पत्तेके चार टुकड़ेकर नखसे कुछ लिखने लगीं। लिखकर समाधिस्थ हो गईं। पुनः आनन्दसे सरोबार होकर बोलीं—पढ़ूँ तो सही, क्या लिखा है? पुनः—आह! मेरे जीवनधन, तुमने तो कोई अपराध नहीं किया है, मैं कहाँ रुठी हूँ, पता नहीं तुम्हारी क्या दशा हो रही होगी। बड़ी आकुलताकी अवस्थामें कृष्णने यह पत्र लिखा होगा। ललिते, विमले, रूप! कहाँ गईं?

ओठ जीव बेधु बारौं, हाँसी सुधाकंद वारौं
कोटि-कोटि चंद वारौं, राधे मुखचंद पै।

पुनः पत्रको हृदयसे लगा समाधिस्थ हो गईं—

आपुनै आपुतीमें उरसें
सुरसैं उरसैं समुझैं समुझावें।।

शुक, मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी हो गई और राधाकी विक्षिप्त दशा बतानेके लिए कृष्णके पास दौड़ी। पर तुम सुन सकोगे, मैं क्या देखती हूँ। एक वृक्षके नीचे तुम्हारे श्रीकृष्ण बैठे हैं और उनके सम्मुख एक सुन्दरी रमणी बैठी है। वे उसके साथ प्रेम-लीलामें मग्न हैं। राधा विरहमें व्याकुल हो रही हैं। मैं यह देखकर मूर्च्छित हो गई। होशमें आनेपर जब कृष्णको वहाँ न देखा, तब मैं पुनः सूर्य-मन्दिरमें आई। वहाँ देखा, राधाके प्रति असीम प्रेम प्रदर्शन कर रहे हैं।

इसीलिए मेरा यह निश्चय है कि कृष्ण बड़े निष्ठुर हैं, कपटी हैं। लाख बार, कोटि-कोटि बार कहती हूँ कि वे लम्पट हैं, लवार हैं।

इतना सुनकर राधा-कृष्ण और सखियाँ अपनी हँसी रोक नहीं पातीं। उनके उच्च हास्यको सुनकर सब विहग उसी ओर अवलोकन करने लगते हैं। ललिता सारीको बुलाकर कहती है— सारी, तुम ठीक कहती हो, ये बड़े ही लम्पट हैं।"

कृष्ण कहते हैं—"सारी, आओ मेरे पास। मैं तुम्हारे विवादका न्याय कर देता हूँ।" वे सारीको अपने हाथपर और शुकको राधाके हाथपर रख देते हैं। पुनः शुकसे पूछते हैं—"शुक! तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है?" शुकने कहा—"मैं तो श्रीराधाके रोम-रोममें, अणु-अणुमें श्रीकृष्णको देख रहा हूँ।" पुनः सारीसे पूछे जानेपर उत्तर मिलता है—"मुझे तो कृष्णके रोम-रोममें, अणु-अणुमें राधा दीख रही हैं। जय हो, जय हो।"

सारीकी कण्ठध्वनिमें ध्वनि मिलाकर सभी पक्षी बोल उठते हैं—जय हो! जय हो!! जय हो!!! जय हो!!!!

शुक-सारी प्रिया-प्रियतमके चरणोंमें सिर नवाकर वृक्षपर पुनः जा बैठते हैं—भाव-विभावित होकर।❑

अक्षय तृतीयाके उपलक्ष्यमें

गत २६ अप्रैलको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम प्रचारकेन्द्र श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें अक्षय तृतीयाके दिन समितिका स्थापना-दिवस बड़े धूम-धामसे मनाया गया है।

सन् १९६१ में परिव्राजकाचार्य ॐविष्णुपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीमुखनिःसृत अक्षयतृतीयाके सम्बन्धमें एक सारगर्भित एवं प्रभावोत्पादक भाषण यहाँपर परिवेषित किया जा रहा है।

"अक्षय तृतीयाका कई कारणोंसे बड़ा ही महत्त्व है। इसी दिन भगवान कल्कि द्वारा बौद्ध-विनाशके पश्चात् सत्ययुग प्रारम्भ हुआ है। कुछ शास्त्रकारोंके मतसे त्रेतायुग भी इसी शुभ दिनसे प्रारम्भ होता है। यह सर्व प्रथम दिन है, जबसे वेद-त्रयी द्वारा प्रतिपादित यज्ञका प्रचलन हुआ। इसी दिन भगवानके शक्त्यावेशावतार श्रीपरशुरामका शुभाविर्भाव भी हुआ था, जिन्होंने भक्त और भागवत विरोधी अधार्मिक समाजको इक्कीस बार पृथ्वीसे मिटाकर धार्मिक समाजकी स्थापना की थी। आज ही के पुनीत दिन भारत-सम्राट भगीरथकी अथक आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती भागीरथी (गङ्गाजी)ने भारतभूमिमें आविर्भूत होकर उसे परम पवित्र बना दिया। आज ही के दिन श्रीश्रीबद्रीनारायणका द्वारोद्घाटन होता है। श्रीकृष्णकी चन्दनयात्राका उत्सव भी (श्रीपुरीधाममें भी) आज ही के दिन बड़े समारोहसे मनाया जाता है।

इस प्रकार पुराण और इतिहासोंको देखनेसे पता चलता है कि आजका दिन धार्मिक क्रान्तिका दिन है। आज ही के दिन विश्वसे अधार्मिक, निरीश्वर, दुर्नैतिक एवं निरा भौतिक समाजकी सत्ता उखाड़ फेंकी गयी और उसके बदले एक धार्मिक, सेश्वर और पारमार्थिक समाजकी नींव डाली गयी। निरा भौतिक समाज विश्व-ध्वंसका कारण है। दूसरी ओर ईश्वर-विश्वासी धार्मिक समाज विश्व-शान्तिकी आधारशिला है।

पाश्चात्य रङ्गमें रङ्गे अधिकांश लोगोंका विचार यह है कि रूस एवं अमेरिकाने अन्तरिक्षमें मानवको भेजकर विश्वको एक नये दिव्य युगमें प्रवेश करा दिया है। इस प्रकार आजका विश्व उन्नतिके चरम सोपानकी तरफ अग्रसर हो रहा है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि आज भौतिक विज्ञानकी

परमचमत्कारपूर्ण उन्नति तो हो रही है—उसमें सन्देह नहीं, परन्तु इससे क्या विश्वशान्तिकी समस्या हल हो चुकी है? क्या भूखे विश्वकी खाद्य-समस्या पहलेसे अधिक खराब नहीं हुई है? क्या रोटी और वस्त्रकी समस्या हल हो गयी है? या हल होने जा रही है? क्या रोगोंकी समस्या पहलेसे कुछ घटी है या अधिक भयानक रूपमें ही बढ़ नहीं रही है? क्या विश्वमें भ्रष्टाचार, दुर्नैतिकता, आत्महत्या, ठगी, चोरी, प्रान्तीयतावाद, भाषावाद, जातिवाद, व्यर्थके सत्याग्रह और आन्दोलन आदिकी पेचीदी समस्याएँ नये-नये रूपोंमें सामने नहीं आ रही हैं? क्या समस्याएँ दिन-दिन और भी जटिलसे जटिलतर नहीं हो रही हैं? क्या काँगों, तिब्बत, जापान, कोरिया और स्वेज जैसी शर्मनाक घटनाओंकी समस्याएँ, विश्व-प्रगतिके दम भरनेवालोंकी नाक नहीं काट ली हैं? इस तथाकथित वैज्ञानिक युगमें पशु-पक्षी आदि जो विश्वके ही निरीह प्राणी हैं, तब इनके प्रति हो रही हिंसा और मनमाने अत्याचार ही क्या समता और विश्व प्रेमका दृष्टान्त हैं? शर्म है इस झूठी और बर्बरतामूलक भौतिक उन्नतिको और उसके नायकोंको।

यथार्थ बात तो यह है कि आजके भौतिक विज्ञानवादी मुखसे चाहे जो कहें, परन्तु कार्यतः वे इस पाञ्चभौतिक मानव शरीरको ही 'मैं' मानते हैं और इस अनित्य मानव शरीरको अमर बनाने तथा उसे अधिकसे अधिक सुख पहुँचानेके लिए जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। पशु-पक्षियोंको वे विश्ववासी नहीं मानते, उन्हें वे मनुष्यके आहार एवं प्रमोदकी वस्तुमात्र मानते हैं। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों, मनीषियों अथवा महर्षियोंने जानबूझकर समर्थ होते हुए भी भौतिक उन्नतिपर कड़ा अङ्कुश रखा। वे इस भौतिक शरीरको नहीं, बल्कि शरीरमें स्थित पूर्णचित् ईश्वरके अणु-चित्—जीवको 'मैं' मानते थे। यह अणु चित् जीव एक विशेष कारणसे भगवानसे बिछुड़कर संसारमें पुनः पुनः जन्म-मरणके चक्करमें फँसकर जो भयङ्कर दुःख और क्लेश पा रहा है, उससे सदाके लिए वह कैसे छुटकारा पाकर नित्य सुख और शान्तिको पा सकता है—हमारे भारतीय दार्शनिकों या अध्यात्म-तत्त्व वैज्ञानिकोंका सारा ध्यान इसीपर केन्द्रित था। साथ ही अध्यात्मतत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिके लिए अपरिहार्य सहायक इस मानव-शरीरको सुखी और निरोग रखनेके कार्योंसे भी बिल्कुल विमुख नहीं थे। वे भौतिक विज्ञानमें भी बढ़े चढ़े थे। आजसे करोड़ों वर्ष पहले रावण और मेघनाद आदि अन्तरिक्ष और पातालमें सर्वत्र बिना किसी यान या विमान अथवा राकेटकी सहायतासे ही विचरण करते थे। अगस्तमुनिने एक चुल्लुमें ही सात समुद्रोंके जलको पी लिया था। महर्षि वेदव्यासजी दृष्टिसे ही पुत्र-कन्या उत्पन्न किये। शुक्राचार्यने बार-बार युद्धोंमें मरे हुए असुरोंको मन्त्र शक्तिसे जीवनदान दिया। वर्त्तमान भौतिक विज्ञान तो उस करोड़ों वर्ष पूर्वके विज्ञानके सामने कुछ भी नहीं है। फिर भी वे लोग विज्ञानपर अङ्कुश लगाकर रखते थे। इसीलिए अध्यात्मपक्षको दबाकर भौतिक समृद्धिको बढ़ावा देनेवाले रावण, मेघनाद, हिरण्यकशिपु, मयदानव आदिको प्राचीन संस्कृतिमें असुर कहा गया है। हमारे पूर्वज इस बातको भली प्रकार जानते थे कि ईश्वर-विश्वास-रहित परमार्थशून्य केवल भौतिक समृद्धि होनेसे अध्यात्मपक्ष अवश्यमेव उपेक्षित होगा ही। साथ ही ध्वंस भी अनिवार्य होगा। इसीलिए वे सादा जीवन उच्च विचारका आदर करते हुए प्रत्येक जीवको जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिए छुड़ाकर नित्य भगवत-तत्त्व विज्ञानोंमें प्रतिष्ठित करनेकी ही चेष्टा करते थे।

यदि हम विश्वको बर्बादीसे बचाना चाहते हैं, तो हमें भी एक होकर आजके पुनीत तिथिको ईश्वरविमुख समाजकी सत्ताको उखाड़ फेंककर प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप अध्यात्म- विज्ञानपर आधारित धार्मिक समाजकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। तभी सारे विश्वमें सच्ची शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।"❑

विविध संवाद

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति और साधारण सम्पादक श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी १ अप्रैल २००१से आरम्भ द्वादश विदेश यात्राका स्थानानुसार विवरण।

हवाई ५ से १९ अप्रैल

हवाईके भक्तोंमें पुनः नवजीवनका संचार हुआ है। श्रीभक्तिवेदान्तस्वामी महाराजजीके अप्रकटके बाद लम्बे समयसे भक्तिकी लहरें अत्यन्त क्षीण हो चुकी थीं। यद्यपि बीच-बीचमें कभी उत्साह भरे क्षण दृष्टिगोचर हुए, किन्तु क्षणिक। कुल मिलाकर उत्साहके स्तरमें गिरावट ही आई। परन्तु अब पुनः परिवर्त्तन हो रहा है। ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी कृपापूर्वक अब ओवाहुके उत्तरी तटपर आते रहते हैं। विशेषतः ग्रन्थ प्रणयनके लिए। वर्त्तमानमें वे श्रीरूपगोस्वामीकृत श्रीउज्ज्वल-नीलमणिके अनुवाद एवं टीका रचनामें व्यस्त हैं। सुखद जलवायु एवं सागरतटका प्राकृतिक वातावरण उनकी इस महत्त्वपूर्ण सेवाके लिये परम अनुकूलता प्रदान करता है। पूजनीय महाराजजीकी दिव्यवाणी एवं स्निग्ध सङ्गके प्रभावसे क्रमशः भक्तोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। इस वर्ष उत्तरीतटके निवासमें युवा, वृद्ध, नये, पुराने एवं वरिष्ठ सभी भक्तोंको एकत्र करना सम्भवपर नहीं था। निकट ही एक रमणीय स्थानका चयन किया गया। श्रीगौड़ीय-वैष्णव-सिद्धान्तके अन्यतम प्रचारकके श्रीमुखसे हरिकथा श्रवण हेतु उत्कण्ठित भक्तोंने समय, अर्थ एवं हृदयसे योगदान किया। वातावरणमें व्याप्त स्निग्धता, बहुतसे भक्तोंके अनुभवमें ठीक वैसी ही थी जैसी कि श्रीलभक्तिवेदान्तस्वामी महाराजजीके प्रकट कालमें।

दृढ़ विश्वासके साथ श्रद्धालुओंने अपने हृदयको परमाराध्यतम श्रीलमहाराजजीको समर्पित किया क्योंकि वे जान चुके थे कि लम्बी अवधिके पश्चात् उन्हें ऐसा आश्रय मिल गया है, जहाँ कि वे निसंकोच हो अपने हृदयको समर्पित कर सकें। यह वार्त्ता शीघ्र ही चारों ओर फैल गयी तथा आनेवालोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती रही। सभीमें उत्साहकी लहरें दौड़ रही थीं। विशेषकर श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके शिष्योंके खिले हुए चेहरोंको देखकर ऐसा लगा कि मानो विधाताने उन्हें जीवनमें द्वितीय अवसर प्रदान किया हो। अतुलनीय सौभाग्यको प्राप्तकर सभी स्वयंको कृतकृतार्थ अनुभव कर रहे थे। हृदयमें अटूट विश्वास जाग्रत हुआ कि श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज एवं स्वयं श्रीकृष्णने ही कृपापूर्वक श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको उन्हें पुनः भगवद्धाममें ले जानेके लिए सहायता स्वरूप भेजा है।

कनाडा २० से २१ अप्रैल

वैंकुवर

वैदिक कल्चरल सैंटरमें आयोजित दो दिवसीय कार्यक्रममें आनेवाले भक्तोंने सेंटरकी नाट्यशालाको खचाखच भर दिया। वैंकुवर स्थित प्रवासी भारतीयोंके लिए यह स्वर्णिम अवसर था। स्वदेशसे आये ब्रजरस-रसिक

साधुने स्वदेशी भाषामें हरिकथारसकी वर्षाकर तप्त हृदयोंको शीतल कर दिया। मनमोहक श्रीकृष्णकी अनुपम लीलाओंके मार्मिक वर्णनसे भक्तमण्डली वृन्दावनकी यादोंसे आप्लावित होने लगी। मधुर कथाओंमें छिपे निगूढ़ सिद्धान्तोंको श्रवणकर, भक्ति-तत्त्व—सम्बन्धी भ्रम एवं दूषित विचार नष्ट हुए। भगवान निराकार नहीं हैं। वे अपने चिन्मय स्वरूपमें नित्यकाल, निज-नित्यधाममें अपने परिकरोंके साथ लीला-विलासमें रत रहते हैं। सूर्य, चन्द्र, गणेश, दुर्गा आदि देवी-देवता भगवानके दास-दासियाँ हैं। जिस प्रकार वृक्षके मूलमें जल सींचनेसे वृक्षकी प्रत्येक शाखा-प्रशाखा और पत्ते-पत्तेमें स्वतः ही जल पहुँच जाता है, पेटमें भोजन देनेसे समस्त अङ्ग पुष्ट हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीसद्गुरुदेवका चरणाश्रयकर श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण आदि अङ्गोंसे युक्त शुद्धभक्तिद्वारा भगवान श्रीकृष्णकी ऐकान्तिक उपासना करनेसे सभी देवी-देवताओंका यथोचित सम्मान हो जाता है। पृथक रूपसे कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। दूसरी ओर, वृक्षके मूलमें जलसिंचन न कर, पत्तों इत्यादिमें जितना भी जल क्यों न दिया जाए, निश्चित ही वृक्ष सूख जाता है, वैसे ही ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकी आराधना न कर अन्य देवी-देवताओंकी शरणमें जानेसे कभी भी शाश्वत शान्ति और सन्तोष प्राप्त नहीं होता। अर्थ एवं परमार्थके प्रति सन्तुलित प्रयास करते हुए मनुष्य जीवनको सुख एवं खुशियोंसे भरनेका सन्देश देकर परम वन्दनीय श्रीलमहारजजीने सभीको आशीर्वाद दिया।

साल्ट स्प्रिंग आईलैण्ड

गङ्गातटपर बसा यह रमणीय द्वीप भगवद चर्चाके लिए उपयुक्त स्थल था। जी हाँ! 'गङ्गातट'। क्यों अचरज हुआ न? कनाडामें गङ्गाजी कहाँसे आ गईं? वैंकुवरसे लगभग २ घण्टेकी समुद्री यात्राकर जब भक्तगण इस द्वीपमें पहुँचे, तो देखा कि इस स्थानका नाम 'GANGES' है। खोज करनेपर पता लगा कि कई वर्ष पूर्व किसी समृद्ध प्रवासी भारतीय वणिकने इस स्थानका नामकरण 'GANGES' किया था। इस नामसे भक्तोंको भारतवर्ष, विशेषकर गङ्गातट (शुकताल) पर लगभग ५५०० वर्ष पूर्व घटित शुक-परीक्षित संवादका स्मरण हुआ। सारा वातावरण इस स्मृतिसे अनुप्राणित हो उठा। साथ ही श्रीशुकदेव गोस्वामीकी शिष्य परम्पराके वर्त्तमान प्रतिनिधिकी उपस्थितिने सभीको भगवच्चर्चाके आवेशमें डुबो दिया। ५ दिनोंके लिए मानो सभी अपने देह-दैहिक सम्बन्धोंको भूल गये। गुरुतत्त्व, भक्तिलताकी क्रमिक अवस्थाओंके लक्षण एवं अनुभवोंका सुसिद्धान्तपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण श्रवणकर अविद्यावृत्ति शिथिल हुई। साधकोंका पथ शुद्धभक्तिके प्रकाशसे उज्ज्वल हो उठा। परमाराध्यतम महाराजजीके मुखपद्मसे निःसृत भक्ति रत्नोंसे भक्तोंने अपनी हृदयरूपी झोलीको ठसाठस भर लिया। बहुतसे भक्तोंने समर्पणपूर्वक हरिनाम एवं दीक्षामंत्र ग्रहण किये। श्रीगौरहरिकी अहैतुकी कृपासे प्राप्त इस साधुसङ्गके ठोस प्रभावसे पुनः भक्तिपथपर दृढ़तापूर्वक चलनेके संकल्प और भविष्यमें पुनः-पुनः ऐसे दिव्य आयोजनमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थनाके साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

यूजीन २९ से २ मई

California के उत्तरमें Oregon राज्यके मध्य-पश्चिम भागमें स्थित है। इस कार्यक्रमें भी श्रोताओंकी संख्या प्रायः ४०० तक

पहुँची। बहुतसे लोग पहली बार ही ऐसे धार्मिक आयोजनमें आये थे। आत्म-तत्त्व-सम्बन्धी रहस्यपूर्ण बातोंको सुनकर एवं श्रीलमहारजजीके आलौकिक प्रभावने उन सबके हृदयपर अमिट छाप छोड़ी।

Ganges में आरोपित भक्तिलता बीज क्रमशः विकसित होने लगी। साधकरूपी माली योग्य कृषककी भाँति नियमित जलसिंचन, सावधानी पूर्वक खर-पतवारका उन्मूलन और वन्य जन्तुओंसे लताकी सुरक्षा करता है। भुक्ति, मुक्ति इत्यादि स्पृहासे रहित शुद्धभक्तके प्रेमपूर्ण हृदय-सागरसे उद्भूत हरिकथारूपी सरिता ही भक्तिलताके सिंचनके लिए शुद्धजलका उत्तम स्रोत है। खर-पतवारका उन्मूलन अत्यावश्यक है। इसके दो चरण हैं—प्रथम चरणमें शुद्धभक्तिरूपी धानके आस-पास ठीक वैसी ही दिखनेवाली श्यामाघासको तो जड़से ही उखाड़ फेंकना है। अन्यथा श्यामघास पुष्ट होकर धानको विकसित नहीं होने देगी अर्थात् चेष्टापूर्वक भुक्ति एवं मुक्तिकी अभिलाषाको हृदयसे निकाल बाहर करना चाहिए। द्वितीय चरणमें भक्तिलताकी मूल शाखा उत्तरोतर वृद्धि प्राप्त हो सके, इसके लिए अन्य उपशाखाओंको समय-समयपर काटते रहना चाहिए, परन्तु "उखाड़ना नहीं है"। उखाड़नेसे पूरा पौधा ही उजड़ जाएगा। अर्थात् ऐकान्तिक भक्त लक्ष्मीनारायण, सीता-राम, रुक्मिणी-द्वारकाधीश आदि अन्यान्य भगवत्-स्वरूपोंके प्रति यथोचित आदर प्रदर्शित करते हुए अपने ईष्टदेवके प्रति सर्वतोभावेन समर्पणपूर्वक अपने भावका साधन करेंगे। क्रमशः और भी उन्नत अवस्थामें पहुँचनेपर अन्य रसोंके प्रति समुचित सम्मान प्रदर्शित करते हुए, अपने स्वरूपगत रसविशेषकी पुष्टि हेतु भावानुकूल साधन करना चाहिए।

वन्य जीवोंसे लताकी सुरक्षाका अर्थ है—नामापराध, धामापराध, सेवापराध विशेषकर वैष्णवापराधरूपी हाथीसे परम सावधानी पूर्वक बचना। इस प्रकार भक्तिलता क्रमशः विकसित होकर भौतिक ब्रह्माण्डको भेदकर विरजा, वैकुण्ठ आदि लोकोंसे ऊपर उठती हुई गोलोक वृन्दावनमें श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें आश्रय ग्रहणकर प्रेमफल प्रदान करती है और साधक इसी जगतमें रहते हुए उस फलका आस्वादन करता है। अर्थात् भौमब्रजमें साधकदेहमें भजन करते हुए सौभाग्यशाली जीव हरिनाम ग्रहणके समय अपनी अन्तश्चिन्तित स्वरूपगत देहके द्वारा अप्राकृत व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी नित्यसेवारस आस्वादनमें मग्न हो जाता है।

श्रीरूपगोस्वामीजीके मनोऽभीष्ट प्रचारमें रत श्रीलमहाराजके मुखारविन्दसे निःसृत निर्मल श्रीरूपानुग विचारधारा द्वारा सिञ्चित होकर भक्तोंकी भक्तिलता झूमकर लहलहा उठी।

सेनफ्राँसिस्को २ से ४ मई

यहाँ स्थानीय सभागारमें आयोजित कार्यक्रममें भारी संख्यामें श्रोताओंका आगमन हुआ। वर्षोंसे साधुसङ्गके अभावमें निराश हो चुके भक्तोंके हृदयमें भक्तिके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गये थे। परम करुणामय श्रीलमहाराजजीने भक्तोंकी ऐसी दयनीय अवस्थाको देखकर अपने प्रवचनमें भक्तिके श्रेष्ठत्वको प्रतिपादितकर उनके संशयोंका निवारण कर दिया।

सद्गुरुका चरणाश्रय ग्रहणकर श्रीनामभजन

इत्यादि भक्त्याङ्गोंका पालन करनेपर भी ऐसा देखा जाता है कि कई साधक भक्तिपथसे विच्युत हो जाते हैं। वर्षोंतक ब्रह्मचर्य आश्रममें श्रीहरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवामें रत कुछ साधक गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? ऐसे साधकोंकी सांसारिक भोगवासनाएँ दूरीभूत क्यों नहीं हो सकीं? इस विषयको सम्बोधित करते हुए श्रीलमहाराजजीने साधन प्रक्रियामें होनेवाली त्रुटियोंका अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया।

भगवन्नामादिमें यथार्थ रुचि एवं दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न न हुई हो और न ही विषयोंके प्रति वास्तविक वैराग्य उदित हुआ हो, किन्तु उत्साह वश साधक बाह्यतः वेशादि ग्रहणकर विषयोंको त्याग दे—यह अवस्था नवीन साधकके लिये अत्यन्त नाजुक होती है। इस अवस्थामें शुद्ध साधु सङ्ग अनिवार्य होता है, जिसके अभावमें साधक श्रीनामभजनकी वास्तविक पद्धतिसे अवगत नहीं हो पाता। वह बाह्य परिवर्त्तनके मिथ्या अभिमानमें भक्तिविरोधी आचरणद्वारा पतित हो पड़ता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीशिक्षाष्टकके प्रथम श्लोकमें 'परं विजयते श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्त्तनम्'के द्वारा जिस नामको लक्ष्य किया गया है, वह श्रीगुरु–वैष्णवोंके आनुगत्यमें सेवोन्मुख वृत्तिसे उच्चरित शुद्धनाम है। शुद्धनाम उच्चारणके प्रभावसे अतिशीघ्र ही मायाग्रस्त जीवके कलुषित चित्तरूपी दर्पणका मार्जन हो जाता है और वह क्रमशः मायाके प्रभावसे मुक्त हो अपने चिन्मय स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है। इसी प्रसङ्गमें श्रीलमहाराजजीने श्रीशिक्षाष्टकके प्रथम श्लोककी विशद व्याख्या की।

इन सब विचारोंको श्रवणकर निराश हृदयोंमें आशाकी किरण जागृत हुई। Sanfransisco का कार्यक्रम समयाभाव–वशतः यूँ तो दो ही दिनका था, किन्तु नये विश्वासको प्रदानकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साबित हुआ।

बेजर ४ से ११ मई

अपने नामके अनुरूप ही 'न्यूब्रज' Central California में Fresno से पूर्वमें प्रायः दो घण्टेकी दूरी पर, Sanfransiscoसे २०० मील दक्षिण तथा Los Angelesसे २०० मील उत्तरमें, समुद्रसे ३००० फीटकी ऊँचाई पर Sierra पर्वत श्रृंखलामें स्थित सुरम्य, स्वच्छ प्राकृतिक सौन्दर्यसे भरपूर, गर्वीली पर्वत श्रृंखलाओं, इधर–उधर बहते झरनों इत्यादिके मनमोहक दृश्योंद्वारा यह स्थान सहज ही ब्रजके किसी ऐसे ही सुरम्य गाँवका स्मरण कराता है। रङ्ग–बिरङ्गे फूलों, फलोंसे लदे वृक्षों, मयूर इत्यादि पक्षियोंके कलरवसे सुसज्जित सात्त्विक वातावरणमें भगवत कथानुरागी परम श्रद्धेय महाराजश्रीके सान्निध्यमें श्रवण–कीर्त्तन महोत्सवके समाचारने भक्तोंको न केवल सम्पूर्ण अमेरिका अपितु दक्षिण अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया आदि देशोंसे भी आकर्षित किया।

प्रतिदिन बालक–बालिकाओंके द्वारा प्रह्लाद चरित्र, श्रीरघुनाथदास गोस्वामीका जीवन इत्यादि शिक्षाप्रद अभिनय प्रस्तुत किये जाते।

इस महोत्सवके दो मुख्य आकर्षण थे—अन्नकूट महोत्सव और श्रीनृसिंह चतुर्दशी व्रत।

नृसिंह चतुर्दशीके दिन युवा, वृद्ध, स्त्री एवं पुरुष प्रायः सभीने संध्यातक निर्जला

उपवास किया। प्रातः श्रीलमहाराजजीने भक्त प्रह्लादके पावन चरित्रका पाठ आरम्भ किया और दिनभर अन्य वरिष्ठ वक्ताओंने इस क्रमको जारी रखा। संध्यामें पुनः श्रीलमहाराजजीके सान्निध्यमें भगवान श्रीनृसिंहदेवके आविर्भावके प्रसङ्गका पाठ हुआ। इसके बाद उदण्ड नृत्य एवं कीर्त्तनके मध्य भगवान श्रीनृसिंहदेवका पञ्चामृतसे अभिषेक किया गया और अन्तमें बालकोंने प्रह्लाद चरित्रका अभिनय प्रस्तुतकर सभीका चित्त द्रवित कर दिया।

अन्नकूट महोत्सव—छः वर्ष पूर्व स्वयं श्रीलमहाराजजीने ही व्रजवासियोंके आनुगत्यमें यहाँ श्रीगोवर्द्धनकी स्थापनाकर अन्नकूट महोत्सव एवं गोपूजा आदिका शुभारम्भ किया था। तबसे प्रतिवर्ष यह उत्सव बड़ी धूम–धामके साथसे मनाया जाता है। इस वर्ष श्रीगिरिराजजीके प्रीति विधानके लिये ५००से भी अधिक भोग पदार्थ अर्पित किये गये। इसके पूर्व भक्तमण्डलीने भव्य नगरकीर्त्तनका भी आयोजन किया। श्रीगिरिराजधरण लीलाको श्रवणकर भक्त आनन्दित हो उठे।

लॉस ऐन्जल्स ११ से १३ मई

Furama नामक होटेलके कॉनफ्रैन्स हॉलमें आयोजित यह कार्यक्रम विशेषरूपसे सफल हुआ। ५००से भी अधिक भक्तोंकी सभामें श्रीलमहाराजजीने श्रीचैतन्यचरितामृतमेंसे श्रीरायरामानन्द संवादका सारांश पाठ किया। क्रमशः वर्णाश्रम धर्मसे प्रारम्भकर रागानुगा भक्तिके उच्चतम स्तरोंका विवेचन प्रस्तुत करते हुए, विभिन्न प्रकार साध्य एवं तत्सम्बन्धि साधनका विचारकर, श्रीराधाकृष्ण युगलकी ऐकान्तिक श्रृंगार रसगत उपासनाका श्रेष्ठत्व निर्विवादरूपसे प्रतिपादित किया गया। बहुतसे भक्तोंने यहाँ हरिनाम एवं दीक्षामंत्र भी ग्रहण किये।

इस विदेशयात्रामें Los Angeles के बाद श्रीमहाराज ह्यूस्टन, अलाचुआ (फ्लोरिडा), वॉशिंगटनसे होते हुए यूरोपमें प्रायः एक मास प्रचारकर जुलाई मासके प्रथम सप्ताहमें पुनः भारतवर्षमें लौटेंगे।

श्रीलमहाराजजीके साथ इस प्रचार यात्राकी विभिन्न सेवाओंमें श्रीपाद माधव महाराज, श्रीपाद अरण्य महाराज, श्रीमान व्रजनाथ दासाधिकारी, श्रीमान् धृष्टद्युम्न प्रभु, श्रीपुण्डरीक दास, श्रीमती वृन्दा देवी दासी, श्रीमती तुंगविद्या देवी दासी, श्रीमती श्यामारानी देवी दासी आदि भक्तोंका योगदान विशेष रूपसे सराहनीय है।

श्रीपाद तीर्थ महाराज, श्रीपाद वन महाराज, श्रीपाद आश्रम महाराज, श्रीमान् उरुक्रम प्रभु, श्रीमान् ज्ञानदास प्रभु और श्रीमान् रामचन्द्र प्रभु श्रीलमहाराजजीके शुभाशीष और प्रेरणासे ईंग्लैण्ड, ईटली, फ्राँस, फिनलैण्ड, स्पेन, जर्मनी, हॉलैण्ड, रूस और अमेरिकाके विभिन्न प्रांतोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे प्रभावी प्रचारमें अक्लान्त सहयोग कर रहे हैं। ❑

१.वेंकुवेरके साल्ट स्प्रींग द्वीपमें श्रील महाराजजी २.यूजीनमें प्राणकिशोर प्रभु श्रील महाराजजीका अभिनन्दन करते हुए एवं ३.पुष्पदन्त प्रभुके घरमें श्रील महाराजजी

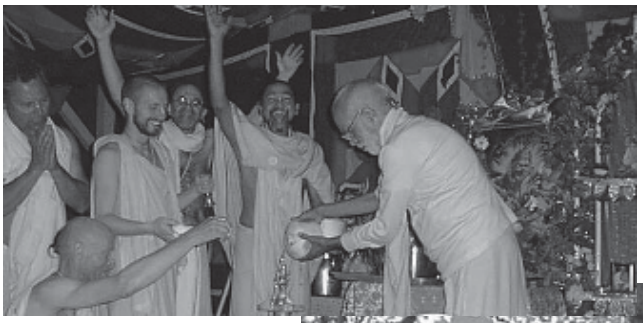

बैजरमें श्रीनृसिंह देवका अभिषेक करते हुए श्रील महाराजजी

नव व्रज (बैजर)में गो–पूजा करते हुए श्रील महाराजजी

नव व्रजमें श्रीगिरिराजजीका अभिषेक उत्सव

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ आषाढ़ मास, सन् २००१, ७ जून — ५ जुलाई
{ संख्या ४

श्रीश्रीनवयुवद्वन्द्व–दिदृक्षाष्टकम्

[श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितम्]

श्रीनव–युवराजाय नमः

स्फुरदमलमधुलीपूर्णराजीवराजन्नवमृगमदगन्धद्रोहिदिव्याङ्गगन्धम् ।
मिथ इत उदितैरुन्मादितान्तर्विघूर्णद्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।१।।

जिनके अङ्गोंकी उत्तम सुगन्ध खिले हुए और निर्मल मधुसे पूर्ण कमल–पुष्पकी कस्तूरीकी सुगन्धको भी धिक्कार दे रही है तथा ब्रजमें परस्पर उदित होने पर जिनका अन्तःकरण आन्दोलित हो रहा है, उन नवयुवद्वन्द्व–रत्न—श्रीराधा–कृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।१।।

कनकगिरिखलोद्यत्केतकीपुष्पदीव्यन्नवजलधरमालाद्वेषिदिव्योरुकान्त्या ।
शबलमिव विनोदैरीक्षयत् स्वं मिथस्तद्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।२।।
निरूपमनवगौरीनव्यकन्दर्पकोटिप्रथितमधुरिमोर्मिक्षालितश्रीनखान्तम् ।
नवनवरुचिरागैर्हृष्टमिष्टैर्मिथस्तद्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।३।।
मदनरसविघूर्णन्नेत्रपद्मान्तनृत्यैः परिकलितमुखेन्दुह्रीविनम्रं मिथोऽल्पैः।
अपि च मधुर वाचं श्रोतुमावर्द्धिताशं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।४।।
स्मरसमरविलासोद्गारमङ्गेषु रङ्गैस्तिमितनवसखीषु प्रेक्षमाणासु भङ्ग्या।
स्मितमधुरदृगन्तैर्हीणसंफुल्लवक्त्रं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।५।।
मदनसमरचर्याचार्यमापूर्णपुण्यप्रसरनववधूभिः प्रार्थ्यपादानुचर्याम्।
समररसिकमेकप्राणमन्योन्यभूषं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।६।।
तटमधुरनिकुञ्जे श्रान्तयोः श्रीसरस्याः प्रचुरजलविहारैः स्निग्धवृन्दैः सखीनाम्।
उपहृतमधुरङ्गैः पाययत्तन्मिथस्तैर्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।७।।
कुसुमसररसौघग्रन्थिभिः प्रेमदाम्ना मिथ इह वशवृत्या प्रौढ़याद्धा निबद्धम्।
अखिलजगति राधामाधवाख्या प्रसिद्धं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे।।८।।
प्रणयमधुरमुच्चैर्नव्ययूनोर्दिदृक्षाऽष्टकमिदमतियत्नाद्यः पठेत् स्फारदैन्यैः।
स खलु परमशोभापुञ्जमञ्जुप्रकामं युगलमतुलमक्ष्नोः सेव्यमारात् करोति।।९।।

अनुवाद–

स्वर्ण–पर्वतके ऊपर उगे हुए केतकी–पुष्पके साथ सुशोभित नवीन मेघोंकी कान्तिको भी जो अपनी उत्कृष्ट और महती कान्तिद्वारा पराजित करते हैं एवं परस्पर क्रीड़ाद्वारा अपनेको मिलित हुए की भाँति दूसरोंको दिखलाते हैं, उन नवयुवद्वन्द्व–रत्न अर्थात् श्रीराधाकृष्णका मैं ब्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।२।।

अतुलनीय नवगौरी एवं करोड़ों नवीन कन्दर्पकी सुविख्यात माधुर्य–तरङ्ग द्वारा निर्मल हुई परम शोभा भी जिनके नख–प्रान्तमें विनष्ट हो जाती है एवं जो परस्पर अभिनव रुचिविशिष्ट अनुराग द्वारा आनन्दित हो रहे हैं, उन नवयुवद्वन्द्व–रत्न–श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।३।।

मदन–रससे घूर्णित नयनकमलोंके ईषत् कटाक्ष–सञ्चालनयुक्त मुखचन्द्रपर उदित लज्जासे जो परस्पर अत्यन्त विनम्र हुए हैं और परस्पर मधुर वचनोंको सुनकर जिनकी आशाएँ अतिशय वर्द्धित हो रही हैं, उन नवयुवद्वन्द्व–रत्न–श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।४।।

स्निग्ध स्वभाववाली नवीन वयस्यागण–सखियाँ रस–भङ्गियोंके सहित ईषत् हास्ययुक्त नयनाञ्चल द्वारा अङ्ग–प्रत्यङ्गमें कन्दर्प युद्धके विलाससूचक चिह्नोंका अवलोकन करनेपर जो

लज्जासे प्रफुल्लमुखवाले हो रहे हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न-श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।५।।

जो कन्दर्प-युद्धचर्याके आचार्य हैं, जिनके चरण-कमलोंकी सेवा प्राप्त करनेके लिए पुण्य-पुञ्जशालिनी नव-वधूगण प्रार्थनाएँ किया करती हैं, जो समररसिक हैं, परस्पर एकप्राण हैं तथा एक दूसरोंके भूषणस्वरूप हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न-श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।६।।

श्रीराधाकुण्डमें अत्यधिक जल-विहारके कारण थककर तटस्थित मधुर-कुञ्जमें जो सुस्निग्ध सखियोंद्वारा रङ्गके साथ संग्रहित मधुको सखियोंके साथ परस्परको पिलाते हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न-श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।७।।

इस व्रजमण्डलमें मधुर-रसाश्रित ग्रन्थाचार्यगण अतिशय वशवर्त्तीरूप प्रेमरज्जु द्वारा साक्षात् रूपसे जिनको परस्पर बाँधे थे और जो निखिल जगतमें 'राधा-माधव' के नामसे प्रसिद्ध हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ।।८।।

जो प्रणयके हेतु इस सुमधुर नवयुवद्वन्द्वरत्न-दिदृक्षाष्टकका यत्नपूर्वक अत्यन्त दीनभावसे पाठ करते हैं, वे निश्चय ही परम शोभापुञ्जमें अतिशय मनोहर श्रीराधाकृष्णकी अतुलनीय युगलमूर्त्तिको शीघ्र ही सेवारूपमें नयनयुगलोंके गोचरीभूत करनेमें समर्थ होते हैं।।९।। ❑

प्रयोजन विचार

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

बद्ध जीवकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। क्योंकि वह चेतन-तत्त्व होकर भी बद्धावस्थामें स्वयंको जड़ वस्तु मानकर शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको अपना मान बैठा है। वह सांसारिक अभावोंसे खिन्न होकर कष्ट पाता है। आहारके अभावसे क्षुधार्थ होकर रोता है। नाना प्रकारके रोगोंसे आक्रान्त होकर 'हाय मरा! हाय मरा!' करता है। कभी कमनीय कामिनियोंकी कटाक्षकी आशासे न जाने कितने ही नीच कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। सन्तान मर जानेसे, स्त्रीवियोग होनेसे और शारीरिक-मानसिक रोगोंसे जर्जरित आदि होनेसे वह चिन्ताके अगाध सागरमें निमग्न हो जाता है। कभी विराट अट्टालिकाका निर्माणकर अपनेको राजराजेश्वर मानता है, तो कभी किसीकी हत्या करके उसीमें अपनी वीरता समझता है। कभी बेतारसे संवाद भेजकर विस्मित होता है। कभी एक चिकित्सा-पुस्तक लिखकर अपनी उपाधिके भारको बढ़ाता है तो कभी रेल, हवाई जहाज, रेडियो, एटमबम, नाइट्रोजनबम आदिका निर्माणकर अपनेको वैज्ञानिक मानकर सृष्टिकर्त्ताका भी उपहास करनेसे नहीं चूकता और कभी नक्षत्रोंकी गति निर्द्धारित करनेका दावा कर अपनेको ज्योतिर्विद् समझता है। इतना ही नहीं, द्वेष-हिंसा-काम-क्रोध आदि दुर्गुणोंसे अपने

चित्तको सर्वदा कलुषित करता रहता है। कभी थोड़ा-सा अन्नदान कर, औषधि या पदार्थ-विद्या दानकर अपनेको बड़ा पुण्यात्मा समझता है।

क्या ये सब कार्य शुद्ध चेतन जीवके लिए उपयुक्त हैं? जिन जीवोंको वैकुण्ठमें वासकर विशुद्ध प्रेमानन्दका आस्वादन करना चाहिए था, उनकी ये प्रवृत्तियाँ अतिशय क्षुद्र और हेय हैं। कहाँ हरिसेवामृत और कहाँ नारी-सम्भोगजनित तुच्छ और घृणित सुख! कहाँ अन्तःकरणको पवित्र करने वाला साधुसङ्ग और कहाँ चित्तविकारकारिणी रणसज्जा!

अहा! हम वास्तवमें क्या हैं? अभी क्या हुए हैं? किस अवस्थामें पड़े हुए हैं? इन प्रश्नोंपर सम्यक् रूपसे विचार करनेपर हम जान पायेंगे कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापोंसे जड़ीभूत होकर हमलोग अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। हमारी ऐसी दुर्गति क्यों हुई है? इसलिए कि हमने अपने प्रियप्रभु—परमानन्द परमेश्वरके चरणोंमें अपराध किया है। स्वधर्मको भूलना ही हमारा अपराध है।

जीव चिदानन्द स्वरूप है, यह पहले ही दिखलाया जा चुका है। उसका गठन चिन्मय उपकरणोंसे हुआ है। आनन्द ही उसका स्वधर्म है। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवानसे जीवका जो नित्य सम्बन्ध-सूत्र है, उसीका नाम प्रीति है। जीवानन्द और भगवदानन्दके संयोजकके रूपमें प्रीति-सूत्र नित्य वर्त्तमान है। वही प्रीति-धर्म चित्कण जीवोंको परस्पर आकर्षित करता है। वह अतिशय रमणीय, सूक्ष्म और पवित्र है। जीव जब भ्रममें पड़कर भगवानकी नित्यसेवासे विमुख होते हैं, तब वे मायिक जगतमें पतित होकर विषय-भोगोंका अन्वेषण करते हैं। भगवानकी दासी मायादेवी इन पतित जीवोंको अपराधी जानकर अपने कारागारमें बन्द कर देती है। संसार ही कारागार है। मायादेवी अपने इस भव-कारागारमें हमें नानाप्रकारकी यातनाएँ देती है। इस समय हमारा भगवत्-प्रीतिरूप स्वधर्म आच्छादित होकर विषय-रागके रूपमें हमारे अहितकी वृद्धि कर रहा है।

स्वधर्मके अनुशीलनसे ही हमारा आत्म-कल्याण सम्भव है। अतएव यही हमारा एकमात्र प्रयोजन है। जबतक हम बद्धावस्थामें हैं, तबतक हमारा स्वधर्म-अनुशीलन विशुद्ध नहीं हो सकता है।

हमारी स्वधर्म-वृत्ति न तो लुप्त हुई है और न कभी लुप्त हो सकती है। हाँ, वह इस समय सुप्त होकर गुप्त अवस्थामें है। हमें उसे प्रकट करना है। अनुशीलनद्वारा ही उसे प्रकट किया जा सकता है। जब स्वधर्म-वृत्ति अर्थात् भगवत्-सेवन-वृत्ति जग जायेगी, तब लौकिक और स्वर्गीय सुखोंकी बात ही क्या, मुक्ति भी तुच्छ जान पड़ेगी और तभी वैकुण्ठप्राप्ति सहज हो सकेगी।

जब मुक्ति साध्य वस्तु ही नहीं है, तब वह हमारे लिए प्रयोजन नहीं है। प्रीति ही हमारा साध्य है। इसलिए प्रीति ही हमारा प्रयोजन है। ज्ञान-मार्गका आश्रय करनेवाले संसारकी यातनाओंसे भयभीत होकर मुक्तिका अनुसन्धान करते हैं। फलस्वरूप असाध्य वस्तुका साधन विफल हो जाता है एवं साधकका भी यथार्थ कल्याण नहीं होता।

प्रीति साधकोंको अनायास ही सम्पूर्ण ज्ञान और मुक्ति लाभ होता है।

मेरे दत्त कौस्तुभ नामक ग्रन्थमें प्रीतिका लक्षण इस प्रकार लिखा गया है—

आकर्षणसन्निधौ लौहः प्रवृत्तो दृश्यते यथा।
अणोर्महति चैतन्ये प्रवृत्तेः प्रीतिलक्षणम्।।

—जैसे लोहा चुम्बकके प्रति स्वाभाविक रूपसे आकर्षित होता है, वैसे ही अणुचैतन्य जीवकी वृहत् चैतन्य भगवानके प्रति जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसीका नाम प्रीति है। आत्मा और परमात्मा (भगवान) जिस तरह उपाधिशून्य हैं, वैसे ही वे निर्मल और मायासे रहित हैं। उसी विशुद्ध, परन्तु आच्छादित प्रीतिको प्रकट करना ही हमारा चरम प्रयोजन है। ❑

भगवानकी अप्रकट लीलाका रहस्य

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

(गताङ्कसे आगे)

श्रीमद्भागवत (३/२/१७) के भागवततात्पर्यमें श्रीमध्वाचार्यने कहा है—

आनन्दरूपं दृष्ट्वापि लोको भौतिकमेव तु।
मन्यते विष्णुरूपं य अहो भ्रान्तिर्वदुस्थिता।।

इति स्कान्दे, अर्थात् स्कन्दपुराण कहते हैं कि मायारूढ़ अर्थात् मायामोहित मनुष्य विष्णुके (सत्, चित् और आनन्दमय) रूपको देखकर भी उसे भौतिक समझते हैं। अहो! लोगोंके विचार कैसे भ्रान्त हैं!

श्रीमद्भागवतके (३/४/२८-२९) श्लोकोंमें परीक्षित और शुकदेवका प्रश्नोत्तर—*'हरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः'* एवं *'त्यक्षन् देहमचिन्तयत्'*, इन दोनों श्लोकोंकी व्याख्या इस प्रकार है—

'आकृति' शब्दसे पृथ्वीका बोध होता है, क्योंकि शरीर, आकृति, देह, कु, पृथ्वी और मही—ये पर्यायवाची शब्द हैं। स्कन्दपुराण कहते हैं—'श्रीहरिका देह-त्याग'—इससे पृथ्वी-त्याग ही कहा गया है अर्थात् सदेह पृथ्वीको छोड़कर चले गये—इसीका बोध होता है। वे नित्यानन्द स्वरूप हैं, अतएव इसका कोई दूसरा अर्थ ही नहीं किया जा सकता है। भगवान विष्णुने स्वयं परम ज्ञानरूप होकर भी असज्जनोंको मोहित करनेके लिए नटकी भाँति अपने जैसा एक मरा हुआ शरीर या शव दिखलाया था।

—(श्रीमध्वाचार्यकृत भागवत-तात्पर्य)

'आकृति' शब्दसे पृथ्वी और 'देह' शब्दसे पृथ्वीका बोध होता है। 'यस्य पृथ्वी शरीरम्'—यह श्रुति-मन्त्र इसका प्रमाण है।

—(श्रीविजयध्वज)

'आकृति' शब्दका अर्थ है—मनुष्य आकार।

—(श्रीधरस्वामीपाद)

'निधन'—शब्दसे अत्यन्त उत्तम धन-स्वरूप श्रीकृष्णके नित्यलीलाधामका तात्पर्य है। पूर्ववर्त्ती २६वें श्लोकमें 'मर्त्यलोकं जिहासता' (मर्त्यलोकपरित्यागाभिलाषि-भगवत् कर्त्तृक) एवं परवर्त्ती ३०वें श्लोकमें—'अस्माल्लोकादुपरते' (भगवानके इस मर्त्यलोकसे उपरत होनेपर)—इन दोनों वचनोंके अनुसार 'आकृति' शब्दसे विराट् आकारका बोध होता है। इस विषयमें विस्तारपूर्वक जाननेके लिए श्रीकृष्ण-सन्दर्भ

९३ संख्या द्रष्टव्य है।

इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार है। श्रीहरिने आ (भलीप्रकारसे) + कृति (प्रपञ्चमें उदित होनेवाली चेष्टा या लीला)का त्याग किया अर्थात् उसे समाप्त किया। 'त्यक्षन्'—शब्दसे (त्यज् धातुका दानके अर्थमें व्यवहार हेतु) स्वांश नारायणको पुनः वैकुण्ठमें भेजकर आगत ब्रह्मा आदि भक्तोंका पालन करनेके लिए दान करनेकी इच्छा करते हुए (विचार किया)। सन्दर्भमें श्रीजीव गोस्वामीने 'देह'-शब्दका अर्थ 'भगवानका विराट् आकार अर्थात् पृथ्वी' किया है। —(श्रीविश्वनाथ)

श्रीमद्भागवत (११/३०/२) में श्रीशुकदेवके प्रति परीक्षित महाराजकी उक्ति ***'तनुं स कथमत्यजत्'*** श्लोकांशकी श्रीमध्वाचार्यकी व्याख्या इस प्रकार है—***''तनुमत्यजत्—अतिशयेन अहरत्—(अज् हरणे इति धातोः) भूलोकात् स्वर्गलोकं प्रत्यहरदित्यर्थः।''*** अर्थात् भगवानने अपने तनु(शरीर)को अति-अजत्= अतिशयरूपसे अन्तर्द्धान कराया था, क्योंकि अज् धातुका यहाँ हरण-अर्थमें ही प्रयोग हुआ है; अर्थात् भगवानने अपने तनुको भूलोकसे स्वर्गलोककी ओर (गोलोककी ओर) अपहृत या अन्तर्द्धान किया।

श्रीमद्भागवत (११/३०/४०) श्लोकमें श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित महाराजके प्रति कह रहे हैं—

'इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छा-शरीरिणा'

श्रीधरस्वामीजी इस श्लोकांशकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं—"भगवान अपनी शुद्धसत्त्वमयी श्रीमूर्त्तिको अन्तर्हित करके तत्प्रतिकृति मूर्त्ति (अपने शरीरके समान दूसरी एक मूर्त्ति) रखकर मरणशील मनुष्यका अनुकरण मात्र किये थे।"—यही इस श्लोकका भावार्थ है। आगे—

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः।।

(श्रीमद्भा॰ ११/३१/८)

परीक्षितके प्रति श्रीशुकदेवके द्वारा कहे गये श्लोकमें उपरोक्त अनुकरणाभिनय भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है।

श्रीजीवगोस्वामी क्रमसन्दर्भमें कहते हैं—"इच्छाशरीरिणा का अर्थ है—जिनका शरीर इच्छाके अधीन है, उनके द्वारा; अर्थात् उनकी अचिन्त्य निरङ्कुश इच्छासे ही उनका आविर्भाव (और तिरोभाव) होता है; इस विषयमें कोई भी दूसरा कारण नहीं है।"

श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी कहते हैं—"इच्छा-शरीरिणाका अर्थ है—जो इच्छामात्रसे ही सबके द्वारा वन्दित उत्तम शरीरधारी हैं, उनके द्वारा।

(श्रीमद्भागवत ११/३०/४९ श्लोकमें भगवान श्रीकृष्ण सारथि दारुकके प्रति कह रहे हैं—) ***'मन्मायारचानामेतां विज्ञायोपशमं व्रज'***—इस श्लोककी व्याख्या इस प्रकार है—"सारथि दारुकको सान्त्वना प्रदान करनेके लिए इस श्लोकमें भगवान यह बतला रहे हैं कि मौषल और देह-त्याग—ये दोनों लीलाएँ मेरी मायाके द्वारा इन्द्रजालकी भाँति रचित हैं। अतएव प्राकृत लोगोंद्वारा देखी जानेवाली मौषल और देह-त्याग आदिकी लीलाएँ इन्द्रजालके समान मेरी मायाद्वारा रचित होनेके कारण तुम्हें दुःखित नहीं होना चाहिए। 'तु' शब्दका तात्पर्य यह है कि मेरे विरोधी दूसरे प्राकृत लोग मेरी वैसी लीलाओंसे भले ही

मोहित हों, तुम्हें इसके लिए मोहित नहीं होना चाहिए।" —(क्रम सन्दर्भ)

श्रीमद्भागवत (११/३१/६) में श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित महाराजसे कह रहे हैं—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणा–ध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्।।

इस श्लोककी व्याख्यामें श्रीमध्वाचार्य स्वकृत भागवत तात्पर्यमें इस प्रकार कहते हैं—

"भगवान आग्नेय–धारणाद्वारा अपने शरीरको बिना जलाये शरीरके साथ ही अपने धाममें प्रवेश किये।" तन्त्र भागवतमें भी कहा गया है—"दूसरे–दूसरे सब देवता आग्नेय–धारणाद्वारा अपने–अपने शरीरको जलाकर परम पदको प्राप्त करते हैं, परन्तु कृष्ण आदि सर्वरूपवान् नृसिंहरूपी देव भगवान हरि उनके लिङ्ग शरीरोंका नाश करके उन देवताओं द्वारा सुशोभित होकर विश्व–प्रलयकालमें नृत्य किया करते हैं। परन्तु स्वयं नित्यानन्द स्वरूप होनेके कारण अपना शरीर बिना जलाये ही स्वधाममें प्रवेश करते हैं।"

"योगियोंकी इच्छा–मृत्यु होती है। वे अपने शरीरको आग्नेयी भोग–धारणा द्वारा जलाकर दूसरे–दूसरे उत्तम लोकोंमें प्रवेश करते हैं; परन्तु भगवान कृष्ण वैसे नहीं हैं, वे अपना शरीर बिना जलाये ही उसके साथ ही वैकुण्ठ धाममें प्रवेश किये थे। इसका कारण यह है कि उनके श्रीअङ्गमें सारे लोक–समूह सर्वतोभावेन रमण करते हैं, अर्थात् निवास करते हैं। अतएव जगतका आश्रयस्वरूप उनका शरीर जल जानेसे जगतका भी जल जानेका प्रसङ्ग उपस्थित हो पड़ता है। ×××× आजकल भी ऐसा देखा जाता है कि भगवानके उपासकोंको ध्यान–धारणा द्वारा ही भगवानके रूपका साक्षात्कार होता है।××× यदि भगवान अपना शरीर बिना जलाये ही तिरोहित होकर स्वधाममें प्रवेश नहीं कर सकें तो भगवानके शरीरके लिए व्यवहृत 'लोकाभिराम' आदि विशेषण अनर्थक हो पड़ेंगे। इसलिए भगवान अपना शरीर जलाये बिना सशरीर ही प्रस्थान किये—यही अर्थ युक्ति–सङ्गत है।" —(श्रीधरस्वामी)

यदि एक वाक्यमें किसी पदका कोई दूसरा अर्थ दीख पड़े, तो "आकाशस्तलिङ्गात्" —(ब्रह्मसूत्र १/१/१२)—इस न्यायके अनुसार उपदेश–पद–समूहके द्वारा ही उसके अर्थका निर्णय होता है। अतएव 'दग्धा' आदिका जो अर्थ प्रतीत होता है, 'लोकाभिरामां' आदि पदोंके द्वारा उसका अर्थ 'अदग्धा' अर्थात् 'बिना जला हुआ' ही होगा। 'लोकाभिरामां' पदसे भगवत्–तनुका जगदाश्रयत्व प्रतिपादित हो रहा है। उक्त 'लोक' शब्दसे महावैकुण्ठके नित्य पार्षद आदि भक्तों एवं आत्माराम ज्ञानीजनोंसे लेकर स्थावर आदि तक सबका बोध होता है। फिर 'ध्यान–धारणामङ्गलं' शब्दसे यह भी बोध होता है कि वे अपने साधक जीवोंके भी आश्रय हैं। ध्यान और धारणाके प्रभावसे धारणा और ध्यान करनेवाले व्यक्तियोंके लिए जो (भगवत्–तनु) मङ्गल–स्वरूप हैं, उनका ही फिर दग्ध होना या नश्वर होना कैसे सम्भव है? 'स्व–तनु' शब्दके कर्मधारय समासोक्तिद्वारा (नीलोत्पलका नीला होना जैसे) भगवत्–तनुमें सत्ताका अव्यभिचार अतिशय रूपसे निर्द्धारित है।

इसके पश्चात् योगियोंके भ्रमका उल्लेखकर उसको दूर करनेके लिए कहते हैं कि

भगवानने आग्नेयी-धारणा की थी, यह सत्य है, परन्तु उसके द्वारा अपने शरीरको बिना जलाये ही अपने धाममें प्रवेश कर गये। अतएव योगियोंको शरीर त्यागकी शिक्षा देनेके लिए ही आग्नेय-धारणाके पश्चात् अन्तर्द्धान होकर अपने धाममें चले गये—ऐसा समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरा अर्थ ठीक नहीं है। अतएव भगवान सशरीर ही—इसे बिना जलाये ही अपने धाममें चले गये—यही युक्ति-सङ्गत और विचार-सङ्गत है। 'अपना शरीर बिना जलाये'—इस वाक्यसे स्वेच्छामयी मायाद्वारा कल्पित शरीरको जला करके—यही अर्थ सूचित होता है। इसलिए पहले (११/३०/४०) श्लोकमें भगवानको इच्छा-शरीर कहा गया है। जो चीज इच्छासे प्रकटित होती है, इच्छासे ही वह अप्रकटित होती है। अतएव उनकी आग्नेय धारणा भी उसी प्रकार कल्पनामयी है। कृष्ण-सन्दर्भमें भी 'इच्छा-शरीर'का अर्थ 'स्वेच्छा प्रकाश' किया गया है। यहाँ इच्छा-शक्तिके प्रभावसे ही वे मायाके प्रेरक हैं—ऐसा समझना होगा।

—(क्रम सन्दर्भ)

योगियोंकी भाँति स्वच्छन्द मृत्युभ्रमका निषेधकर भगवान जो आग्नेयी धारणाद्वारा अपने शरीरको बिना जलाये ही अपने वैकुण्ठ धाममें प्रवेश किये थे, उससे एवं 'अदग्ध्वा' पदसे उनका शरीर जो लोकाभिराम और धारणा तथा ध्यानके लिए मङ्गलस्वरूप है—ये दो कारण भी कहे गये हैं। —(श्रीधरस्वामी)

'कुछ लोग 'धारणा-ध्यान-मङ्गल' अर्थात् भगवान अपने शरीरको जलाकर सोनेकी भाँति और भी अधिक उज्ज्वल सशरीर ही अपने धाममें प्रवेश किये थे—ऐसा भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग भगवानके शरीरको प्राकृत, नश्वर और अग्निद्वारा जलने योग्य समझते हैं, उनके लिए इससे यह दिखलाया गया है कि उनका शरीर वैसा नहीं है; वह न आगमें जलता है, न मरता है। —(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती)

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्गसुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

व्याकरणके सूत्रोंकी कृष्णपरक व्याख्या

'प्रभु' श्रीगौरसुन्दर सब समय प्रेममें आविष्ट रहते थे। उनके मुखसे निरन्तर कृष्णनाम निकलता रहता था तथा नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी। ऐसी अवस्थामें व्याकरण पढ़ाना उनके लिए सम्भव नहीं था। फिर भी छात्रोंके पुनः पुनः अनुरोध एवं अपने गुरुदेव (गङ्गादासजी) के आदेशसे उन्होंने पढ़ाना तो आरम्भ कर दिया, परन्तु अब वे समस्त शब्द, धातु एवं सूत्रोंकी व्याख्या कृष्णपरक करने लगे। वास्तवमें सभी वर्ण एवं शब्दादि विद्वद्रूढ़ि वृत्तिसे नारायण (कृष्ण) को ही लक्ष्य करते हैं। परन्तु ऐसी व्याख्याएँ छात्र समझ नहीं पाते थे। अतः वे ऐसी व्याख्याएँ सुनकर हँसने लगे। उनमेंसे कुछ छात्र कहने लगे—ऐसा प्रतीत होता है कि वायुके प्रकोपके कारण पण्डितजी ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं। सभी छात्र

प्रभुसे बोले—"हे पण्डितजी! आज आप सूत्रोंकी व्याख्या जैसी कर रहे हैं, वह हमारी समझमें नहीं आ रही है।"

प्रभु—"यदि तुमलोगोंको समझमें नहीं आ रहा है तो अभी सभी अपने अपने घर जाओ। मैं भी घर जाकर अध्ययन करूँगा। सन्ध्याके समय फिरसे आना, उस समय मैं तुम्हें अच्छी तरहसे समझा दूँगा।"

यह सुनकर छात्रोंने प्रसन्न होकर अपनी पुस्तकें बन्द कर दीं तथा गङ्गादास पण्डितके पास जाकर कहने लगे—"जबसे निमाई पण्डितजी गयासे वापस आये हैं, तबसे उन्हें क्या हुआ समझमें नहीं आ रहा। पहले तो वे सूत्रोंकी सुन्दर-सुन्दर व्याख्याएँ करते थे, परन्तु अब प्रत्येक शब्द, धातु, सूत्रोंकी व्याख्या कृष्णपरक ही करते हैं। सब समय उनके मुखसे 'कृष्ण-कृष्ण' निकलता रहता है। कभी तो वे अकारण ही हँसने लगते हैं तो कभी रोने लगते हैं। अब ऐसी स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए, हम कुछ समझ नहीं पा रहे हैं। अतः आपसे हमारा निवेदन है कि आप ही हमारी कुछ सहायता कीजिए।"

यह सुनकर गङ्गादास पण्डित हँसते हुए सबसे बोले—"तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने घर लौट जाओ। आज सन्ध्याके समय जब वे आएँगे तो मैं उन्हें अच्छी तरहसे समझा दूँगा कि वे तुमलोगोंको अच्छी प्रकारसे पढ़ाएँ।"

इससे सन्तुष्ट होकर सभी लोग अपने-अपने घरको लौट गये। शामके समय फिरसे सभी छात्र प्रभुके साथ गङ्गादासके पास आये। प्रभुने गुरुकी चरणधूलि अपने मस्तकपर धारण की। गुरुजीने भी उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया—"तुम्हें विद्या प्राप्त हो।" तत्पश्चात् गङ्गादासजी बोले—"बेटा विश्वम्भर! ब्राह्मणका कर्त्तव्य ही है कि वे स्वयं विद्या अध्ययन करेंगे तथा दूसरोंको भी दान करेंगे। तुम्हारे मातामह (नानाजी) नीलाम्बर चक्रवर्त्ती तथा पिता श्रीजगन्नाथ मिश्र परम विद्वान् थे। इस प्रकार तुम्हारे दोनों कुलोंमें (पितृकुल एवं मातृकुलमें) एक भी मूर्ख नहीं हुआ। तुम स्वयं भी प्रकाण्ड पण्डित हो। तुम्हारा कोई खण्डन कर दे, ऐसा पण्डित इस नवद्वीपमें एक भी नहीं है। परन्तु मैं सुन रहा हूँ कि अब तुम ठीक ढंगसे पढ़ा नहीं रहे हो तथा सर्वदा 'कृष्ण-कृष्ण' कीर्त्तन करते रहते हो। यह उचित नहीं है। तुम स्वयं विचार करो कि क्या अध्ययन-अध्यापन परित्याग कर देनेसे ही भक्ति होती है? यदि ऐसा होता तो क्या तुम्हारे पिता एवं पितामह भक्त नहीं थे? अतः तुम्हें मेरा सुझाव है कि तुम भजन भी करो तथा अध्यापन भी करो। क्योंकि शास्त्रोंके अध्ययनसे ही तुम तथा तुम्हारे छात्र वैष्णव हो सकते हैं। और दूसरी बात यह है कि तुम्हारे अध्यापन छोड़ देनेसे तो नास्तिक अध्यापकोंका ही बोलबाला हो जाएगा। अभी तो वे तुमसे भयभीत रहकर नास्तिकताका प्रचार नहीं कर पा रहे हैं, परन्तु तुम्हारे अध्यापन छोड़ देनेपर वे निर्भीक होकर शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या करेंगे। जिसे श्रवणकर सभी छात्र भी नास्तिक हो जाएँगे। अतः तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो तुमने पढ़ाना छोड़ा या ठीक ढंगसे नहीं पढ़ाया।"

प्रभु—"गुरुदेव! आपके श्रीचरणकमलोंकी

कृपासे इस जगतमें ऐसा कोई नहीं हैं जो मेरी व्याख्याओंका खण्डन कर दे। मैं अब नगरके बीचमें जाकर पढ़ाऊँगा। देखता हूँ किसका साहस है, जो मेरी व्याख्याओंको खण्डित कर दे।" यह सुनकर गङ्गादास पण्डित प्रसन्न हो गये। प्रभुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा वहाँसे छात्रोंको साथ लेकर चल पड़े। अब उन्होंने गङ्गा जानेवाले मुख्य मार्गपर स्थित एक व्यक्तिके घरपर छात्रोंको पढ़ाना आरम्भ कर दिया। प्रभु कहने लगे—"जिसे सन्धिका भी ज्ञान नहीं है, इस कलियुगमें वह भट्टाचार्यकी पदवीसे अलंकृत है। जिसे अभीतक शब्दज्ञानतक नहीं है, ऐसे भट्टाचार्य नामधारी लोग शास्त्रोंपर तर्क–वितर्क करते हैं।"

गङ्गास्नान तथा गङ्गादर्शनके लिए आने जाने वाले पण्डित यह सुनकर भी सिर नीचाकर चुपचाप निकल जाते थे। किसीका साहस नहीं था कि वे प्रभुका सामना कर पाते। पढ़ाते–पढ़ाते रात हो गई, परन्तु प्रभु अपने आवेशमें सुन्दर–सुन्दर व्याख्याएँ करते जा रहे थे। प्रभु एवं छात्र दोनों ही भूल गये कि रात हो गई है। उसी समय पास ही एक अन्य घरमें रत्नगर्भ आचार्य नामक एक भक्तिमान् ब्राह्मण, जो प्रभुके पिता श्रीजगन्नाथ मिश्रके परम मित्र थे, वे उच्च मधुरकण्ठसे भक्तिपूर्वक भागवतके निम्नलिखित श्लोकका गान कर रहे थे—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यवर्ह–
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्।।

(श्रीमद्भा॰ १०/२३/२१)

अर्थात् याज्ञिक ब्राह्मण पत्नियोंने देखा कि कृष्णका वर्ण श्याम है तथा उनके वस्त्रोंका वर्ण स्वर्णकी आभाके समान पीत है। वे वनमाला, मयूरपुच्छ, धातु एवं प्रवाल आदिके द्वारा नटवर वेषमें सुसज्जित हैं तथा वे अपना एक (बायाँ) हाथ अपने एक सखाके कन्धेपर रखकर दाहिने हाथसे कमलके फूलको नचा रहे हैं। उनके दोनों कानोंमें कमलके फूल, दोनों कपोलोंपर अलकावलियाँ एवं मुखकमलपर सुमधुर मुस्कान शोभायमान हो रही है।

यह श्लोक जैसे ही प्रभुके कानोंमे पहुँचा, वैसे ही प्रेममें आविष्ट होकर वे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर गये। यह देखकर सभी छात्र विस्मित हो गये। कुछ ही क्षण पश्चात् प्रभुको जब बाह्यज्ञान हुआ तो वे 'और बोलो–और बोलो' कहते हुए जमीनपर लोट–पोट खाने लगे। प्रभुके कहनेपर ब्राह्मण पुनः पुनः उसी श्लोकका उच्चारण करने लगे। प्रभुके नेत्रोंसे बहनेवाली अश्रुधाराने आस–पासकी भूमिको भिंगो दिया। उस समय उनका सारा शरीर काँप रहा था तथा पुलकित हो रहा था। इस अद्भुत दृश्यको वे भाग्यवान् ब्राह्मण परम आनन्दपूर्वक दर्शन कर रहे थे तथा पुनः पुनः श्लोकका गान कर रहे थे। ब्राह्मणके भक्तिभावको देखकर प्रभुने प्रसन्न होकर उन्हें गलेसे लगा लिया। प्रभुका स्पर्श पाकर ब्राह्मण प्रेमसागरमें डुब गये, जिससे वे और भी जोरसे श्लोक पाठ करने लगे। देखते ही देखते वहाँपर लोगोंकी भीड़ हो गई। प्रभुकी अवस्था देखकर सभी लोग सम्भ्रमपूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगे।

कुछ समय पश्चात् प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ तो वे कुछ लज्जित होकर पूछने लगे—"मैंने क्या चञ्चलता की?"

छात्र—"हे पण्डितवर्य! आप तो कृतार्थ हो गये। इस विषयमें हमारा लेशमात्र भी सामर्थ्य नहीं है कि हम कुछ बोलें।" उनके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रभुने लज्जित होकर उन्हें ऐसा करनेसे मना कर दिया।

उसके बाद सभीको साथ लेकर वे गङ्गातटपर गये तथा गङ्गाजीको प्रणाम एवं आचमनकर सबको अपने-अपने घर भेजकर स्वयं भी घर आ गये। आकर भोजन करनेके पश्चात् सो गये। प्रातःकाल होते ही छात्रवृन्द पढ़नेके लिए आ गये। प्रभु भी जल्दीसे गङ्गास्नानकर आये तथा उन्हें पढ़ानेके लिए बैठ गये। परन्तु प्रभुको तो कृष्णके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं था। अतः शब्दमात्रकी कृष्णभक्तिपरक व्याख्या करने लगे। छात्रोंने पूछा—"धातुसंज्ञा किसकी है?"

प्रभु—"कृष्णकी भक्तिका नाम ही धातु है। मैं अब धातुसूत्रोंकी व्याख्या कर रहा हूँ। तुमलोग ध्यानपूर्वक श्रवण करो। जितने भी अलङ्कारोंसे विभूषित दिव्य राजा लोग हैं, जिनका सभी लोग सम्मान करते हैं, जिस दिन शरीरमें धातु (प्राण, चैतन्य, जीवन) नहीं रहता, उस दिन वे ही लोग उन्हें या तो जला देते हैं अथवा भूमिमें दबा देते हैं। वास्तवमें वे इस शरीरसे स्नेह-प्रीति नहीं करते, बल्कि इस शरीरमें जो धातुरूपमें कृष्णकी शक्ति है, उसीसे स्नेह करते हैं। यह सत्य है अथवा नहीं तुमलोग स्वयं विचार करो। अभी हम जिसे प्रणाम करते हैं, जिसे प्रीति करते हैं, धातु निकलनेपर उन्हें ही स्पर्श करनेसे स्नान करना पड़ता है। जिस पिताकी गोदमें पुत्र आनन्दसे खेलता है, उसीके शरीरसे धातु निकलनेपर वही पुत्र उसके मुखमें अग्नि देता है। इस प्रकार यहाँपर स्पष्ट हो गया कि पूज्य यह शरीर नहीं अपितु इस शरीरमें धातुके रूपमें भगवानकी शक्ति ही हैं। अतः तुम सभी लोग दृढ़भक्तिपूर्वक ऐसी शक्तिके आश्रय कृष्णका भजन करो। मुखसे सदा-सर्वदा 'कृष्ण-कृष्ण' बोलते रहो। कानोंसे निरन्तर कृष्णकी कथाओंका श्रवण करते रहो। मनसे निरन्तर कृष्णकी लीलाओंका चिन्तन करते रहो। क्योंकि उनकी महिमा ही न्यारी है। शास्त्रानुसार यदि कोई एकबार भी उनके श्रीचरणोंमें तुलसी एवं जल प्रदान करता है, उसे स्वप्नमें भी यमदूतोंका दर्शन नहीं होता। जिन्होंने अघासुर, बकासुर, पूतना आदि असुरोंको मारकर उन्हें मुक्ति प्रदान की, जिनका नाम अपने पुत्रके उद्देश्यसे लेनेपर भी भयङ्कर पापी अजामिलके पाप नष्ट हो गये; पुनः शुद्धरूपमें नाम करनेपर उसे वैकुण्ठ प्राप्त हुआ, जिनका नाम गान करते हुए शिव अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं, अनन्त देव अपने अनन्त मुखोंसे जिनका गुणगान करते हुए भी तृप्त नहीं होते, तुम सभी दीनतापूर्वक ऐसे भगवान श्रीकृष्णका भजन करो। क्योंकि कृष्ण ही वास्तवमें हमारे माता-पिता हैं। वे ही हमारे एकमात्र प्राणधन हैं। मैं तुम्हारे चरणोंको पकड़कर प्रार्थना करता हूँ कि तुम सभी लोग आत्माके बन्धु श्रीकृष्णके प्रति अपने मनको नियुक्त करो। इस प्रकार एक प्रहरतक प्रभु दास्यभावमें

आविष्ट होकर स्वयं अपनी ही महिमाका गान करते रहे तथा छात्र भी मोहित होकर एकाग्रचित्तसे सुनते रहे। कुछ समय पश्चात् जब प्रभुका भाव लुप्त हुआ तो बहुत लज्जित होकर बोले—"धातुके सूत्रोंकी मैंने कैसी व्याख्या की?"

छात्र—"आपने जो अर्थ किया वही वास्तविक अर्थ है। उसका कोई खण्डन करे, ऐसी शक्ति किसीमें नहीं हो सकती।"

प्रभु—"पागलपनकी सी अवस्थामें मैंने क्या किया तथा सूत्रोंकी व्याख्या कैसी की, मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। अतः तुमलोग ही मुझे कुछ बताओ कि मैंने क्या किया।"

छात्र—"हे पण्डितवर्य! आपने समस्त सूत्रोंकी व्याख्याके द्वारा कृष्णको प्रतिष्ठित किया। इससे अधिक हम क्या बता सकते हैं, क्योंकि आपकी बातोंको समझना अत्यन्त सुदुष्कर है। इसके अतिरिक्त कल जब वे ब्राह्मण भागवतका श्लोक पढ़ रहे थे, तो उस समय आपकी जैसी अवस्था हो गई थी, उसका वर्णन करना भी दुष्कर कार्य है। उस समय आपका सारा शरीर कम्पायमान हो रहा था। नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी भाँति अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। आपका सारा शरीर पुलकित हो रहा था तथा श्लोक सुनकर प्रेममें आविष्ट होकर पुनः पुनः मूर्च्छित हो रहे थे। आपकी ऐसी अवस्था देखकर हमें विश्वास हो गया कि आप कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वहाँपर उपस्थित लोग भी आपसमें एक दूसरेसे कह रहे थे—ये निमाई पण्डित तो साधारण मनुष्य नहीं हो सकते। ये अवश्य ही ब्राह्मणके वेषमें नारायण ही हैं। और कुछ अन्य लोग आपको व्यास, शुकदेव, नारद, प्रह्लादके समान ही कोई अलौकिक महापुरुष मान रहे थे। परन्तु आपको इन सब बातोंका ज्ञान नहीं है कि क्या हुआ। इसके अतिरिक्त और भी सुनें—आज आपको हमें पढ़ाते हुए दस दिन हो गये हैं, परन्तु इन दस दिनोंमें आपने मूल विषयको स्पर्श भी नहीं किया।"

प्रभु—"यदि दस दिनोंसे तुम्हारी पढ़ाई नहीं हो रही है तो तुमलोगोंको मुझे बताना चाहिए था।"

छात्र—"पण्डितजी! आप जो व्याख्याएँ करते थे, यद्यपि वे हमारे विषयके अनुसार नहीं थीं, परन्तु वास्तवमें युक्तियुक्त ही हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण ही वास्तवमें समस्त शास्त्रोंके प्रतिपाद्य वस्तु हैं।"

उनकी बातें सुनकर प्रभु सन्तुष्ट हो गये तथा कृपापूर्वक उनसे बोले—"भाइयो! मेरी ये सब बातें सबके समक्ष प्रकट करने योग्य नहीं हैं। तथापि तुम सबके सामने मैं अपनी दशाका वर्णन कर रहा हूँ—मुझे सब समय सर्वत्र एक श्यामवर्णके गोपबालकका दर्शन होता है, जो मधुरस्वरसे मुरली बजाता रहता है, जिससे मैं अस्थिर हो जाता हूँ तथा अपने आपको ही भूल जाता हूँ। अतः ऐसी अवस्थामें मैं अब तुमलोगोंको नहीं पढ़ा सकता। अब तुम्हारी जिस किसी भी दूसरे अध्यापकके निकट पढ़नेकी इच्छा हो, पढ़ सकते हो।" ऐसा कहते हुए प्रभुकी आँखोंमें आँसू भर आए तथा उन्होंने पुस्तकको बन्दकर एक डोरीसे बाँध दिया। यह सुनकर छात्रोंकी आँखोंसे भी झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

प्रभुसे बिछड़नेके दुःखसे वे रोते-रोते प्रभुके चरणोंसे लिपटकर कहने लगे—"यह सम्भव नहीं है। हम भी आपके सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि आपने हमें जहाँतक पढ़ाया, यहींपर हम पढ़ाई छोड़ देंगे, परन्तु किसी दूसरे अध्यापकके पास नहीं जाएँगे। वे हमें पढ़ा भी क्या सकते हैं, वे तो स्वयं अज्ञानमें फँसे हुए हैं। बस आपके चरणोंमें हमारी यही प्रार्थना है कि आपके श्रीमुखकमलसे हमने जो सुना, उसकी हमारे हृदयमें स्फूर्त्ति हो।" ऐसा कहकर रोते-रोते छात्रोंने अपनी पुस्तकें बन्द कर लीं तथा हरि-हरि बोलने लगे। उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने भी रोते-रोते सभी छात्रोंको अपने गलेसे लगा लिया तथा आशीर्वाद देते हुए बोले—"यदि मैं कभी भविष्यमें कृष्णदास होऊँगा तो तुम्हारी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हों। तुमलोग सदा कृष्णनामका आश्रय ग्रहण करो। आजतक तुमलोगोंने जितना पढ़ लिया वह पर्याप्त है। अधिक पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। बस, तुम सब लोग मिलकर कृष्ण कीर्त्तन करते रहो। कृष्णकी कृपासे समस्त शास्त्र तुम्हारे हृदयमें स्वतः ही प्रकाशित हो जाएँगे।

छात्र—"पण्डितजी! कैसा कीर्त्तन?"

यह सुनकर प्रभु स्वयं ही दोनों हाथोंसे ताली बजाते हुए 'हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः' इस पदका कीर्त्तन करने लगे तथा छात्रोंसे भी करवाने लगे। (क्रमशः)

पुरुषोत्तम मास

पुरुषोत्तममास और मलमास (अधिकमास)

श्रीहरिभक्तिविलासके अनुसार पुरुषोत्तम मासमें ही पुरुषोत्तम व्रत हुआ करता है। इस वर्ष आश्विन कृष्ण ३० सितम्बर १७ सोमवारसे आश्विन कृष्ण ३० अक्टूबर १६ मङ्गलवार तक पुरुषोत्तम मास है। स्मार्त्त लोग इसे मलमास या अधिकमास कहते हैं। यही नहीं, वे लोग इस अधिकमासको 'मलिम्लुच' (चोर), मलिनमास आदि नाम देकर घृणा प्रकाश करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। उनके विचारके अनुसार इस महीने कोई भी शुभ कर्म नहीं किया जा सकता है। इसीलिए यह महीनोंमें मल-स्वरूप है। अतएव उन्होंने साधारण जनतामें इस अधिकमासको मलमासके नामसे ही प्रसिद्ध कर रखा है। परन्तु वैष्णव-समाज स्मार्त्तोंके इस विचारका किसी प्रकार भी अनुमोदन नहीं करता है।

हमारे देशमें दो प्रकारके शास्त्र परिलक्षित होते हैं। लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शास्त्रोंकी युक्तियोंको ग्रहण करते हैं। इसलिए पारमार्थिक शास्त्र स्मार्त्तशास्त्रसे अलग हैं। जो लोग विषय-भोगोंको भोगनेके लिए कर्ममार्गमें प्रवेश करते हैं, वे ही स्मार्त्त-शास्त्रोंका आदर करते हैं। ऐसे स्मार्त्त मतके अनुसार ही मलमास या अधिमासका एक महीना निष्क्रिय होकर बिताये जानेकी विधि है। शरीर और मनके निष्क्रिय रहनेपर ही शैतान वहाँ पर अपना अड्डा जमा लेता है। स्मार्तों या कर्मियोंको पीड़ित करनेके लिए इसी समय शैतानको सुवर्ण सुयोग प्राप्त होता है।

वैष्णव लोग अपना एक क्षणका समय भी हरि-सेवाके अतिरिक्त किसी दूसरे कर्मोंमें गँवाते नहीं हैं। वैष्णव लोग जिन भक्ति-अङ्गोंका

आचरण करते हैं, उनमें 'अव्यर्थकालत्व' एक प्रधान अङ्ग है। श्रीपुरुषोत्तम मास २ वर्ष, ८ महीना, १६ दिन, ४ घंटेके बाद एक बार आविर्भूत होता है। अतएव वैष्णवोंके लिए यह मलमास नहीं, बल्कि प्रचलित बारह महीनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मास है। यहाँ तक कि बारह महीनोंके मध्य वैशाख, कार्त्तिक और माघ—इन तीन पवित्र महीनोंसे भी बढ़कर इस अधिक मासकी महिमा नारदीय पुराणमें बतलायी गई है।

पुरुषोत्तम मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराण

बारह सौर मासोंके साथ बारह चान्द्र मासोंका मेल रखनेके लिए प्रति ३२ माह, १६ दिन और ४ घन्टोंके बाद एक चान्द्र मास अर्थात् एक अमावस्यासे लेकर दूसरी अमावस्यातक एक अधिक मास स्वीकार करना पड़ता है। स्मार्त्त मतमें इस अधिक मासको वर्षका मल माना गया है। इस अधिक मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराणमें एक आख्यायिकाका वर्णन है। वह आख्यायिका इस प्रकार है—एक समय दूसरे-दूसरे मासोंका आधिपत्य और स्मार्त्तोंके द्वारा अपनी उपेक्षा देखकर 'अधिक-मास' बड़े दुःखित हुए और वैकुण्ठपति नारायणके चरणोंमें उपस्थित होकर अपने दुःखका कारण बताए। श्रीवैकुण्ठनाथको इनपर बड़ी दया आई। वे इन्हें साथ लेकर गोलोकमें स्वयं भगवान् कृष्णके पास पहुँचे और अधिक मासका दुःख दूर करनेके लिए उनसे प्रार्थना किए। उनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीकृष्णने मुस्कराते हुए नारायणसे कहा—"हे रमापते! जैसे मैं जगत्में पुरुषोत्तमके नामसे विख्यात हूँ, उसी प्रकार यह अधिक मास भी संसारमें 'पुरुषोत्तम मास'के नामसे प्रसिद्ध होगा। आजसे मैंने अपने सारे गुणोंको इस मासमें स्थापित कर दिया। यह मेरी सादृश्यताको प्राप्त करके अन्य सभी मासोंका अधिपति होगा। जो व्यक्ति निष्काम होकर अथवा समस्त प्रकारकी कामनाओंसे मुक्त होकर इस मासमें मेरा पूजन करेगा, वह समस्त प्रकारके सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें मुझको ही प्राप्त होगा। दूसरे मास सकाम हैं, यह मास निष्काम है अर्थात् कामनावाले मनुष्य फल भोगकी कामनाको पूर्ण करनेके लिए प्रचलित बारह चान्द्र मासोंमें नाना-प्रकारके सकाम कर्मोंके अनुष्ठानमें लिप्त रहते हैं, परन्तु इस अधिक मासमें वैसे सकाम पुरुषोंकी किसी कामनाकी पूर्त्ति न होनेके कारण यह मास निष्काम है। इसलिए निष्काम भगवद्भक्तगण इस पुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करनेपर धन-जन, पुत्र-परिवार आदिका सुख अनायास ही (स्वयं ही) प्राप्त करते हैं और अन्तमें वे (पुरुषोत्तम मासमें मेरी पूजा करने वाले) मुक्ति लाभकर नित्यानन्दमय गोलोकवासी होते हैं—

अहमेतैर्यथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः।
तथाऽयमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः।।
अस्मै समर्पिताः सर्वे ये गुणा मयि संस्थिताः।
मत्सादृश्यमुपगम्य मासानामधिपो भवेत्।।
जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति।
सर्वेमासाः समामाश्च निष्कामोऽयं भयाकृतः।।

卐 卐 卐

येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे।
धनपुत्रसुखं भुंक्त्वा पश्चाद्गोलोकवासभाक्।।

(नारदीय पुराण)

अतएव स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठके

अधिपति श्रीनारायणकी प्रार्थनासे अधिक मासकी सर्वोत्तमत्ताको आत्मकल्याणकामी जीवोंके निकट जनाया। इसीलिए सर्वशास्त्रोंमें पारङ्गत वैष्णव पण्डितगण अधिक मासको 'पुरुषोत्तम मास' मानते हैं और इसी मासमें पुरुषोत्तम व्रतका पालन करते हैं। इस व्रतमें कार्त्तिक व्रतके समस्त नियम ही सर्वतोभावेन पालनीय हैं। आहार-विहारके सम्बन्धमें भी एक ही प्रकारकी विधि अवलम्बनीय है। विशेष विधि और निषेध जाननेके लिए इसी लेखके परिशिष्ट "श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य" नामक लेखका पाठ करें। वह लेख जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखा गया है। यह लेख अगले अङ्कमें प्रकाशित होगा।

सात्त्विक शास्त्रोंका श्रेष्ठत्व

कोई-कोई ऐसा कह सकते हैं कि यदि किसी शास्त्रमें अधिकमासको मलमास अथवा मलिम्लुच या मलिनमास कहा गया हो, तो वैष्णवगण उसे क्यों नहीं स्वीकार करते? इस विषयमें हमारा यह कहना है कि इस अधिकमासको शास्त्रोंमें पुरुषोत्तम मास भी तो कहा गया है। अब यह देखना है कि इन दो प्रकारके शास्त्रोंमें किस शास्त्रकी प्रधानता स्वीकृत है। पुराण अठारह हैं। ये १८ पुराण तीन भागोंमें विभक्त हैं—सात्त्विक पुराण, राजसिक पुराण और तामसिक पुराण। इनमेंसे सात्त्विक पुराण ही सर्वसम्मत रूपमें श्रेष्ठ हैं। अब यह ठीक हो गया कि सात्त्विक पुराण ही श्रेष्ठ हैं। अतएव सात्त्विक पुराणके अन्तर्गत नारदीय पुराणकी प्रामाणिकता अन्य राजसिक और तामसिक पुराणोंकी अपेक्षा स्वतः सिद्ध है। ऐसा होनेपर नारदीय पुराणमें उल्लिखित 'अधिक मास' सम्बन्धी यह विचार कि अधिक मास पुरुषोत्तम मास है—प्रामाणिक और निर्भरयोग्य ठहरता है। यही कारण है कि वैष्णवगण सात्त्विक पुराणोंके प्रमाणको ही श्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार करते हैं तथा स्मार्त्तोंद्वारा समर्थित राजसिक या तामसिक पुराणोंकी प्रामाणिकताको सात्त्विक पुराणोंके मुकाबले स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं। तब यह बात ठीक है कि जहाँ राजसिक और तामसिक पुराणोंके वचनसमूह सात्त्विक पुराणोंका आनुगत्य करते हैं अर्थात् विरोध नहीं करते हैं, वहाँ राजसिक और तामसिक पुराणेंके वचनोंको भी माननेमें कोई बाधा नहीं है। इसका कारण यह है कि राजसिक और तामसिक स्वभाववाले मनुष्योंको सत्त्वगुणकी तरफ आकर्षित करनेके लिए उन पुराणोंमें (राजसिक और तामसिक पुराणोंमें) ऐसा लिखा गया है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—इन तीनों गुणोंमें सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता और निकृष्टताका परिचय उसके फलसे ही मिलता है। जिस गुणका फल श्रेष्ठ होगा, वही गुण श्रेष्ठ होगा। इस विषयमें गीता शास्त्रने हमें सावधान कर दिया है। जिन्होंने गीताके चौदहवें अध्यायका भलीभाँति अध्ययन किया है, उनको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं हो सकता है। सत्त्वगुण ही निर्मल ज्ञान और सुख प्रदान कर क्रमशः ऊँची गति प्रदान करता है। दूसरी ओर रजः और तमोगुण जीवको निम्नगामी, दुःखमय और घोर अज्ञानरूप अन्धकारमें फेंक देता है। यहाँ गीताके दो-तीन श्लोक पाठकोंकी जानकारीके लिए उद्धृत किये जा रहे हैं—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनाम्।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखम् अज्ञानं तमसः फलम्।।
उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्येतिष्ठन्तिराजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः।।

(गीता १४/६, ७, ८, १६, १८)

गीताको समस्त सनातन धर्मावलम्बियोंने सर्वसम्मतिसे प्रमाण माना है। साक्षात् गोलोकपति श्रीकृष्णकी श्रीमुख–वाणी होनेके कारण वे इसे गीतोपनिषद् मानते हैं तथा इसका पूजन भी करते हैं। अतएव श्रीगीतोपनिषद्की उक्त वाणियोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है और इसीके द्वारा विशुद्ध ज्ञान लाभकर उत्तम गति पायी जा सकती है। रजोगुणकी वृद्धि होनेपर जीव सकाम कर्मी हो पड़ता है, यह सकाम कर्म ही जीवके बन्धनका कारण है। उससे लोभ आदि नाना प्रकारकी कामनाएँ और सत्–असत् क्रियाओंमें प्रवृत्ति पैदा होती है। इस विषयमें भी गीताने हमें स्पष्ट सावधान किया है—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।

(गीता १४/१२)

गीताके प्रमाणके अनुसार कोई–कोई यह भी कह सकते हैं कि सात्त्विक गुण श्रेष्ठ है तथा सात्त्विक शास्त्रोंकी प्रामाणिकता भी स्वीकार्य है; परन्तु नारदीय पुराण सात्त्विक पुराण है, इसका क्या प्रमाण है? इस विषयमें हम ब्रह्मवैवर्त्तपुराणका प्रमाण देकर इस सन्देहको दूर करते हैं। अठारह पुराणोंमें से कौन–कौन पुराण किस गुणकी श्रेणीमें है, यह स्थिर करते हुए ब्रह्मवैवर्त्तमें इस प्रकार कहा गया है—

वैष्णवं नारदीयञ्च तथा भागवतं शुभम्।
गारुड़ञ्च तथा पाद्मं वराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि मनीषिभिः।।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत।।
मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयञ्च षडेतानि तामसानि निबोधत।।

अर्थात् अठारह पुराणोंमेंसे मनीषियोंने विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, मङ्गलमय भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्मपुराण एवं बराह पुराण—इन छः पुराणोंको सात्त्विक पुराण माना है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्मपुराण—ये छः राजस पुराण हैं एवं मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्नि—ये छः पुराण तामस कहे गये हैं।

यहाँ विशेष लक्ष्य करनेकी बात यह है कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण राजसिक पुराणके अन्तर्गत है और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अर्थात् राजसिक पुराणमें ही सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख है। यदि सात्त्विक पुराणोंकी श्रेष्ठताका यह उल्लेख किसी सात्त्विक पुराणमें होता, तो राजस या तामस व्यक्ति यह कहनेका अवसर पा सकते थे कि अपनी प्रशंसा तो सभी करते हैं; यदि सात्त्विक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वोत्तमताका उल्लेख है तो इससे प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। परन्तु यहाँ तो राजसिक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख रहनेके कारण अपनी प्रशंसा आप करनेका दोष स्पर्श नहीं करता है।

अतएव अधिक मासको 'मलमास' के रूपमें

ग्रहण न करके सात्त्विक पुराणोंके अनुसार हम इसे 'पुरुषोत्तम मास' के रूपमें इसकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित करेंगे। यह सारे शुभ कर्मोंका आकर-स्वरूप और स्वभावतः ही समस्त प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

अधिकमासको मलमास कहना अयुक्तिसङ्गत है

यदि एक ही शास्त्रकर्त्ताके विभिन्न मत एक ही स्थानमें दिखलायी पड़ते हों, तो उनमेंसे कौन-सा मत ग्रहण करने योग्य है—इस विषयमें और भी विचार करना आवश्यक है। शास्त्रमें परस्पर विरोधी विचार उपस्थित होनेपर वहाँ एक मात्र युक्ति ही उनकी सङ्गति स्थापन करती है—

केवलं शास्त्रामाश्रित्य न कर्त्तव्या विनिर्णयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते।।

इस प्रकार पूर्व पक्ष उठानेपर भी हम युक्तिके द्वारा ही इसको स्थापन कर सकेंगे कि अधिकमासको मलमास कहना उचित नहीं है। क्योंकि यह अधिक मास चान्द्र मासका अभाव पूरा करता है। केवल यही नहीं, यह सौर वर्षके साथ मिलन करानेवाला भी है। जो अभाव पूरा करते हैं, उनको तुच्छ या दीन समझना अन्याय और दुर्नैतिकता है। कर्मजड़ स्मार्त्तलोग मलके द्वारा अभाव पूरा करना चाहते हैं—इसे युक्तिवादी नैतिक सज्जन पुरुष कैसे मान सकते हैं? जो चन्द्र सूर्यके आलोकसे प्रदीप्त होकर आत्मगरिमा व्यक्त करते हैं, उन चन्द्रकी गति ३२ महीनोंमें ह्रासप्राप्त होनेपर उनमें सूर्यके साथ मिलनेकी आकांक्षा बड़ी ही प्रबल हो उठती है। यह अधिक मास चन्द्रकी गतिको बढ़ाकर सूर्यके बराबर पंक्तिमें लाता है अर्थात् चान्द्र वर्ष पूरा करके, उसको सौरवर्षके समानान्तर रेखामें उपस्थितकर दोनोंको मिलाता है। अतः यह दोनोंसे मिलन करानेवाला है। इसलिए मिलन करानेवाले इस अधिकमासको सर्वोत्तम 'पुरुषोत्तम मास' न जान कर मल या मलिम्लुच माननेसे नैतिकगण उपहास करेंगे। मलिम्लुच शब्दका अर्थ चोर होता है। चोरोंका रात्रिकालमें आपसमें मिलना हास्यास्पद और घृणित है। अतएव अधिक मासको मलिन मास या मलमास कहना किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं है। ❑

उपनिषद्-उपाख्यान

पिप्पलाद ऋषि और श्रीचतुर्मुख

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

प्राचीन कालमें पिप्पलाद नामक एक विख्यात ऋषि हुए हैं। शास्त्रोंकी उन्होंने निरन्तर आलोचना और साथ ही साथ दीर्घकालतक तपस्या भी की। आत्ममङ्गलकी इच्छासे वे एक दिन अपने पिता एवं गुरु ब्रह्माके पास गये और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भगवन्! इस संसारमें मेरे लिए श्रेयः वस्तु क्या है? कृपया इस विषयमें उपदेश प्रदानकर मुझे कृतार्थ करें। मैं इस विषयको जाननेका इच्छुक हूँ।"

पिप्पलादकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—"वत्स! तुम और कुछ कालतक तपस्या और ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करो। वैराग्य और सदाचारके द्वारा अन्तःकरणको पवित्र करो।

इस तरह मनको वशीभूत करो।"

पिप्पलादने 'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया' इस शास्त्र वाक्यके अनुसार गुरुकी आज्ञासे कठोर तपस्या की और ब्रह्मचर्यका पालन किया। इस तरह शुद्ध-चित्त होकर गुरुके निकट उत्सुकतासे पुनः प्रश्न किया—"गुरो! कलियुगमें स्वभावसे ही पापकर्मोंमें प्रवृत्त मनुष्य कैसे मुक्त होंगे? कलिमें जीवोंके उपास्यदेव कौन हैं एवं उनका भजन-मन्त्र क्या है? यदि अधिकारी समझें तो मुझे यह बतलानेकी कृपा करें।"

ऐसा सुनकर सर्ववेदरहस्यविद् आदिकवि चतुर्मुख ब्रह्माजी बोले—"वत्स! यह परम निगूढ़ रहस्य तुम्हें अवश्य ही बतलाऊँगा। जो शिष्य अपने गुरुके प्रति भगवद्बुद्धि रखता है, गुरुदेव उसे ही साधन-भजन सम्बन्धी उन्नततम वेदगुह्य रहस्यका भी उपदेश करते हैं। "छन्नः कलौ" वाक्यके अनुसार कलियुगके उपास्य श्रीकृष्णचैतन्यदेव जिस प्रकार छन्नावतार हैं, उसी प्रकार श्रुति-स्मृति शास्त्रोंमें गुप्त भावसे ही उनके अवतरणके सम्बन्ध उल्लेख है। इस कारणसे ही कर्म-ज्ञानविमूढ़ जन दुर्भाग्यवशतः उपास्य विषयमें सन्धान-रहित होकर अधःपतित होते हैं। इस समय उन्हीं कलियुगपावनावतारी श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्बन्धमें तुम्हें विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ—

अनन्त-कोटि विश्व-ब्रह्माण्डमें सबके अन्तरात्मास्वरूप, परमप्रिय, महापुरुष, महात्मा, महायोगी, मायातीत, विशुद्ध-सत्त्वरूप, द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कलिकालमें गङ्गाके किनारे सर्वोत्कृष्ट गोलोकरूप नवद्वीप धाममें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपसे अवतीर्ण होकर इस जगतमें प्रेमभक्तिका प्रकाश और प्रचार करेंगे। इस विषयमें सभी शास्त्रोंमें 'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्द' इत्यादि पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं। वे ही परमदेवता गौरचन्द्र सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें श्वेत, रक्त और श्यामवर्ण धारण करते हैं। चैतन्यस्वरूप चित्-शक्तिमान होकर भी वे कलियुमें भक्तभाव अङ्गीकार करके प्रेमभक्तिका दानकर जीवोंका चरम कल्याण करेंगे। कीर्त्तनाख्या भक्तिके द्वारा ही जीव अपने चित्-स्वरूपको जान पायेगा। वेदान्तवेद्य परमात्मा श्रीकृष्ण चैतन्य-स्वरूप श्रीचैतन्यदेवके रूपमें सबके आराध्य होंगे। पुराणपुरुष, चैतन्य-विग्रह, विश्वके परमकारण, महान्तस्वरूप उन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभुको जाननेपर ही जीव जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। उनकी कृपाके बिना मायासे मुक्त होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

"वे परमेश्वर अपने श्रीनाममूल मन्त्रके द्वारा सबको आनन्द प्रदान करते हैं। ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्—इन तीनों शक्तियोंसे वे युक्त हैं। वे स्वयं श्रीमुखसे हरि-कृष्ण-राम अर्थात् "हरे कृष्ण" सोलह नाम बत्तीस अक्षरात्मक महामन्त्रका सर्वदा कीर्त्तन करते हैं। जीवोंकी भगवत्-बहिर्मुखतारूप हृदय-ग्रन्थिका हरण करते हैं, इसलिए उनका नाम हरि है। उनके स्मरणसे सब प्रकारके क्लेशोंकी निवृत्ति होती है, इसलिए वे कृष्ण हैं। सब जीवोंको आनन्द प्रदान करते हैं, इसलिए वे आनन्द स्वरूप 'राम' कहलाते हैं। महामन्त्र ही सर्वमन्त्रसार है एवं कलियुगी जीवोंका परम साधन और धर्म है। जो इस तारक-ब्रह्म-नामका

अपराध रहित होकर सदैव कीर्त्तन करते हैं, वे लोग अवश्य ही भगवानको प्राप्त करेंगे। नित्य सिद्ध मुक्त पुरुषगण भी सर्वमन्त्रसार इस श्रीनामकीर्त्तनका सुयोग प्राप्त करनेके लिए कलियुगमें जन्म ग्रहणकी अभिलाषा करते हैं।"

"श्रीचैतन्यदेव ही सङ्कर्षण और वासुदेव हैं एवं वे ही सर्वावतारी हैं। उनके द्वारा ही चराचर विश्व, समस्त जीव, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, वरुण, सभी देवताओं आदिकी सृष्टि हुई है। वे ही सब कारणोंके भी कारण हैं। नश्वर जगत और अविनाशी जीवसे भी जो श्रेष्ठ हैं, वे ही पुरुषोत्तम हैं। वही परतत्त्व ही श्रीचैतन्यदेव हैं। जो श्रीचैतन्य महाप्रभुके भजन, ध्यान और सेवामें रत रहते हैं, वे ही अनर्थ मुक्तावस्थामें परतत्त्व लाभके अधिकारी होकर परमगतिको प्राप्त करते हैं। सर्वसद्गतिदायक श्रीचैतन्य महाप्रभुसे विमुख जीवके लिए मङ्गलकी कदापि सम्भावना नहीं है।"

पिप्पलाद ऋषि लोक-पितामह ब्रह्मासे यह सर्वगुह्यतम वेदनिगूढ़ परम सत्यतत्त्व लाभकर बारम्बार श्रीगुरुपादपद्मोंका अभिवादन करके अपनेको कृत कृतार्थ मानने लगे।

उक्त उपाख्यानमें प्रधानतः निम्न विषय प्रकट हुए हैं—(१) सत्-गुरु-पदाश्रयके विना बद्ध जीवोंको साधनमें सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

(२) गुरु-पदाश्रय ग्रहण करनेके पश्चात् सम्बन्ध ज्ञानके उदित होनेपर भगवान, जीव और मायामें परस्पर जो अविच्छिन्न सम्बन्ध (अचिन्त्य भेदाभेद रहस्य) है, उसको जाननेकी इच्छा होती है। तब जीव अपने परम कर्त्तव्यके विषयमें जिज्ञासु होकर शब्द ब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात (अनुभवयुक्त ज्ञान प्राप्त) गुरुपादपद्मोंके निकट मङ्गल लाभके लिए उपाय पूछते हैं।

(३) विप्रलम्भ-रस-विग्रह व्रजप्रेम प्रदाता श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही कलियुगके एकमात्र आराध्यदेव हैं।

(४) सोलह नाम बत्तीस अक्षरात्मक 'हरे कृष्ण' महामन्त्र ही समस्त मन्त्रोंका सार है। यज्ञ, योग, तपस्या और अन्यान्य देवताओंकी उपासनाको परित्याग करके श्रीनाम-सङ्कीर्त्तन यज्ञके द्वारा उस कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुकी आराधना करनेसे कलिमें जीव कृतकृत्य होंगे। ❑

(अनुवादक—श्री ओमप्रकाश ब्रजवासी)

दुर्नीति, सुनीति और भक्तिनीति

वैष्णव धर्मके एक प्रधान आचार्य हुए हैं—श्रीरामानुज। वर्त्तमान चेन्नईके समीप महाभूतपुरी अथवा पेरम्बुदुर नगरमें १०१६ ख्रीष्ताब्दमें इनका आविर्भाव हुआ था। इनके आविर्भावसे बहुत पहले वैष्णव धर्मके प्रचारक जो प्राचीन सिद्ध महात्मागण अवतीर्ण हुए थे, उन्हें द्राविड़ भाषामें 'आलवर' कहा जाता था। ये आलवरगण किसी किसीके अनुसार दश और किसी किसीके अनुसार रामानुज सहित बारह प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे ही एक 'तिरुमङ्गई आलवर' के नामसे प्रसिद्ध हुए थे। कोई कोई कहते हैं कि आठवीं शताब्दीमें इनका आविर्भाव हुआ था।

ये तिरुमङ्गई युवा कालमें ही समस्त तीर्थोंका पर्यटनकर भजन करते थे। इनका एकमात्र सिद्धान्त था—"श्रीनारायणकी सेवाके लिए ही पृथ्वीकी समस्त वस्तुएँ सृष्ट हुई हैं, इसलिए

इनके द्वारा यथायोग्य रूपसे नारायणकी सेवा करना ही कर्त्तव्य है। श्रीनारायणकी सेवामें यथायोग्य नियोग करनेके अलावा किसी वस्तु अथवा जीवकी सार्थकता नहीं है।"

विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते समय असाधारण विभूतिसम्पन्न चार व्यक्ति इनके शिष्य हुए थे। इनके प्रथम शिष्यका नाम था—'तोडावडक्कुन' अथवा तर्कचूड़ामणि, अर्थात् कोई भी इन्हें तर्कमें परास्त नहीं कर सकता था। द्वितीय शिष्यका नाम था—'ताडदुयान्', अर्थात् द्वारोन्मोचक अर्थात् केवल फूँकके द्वारा ही वे सभी प्रकारके तालोंको खोल सकते थे। तृतीय शिष्यका नाम था—'नेडेलाई मेरिप्पान' अथवा छायाग्रह, अर्थात् जिस समय अपने पैरोंसे ये किसी व्यक्तिकी छाया स्पर्श करते, उसी समय उसकी गति रुक जाती थी। चतुर्थ शिष्यका नाम था—'नीलमेलप्पन' अथवा जलोपरिचर अर्थात् ये जलके ऊपर भी पैदल चल सकते थे। इन्हीं चारों शिष्योंके साथ तिरुमङ्गई विभिन्न तीर्थोंका दर्शनकर अति प्राचीन और उस समय जीर्ण शेषशायी चतुर्भुज रङ्गनाथजीके मन्दिरमें उपस्थित हुए। यह सुप्रसिद्ध मन्दिर उस समय पशु-पक्षियोंका आवास स्थान था और चारों ओर हिंसक जानवरोंकी क्रीड़ाभूति जङ्गलसे आच्छादित था। कोई एक सेवक दिनमें मन्दिरमें थोड़ी देर तक रहकर श्रीमूर्त्तिके सामने केवल एक बार किञ्चित् फूल और जल देकर प्राणके भयसे शीघ्रातिशीघ्र उस स्थानका परित्याग कर देता। यह देखकर तिरुमङ्गईके मनमें यह इच्छा हुई कि श्रीरङ्गनाथका एक सुन्दर और बड़ा मन्दिर बनवाना चाहिए। इस विचारसे चारों शिष्योंके साथ देश-देशमें धनवान लोगोंके पास जाकर मन्दिर-निर्माणके लिए उन्होंने धनकी याचना की। किन्तु धनी लोग उन्हें भण्ड, लोभी, चोर आदि कहकर प्रताड़ित करते। किसीने एक भी पैसा उन्हें नहीं दिया।

ऐसा होनेपर भी वे बिल्कुल निराश नहीं हुए, अपितु श्रीरङ्गनाथकी सेवाके लिए और भी अधिक व्याकुल हो गये। उन्होंने अपने चारों शिष्योंको बुलाकर कहा—"हे वत्सगण! तुमलोगोंने तो देखा कि धनके मदसे अन्धे व्यक्तिकी चित्तवृत्ति कैसी होती है! लक्ष्मीपति नारायणने अपने ऐश्वर्यका तनिक अंश उनको दिया है, इसके द्वारा नारायणकी सेवा ही उचित है। किन्तु लोगोंने उस धनको आत्मसात् कर अपनेको उसका अधिपति मान लिया है। बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंमें धवल-कोमल शय्यापर भोगमय जीवन व्यतीत करते हुए वे श्रीनारायणके अर्चनके प्रति कैसे विमुख हो गये हैं! श्रीनारायणकी श्रीमूर्त्ति भग्नमन्दिरमें जङ्गलके बीच अनादृत होकर पड़ी है। हाय! इसकी ओर इनका ध्यान भी नहीं है! यदि धनवान गृहस्थ विष्णुका अर्चन न करे, तो उसका नरकगमन अवश्यम्भावी है। अतएव जैसे भी हो, इनका मङ्गल करना ही पड़ेगा।"

यह कहकर उन चारों शिष्योंकी योगविभूतियोंको विष्णुकी सेवामें नियुक्तकर उन्होंने उनका प्रकृत सद्व्यवहार और विषयी लोगोंके मङ्गलकी इच्छा की। उनका जो शिष्य तार्किक चूड़ामणि था, उसे बुलाकर कहा कि तुम धनवान लोगोंको तर्कके जालमें आबद्ध करो। उसी समय द्वारोन्मोचक शिष्यद्वारा धनीलोगोंके कोषका रुद्धद्वार खुलवाकर इच्छानुसार धनसंग्रह करवाया। छायाग्रह शिष्यके द्वारा धनवान पथिकोंकी गति अवरुद्धकर उनके समस्त धनकी लूट और जलोपरिचर शिष्यके द्वारा परिखा-वेष्टित राजनगरियोंसे प्रचुर धनसंग्रह करवाया। कहनेकी बात नहीं, एक बड़े दस्युदलका अधिनायक होकर रङ्गनाथकी सेवाके लिए उन्होंने असंख्य रत्नराशिका संग्रह किया।

इसके बाद विभिन्न देशोंसे श्रेष्ठ शिल्पियोंको बुलाकर मन्दिरका कार्य आरम्भ कराया गया।

हजारों शिल्पियोंने मिलकर चार वर्षोंमें प्रथम बहिःपुर, दो वर्षोंमें द्वितीय और तृतीय, आठ वर्षोंमें चतुर्थ, बारह वर्षोंमें पञ्चम और अठारह वर्षोंमें छठे बहिःपुरका कार्य सम्पन्न किया। समूचे मन्दिरका निर्माण होनेमें कुल साठ वर्ष लगे। तिरुमङ्गई उस समय अस्सी वर्षके वृद्ध थे। अन्तःपुरीका निर्माण होनेके बाद निकटवर्त्ती राजागण तिरुमङ्गईकी सहायता करनेके लिए उद्यत हुए। किसीने तिरुमङ्गईके ऐश्वर्यदर्शनसे प्रभावित होकर, तो किसीने भयसे उन महापुरुषकी सेवामें सहायताकर सुकृतिका अर्जन किया। अपनी कोई स्वतन्त्र भोगचेष्टा नहीं होनेके कारण बाह्य दृष्टिसे दस्युवृत्ति करनेपर भी उन्होंने भगवानकी सेवा ही की। अपने भोगके लिए उन्होंने इनमेंसे एक पैसा भी नहीं लिया।

सप्त प्राचीरसे परिवेष्टित श्रीरङ्गनाथका मन्दिर निर्माण हो जानेके बाद उन्होंने सबको यथायोग्य पारिश्रमिक दिया। तिरुमङ्गईके पास एक भी पैसा नहीं बचा। इसी समय जिन दस्युओंने उनकी सहायता की थी, उनमेंसे हजारों दस्युगण उनके पास आकर लूटे हुए धनका दावा करने लगे। उस समय तिरुमङ्गईने जलोपचरि शिष्यके कानमें कुछ मन्त्र दिया। श्रीरङ्गमके मन्दिरनिर्माणके समय बड़े-बड़े पत्थरके टुकड़ोंको लानेके लिए एक बड़े जलपोतका व्यवहार होता था। उसी पोतको लाकर जलोपरिचर-शिष्यने दस्युओंसे कहा कि आपलोग इसमें सवार हो जाएँ, मैं आपको वहाँ ले जा रहा हूँ जहाँ कि गुप्त धन गाड़ा हुआ है। वर्षाका समय था। कावेरी नदीमें जल भरा हुआ था। जलोपरिचर-शिष्यने उस पोतको नदीके बीच ले जाकर उसे डुबा दिया। सभी दस्युगण डूब गये, परन्तु वे स्वयं जलपर चलते हुए गुरुके पास उपस्थित हुए। वे दस्युगण तिरुमङ्गईके जीवनका नाश करनेके लिए ही आए थे। जब जलोपरिचर-शिष्य वापस आए, तो महात्मा तिरुमङ्गईने कहा—"पापनाशिनी और विष्णुभक्तिप्रदायिनी कावेरीके जलमें दस्युओंने समाधि लाभ किया, इसलिए उनका आत्मा निश्चय ही श्रीरङ्गनाथके अङ्कमें गृहीत हुआ है। तुम चिन्तित मत होओ! दस्युवृत्ति और वैष्णवहिंसाको प्रश्रय देनेकी अपेक्षा तुमने उन्हें वैकुण्ठगमनका सुयोग प्रदान किया है, क्या यह उनके पक्षमें अधिकतर कल्याणप्रद नहीं हुआ? हमने भगवानकी सेवाके लिए ही उनका सहयोग लिया था। यदि कोई व्यक्तिगतरूपसे अपने भोगके लिए इस प्रकारके कार्यका अनुकरण करेगा, तो नरहत्यामूलक भीषण पाप और नरकके हेतुके रूपमें ग्रहण किया जाएगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।" कावेरी नदीके उत्तरभागमें जहाँ दस्युओंका विनाश हुआ था, नदीका वह अंश अभी भी 'Coliron' अर्थात् 'हत्यास्थान' के नामसे परिचित है।

तिरुमङ्गई आलवरके इस आदर्शसे शिक्षाका विषय यह है कि जागतिक सुनीति या दुर्नीतिसे भक्तिनीति अर्थात् परमेश्वरकी सेवा अत्यन्त उच्च और अतुलनीय है। तथाकथित सुनीति या दुर्नीति यदि श्रीहरिकी प्रीतिका साधन नहीं करती है, तो दोनों ही अभक्ति हैं। पाप और पुण्य दोनोंका परित्यागकर श्रीहरिप्रीतिका साधन करना पड़ेगा। श्रीजीवगोस्वामीने भक्तिसन्दर्भ (अनुच्छेद १४८) में दो शास्त्रवाक्योंको उद्धृत किया है। इनमेंसे स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें श्रीब्रह्माजीका वचन है—

स कर्त्ता सर्वधर्माणां भक्तो यस्तव केशव।
स कर्त्ता सर्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत।।
पापं भवति धर्मोऽपि तवाभक्तैः कृतो हरे।
निःशेषधर्मकर्त्ता वाऽप्यक्तो नरको हरे।
सदा तिष्ठति भक्तस्ते ब्रह्महाऽपि विमुच्यते।।

अर्थात् हे केशव! जो आपके भक्त हैं, वे सभी धर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले हैं और हे अच्युत! जो आपका भक्त नहीं है, वह सभी प्रकारके पापोंको ही करनेवाला है। हे हरि!

आपके अभक्तोंद्वारा अनुष्ठित धर्म भी पाप कहलाते हैं एवं आपके अभक्त सम्पूर्ण रूपसे धर्मका आचरण करनेवाला होनेपर भी सर्वदा नरकमें ही निवास करता है। किन्तु आपके भक्त ब्रह्महत्याकारी होनेपर भी पापसे विमुक्त होते हैं।

पद्मपुराणका वचन है—

मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान्मत्प्रभावतः।।

अर्थात् मेरे लिए भक्तोंद्वारा किया गया पापकर्म भी धर्मके रूपमें गणित होता है। मेरा अनादर कर जो धर्म अनुष्ठित होता है, मेरे प्रभावसे वह पापकर्ममें ही परिणत होता है। ❑

विदेश प्रचार संवाद

—श्रीमान् पुण्डरीक दास ब्रह्मचारी

ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने।
ए वेद पुराणे गुण गाय जेवा सुने।।

श्रीगौरहरिके विशेष कृपापात्र उनके प्रत्येक निजजनमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिव्यप्रेमकी बाढ़में आप्लावित करनेकी शक्ति है। वेदोंकी इस परम सत्य वाणीको चरितार्थ करते हुए परमाराध्यतम श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके माध्यमसे प्रवाहित भक्तिरसामृत मन्दाकिनीका उफनता हुआ जल, अपने तटोंसे बाहर होकर, अपने मार्गमें आनेवाले सभी प्राणियोंको बहाते हुए, ऐसे दिव्य, चिद्राज्यमें ले जा रहा है, जो मायाबद्ध जीवोंकी कल्पनाशक्तिसे सर्वथा अतीत है। व्यवसायिक- भक्त, विद्वान, स्त्री-पुरुष एवं नवागन्तुक भक्त निश्चल स्वभावमें ऐसे मस्त हो रहे हैं, जैसे मिठाईकी दुकान पर बच्चे। कहीं मन्दमुस्कान, कहीं कृपादृष्टिपात, कहीं मधुर वाणी, कहीं कठोर निर्भीक वचन एवं कहीं स्निग्ध स्नेहाशीषके द्वारा श्रीलमहाराजजी अपने निकटमें आनेवाले सभी सौभाग्यशाली जीवोंके हृदयमें नवीन उत्साहका सञ्चार कर रहे हैं। जहाँ उनकी मधुरवाणी हृदयको शीतलता प्रदान करनेवाली है, वहीं परमसत्यकी निर्भीक एवं अतुलनीय अभिव्यक्ति करती है।

विशेषरूपसे युवापीढ़ीको भक्ति मार्गके प्रति आकर्षित करते हुए श्रीलमहाराजजीने उन्हें तुच्छ सांसारिक भोगोंमें अपने जीवनको नष्ट न करनेकी प्रेरणा दी। इस संदेशसे प्रभावित होकर बहुतसे युवक-युवतियोंने दीक्षामंत्र भी ग्रहण किये।

हवाई द्वीपसमूहमें प्रशान्त महासागरकी उदण्ड लहरोंके भयङ्कर नादको मात करती हुई, शुद्धभक्तिकी शक्तिशाली लहरें एकके-बाद-एक—अमेरीकाके यूजीन (ऑरगन), बेजर, सेनफ्रान्सिस्को (कैलिफर्निया) एवं केनेडाके सॉल्टस्प्रींग आईलेण्ड, वेन्कुवर इत्यादि प्रमुख महानगरोंको अपनी चपेटमें लेने लगीं। लॉस ऐन्जेल्समें पहुँचते-पहुँचते इन लहरोंने प्रचण्ड बाढ़का रूप धारण कर लिया था। फुरामा होटलके सभागारमें ५००से भी अधिक भक्तोंके उदण्ड नृत्य एवं कीर्त्तनसे सभागारकी धरती काँप उठी और नीचले तल्लेपर लटका फानूस गिर पड़ा। यद्यपि होटेलके प्रबनधकगण कार्यक्रम और विशेषकर भक्तोंके उत्साह एवं सद्व्यवहारसे अत्यन्त प्रभावित हुए थे, तथापि उन्हें विवश होकर भक्तोंसे धीमी गतिसे नृत्य-कीर्त्तन करनेके लिए अनुरोध करना पड़ा।

कैलिफोर्निया स्थित कलिकी राजधानी लॉस ऐन्जल्समें हरिकथाका विस्फोट कर यह बाढ़ १५ मईको ह्यूस्टनकी ओर अग्रसर हुई। यहाँ प्रवासी भारतीय समुदाय पहलेसे ही उत्कण्ठित होकर इस पुनीत अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था। भक्तोंका उत्साह बढ़ानेके लिए श्रीलमहाराजजीके प्रिय दूत

श्रीरामचन्द्र दासाधिकारी तीन सप्ताह पूर्व ही यहाँ पहुँच चुके थे। उनके सहयोगसे ह्यूस्टनवासी भारतीयोंने श्रीमहाराजजीके लिए भागवतसप्ताहकी तैयारी कर रखी थी। इस बार बङ्गाली भक्तोंने विशेष सहयोग किया। उनके द्वारा नवनिर्मित 'श्रीदुर्गाबाड़ी सोसाईटी' के मन्दिर कक्षमें इस परम पवित्र अनुष्ठानका आयोजन किया गया। श्रीमद्भागवतकथाके प्रारम्भका पूर्व विधिवत श्रीभागवतका पूजन किया गया। भक्त महिलाओंने अपने शीशपर कलश धारणकर कीर्त्तन मण्डलीके साथ मन्दिरकी परिक्रमा की। तत्पश्चात् कथाके प्रारम्भमें भागवतकी महिमा वर्णन करते हुए श्रीलमहाराजजीने भक्तिदेवी और श्रीनारदमुनिके मध्य हुई वार्त्ताका प्रसङ्ग, नैमिषारण्यमें शौनक आदि ऋषियोंका संवाद, शुक-परीक्षित संवाद, श्रीध्रुव चरित्र, श्रीप्रह्लाद चरित्र, श्रीभरत महाराजजीका चरित्र, चित्रकेतु महाराजजीका चरित्र इत्यादि उपाख्यानोंका सारगर्भित विवेचन, दशरथनन्दन श्रीराम एवं भरतके चरित्रसे शुद्धभक्तिके स्वरूपका पुंखानुपुंख विश्लेषण और अन्तमें दशमस्कन्धसे श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके माध्यमसे श्रोताओंके मनको मोह लिया।

भक्तिधाराके प्रचण्ड वेगने ह्यूस्टनके बाद २२ मईको फ्लोरिडा स्थित अलाचुआ नामक स्थानको अपना अगला निशाना बनाया।

पाराबार शून्य गभीर भक्तिरससिन्धु।
तोमाय चखायिते तार कहि एक बिन्दु।।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने प्रयागमें पावन त्रिवेणीसङ्गम स्थली पर श्रीरूपगोस्वामीको भक्तिरस तत्त्वका उपदेश एवं जीवजगतमें भक्तिरसके वितरणका आदेश दिया था। श्रीलमहाराजजीने यहाँ आयोजित सात दिवसीय कार्यक्रममें चैतन्यचिरतामृतसे श्रीरूपगोस्वामी एवं श्रीसनातनगोस्वामीके अलौकिक जीवन चरित्रसे महत्त्वपूर्ण शिक्षाओंको प्रस्तुत किया। श्रोतृमण्डली इन सिद्धान्तपूर्ण कथाओंसे विशेषरूपमें लाभान्वित हुई। भक्त बालक-बालिकाओंके द्वारा श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी लीलाओंपर आधारित शिक्षाप्रद नाटिका भी प्रस्तुत की गई। नवदीक्षित साधकोंके लिए यज्ञका भी आयोजन किया गया, जिसमें सभी भक्तोंने उत्साहसे भाग लिया।

तदुपरान्त २९ मईको भक्तिधाराने अमेरिकाकी राजधानी वॉशिंगटनमें प्रवेश किया। यहाँका कार्यक्रम वरजीनिया और वॉशिंगटनके मध्य स्थित प्रिंस वीलियम पार्कमें आयोजित किया गया। पाँच दिनके इस कार्यक्रममें श्रीलमहाराजजीने संक्षेपमें भागवतका पाठ किया। दामोदर लीलाके माध्यमसे शुद्धभक्तिके विभिन्न लक्षणोंका निरूपण किया। भक्तिके मापदण्डका आधार भक्तके हृदयकी भावना है। श्रीकृष्णका प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होना इस मापदण्डका आधार नहीं है। पूतना एवं चाणूर-मुष्टिक आदि असुरोंकी चेष्टामें श्रीकृष्णके प्रति अहितकी भावना अन्तर्निहित है। इसलिए बाह्यरूपसे श्रीकृष्णको इन असुरोंकी चेष्टा रुचिकर होनेपर भी यह प्रयास भक्तिके अन्तर्गत सम्मिलित नहीं होता। दूसरी ओर, श्रीयशोदाके डाँटने अथवा बाँधनेकी चेष्टामें श्रीकृष्णके मङ्गलकी भावना अन्तर्निहित है। इसलिए बाह्यरूपसे श्रीकृष्णको अरुचिकर होनेपर भी यह प्रयास उत्तमभक्तिमें परिगणित होता है। 'अनुशीलन' पदसे साधकोंकी चेष्टामें शिथिलता एवं निरुत्साहका राहित्य लक्षित होता है। जबतक साधक अत्यन्त विरह-व्याकुलतासे आतुर हो परिश्रम नहीं करता, तबतक श्रीकृष्णका हृदय द्रवित नहीं होता। इस प्रकार शुद्धभक्तिधाराने अमेरिका और कनाडामें मायाराज्यसे अनेकानेक जीवोंका उद्धार कर ४ जूनको यूरोपमें आगमन किया। ❑

आलाचुआमें प्रातःभ्रमणके समय श्रील महाराजजी

वाशिंगटनके मुख्य रास्तेपर कीर्त्तन करते हुए भक्तवृन्द

हॉलेण्डमें श्रील महाराजजी

ईंगलेण्डके हीथ्रो हवाई अड्डेपर श्रील महाराजजीका अभिनन्दन

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ श्रावण मास, सन् २००१, ६ जुलाई—४ अगस्त
{ संख्या ५

श्रीस्वनियम–दशकम्

(श्रीलरघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितम्)

श्रीगौराङ्गाय नमः

गुरौ मन्त्रे नाम्नि प्रभुवर–शचीगर्भजपदे स्वरूपे श्रीरूपे गणयुजि तदीयप्रथमजे।
गिरीन्द्रे गान्धर्वासरति मधुपूर्यां व्रजवने व्रजे भक्ते गोष्ठालयिषु परमास्तां मम रतिः।।१।।

श्रीगुरुदेव, इष्टमन्त्र, श्रीहरिनाम, श्रीशचीनन्दन गौरहरिके श्रीचरणकमल, गणसहित श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रभु, श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीरूपके अग्रज श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीगिरिराज गोवर्द्धन, श्रीराधाकुण्ड, श्रीमथुरा धाम, श्रीवृन्दावन, श्रीगोष्ठ, शुद्धभगवद्भक्त और श्रीगोष्ठवासिजन—इन सबके प्रति मेरा दृढ़ अनुराग हो।।१।।

न चान्यत्र क्षेत्रे हरितनुसनाथेऽपि सुजनाद् रसास्वादं प्रेम्णा दधदपि वसामि क्षणमपि।
समं त्वेतद्ग्राम्यावलिभिरभितन्वन्नपि कथां विधास्ये संवासं व्रजभुवन एव प्रतिभवम्।।२।।
सदा राधाकृष्णोच्छलदतुलखेलास्थलयुजं व्रजं संत्यज्यैतद् युगविरहितोऽपि त्रुटिमपि।
पुनर्द्वारावत्यां यदुपतिमपि प्रौढविभवैः स्फुरन्तं तद्वाचापि च न हि चलामीक्षितुमपि।।३।।
गतोन्मादै राधा स्फुरति हरिणा श्लिष्टहृदया स्फुटं द्वारावत्यामिति यदि शृणोमि श्रुतितटे।
तदाहं तत्रैवोद्धतमति पतामि व्रजपुरात् समुड्डीय स्वान्ताधिकगतिखगेन्द्रादपि जवात्।।४।।
अनादिः सादिर्वा पटुरतिमृदुर्वा प्रतिपद–प्रमीलत्कारुण्यः प्रगुणकरुणाहीन इति वा।
महावैकुण्ठेशाधिक इह नरो वा व्रजपतेरयं सूनुर्गोष्ठे प्रतिजनि ममास्तां प्रभुवरः।।५।।
अनादृत्याद्रीतामपि मुनिगणैर्वैणिकमुखैः प्रवीणां गान्धर्वामपि च निगमैस्तत् प्रियतमाम्।
य एकं गोविन्दं भजति कपटी दाम्भिकतया तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम्।।६।।
अजाण्डे राधेति स्फुरदभिधया सिक्तजनयाऽनया साकं कृष्णं भजति य इह प्रेमनमितः।
परं प्रक्षाल्यैतच्चरणकमले तज्जलमहो मुदा पीत्वा शश्वच्छिरसि च वहामि प्रतिदिनम्।।७।।
परित्यक्तः प्रयोजनसमुदयैर्बाढमसुधिर्दुरन्धो नीरन्ध्रं कदनभरवार्द्धौ निपतितः।
तृणं दन्तैर्दृष्ट्वा चटुभरभियाचेऽद्य कृपया स्वयं श्रीगन्धर्वा स्वपदनलिनान्तं नयतु माम्।।८।।
व्रजोत्पन्नक्षीराशनवसनपात्रापात्रादिभिरहं पदार्थैर्निर्वाह्य व्यवहृतिमदम्भं सनियमः।
वसामीशाकुण्डे गिरिकुलवरे चैव समये मरिष्ये तु प्रेष्ठे सरसि खलु जीवादिपुरतः।।९।।
स्फुरल्लक्ष्मीव्रजविजयिलक्ष्मीभरलसद्वपुः श्रीगान्धर्वा स्मरनिकर दीव्यद्विरिभृतोः।
विधास्ये कुञ्जादौ विविधवरिवस्याः सरभसं रहः श्रीरूपाख्यप्रियतमजनस्यैव चरमः।।१०।।
कृतं केनाप्येतन्निजनियमशंसिस्तवमिमं पठेद् यो विश्रब्धः प्रिययुगलरूपेऽर्पितमनाः।
दृढं गोष्ठे हृष्टो वसतिवसतिं प्राप्य समये मुदा राधाकृष्णौ भजति स हि तेनैव सहितः।।११।।

(श्रीव्रजभूमिके अतिरिक्त) किसी दूसरे स्थानमें श्रीहरिका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेपर भी तथा वहाँ पर किसी सज्जन अर्थात् वैष्णवके सङ्गमें प्रेमपूर्वक रसास्वादनका अवसर प्राप्त होनेपर भी वहाँ क्षणमात्र भी वास नहीं करूँगा; परन्तु इस व्रजभूमिमें इन ग्रामीणोंके साथ नाना प्रकारकी बातें करता हुआ भी जन्म–जन्म तक वास करूँगा।।२।।

युग–युगका विरही होनेपर भी सदा–सर्वदा श्रीराधाकृष्णकी उच्छ्वसित अतुलनीय लीलास्थली इस व्रजभूमिको छोड़कर मैं पूर्ण ऐश्वर्यके दीप्तिमान् श्रीयदुपतिके कहनेपर भी उनके दर्शनोंकी आशासे क्षणभरके लिए भी श्रीद्वारकापुरीमें अब न जाऊँगा।।३।।

यदि मैं अपने कानोंसे यह सुन लूँगा कि श्रीमती राधाजी उन्मादवश श्रीद्वाराकापुरीमें पधारकर श्रीकृष्णके साथ निश्चितरूपसे एकत्र विराजमान हो रही हैं, तो मैं उसी क्षण मनसे भी अधिक शीघ्र तथा श्रीगरुड़से भी अधिक तीव्र गतिसे श्रीवृन्दावनसे उड़कर श्रीद्वाराकामें ही गर्वित हृदयसे पहुँच जाऊँगा।।४।।

चाहे आदिरहित हों अथवा आदिसहित हो, कठिन हों या अत्यन्त कोमल हो, पग-पग पर कृपायुक्त हों अथवा नितान्त दयारहित हों, और तो क्या परव्योमपति श्रीनारायणसे भी अधिक श्रेष्ठ हों अथवा एक साधारण मनुष्य ही क्यों न हों—इस गोष्ठमें विराजमान व्रजराजके पुत्र—श्रीकृष्ण ही जन्म-जन्ममें मेरे प्रभुवर हों।।५।।

श्रीनारद आदि मुनियोंने तथा वेदादि शास्त्रोंने श्रीमती राधिकाको श्रीकृष्णकी प्रधाना प्रियतमा घोषित किया है, उन श्रीमती राधिकाकी अवज्ञा करके जो कपटी व्यक्ति दम्भपूर्वक अकेले गोविन्दका भजन करता है, मैं उसके शुष्क सङ्गमें (उसके निकट) क्षणभरके लिए भी गमन नहीं करता।।६।।

जो व्यक्ति इस ब्रह्माण्डमें 'श्रीराधा'—इस मुख्य या उज्ज्वल नामके द्वारा सारे मानवोंको प्रेममें विभोर करानेवाली इनके (श्रीराधाके) साथ श्रीकृष्णका प्रेमपूर्वक प्रणत होकर भजन करते हैं, अहो! मैं प्रतिदिन उनके चरण कमलोंको पखारकर उस चरणामृतको अतीव आनन्दके साथ सदा पानकर अपने मस्तकपर धारण करता हूँ।।७।।

श्रीरूप और श्रीसनातन आदि प्रियतम जनोंद्वारा परित्यक्त, सचमुच ही अज्ञानी, अतिशय अन्ध एवं नाना-प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण समुद्रमें निस्सहायरूपसे गिरा हुआ मैं आज दाँतों तले तिनका धारणकर काकुतिके साथ प्रार्थना कर रहा हूँ कि स्वयं श्रीमती राधिकाजी मुझे अपने चरणकमलोंके पास कृपापूर्वक आकर्षण करें।।८।।

मैं व्रजधाममें उत्पन्न दुग्ध आदि भोज्य, वस्त्र और पात्र आदि द्रव्योंसे दम्भरहित होकर अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह करता हुआ नियमपूर्वक श्रीराधाकुण्ड और गिरिराज गोवर्द्धनमें ही वास करूँगा और समय आनेपर प्रियतम सरोवर—श्रीराधाकुण्डके तटपर ही श्रीजीवगोस्वामी आदिके सामने अपने प्राणोंको छोड़ दूँगा।।९।।

मैं 'श्रीरूप' नामक प्रियतमजनके आनुगत्यमें ही उनके पीछे-पीछे निर्ज्जन कुञ्ज आदिमें श्रीलक्ष्मीदेवीकी उज्ज्वल रूपराशिको भी पराभव करनेवाले अतुलनीय रूपसे सम्पन्न श्रीराधिका एवं कन्दर्पसमूह जैसे देदीप्यमान श्रीगिरिधारीकी विविध प्रकारसे आनन्दपूर्वक सेवा करूँगा।।१०।।

किसी अकिञ्चनद्वारा रचित अपने नियम-सूचक इस स्तवको जो श्रीराधाकृष्णके श्रीरूपमें (अथवा प्रेम-परायण श्रीरूपप्रभुमें) अपने चित्तको समर्पणपूर्वक विश्वासके साथ पाठ करेंगे, वे समय होनेपर निश्चय ही व्रजधाममें स्थान लाभकर आनन्दके साथ वास करेंगे और उनके (श्रीरूपप्रभुके) साथ आनन्दपूर्वक निश्चितरूपमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवा करेंगे।।११।।❑

कलि

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

कलि समस्त उपद्रवोंका कारण है

कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं
त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम् ।
प्रायेण मर्त्त्या भगवन्तमच्युतं
यक्ष्यन्ति पाषण्डविभिन्नचेतसः।।

(भा. १२/३/४३)

श्रीमद्भागवतके इस गम्भीर अर्थपूर्ण श्लोकका पाठ करके हमलोग अपने समस्त दुःखोंका कारण समझ सकते हैं। साम्प्रदायिक दीक्षा लाभ करके हम अर्चन मार्गमें प्रवेश करके भी प्रेम लाभ नहीं कर पाते। नाना शास्त्रोंका अध्ययन और अध्यापना करके भी हमलोगोंकी विशुद्ध कृष्णमति नहीं उपजती। अनेक प्रकारके व्रतादिका आचरण करके भी हमलोग निर्मल भक्ति लाभ नहीं कर पाते। गोस्वामी वंशमें जन्म ग्रहण करके भी हम सरल गौरभक्ति अर्जन नहीं कर पाते। वैष्णवके निकट वेषधारण करके भी हम केवल संसारकी उपासना ही करते रहते हैं। कलि ही हमलोगोंके इन समस्त उपद्रवोंका एकमात्र कारण है।

कृष्ण और कृष्णनामके अतिरिक्त दूसरी उपासना पाषण्ड मत है

श्रीकृष्ण समस्त उपास्य देवताओंके उपास्य एवं जगतके परमगुरु हैं। कृष्णोपासना सभी जीवोंका सार्वकालिक कर्त्तव्य होनेपर भी समस्त जीव कलियुगमें पाषण्डकी भाँति और पाषण्ड प्रवृत्तिद्वारा चालित होकर इसे प्रायः भूले रहते हैं और आचरण नहीं करते। श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र भी एक दूसरे श्लोकमें ठीक यही भाव व्यक्त हुआ है—

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान्।।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः।।

(भा. १२/३/४४)

संसारी जीव सर्वदा मृत पुरुषके समान एवं दुःखसे अत्यन्त आकुल रहते हैं। जो परमपुरुष श्रीकृष्णका नाम पतित, च्युत अथवा विवश होकर उच्चारण करता है, वही म्रियमाण जीव समस्त कर्म बन्धनसे मुक्त होकर उत्तम गति लाभ करता है। हाय! कलियुगमें वे लोग भगवानके उस नामरूपी यज्ञसे कृष्णकी उपासना नहीं करते, जो कलिकालमें सर्वश्रेष्ठ और सबसे सहज साधन है।

नामकीर्त्तन ही कर्म–बन्धनसे मुक्तिका उपाय है

मूल तात्पर्य है कि कर्म ही जीवका बन्धन है। उस बन्धनसे मुक्त होनेके लिए नामसङ्कीर्त्तन ही एकमात्र उपाय है। केवल ज्ञान ही जीवकी गति नहीं है। अपितु भक्ति ही जीवकी उत्तम गति है। कलि जीवका इस प्रकारका शत्रु है, जो जीवको इस युगके लिए सर्वश्रेष्ठ साधन हरि–सङ्कीर्त्तनमें स्थिर नहीं होने देता। सङ्कीर्त्तनको कलियुगका एकमात्र औषध कहा गया है। यथा—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।।

(भा. १२/३/५१)

कलि समस्त दोषोंका समुद्र होनेपर भी इसमें एक महान् गुण है; वह यह कि इसके अन्तर्गत कृष्ण-कीर्त्तन करनेसे जीव सहज ही सर्वप्रकारकी सांसारिक आसक्तियोंसे छुटकारा पाकर परा भक्ति प्राप्त करता है।

अब देखो भाई! शास्त्र कहते हैं कि समस्त प्रकारके साधनोंका परित्याग करके कलियुगमें जीवको केवल भगवन्नामादिका कीर्त्तन करना चाहिए। परन्तु फिर कहा है कि कलियुगमें जीव कृष्णनाम कीर्त्तनद्वारा अधिकांश रूपमें उपासना नहीं करेंगे। इसका कारण क्या है?

मनुष्यका मन सङ्कल्प-विकल्पात्मक होता है। वह मन विषयोंपर विचार करके अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको स्थिर करता है; किन्तु चित्तप्रवृत्ति अपराजित रहकर प्रेयः विषयकी ओर दौड़ती है और विवेकको स्थिर नहीं होने देती। अधिकतर लोग विद्याभ्यास करके एवं सन्त लोगोंके सुन्दर उपदेश सुनकर जान पाते हैं कि मद्यपान और मांस भोजन हानिकारक है, किन्तु लालसावश इन सब कार्योंसे अलग नहीं हो पाते। शास्त्रोंका अध्ययन करनेवाले समस्त पण्डितजन जानते हैं कि हरिनामके बिना जीवकी गति नहीं है। फिर भी सामान्य कर्ममीमांसाके वशीभूत होकर विषय-भोगोंमें ही लिप्त रहते हैं। पूर्व जन्मकी एवं आधुनिकी वासनासे चित्तप्रवृत्तिका जन्म होता है।

साधुसङ्ग और नाममें रुचि होनेपर ही चित्तका संयम होता है, युक्तिद्वारा नहीं

अत्यधिक सत्सङ्ग और समालोचनाके बिना चित्त-प्रवृत्तिकी शक्तिका ह्रास नहीं होता। केवल युक्तिसे उत्पन्न विवेक कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव भक्ति मीमांसकगणोंने लिखा है—

स्वल्पापि रुचिरेव स्याद्भक्तितत्त्वावबोधिका।
युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठिता।।

(भ. र. सि. १/१/३२)

जिस जीवकी हरिनाममें थोड़ी भी रुचि अर्थात् चित्तप्रवृत्ति हो गई है, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। केवल युक्ति द्वारा कभी भी भक्ति नहीं होती। वेदमें केवल युक्तिकी अप्रतिष्ठाका ही गान किया गया है।

कलिसे प्रभावित जीवकी हरिनाममें सहज ही रुचि नहीं होती। वे विवेकद्वारा ऐसा सुनते हैं कि—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(वृहन्नारदीय ३८/१२८)

कलियुगमें धर्मके नामपर पापाचार और कपटता

जब चित्तप्रवृत्ति वेश्यालयमें, मद्यपानमें, अथवा स्वर्णके प्रयासमें लगी रहती है, तब कलिसे ग्रसित जीव कर्त्तव्यसे विमुख होकर अपने चरित्रके दोषोंको छिपाते हुए नाना पथोंका अवलम्बन करते हैं और युक्तिद्वारा यह बतलाते हैं कि थोड़ी मात्रामें मद्य और मांस न खानेपर मनुष्यके शरीरमें बलकी कमी हो जाती है। वेश्यागमन इत्यादि जो मानवका निश्चित पाप कार्य है, उसको वे नाना प्रकारसे युक्तिसङ्गत सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। कपटभक्ति दिखलाकर अर्थसंग्रह करते हैं। हरिनाम-कीर्त्तनको एक शुभ कर्म बतलाकर वे हरिसङ्कीर्त्तनका एक दल बनाते हैं और प्लेग, महामारी तथा अन्यान्य पाप-निवृत्तिके उद्देश्यसे सकाम

नगर-कीर्त्तन किया करते हैं। एक ओर कर्मीगण सकाम कर्म करते हैं और दूसरी ओर उसे 'कृष्णार्पणमस्तु' कहकर एक कपट पन्थ निकालते हैं। नास्तिक लोग शून्यकी अथवा शून्यप्राय कल्पित ब्रह्मकी प्रतिष्ठा करके अपनेको धार्मिक कहलवाना चाहते हैं। इसी प्रकार जगतमें प्रतिदिन कपट व्यवहार चल रहा है। तिसपर भी, 'अच्छी वस्तुका आभासमात्र भी अच्छा है'—ऐसा उपदेश देकर वे लोग कपटी वैष्णवोंकी संख्यामें वृद्धि करके कलिकी सेवा कर रहे हैं।

कलिका अधिकार और स्थान निर्णय

कलि ही इन समस्त उपद्रवोंका मूल है। जो कलिकी उपेक्षाकर विशुद्ध भावसे सदाचार करते हैं, केवल वे ही शुद्ध वैष्णव हो सकते हैं। हम अपने कल्याणके लिए कलिके अधिकार एवं स्थानका विचार करेंगे।

श्रीमद्भागवतमें इस प्रकारका वर्णन है कि एक समय महाराज परीक्षितके राज्यमें जब कलि प्रवेश करने लगा, तब परीक्षित महाराजने उसे अपने राज्यमें प्रवेश करनेसे रोककर कहा—अधर्मबन्धो! तुम मेरे राज्यमें कहीं भी स्थान नहीं पा सकते। हाँ, तुम्हें अधर्मके चार स्थानोंको दे रहा हूँ, जहाँ तुम रह सकते हो—

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः।।
(भा. १/१७/३८)

कलिके प्रार्थनानुसार राजाने उसे द्यूतक्रीड़ा (जुआ), मदिरापान, स्त्रीसङ्ग और प्राणिवध—ये जहाँ होते हैं, वे चार स्थान कलिको दिए।

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात् प्रभुः।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरञ्च पञ्चमम्।।
(भा. १/१७/३९)

पुनः ये चारों जहाँ एकत्र पाए जायँ, वह स्थान माँगनेपर राजाने उसे स्वर्ण, तत्पश्चात् असत्य व्यवहार, मद, काम, रज और वैर—ये कतिपय स्थान और भी दिए।

कलिपञ्चक और उसके चार स्थान

इन सब बातोंपर भली-भाँति विचार करके देखिए। यदि कलिसे दूर रहकर हरिभजनकी इच्छा होती है तो द्यूतक्रीड़ा स्थान, मद्यपान, स्त्रीसङ्ग और प्राणी-हिंसासे दूर रहना आवश्यक है। सर्वत्र ही स्वर्ण अर्थात् अर्थका ही प्रयोजन है। वहाँ स्वभावतः ही असत्य-व्यवहार, मद, काम, रज, वैर आदि उपस्थित रहते हैं। उपरोक्त चारोंकी पृथक्-पृथक् आलोचना होनेपर ही विषय स्पष्ट हो सकेगा।

(१) कलिका स्थान—द्यूतक्रीड़ा

सर्वप्रथम द्युतक्रीड़ा (जुआ) के स्थानका विचार किया जा रहा है। निर्जीव वस्तुद्वारा जिस स्थानपर क्रीड़ा होती है, वही द्यूतक्रीड़ाका स्थान है। ताश, पाशा, शतरञ्ज, कैरम्बोर्ड आदि जितनी प्रकारकी क्रीड़ाएँ हैं, उन सबके स्थानोंको द्यूतक्रीड़ाका स्थान कहा जाता है। आधुनिक लॉटरी-घरको भी द्युतक्रीड़ाका स्थान कहा गया है। नल राजा, युधिष्ठिर, दुर्योधन, शकुनि आदि राजाओंका इतिहास पढ़ने-सुननेसे देखा जाता है कि द्यूतक्रीड़ाके स्थानपर चोरी, कपटता आदि उपायद्वारा अर्थलाभके लिए भीषण कलह और सर्वनाश हो गया है। आजकल भी जो समस्त क्रीड़ास्थल हैं, उन सब स्थानोंमें अधिकांश लोगोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबका नाश होता देखा जाता है। इन सब क्रीड़ाओंमें जो रत रहते हैं—वे बड़े आलसी और कलहप्रिय होते हैं। उनके द्वारा कोई भी धार्मिक कार्य

नहीं हो सकता। अतएव द्यूतक्रीड़ाके स्थानमें कलिका निवास है, इसमें सन्देह ही क्या है? मार्गमें चलते-चलते हम बहुत-सी दुकानोंको देखते हैं, जहाँ कुछ व्यक्ति एकत्र होकर ताश, शतरञ्ज या पाशा क्रीड़ा खेला करते हैं। उसमें दुकान-मालिक भी सम्मिलित हो जाते हैं। फल यह होता है कि अपने ग्राहकोंको समयानुसार माल न दे पानेके कारण सन्तुष्ट नहीं कर पाते और इस प्रकार धीरे-धीरे ग्राहकोंकी संख्या कम हो जाती है एवं थोड़े समयमें ही दुकान बन्द हो जाती है। कभी-कभी दुकानदार उन क्रीड़ाओंमें इतने व्यस्त हो जाते हैं कि चोर सुयोग देखकर दुकानकी चीजोंको चुराकर भाग जाते हैं। इसके अतिरिक्त दुकानदारके साथ जो खेलने आते हैं, वे लोग भी दुकानके द्रव्योंको धीरे-धीरे लुका-छिपाकर चुरा लेते हैं और इस प्रकार दुकानदारकी बड़ी हानि करते हैं। देखो भाई, द्यूतक्रीड़ा कितना भयानक है। अनेक सज्जन पुरुष भी कुसङ्गमें पड़कर द्यूतक्रीड़ाके स्थानोंमें प्रवेश करते हैं और अन्तमें दुर्जन हो जाते हैं। जो धार्मिक अथवा भक्त बननेकी इच्छा रखते हैं, उनको द्यूतक्रीड़ाके स्थानोंका अवश्य ही परित्याग करना चाहिए।

(क्रमशः)

भगवानकी अप्रकट-लीलाका रहस्य

(पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४५, संख्या ४, पृष्ठ ८० से आगे)

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

श्रीमद्भागवत (११/३१/११-१३) में श्रीशुकदेव गोस्वामीकी परीक्षितके प्रति उक्तिकी व्याख्या—

सर्वकारणकारण श्रीकृष्णकी देहधारी मरणशील व्यक्तियोंके बीच जो आविर्भाव-तिरोभाव चेष्टा है, वह नटकी लीलाकी भाँति है। वे स्वयं अविकृत रहकर अपनी मायाशक्तिके बलसे अभिनय मात्र करते हैं। वे स्वयं इस जगतकी सृष्टि कर अन्तर्यामीके रूपमें उसमें अनुप्रवेश कर प्रपञ्चमें उदित हुई लीलासे उपरत होकर अपनी महिमाके बलसे अपने नित्य अप्रकट राज्यमें अधिष्ठित रहते हैं। इसके अतिरक्त कोई दूसरा अर्थ नहीं समझना होगा, क्योंकि इसी अवतारमें अत्यन्त अधिक प्रभाव देखा गया है। कोई ऐसा कह सकते हैं कि यदि भगवान अपनी रक्षा करनेमें समर्थ होते तो वे अपने शरीरके साथ थोड़ी देर और भी क्यों नहीं रह सके? इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि भगवान यद्यपि सर्वशक्तिमान हैं और सर्वशक्तिमान होनेके कारण वे अनन्त जगतोंमें सृष्टि, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं। तथापि प्राकृत मरणशील शरीरके द्वारा कोई कार्य नहीं हो सकता—ऐसा सोचकर उन्होंने केवल आत्मनिष्ठोंकी दिव्यगति दिखलाकर मर्त्य-यादवोंका संहार करनेके पश्चात् अपने शरीरको भी पृथ्वीलोकमें रखना नहीं चाहा, बल्कि उसे अपने निज-धाममें ही ले आये। अन्यथा पूर्वोक्त

आत्मनिष्ठगण भी दिव्य गति लाभको अनादरपूर्वक योग-विभूतिके बलसे निज-निज देहसिद्धिका विधान करके इस प्रापञ्चिक संसारमें स्थायी रूपमें रहनेके लिए चेष्टा न करने लगें—ऐसी कोई आशङ्का न उत्पन्न हो जाय, इसीलिए भगवानकी अन्तर्द्धान लीला है अर्थात् कोई ऐसा नहीं करे, इसी उद्देश्यसे भगवानने अन्तर्द्धान लीला की है।

—(श्रीधरस्वामी)

तनुभृज्जननवदाप्ययवच्च ईहा तनुभृज्जननाप्ययेहा।
प्रजापतिश्चरति गर्भेअन्तः अजायमानो बहुधा विजायते।।

इति च।

अजातो जातवद्विष्णुरमृतमृतवत् तथा।
मायया दर्शयेन्नित्यमज्ञानां मोहनाय च ।।

इति ब्राह्मे ।

जगतो मोहनार्थाय भगवान् पुरुषोत्तमः।
दर्शयेन्मानुषीं चेष्टां तथा मृतकवद्विभुः।।
प्रकाशयेददेहोऽपि मोहाय च दुरात्मनाम्।
मायया मृतकं देहं तदा सृष्ट्वा प्रदर्शयेत्।।
कुतो हि मृतकं तस्य मृत्यभावात् परात्मनः।

इति च।

जीवविष्णोरभेदश्च देहयोगवियोजने।
विष्णोर्दुःखं ब्रणित्वादि पराभवस्तथैव च ।।
अस्वातन्त्र्यञ्च वेदादावुक्तवद् भासते विभोः ।
क्वचित्क्वचिद्विमोहाय दैत्यानां सुदुरात्मनाम।।

इति ब्रह्माण्डे।

अग्रावन्तर्दधे भैष्मी सत्यभामा वने तथा। न तु
देहवियोगोऽस्ति तयोः शुद्धचिदात्मनोः।।

इति च"।

अर्थात् तनुभृज्जननाप्ययेहा—शब्दका तात्पर्य शरीरधारियोंके जन्मग्रहणकी एवं मृत्यु होनेकी भाँति चेष्टासे है। श्रुति कहती है—"समस्त जीवोंके ईश्वर विष्णु ब्रह्माण्डके भीतर विराजमान हैं। वे जन्मरहित होनेपर भी बद्धजीवोंकी भाँति अनेक रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं।" ब्रह्माण्ड पुराणमें भी ऐसा कहा गया है कि भगवान विष्णु मायाके बलसे अज्ञ व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिए जन्म न लेने पर भी जन्मे हुए जीवोंकी भाँति एवं बिना मरे हुए ही मरे हुए जीवोंकी भाँति अपनेको दिखलाते हैं। अन्यत्र भी—भगवान पुरुषोत्तम ही जगतको मोहित करनेके लिए मनुष्यकी तरह चेष्टा करते हैं, अर्थात् लीला करते हैं। पुनः विभु विष्णु स्वयं जड़ शरीर धारण किए बिना ही दुष्टोंको मोहित करनेके लिए मरणशील जीवोंकी भाँति प्रकाशित होते हैं। उस समय वे अपनी मायाके बलसे अपने जैसा एक मृत शरीर सृष्ट करके छोड़ आते हैं। वास्तवमें परमात्मा श्रीहरि अमृत-स्वरूप हैं, अतएव उनका मृत शरीर कैसे सम्भव है? ब्रह्माण्ड पुराणमें भी ऐसा कहा गया है—"वेदोंमें कहीं-कहीं सुदुरात्मा दैत्योंको मोहित करनेके लिए 'जीव और ईश्वर-विष्णु अभिन्न हैं, जीवोंकी भाँति विष्णुका भी जन्म और मरण होता है, जीवोंकी भाँति उनको भी दुःख होता है, उन्हींकी भाँति विपक्षके बाणोंसे उनके शरीरमें छिद्र हो जाते हैं, उनकी पराजय होती है, दूसरोंके अधीन हो जाते हैं'—इत्यादि मानों आपात् दृष्टिसे ही कथित हुआ है।" शुद्धचिदात्मा होनेके कारण प्राकृत जीवोंकी भाँति उनका शरीर-त्याग नहीं है।

—(श्रीमध्वाचार्यकृत भागवत-तात्पर्य)

जब यादवोंमें ही प्राकृतत्व नहीं था, तब राम और कृष्णके सम्बन्धमें कहना ही क्या

है? ऐसा सिद्धान्त स्थापन करते हुए कहते हैं, जो यादवगण तदीय-देह हैं, अर्थात् शुद्ध भागवत शरीरधारी पार्षद हैं, उनके आविर्भाव और तिरोभावकी चेष्टाओंको केवलमात्र कृष्णकी भाँति मायानुकरण ही समझना चाहिए। जिस प्रकार कोई जादूगर अपने या दूसरोंके जीवित शरीरको मार डालता है या जला देता है और फिर उसे जीवित दिखला देता है, ठीक उसी प्रकार भगवान दिखलाते हैं, वास्तवमें न तो उनका जन्म होता है, न मरण ही। भगवान विश्वकी सृष्टिके मूल कारण हैं, वे अचिन्त्य शक्तिमान हैं। उनके लिए वैसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसी प्रकार 'सीतयाराधितो बह्निच्छाया सीतामजीजनत्। तां जहार दशग्रीवः सीता बह्निपुरं गता। परीक्षा-समये बह्निं छाया सीता विशेष सा। बह्निं सीता समानीय तत्पुरस्तादनीनयं।।'—इस वृहदग्निपुराणके वचनके अनुसार प्राकृत जीव रावण द्वारा अपहृत भगवल्लक्ष्मी श्रीसीतादेवीके हरणकी मायिकी या मिथ्यालीलाका दृष्टान्ताभास एवं श्रीसङ्कर्षणके प्रति मोहित लोगोंकी अन्यथा प्रतीतिका दृष्टान्ताभास—ये दोनो स्थल भी प्राकृत लोगोंको मोहित करनेके लिए ही उस रूपमें वर्णित हैं। ऐसे-ऐसे वर्णनोंसे विज्ञ-भक्तजन मोहित नहीं होते।

अप्राकृत यादवोंकी तो बात ही क्या है, जो कृष्णके पाल्यजन हैं, उनकी भी मृत्यु सम्भव नहीं है। वही कृष्ण क्या अपने निजजन यादवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं थे? अवश्य थे, अतएव यादवोंकी शरीर-त्याग लीलाका दर्शन तात्त्विक-लीलानुगत नहीं है; उन लोगोंका सशरीर ही गोलोक-गमन युक्ति-सङ्गत और शास्त्रसिद्ध है।

यहाँ पर कोई-कोई ऐसा प्रश्न कर सकते हैं कि मान लिया कि यादवगण सशरीर ही स्वधाममें चले गये; परन्तु जब भगवान विराजमान थे, तब उन लोगोंको तो भगवद्विरह दुःख नहीं था; इसके अतिरिक्त यदि भगवान अपने प्रियजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ थे, तो ऐसी दशामें वे मर्त्यलोकके प्रति अनुग्रह करनेके लिए यादवोंके समान अन्यान्य पार्षदोंको आविर्भूत करा कर उनके साथ वे कुछ समय और भी क्यों नहीं मर्त्यलोकमें प्रकट रहे? इसके सुसिद्धान्तपूर्ण उत्तरमें इस श्लोक द्वारा यह दिखलाया गया है कि भगवान और यादवोंकी आपसमें जो प्रीति थी, वह अव्यभिचारी है—'यद्यपि भगवान अशेष शक्तिमान हैं, तथापि वे यादवोंको अन्तर्हित कर स्वयं ऐसा सोचते हैं कि यादवोंके बिना इस मर्त्यलोकमें मेरा क्या प्रयोजन है? ऐसा सोच करके ही उन्होंने यादवोंकी गतिका अनुसरण करना ही अच्छा समझा तथा थोड़ी देरके लिए भी अपने शरीरको इस मर्त्यलोकमें रखनेकी इच्छा नहीं की; बल्कि उसी समय स्वयं सशरीर अपने नित्यधामको पधारे।'❑

—(क्रम सन्दर्भ)

(क्रमशः)

श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर

पुरुषोत्तम मासमें पालनीय नियमोंके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

हविष्यान्नं च भुञ्जीत प्रयतः पुरुषोत्तमे।
गोधूमाः शालयः सर्वाः सितामुद्गायवास्तिलाः।।
कलायकंगुनीबारा वास्तुकं हिलमोचिका।
आद्रकं कालशाकञ्च मूलं कन्दञ्चकर्कटीम्।।
रम्भासैन्धवसामुद्रे लवणे दधिसर्पिषी।
पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्रहरीतकी।।
पिप्पलीजीरकञ्चैव नागरं चैव तिन्तिड़ी।
क्रमुकं लवलीधात्री फलान्यगुडमैक्षवम्।।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यं प्रवदन्ति च।
हविष्यभोजनं नृणामुपवाससमं विदुः।।

व्रतका पालन करनेवालेको हविष्यान्न भोजन करना चाहिए। गेहूँ, चावल, शालि चावल, मूँग, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शहतूत, ककड़ी, केला, कन्द, कटहल, आम, आँवला, अदरख, घी, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, सुपारी, सेंधा नमक, इमली, ईखसे बनी चीनी, मिश्री और बिना तेलसे बने व्यञ्जन—ये सब हविष्यान्न भोजन और उपवास दोनोंका एक ही प्रकारका फल होता है।

परित्याज्य वस्तु और आचरण

सर्वामिषाणि मांसञ्च क्षौद्रं सौवीरकं तथा।
राजमासादिकं चैव राजिका मादकं तथा।।
द्विदलं तिलतैलञ्च तथान्नं शाल्यदुषितम्।
भावदुष्टं क्रियादुष्टं शब्ददुष्टं चवर्जयेत्।।
परान्नञ्च परद्रोहं परदारगमं तथा।
तीर्थं बिना प्रयाणञ्च परदेश परित्यजेत्।।
देव वेदद्विजानञ्च गुरुगोव्रतिनां तथा।
स्त्रीराजमहतां निन्दा वर्जयेत् पुरुषोत्तमे।।

सब प्रकारकी मछलियाँ और आमिष जातीय द्रव्य, मांस, मधु, सेम, राई, सरसों और सब प्रकारके मादक द्रव्योंका परित्याग करना चाहिए। मसूर और कलाई (उड़द) की दाल, तिल, तैल, कंकड़ युक्त अन्न, भाव–दुष्ट, क्रिया–दुष्ट और शब्द–दुष्ट पदार्थोंका वर्जन करना चाहिए। बासी अन्नका भोजन, परद्रोह, परस्त्री गमन, तीर्थ यात्राको छोड़कर दूर देश या परदेशमें गमन—इन सबका परित्याग करना चाहिए। पुरुषोत्तम मासमें देवता, वेद, गुरु, गो, व्रती मनुष्यों, स्त्रियों, राजा और सज्जनोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

आमिष किसे कहते है?

प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम्।
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा।।
अजागोमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादि चामिषम्।
द्विज–क्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा।।
ताम्र–पात्रस्थितं गव्यं जलं चर्मणि संस्थितम्।
आत्मार्थं पाचितं चान्तमामिषं तद्बुधैः स्मृतम्।।

जीव–जन्तुओंके अङ्गसे प्रस्तुत किया हुआ चूर्ण, जँबीरी नीबू, मसूर, दूषित या बासी अन्न; बकरी, गाय और भैंसके दूधके अतिरिक्त अन्य दूध, मिट्टीसे तैयार किया गया नमक, ताँबेके बर्तनमें गायका दूध, चमड़ेमें रखा हुआ पानी अर्थात् भिस्तीका पानी, और केवल अपने लिए ही पकाया हुआ अन्न—इन सबको आमिष

माना गया है। पुरुषोत्तम मासमें इनका वर्जन करना चाहिए।

रजस्वलां त्यजन् म्लेच्छपतितैर्व्रात्यकैः सह।
द्विजद्विट्वेदबाह्यैश्च न वदेत् पुरुषोत्तमे।।
एभिः दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत्।
द्विपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्यात् पुरुषोत्तमे।।
पलाण्डुं लशुनं मुस्तां छत्राकं गृञ्जनं तथा।
नालिकं मूलकं शीघ्रं वर्जयेत् पुरुषोत्तमे।।
यद्–यद् यो वर्जयेत् किञ्चित् पुरुषोत्तमतुष्टये।
तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्वा भक्षयेत् सर्वदैव हि।।

रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, पतित, धर्मभ्रष्ट, संस्कारशून्य, द्विज–द्रोही और वेद–निन्दक—इनसे बातचीत नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोगों, कुत्तों और कौवोंकी दृष्टिसे दूषित अन्न, सूतकका अन्न, दुबारा पकाया हुआ अन्न तथा जलाया हुआ अन्न या पदार्थ नहीं खाना चाहिए। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर और सजना आदिका त्याग करना चाहिए।

पुरुषोत्तम, कार्तिक और माघ—इन तीनों मासोंके एक ही कृत्य हैं

ब्रह्मचर्यमधः शय्यां पत्रावल्यांच भोजनम्।
चतुर्थकाले भुक्तिं च प्रकुर्यात् पुरुषोत्तमे।।
कुर्यादेतांश्च नियमान् व्रती 'कार्त्तिकमाघयोः'।
पुण्येहि प्रातरुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीःक्रियाः।।
गृह्णीयान्नियमं भक्त्या श्रीकृष्णञ्च हृदिस्मरन्।
उपवासस्य नक्तस्य चैकभुक्तस्य भूपते।।
एवञ्च निश्चयं कृत्वा व्रतमेतत् समाचरेत्।।

पुरुषोत्तम मासमें ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए अर्थात् स्त्रीसङ्गसे सर्वथा दूर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त जमीन पर सोना, पत्तलमें भोजन तथा चतुर्थ याममें भोजन करना उत्तम है। कार्त्तिक और माघ मासमें भी इन्हीं नियमोंके अनुसार व्रत–पालन करना चाहिए। प्रातःकाल उठकर पौर्वाह्णिकी क्रिया करके श्रीकृष्णको भक्तिपूर्वक हृदयमें स्मरणकर पूर्वोक्त नियमोंको ग्रहण करना चाहिए। व्रत तीन प्रकारके होते हैं—उपवास, नक्त हविष्यान्न ग्रहण और एक बार भोजन। इन तीनोंमें से व्रत आचरणकारीके लिए जो करणीय जान पड़े उसे स्थिरकर व्रतका आचरण करना चाहिए।

पुरुषोत्तम माममें श्रीभागवत–श्रवण और व्रत पालनका फल

श्रीमद्भागवतं भक्त्या श्रोतव्यं पुरुषोत्तमे।।
तत्पुण्यं वचसा वक्तुं विधाता हि न शुक्नुयात्।
शालग्रामार्चनं कार्यं मासे श्रीपुरुषोत्तमे।।
एतन्मासव्रतं राजन् श्रेष्ठ क्रतुशतादपि।
क्रतुं कृत्वाप्नुयात् स्वर्ग गोलोकं पुरुषोत्तमे।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राणि सर्वदेवताः।
तद्देहे तानि तिष्ठन्ति यः कुर्यात् पुरुषोत्तमम्।।

श्रीपुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करना चाहिए। श्रीमद्भागवत श्रवणका पुण्य स्वयं विधाता ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते। उस समय भक्तजन श्रीशालग्राम शिलाका अर्चन करेंगे। इस मासका व्रत यज्ञकी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि यज्ञसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है और पुरुषोत्तम व्रतका पालन करनेवालोंके शरीरमें सभी तीर्थ, सभी क्षेत्र और सभी देवता निवास करते हैं।

दीपदान और उसका फल

कर्त्तव्यं दीप दानं च पुरुषोत्तम–तुष्टये।
तिल–तैलेन कर्त्तव्यं सर्पिषा वैभवे सति।।
तयोर्मध्ये न किञ्चित्ते कानने वसतोऽधुना।
इङ्गुदीजेन तैलेन दीपः कार्यस्त्वयानघ।।
योगो ज्ञानं सांख्यं तन्त्राणि सकलान्यपि।

पुरुषोत्तम दीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।

पुरुषोत्तमकी प्रीतिके लिए दीप प्रदान करना कर्त्तव्य है। धन रहनेपर घीका दीपक देना चाहिए, अन्यथा तिल तेलका देना चाहिए। हे मनिग्रीव! तुम्हारे वनवासमें घी या तिल तेल—ये दोनों नहीं मिल सकेंगे, अतएव तुम इंगुदि तेलका प्रदीप दान कर सकते हो। अष्टाङ्ग योग, ब्रह्मज्ञान और सांख्यज्ञान एवं समस्त तान्त्रिक क्रिया—ये सब पुरुषोत्तम मासमें दीपदानकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होते।

पुरुषोत्तम मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी और अष्टमी तिथियोंका विशेष महत्व

इस व्रतके उद्यापन (समाप्तिपर किया जानेवाला कृत्य) के सम्बन्धमें बाल्मीकिजी कहते हैं—महाराज! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी या अष्टमी तिथिको पुरुषोत्तम मासमें इस व्रतका उद्यापन करना चाहिए। विशुद्ध भक्त-ब्राह्मणको निमन्त्रित करके स्थिर चित्तसे उद्यापन क्रिया करनी चाहिए। पंच-धानोंसे अतिशय सुन्दर मण्डलकी रचना करनी चाहिए। मण्डलके ऊपर चार कलस स्थापन करके चतुर्व्यूहकी प्रीतिके लिए उनके ऊपर फल (नारियल आदि) रखना चाहिए। सुन्दर वस्त्रोंमें लपेटे हुए पान द्वारा चतुर्व्यूहकी स्थापना करनी चाहिए। श्रीराधामाधवकी कलसके साथ स्थापना करनी चाहिए। चतुर्व्यूहका जप करके चारों दिशाओंमें चार प्रदीप प्रज्ज्वलित करना चाहिए।

अर्घ्य-मंत्र और नमस्कार-मंत्र

क्रमानुसार श्रद्धाभक्तिपूर्वक पत्नीके साथ नारियल आदिका अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्यका यह मन्त्र है—

देव-देव नमस्तुभ्यं पुराण-पुरुषोत्तम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहित हरे।।

निम्नलिखित मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—

वन्दे नवधन-श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्।
पीताम्बरधरं देवं साराधं पुरुषोत्तम्।।

नीराजन, ध्यान और पुष्पांजलिका मंत्र

उसके पश्चात तिलसे होम करके नीराजन करना चाहिए। नीराजन-मन्त्र इस प्रकार है—

निराजयामि देवेशमिन्दीवर दलच्छविम्।
राधिका-रमणं प्रेम्णा कोटि-कन्दर्प सुन्दरम्।।

ध्यानका मन्त्र—

अन्तर्ज्योतिरनन्तरत्नरचिते सिंहासने संस्थितं
वंशीनादविमोहितव्रजवधू वृन्दावने सुन्दरम्।
ध्यायेद् राधिकया सकौस्तुभमणिप्रद्योतितोरस्थलं
राजदरत्नकिरीटकुण्डलधरं प्रत्यग्रपीताम्बरम्।।

इस प्रकार ध्यान करके पुष्पाञ्जलि देना चाहिए और नीचे के मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—

नौमि नवघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् ।
श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम्।।

इन सबके पश्चात् भक्त ब्राह्मणको पूर्णपात्र दान करके आचार्यको दक्षिणा देनी चाहिए। उसके बाद दान देना चाहिए। इस समय उपयुक्त वैष्णव-ब्राह्मणको श्रीमद्भागवत दान करनेकी विधि है। ब्राह्मणको संपुटित काँसेका वर्तन देना चाहिए। उसके बाद ब्राह्मणोंको घृत-पायस (खीर) भोजन करना चाहिए। अन्तमें सबको प्रसादका अन्न वितरणकर अपने स्वजनोंके साथ भोजन करना चाहिए। उद्यापनपूर्वक व्रतके नियमोंका परित्याग करना चाहिए। ❑

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी

प्रभुका स्वरूप प्रकाश एवं अद्वैताचार्यका स्वप्न

अब प्रभुने व्याकरण पढ़ाना बन्द कर दिया। वे छात्रोंके साथ मिलकर उन्मत्त होकर कीर्तन करने लगे। कीर्तनकी ध्वनि सुनकर आप-पासके लोगोंकी भीड़ एकत्रित हो गयी। सभीने देखा कि सभी छात्र प्रभुको घेरकर कीर्तन कर रहे हैं तथा उनके मध्य प्रभु आविष्ट होकर नृत्य कर रहे हैं। नृत्य करते-करते कभी जमीन पर लोट-पोट खाने लगते हैं तो कभी 'और बोलो और बोलो' कहते हुए केलेके पेड़की भाँति पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ते हैं। वहाँ पर उपस्थित भक्तवृन्दने जब प्रभुकी ऐसी अवस्थाका दर्शन किया तो उन्हें अति आश्चर्य हुआ। वे विचार करने लगे कि निमाई पण्डित जैसे एक उदण्ड व्यक्तिके शरीरमें जो प्रेमके विकार दिखाई पड़ रहे हैं, ये तो नारद आदिके लिए भी दुष्कर हैं, तो फिर ये कौन हैं? इस प्रकार अनेक लोगोंके हृदयमें अनेक प्रकारके प्रश्न उठने लगे। कुछ क्षण पश्चात् प्रभु शान्त हो गये अर्थात् उन्होंने अपने भावोंको छिपा लिया। फिर भी सब समय उनके श्रीमुखसे कृष्ण-कृष्ण ही निकल रहा था। वे जिस किसी वैष्णवको अपने सम्मुख देखते उसके गलेसे लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगते। प्रभुकी ऐसी अवस्थाका दर्शनकर भक्तोंका हृदय भी द्रवित हो जाता। सभीने बड़े कष्टसे प्रभुको शान्त किया तथा आनन्दित होकर अपने-अपने घर चले गये।

अद्वैताचार्य अपने भक्तिके प्रभावसे जान ही गये थे कि स्वयं कृष्ण ही निमाई पण्डितके रूपमें अवतरित हुए हैं। परन्तु फिर भी उन्होंने इसे किसीके सामने व्यक्त नहीं किया। अब ये सब बातें उनके कानोंमें पहुँची तो वे आनन्दित होकर सबसे कहने लगे—"भाइयो! आज रात मेरे साथ एक अद्भुत घटना घटी। उसे मैं तुमलोगोंके समक्ष व्यक्त कर रहा हूँ, तुमलोग सुनो। कल मैं जब गीतापाठ कर रहा था तो एक श्लोकका अर्थ ठीक प्रकार समझ नहीं पा रहा था। इससे मेरा मन अत्यन्त क्षुब्ध हो गया तथा दुःखी होकर मैं बिना भोजन किए ही सो गया। मध्य रात्रिके समय मेरे पास एक दिव्य महापुरुष आये तथा बाले—"हे आचार्य! उठो, तथा उस श्लोकका प्रकृत अर्थ सुनो। ऐसा कहकर उन्होंने अति सुन्दर ढंगसे श्लोकका अर्थ समझा दिया। तुमने जिन्हें धरा धामपर प्रकट करानेके लिए प्रतिज्ञा की थी वे श्रीकृष्ण अब तुम्हारे समक्ष प्रकट होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करने वाले हैं। इसलिए अब तुम्हें दुःखी होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आज तक तुमने जितने उपवास, जितनी पूजा-अर्चना की तथा "कृष्ण-कृष्ण" कहते हुए जितना क्रन्दन किया वह आज पूर्णरूपसे सफल हो गया। अब तो सम्पूर्ण देशमें, नगर-नगर एवं घर-घरमें

कृष्णनाम संकीर्तनकी गूंज सुनाई पड़ेगी। ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ भक्ति अब तुम्हारी कृपासे जगत वासियोंको सहज रूपमें ही प्राप्त हो जाएगी। अतः अब तुम भोजन करो। मैं जाता हूँ तथा पुनः भोजनके समय आऊँगा। ऐसा कहते ही मेरी आँखें खुल गई तथा सामने देखा तो वे महापुरुष अन्य कोई नहीं, अपितु वे विश्वम्भर ही मेरे समक्ष विराजमान थे। परन्तु अगले ही क्षण वे अन्तर्धान हो गये। मैं कृष्णकी लीलाओंको समझ नहीं पाता हूँ। कब, कैसे एवं किसके समक्ष वे स्वयंको प्रकाशित करेंगे, इसे समझना बहुत कठिन है। मुझे इसके बाल्यकालकी एक घटना याद है। जब इनके बड़े भाई विश्वरूप मेरे निकट गीताका अध्ययन करनेके लिए आते थे, एक दिन ये उन्हें बुलानेके लिए आए। मैंने जब इनका दर्शन किया तो मंत्रमुग्धकी भाँति अपलक नेत्रोंसे इनके मुखचन्द्रको निहारता ही रह गया। ये तो अपने भाईके साथ अपने घर चले गये, परन्तु अपने साथ मेरे मनको भी हरण कर ले गये। उस समय अनायास ही मेरे मुखसे निकल पड़ा—इसे कृष्णभक्ति प्राप्त हो। आज आप सबलोगोंके मुखसे विश्वम्भरके विषयमें सुना तो बहुत आनन्द हुआ। आप सभीलोग उनपर कृपा करें कि उनकी भक्ति इसी प्रकार नित्य-निरन्तर बढ़ती रहे।" इस प्रकार सभी वैष्णववृन्द आनन्दित होकर अद्वैताचार्यजीको प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गये।

प्रभुकी बढ़ती हुई अवस्थासे भक्तोंका आनन्द तथा प्रभुकी वैष्णव सेवा

इस प्रकार नवद्वीपके घर-घरमें एक ही चर्चा सुनाई पड़ रही थी—निमाई पण्डित धन्य हो गये, जो इन्हें ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ भक्ति प्राप्त हुई। आज तक जो वैष्णव उनके सामने जानेमें भयसे कतराते थे, आज उन वैष्णवोंको मार्गमें यदि प्रभुके दर्शन हो जाते तो वे श्रद्धा पूर्वक उन्हें प्रणाम करते तथा उनकी इच्छा होती कि वे सब समय उनके साथ ही रहें। इस प्रभुकी भविष्यवाणी आज सत्य हो गई। प्रभु जब प्रातःकाल गङ्गा स्नानको जाते हैं, तो वहाँपर श्रीवासादि वैष्णवोंका दर्शन होनेपर उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते तथा वे भी स्नेहपूर्वक प्रभुको 'कृष्णभक्ति' प्राप्तिका आशीर्वाद देते हुए उन्हें उपदेश प्रदान कहते—"पुत्र! कृष्ण ही सारे जगतके पिता हैं, वे ही सबके जीवन हैं। तुम सर्वदा अपने श्रीमुखसे उनके नामोंका, कथाओंका गान करो तथा कानोंसे उनकी पवित्र कथाओंका श्रवण करो। एक बात सर्वदा स्मरण रखना कि यदि कृष्णका भजन किया तो तभी विद्या, सुन्दरता, लोभ, वैराग्य आदि गुण सार्थक हैं, अन्यथा ये सभी गुण निरर्थक हैं। केवल ये गुण हमें जन्म-मृत्युके चक्करसे बाहर नहीं निकाल सकते।" इन आशीर्वचनोंको सुनकर प्रभु बहुत आनन्दित होकर कहते—"आपलोग सत्य कह रहे हैं कि मनुष्य-जन्मकी सार्थकता कृष्ण भजनमें ही है। परन्तु मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं अपनी चेष्टासे कृष्णभक्ति प्राप्त कर सकूँ। आप सभी भगवानके प्रियजन हैं। भगवान आप जैसे भक्तोंके वशमें रहते हैं। यदि किसी पर आप कृपा करें तो कृष्णभक्ति दुर्लभ होते हुए भी उसे सहज रूपमें ही प्राप्त हो जाती है। भगवानको प्रसन्न करनेका एकमात्र

उपाय है—वैष्णव सेवा। अतः आपलोगोंकी सेवासे कृष्णभक्ति प्राप्त हो सकती है।" ऐसा कहकर प्रभु किसीके चरणस्पर्श करने लगते, तो किसीके भीगे वस्त्रोंको प्रीतिपूर्वक धोकर निचोड़कर उनको देते। किसीकी धोती, आसन आदि वस्तुओंको लेकर उन्हें उनके घर तक पहुँचा देते। उन्हें ऐसा करते देख वे लोग "हाय-हाय" करने लगते। परन्तु विश्वम्भर थे कि मानते ही नहीं। एक दो दिन नहीं, प्रतिदिन प्रभु अपने सेवकोंकी ऐसी सेवा करते थे। इसीमें उन्हें अपार आनन्द होता था। यही भगवानका भक्तवात्सल्य है। परन्तु हाय-हाय! यदि कोई ऐसे भक्तवत्सल भगवानका भजन न करे, अपने दुर्लभ मनुष्यजन्मको स्वार्थी संसारकी सेवामें लगा दे तो उसके दुर्भाग्यके विषयमें क्या कहा जाए। वह तो—"जीवन्नपि मृतो हि सः" अर्थात् जीवित अवस्थामें ही मरे हुए के समान है। भगवान अपने भक्तोंके लिए क्या नहीं करते। भगवानको शास्त्रोंमें समदृष्टिसम्पन्न बताया गया है अर्थात् उनका किसीसे द्वेष नहीं है। परन्तु अपने भक्तोंके लिए वे अपनी इस प्रतिज्ञाको भी त्याग देते हैं। जिस प्रकार दुर्योधनकी कृष्णसे व्यक्तिगत किसी प्रकारकी शत्रुता नहीं थी, परन्तु अर्जुनसे शत्रुता होनेके कारण कृष्णने उसका त्यागकर दिया, जिसके फलस्वरूप वह सवंश ध्वंस हो गया। भक्तोंका नित्य स्वभाव है कि वे कृष्णसेवाके अतिरिक्त कुछ नहीं जानते तथा भगवानका भी नित्य स्वभाव है कि वे भक्तोंके अतिरिक्त किसीको नहीं जानते। भगवान अपने भक्तोंके इस प्रकार वशीभूत हो जाते हैं कि यदि भक्त उन्हें बेचना भी चाहें, तो वे चुपचाप बिक जाते हैं। जिस प्रकार सत्यभामाने उन्हें नारदजीको बेच दिया था। इसका एकमात्र कारण था—भगवानकी भक्तवश्यता। आज वे ही प्रभु अपने स्वभावके अनुरूप अपने भक्तोंके सेवा कर रहे हैं, परन्तु कोई उन्हें पहचान नहीं पा रहा है।

वे प्रभुके विनय एवं सेवाभावसे प्रसन्न होकर बोले—"पुत्र! तुम सर्वदा कृष्णकीर्तन करो। हम सभी भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि निरन्तर तुम्हें कृष्णकी स्फूर्ति होती रहे। जो पाषण्डी वैष्णवोंको देखकर उनका परिहास करते हैं तथा नामका एवं भक्तिका अनादर करते हैं, वे भी तुम्हारे द्वारा कृष्णरसमें डूब जाएँ। हमारी इच्छा है कि जिस प्रकार विद्याके बलसे तुमने सारे जगतको जीत लिया था, उसी प्रकार भक्तिके बलसे भी समस्त पाषण्डियोंका संहार कर दो अर्थात् उनके हृदयको शुद्धकर उन्हें अपने ही भावसे विभावित कर दो। इस समय सारे नवद्वीपमें जितने भी पण्डित, तपस्वी, ज्ञानी, सन्नयासी इत्यादि हैं, उनमेंसे कोई भी भक्तिकी चर्चा तक नहीं करते, बल्कि हमलोगोंको तुच्छ मानते हैं। समय-समयपर हमारा अपमान करते हैं, जिससे वैष्णवोंको बहुत कष्ट होता है। अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भगवान हमपर संतुष्ट हो गए हैं, जो उन्होंने तुम्हें भक्तिमार्गमें प्रविष्ट करा दिया। अब हमें विश्वास हो गया है कि सारा जगत कृष्ण प्रेमरसमें डूब जाएगा।" भक्तोंकी बातें सुनकर प्रभुकी स्वयंको प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई। प्रभु बोले—"आप सभी कृष्णके प्रियजन हैं। आप जो बोलेंगे कृष्ण अवश्य ही उसे पूरा

करेंगे। आज मेरा जीवन धन्य हो गया जो आपलोगोंने अपनी कृपा शक्तिके द्वारा मुझे इस योग्य बना दिया। अतः आपलोग अब निश्चिन्त होकर भजन कीजिए, अब मैं देखता हूँ कि कौन पापी आपलोगोंको कष्ट पहँचाता है।" ऐसा कहते-कहते प्रभुको क्रोध आ गया। उनका स्वभाव ही है कि भक्तोंका लेशमात्र भी कष्ट सहन नहीं कर सकते। इसलिए जब जब भक्तोंपर कष्ट आया तब-तब भगवानने अवतार लेकर उनके कष्टोंको दूर किया। भगवानका अवतार ही होता है, मात्र भक्तोंके लिए। भक्तोंका मान बढ़ानेके लिए प्रभु बोले—"मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपलोग ही अपनी भक्तिके बलसे कृष्णको इस नवद्वीपधाममें अवतरित कराकर यहीं पर वैकुण्ठके समान आनन्द विस्तार कराएँगे। आपलोगोंके माध्यमसे ही सारे जगतका उद्धार होगा। मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आप कभी भी इस दासको नहीं भूलेंगे।" ऐसा कहकर प्रभुने आनन्दित होकर सबकी चरणधूलि अपने मस्तक पर धारण की। भक्तोंने भी उन्हें जीभर आशीर्वाद दिये। प्रभु भी अपने भक्तोंके भोलेपनपर हँसते हुए घरकी ओर चल पड़े।

प्रभुका आवेश तथा लोगोंका भ्रमित होना

अपने भक्तोंके कष्टोंको जानकर पाषण्डियोंके प्रति प्रभुका क्रोध भड़क उठा तथा अपने भावमें आवि होकर बोले—"मैं इन समस्त दुष्टोंका संहार कर दूँगा।" ऐसा कहते हुए बार-बार हुँकार भरते हुए कहने लगे—"मैं वही हूँ, मैं वही हूँ।" ऐसा कहते हुए कभी-कभी ठठाकार हँसने लगते तो कभी फूट-फूटकर रोने लगते। विष्णुप्रियाजीको सामने देखते हैं तो उन्हें ही मारनेके लिए दौड़ पड़ते हैं। उनकी ऐसी अवस्था देखकर शचीमाता विचार करने लगी कि अवश्य ही मेरे निमाईको कोई मानसिक रोग हो गया है। तभी वह पागल-सा आचरण कर रहा है। पुत्र मोहके कारण शचीमाता दुःखी होकर रोते-रोते सभीसे कहतीं—"मैं बड़ी अभागिनी हूँ। पहले भगवानने मेरे बड़े पुत्रको ले लिया, फिर स्वामीको ले लिया। अब मेरे जीवनका एकमात्र सहारा मेरे निमाईको भी न जाने क्या हो गया। वह कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी मूर्च्छित हो जाता है। कभी मन-ही-मन न जाने क्या बोलता है। कभी-कभी मैं पाषण्डियोंका संहार कर दूँगा। ऐसी अटपटी बातें करता है।" यह सुनकर सभीलोग प्रभुको देखनेके लिए चल पड़े। वहाँ जाकर प्रभुकी अलौकिक चेष्टाओंको देखकर सबने अनुमान लगा लिया कि वे वायुरोगसे ग्रस्त हैं अर्थात् उनकी दिमागकी स्थिति ठीक नहीं है। अतः वे शचीमातासे उनकी किसी अच्छे वैद्यसे इलाज करानेके लिए कहने लगे। कोई कहता कि इन्हें रस्सीसे बाँधकर रखो नहीं तो कुछ उल्टा-सीधा कर बैठेगा। कोई कहता कि नारियलका पानी पिलाओ जिससे इनका माथा ठण्डा होगा। कोई कहता कि ठण्डे तेलसे इसके सिरकी मालिश करो। बेचारी शचीमाता क्या करे। रोते-बिलखते जो जैसा कह रहा था वैसा ही कर रही थी। परन्तु प्रभुकी स्थितिमें कोई सुधार नहीं हुआ तो लोगोंके माध्यमसे उन्होंने श्रीवासादि भक्तोंके पास समचार भिजवाया। समाचार पाकर एक दिन श्रीवासजी उनके घर पर आये। उस समय

प्रभु तुलसी परिक्रमा कर रहे थे। उन्हें अपने घरपर आया हुआ देखकर प्रभुने झट उन्हें प्रणाम किया। अपने भक्तको अपने समक्ष देखकर प्रभु आवि हो गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च, कम्प, पुलक आदि अष्टसात्त्विक भाव उदित होने लगे तथा देखते-ही-देखते वे मूर्च्छित हो गये। कुछ क्षण पश्चात् उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो वे दहाड़ मारकर रोने लगे। उनकी अवस्था देखकर श्रीवासजी मन-ही-मन विचार करने लगे—यह तो प्रेमाभक्ति विकार हैं। इन्हें पागल कौन कहता है? कछ क्षण पश्चात् प्रभु शान्त हुए तो उन्होंने श्रीवासजीसे पूछा—"हे वैष्णवप्रवर! मेरी अवस्थाके विषयमें आपकी क्या राय है? कोई कहता है कि मैं वायुरोगसे ग्रस्त हो गया हूँ। अब आप निर्णय कीजिए वास्तवमें यह सब क्या है?"

यह सुनकर श्रीवासजी हँसते हुए बोले—"जो आपको वायुरोगसे ग्रस्त कह रहे हैं, अर्थात् आपके ऊपर पागलपन छा गया है, वे ठीक ही कह रहे हैं। मैं तो भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे पागलपनके दौड़े मेरे शरीरमें भी पड़ने लगे। ये दौरे और कुछ नहीं, भक्तिके विकार हैं। आपके ऊपर भगवानकी कृपा हो चुकी है।" इतना सुनते ही प्रभुने आनन्दसे श्रीवासजीको आलिङ्गन कर लिया तथा बोले—"आज मैं धन्य हो गया जो आपने इन विकारोंको जान लिया। आपके अतिरिक्त सभीलोग इसे वायुका विकार ही मान रहे थे। यदि आप भी इसे वायुका विकारमात्र मानते तो मैं आज गङ्गामें कूदकर प्राण त्याग देता।"

श्रीवास—"आपको जो भक्ति प्राप्त हुई, वह तो सनक-सनन्दन आदिके लिए भी दुर्लभ है। अब हम सभीलोग मिलकर कीर्तन करेंगे, चाहे पाषण्डी लोग हमारे साथ कैसा भी व्यवहार करें।" ऐसा कहकर श्रीवासजी शचीमातासे बोले—"यह पागलपन नहीं है, बल्कि दुर्लभ भक्तिका विकार है। अब आप ध्यान रखेंगी कि यदि आप भगवानकी कुछ भी लीलाओंका दर्शन करेंगी तो उसे किसीसे मत कहना।" ऐसा कहकर श्रीवासजी चले गये। अब शचीमाताको कुछ संतोष हुआ। परन्तु उन्हें चिन्ता सताने लगी कि यदि यह भक्तिका विकार है तो अब निमाई कहीं संसारसे विरक्त हो कहीं चला न जाय। ❑

विदेश प्रचार संवाद

—त्रिदण्डिभिक्षु भक्तिवेदान्त माधव

श्रील महाराजजी द्वारा लाई गई प्रेमधर्मकी बाढ़ने समग्र अमेरिकाको आप्लावित करके यूरोपमें प्रवेश किया। इसकी धाराने ५/६/२००१ से २९/६/२००१ तक यूरोप महादेशके हॉलेण्ड, जर्मनी, इटली और ईंग्लैण्डको अपने रङ्गमें रङ्ग दिया।

हॉलेण्ड, ५ से १० जून

इस वर्ष भक्तोंने हॉलैण्डमें श्रीलमहाराजजीके शुभागमनके कार्यक्रमका नाम "वेदोत्सव २००१" रखा। कार्यक्रम ५ सितारा हॉलीडेज रिसोर्ट Kykduin park में आयोजित किया गया, जो कि उत्तरी समुद्री तट पर हॉलेण्डकी

राजनैतिक राजधानी, Den Haag में स्थित है। भक्तों एव नवागन्तुकोंको मिलाकर प्रायः ६००से भी अधिक श्रोताओंने इस आयोजनमें भाग लिया। प्रवचन एवं प्रसाद वितरण हेतु दो विशाल टेन्ट भी लगाये गये।

हॉलेण्डमें श्रील महाराजजीने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके जीवन–चरित्र एवं शिक्षा, श्रीश्यामानन्द प्रभुके जीवन चरित्र, श्रीगुरु तत्त्व, Critical Stage of Spiritual Life, भक्तिलताके छः पत्ते, श्रीगौरवाणी, बाबाजीके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका सादृश्य और असादृश्य इत्यादि विषयोंपर प्रवचन दिया।

भक्ति लताके छः पत्ते होते हैं। साधन भक्तिमें दो पत्तों ही और क्लेशाघ्नि, शुभदाका उद्गम होता है। सबसे पहले साधन क्या है, इसके विषयमें उचित जानकारी होना आवश्यक है। भाव भक्तिका उदय करानेके लिए भावको लक्ष्यकर इन्द्रियोंद्वारा यत्नपूर्वक जो साधन किया जाता है, उसे ही वास्तवमें यथार्थ साधन कहते हैं। साधन भक्तिका यथार्थ रूपमें आरम्भ होनेपर समस्त प्रकारके क्लेश दूर हो जाएँगे एवं सब प्रकारसे कल्याणका उदय होगा। इसलिए श्रीमन्महाप्रभुने कहा "श्रेयःकैरवचन्द्रिका वितरणम्।"

भावभक्तिमें पुनः दो पत्तेका उद्गम होता है—मोक्षलघुताकृता और सुदुर्लभा। मोक्षलघुताकृता अर्थात् भावभक्ति उदित होनेपर मोक्षको भी तुच्छ या हेय बना देती है। मोक्षके विषयमें विभिन्न प्रकारके मतामत देखनेको मिलते हैं। कोई कहते हैं, 'आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिरेव हि मुक्तिः' अर्थात् आत्यन्तिक दुःख अर्थात् त्रितापोंके सम्पूर्ण रूपसे दूर होनेका नाम मुक्ति है। त्रितापके विषयमें थोड़ी सी जानकारीकी आवश्यकता है। त्रिताप अर्थात् तीन प्रकारके दुःख—१.आध्यात्मिक, २.आधिदैविक और ३. आधिभौतिक।

१.आध्यात्मिक—अवशीभूत मनके द्वारा जो दुःख मिलता है, उसे आध्यात्मिक ताप कहते हैं।

२.आधिदैविक—देवताओं के द्वारा प्रदत्त दुःख। जैसे बाढ़ आना, सूखा पड़ना, भूकम्प आना इत्यादि। आप सबको मालूम होगा कि कुछ महीने पहले भारतके गुजरात प्रदेशमें भयावह भूचल आया था, वह आधिदैविक दुःखका ज्वलन्त उदाहरण है।

३.आधिभौतिक—अन्यान्य प्राणियोंसे प्राप्त कष्ट। जैसे—सर्पदंशन या फिर कुत्तेके द्वारा काटा जाना इत्यादि।

'विष्णवाङ्घ्रिलाभः मुक्तिः'—यह भी किसी–किसीका मत है अर्थात् भगवानके पादपद्मोंकी सेवाप्राप्तिको मुक्ति कहते हैं। शास्त्रोंमें "मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः" भी कहा गया है। स्वरूपमें अवस्थित होनेको मुक्ति कहते हैं। कृष्णका नित्यदासत्व करना ही जीवका स्वरूप है। यह दास्य भी शान्त आदि भेदसे पाँच प्रकारका है। इन पाँच भावोंमेंसे किसी भी एक भावमें विशेष रूपसे अवस्थित होकर श्रीकृष्णकी सेवा प्राप्तिको मुक्ति कहा गया है। फिर शास्त्रोंमें सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य—इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंका भी वर्णन आता है। भगवान यदि मुक्तिको देना भी चाहते हैं तो भी भक्त उसे

स्वीकार नहीं करते। इसलिए भगवान स्वयं कहते हैं 'दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः।' यह मुक्ति पुनः सुखैश्वर्योत्तरा और प्रेमसेवोत्तरा भेदसे दो प्रकारकी है। भक्तगण कभी-कभी विशेष परिस्थितिमें प्रेमसेवोत्तरा मुक्तिको ग्रहण करते हैं, सुखैश्वर्योत्तराको नहीं। सारूप्य आदि मुक्तिके सम्बन्धमें एक विशेष रहस्य व्यक्त कर रहा हूँ। साधारण रूपमें कहा गया 'सारूप्य'—भगवानके समान रूप। किन्तु भगवानके समान रूप किसीको भी मिलना सम्भव नहीं, क्योंकि शास्त्रोंमें कहा गया है—'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।' उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती। प्राकृत कारणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य होता है। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। तब आपात् विरोधी दो सिद्धान्तोंका सामञ्जस्य कैसे किया जा सकता है? यहाँपर भगवानके समान रूप या भगवानके समान ऐश्वर्य न होकर भगवद्भक्त या परिकरके समान रूप और ऐश्वर्य होगा।

भावभक्ति अत्यन्त दुर्लभ होनेके कारण इसे सुदुर्लभा कहते हैं।

प्रेमावस्थामें भक्तिलताके और दो पत्ते निकलते हैं—१.सान्द्रानन्द विशेषात्मा और २.श्रीकृष्णाकर्षिणी।

१.सान्द्रानन्द विशेषात्मा अर्थात् जड़ जगतके जितने प्रकारके आनन्द, मोक्षके जितने आनन्द, इन दोनोंको करोड़ों गुणा करनेपर भी ये भक्तिके आनन्दके बिन्दुमात्रके समान भी नहीं हो सकते।

२.श्रीकृष्णाकर्षिणी—भक्तिदेवी हृदयमें आविर्भूत होनेपर श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ उक्त साधकके प्रेमद्वारा वशीभूत हो जाते हैं। इसमें एक विशेष रहस्य यह है कि श्रीकृष्णाकर्षिणीके दो अर्थ हैं—(क) कृष्ण + आकर्षिणी, (ख) कृष्णा + आकर्षिणी। उदाहरण देनेपर यह विषय सम्पूर्ण रूपसे सहज ही समझमें आ जायेगा। हमारे पूर्वाचार्य प्रेमा भक्तिके अङ्कुर श्रील माधवेन्द्र पुरी पादके प्रेममें वशीभूत होकर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गोलोक वृन्दावनमें रह नहीं पाये; गोपबालकके रूपमें आकर श्रील माधवेन्द्र पुरीजीको दुध प्रदान किया। श्रीगोपीनाथजी उनके लिए 'अमृतकेलि' नामक खीरको चुराकर क्षीरचोरा गोपीनाथके नामसे जगतमें प्रसिद्ध हो गये। अन्यत्र भी देखते हैं, श्रील बिल्वमङ्गलके प्रेमके वशीभूत होकर श्रीश्रीराधाकृष्णने युगल रूपमें दर्शन दिए। हमारे गोस्वामियोंके विषयमें भी ऐसे ही देखनेको मिलता है।

श्रील रूप गोस्वामी एवं सनातन गोस्वामी नन्दगाँव स्थित टेरकदम्बमें हरिकथा आलोचना कर रहे थे। हरिकथामें आवेशके कारण देहकी सुध-बुध खोकर भूख-प्यास भी भूल गये थे। भक्तोंको कोई भी कष्ट न हो, इसलिए उस समय स्वयं श्रीकृष्णा अर्थात् गौड़ीय वैष्णवोंकी आराध्या श्रीमती राधारानीने खीर बनाकर दिया था। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी राधाकुण्डके तटपर भजन कर रहे थे, तेज धूपमें भक्तको कष्ट न हो, इसलिए श्रीमतीजी अपने वस्त्राञ्चलके द्वारा उन्हें

छाया प्रदान कर रही थीं।

श्रीलमहाराजजीने यहाँ प्रतिदिन सुबह और शाम दो बार प्रवचन दिये, जिसमें श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीरूपशिक्षाके प्रसंगकी चर्चा की गई। इसके अतिरिक्त नगरकीर्तन, पुस्तक वितरण एवं भक्तों द्वारा ड्रामा भी प्रस्तुत किये गये। चालीस भक्तोंने हरिनाम एवं पाँच भक्तोंने दीक्षामंत्र भी ग्रहण किये।

इस आयोजनके मुख्यांशोंको राष्ट्रीय दूरदर्शन पर भी प्रसारित किया गया। इस आयोजनकी सफलतामें स्थानीय भक्तोंका मिलित प्रयास एवं श्रद्धालु सज्जनोंका आर्थिक सहयोग विशेष रूपसे सराहनीय रहा।

११ और १२ जूनको श्रील महाराजजी जर्मनीमें रहे।

इटली, १३ से १९ जून

हॉलेण्डसे १२ जूनको श्रीलमहाराजजीने ईटलीकी राजधानी मिलानमें पदार्पण किया। यहाँका कार्यक्रम उत्तरी ईटलीमें स्वीटजरलेण्डकी सीमाके निकट स्थित प्रसिद्ध Maggiore झीलके Stressa नामक क्षेत्रमें Collegio Rosmini नामकी मॉनेस्टरीमें आयोजित किया गया। Alps पर्वत शृंखलाओंसे घिरी यह झील और उसमें छोटे-छोटे टापूसे इस स्थानकी शोभा अनायास ही पर्यटकोंको विश्वभरसे अपनी ओर आकर्षित करती है। Isolabela नामके टापू पर तो स्वयं ईटलीके राजा बीच-बीचमें आकर रहा करते थे। मालपेन्सा एयरपोर्टसे लगभग (२) घण्टेकी दूरी कार द्वारा पूरी कर यहाँ पहुँचते ही फ्राँस, जर्मनी, फिनलैण्ड, स्विटजरलैण्ड एवं स्पेन इत्यादि सारे यूरोपसे आए हुए भक्तोंने नृत्य एवं कीर्तन करते हुए विशेष उल्लासके साथ श्रीलमहाराजजीका हार्दिक स्वागत किया।

यहाँ श्रीसनातन शिक्षाका पाठ करते हुए श्रीलमहाराजजीने साध्य-साधन तत्त्व, जीवतत्त्व एवं भक्तितत्त्वका विशदरूपमें वर्णन किया। विशेष रूपसे जीवतत्त्वका गभीर विवेचन किया गया। इसी प्रसङ्गमें अद्वयज्ञान परतत्त्वकी भी व्याख्या की गई।

प्रतिदिन पाठके अतिरिक्त, मङ्गल आरति, तुलसी आरति, भजन-कीर्तन, विग्रहसेवा एवं अन्य वक्ताओंके द्वारा प्रवचन तथा विशेष दिनमें नगरकीर्तन सहित तीन शिशुओंका अन्नप्राशन संस्कारभी किया गया। इन सब गतिविधियों विशेषकर श्रीलमहाराजकी कथाओंसे आकर्षित होकर मॉनेस्टरीके उपसंचालक अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने श्रीलमहाराजजीसे कण्ठीमाला ग्रहणकी। अन्य बीस भक्तोंने हरिनाम एवं दीक्षामंत्र भी ग्रहण किये।

ईंग्लैण्ड, २१ से २९ जून

ईंग्लैण्डमें सर्वप्रथम श्रीलमहाराजजीने लण्डनसे कार द्वारा प्रायः एक घण्टेकी दूरी पर स्थित 'बाथ' नामक सुन्दर ऐतिहासिक उपनगरमें पदार्पण किया। यहाँ तीन दिनका कार्यक्रम रखा गया। इसके पश्चात् श्रीलमहाराजजी बर्मिंघममें पहुँचे। यहाँ आयोजित कार्यक्रमका मुख्य आकर्षण था, श्रीरथयात्रा महोत्सव।

आनन्द और उल्लाससे भरपूर विशाल शोभायात्राके सहित, पूर्वदिशासे उदित तेजस्वी भानुके सदृश भगवान जगन्नाथने २४ जूनको बर्मिंघम स्थित Victoria Squareके ईर्द-गिर्द सड़कों पर अपने दर्शनोंका अनुग्रह प्रकाश

किया। प्रेममें मत्त भक्तोंके उद्दण्ड नृत्य एवं कीर्तनके मध्य भगवान जगन्नाथके मनोहर दारु विग्रहने दस हजारसे भी अधिक दर्शकोंको आकर्षित एवं चकित कर दिया। इस ऐतिहासिक घटनाकी साक्षी देनेके लिये व्यस्त दुकानदार एवं अन्य व्यवसायी बाहर सड़कों पर आनेसे अपनेको रोक न सके। बर्मिंघम, जो कि एक शुष्क महानगरके रूपमें प्रसिद्ध है, प्रसन्नचित्त प्राणियोंके नगरके रूपमें परिवर्तित हो गया, जबकि जगन्नाथदेवने पथमें आनेवाले सभीको अपनी कृपादृष्टिसे अभिषिक्त कर दिया। धीरे-धीरे जूलूस Victoria Square पर पहुँचा, डाउनटाउन बर्मिंघममें टाऊन हॉलके सामनेका मुख्य स्थान, जहाँ कि एक विराट मंच एवं आगन्तुकोंके मन, हृदय एवं शरीरकी तृप्तिके लिये बहुतसे छोटे-छोटे स्टॉल लगाए गये थे।

उत्साही प्रचारक तथा श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके युवा संन्यासी शिष्य श्रीपाद भक्तिवेदान्त आश्रम महाराज, बर्मिंघम स्थित श्रीगौरगोविन्द गौड़ीय मठके अध्यक्ष श्रीमान प्रद्युम्नमिश्र ब्रह्मचारी, अन्य मठवासी एवं स्थानीय भक्तोंने मिलकर श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्राका आयोजन किया था। श्रीपाद आश्रम महाराज द्वारा प्रेरित एवं आमंत्रित बर्मिंघमके गण्य-मान्य व्यक्ति भी इस अवसर पर उपस्थित हुए। सर्वप्रथम वक्तव्य भारतीय कान्सुलेटके काउन्सिल जनरल श्री जे. एस. सप्राने रखा। रथयात्राकी परम्परा एवं महत्व पर प्रकाश डालकर, अन्तमें हरे कृष्ण महामंत्रका उच्चारण कर उन्होंने श्रीलमहाराजजी एवं सभी भक्तोंको इस धार्मिक उत्सवके आयोजनके लिये विशेष धन्यवाद दिया। तत्पश्चात, बर्मिंघमकी डिप्टी मेयर श्रीमती टेरेसा स्टीवॉर्टने विशेषरूपसे बर्मिंघमको श्रीरथयात्रा महोत्सव एवं अन्य भारतीय संस्कृतिको प्रकाश करनेवाले कार्यक्रमोंके आयोजनोंके लिए चुननेके लिए भक्तोंको धन्यवाद दिया। तृतीय प्रमुख अतिथि थे, नेशनल काउन्सिल ऑफ हिन्दु टेम्पल्सके प्रेसिडेन्ट एवं ईन्टरफेथ नेटवर्क U.K. के वाईस कोचेयरमेन श्रीओमप्रकाश शर्माजी। इस अवसर पर उपस्थित होनेसे वे अत्यधिक प्रसन्न थे। बर्मिंघम-वासियोंके कल्याणार्थ श्रीजगन्नाथदेवकी सफल रथयात्रा महोत्सवके लिए उन्होंने विशेष धन्यवाद देते हुए श्रीलमहाराजजी एवं भक्तोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके बाद लाईफ फाउन्डेशन वर्ल्डवाईडसे श्रीकमला वुडने ससम्मान श्रीलमहाराजजीको विश्वशन्ति ज्वाला भेंटकी, जो कि पाँच महाद्वीपोंमें पूरी पृथ्वीमें भ्रमण कर चुकी है तथा पोप, नेलसन मण्डेला एवं अन्य विशिष्ट व्यक्तियोंको भेंटकी गई है, जिन्होंने विश्वशन्तिके लिये सराहनीय भूमिका निभाई है।

श्रीलमहाराजजीने प्रसन्नतापूर्वक उस शान्ति-ज्वालाको ग्रहण किया एवं बताया कि इस ज्वालाका उद्गमस्थल है—वेद, जहाँ इसका तात्पर्य है—'तमसो मा ज्योर्तिगम्य'। इसके उपरान्त विश्वशान्तिमें योगदानके लिये धन्यवाद देते हुए श्रीमती कमला वुडने श्रीलमहाराजजीको एक नामपत्र अर्पित किया।

श्रीजे. एस. सप्रा द्वारा प्रदत्त भाषण यहाँ दिया जा रहा है—

[Speech delivered by Consul-General

on June 23, 2001 at The Divine Festival of Lord Jagannath, in Birmingham organised by Sri Gaur Govinda Gaudiya Math.]

His Divine Grace Srila BV Narayan Maharaja, Committee Members of Sri Gaur Govinda Math, Distinguished guests, Ladies and Gentlemen, 'Hare Krishna', 'Hare Krishna'. It gives me great pleasure to be here this afternoon to attend the Festival of Lord Jagannath, which is one of the most ancient and cherished events in the Hindu Calender. This festival is also being celebrated with the theme of "A Universal Interfaith Gathering" and in conjunction with the Birmingham City Council. We are indeed thankful to the Council for the co-operation in organising this Festival in order to re-live the story of Lord Jagannath.

I need not go into details of the story. However, in brief, I may mention that Lord Jagannath is the Lord of the Universe and is one of the many names by which Lord Shri Krishna is known. The Festival is the joyous celebration of Lord Krishna's return to his beautiful home and beloved devotees in the sacred cowherd village of Vrindavan from his luxurious capital in Dwarka. On this day we have the great good fortune to behold the Supreme Lord and receive his blessings and mercy. Once a year, Lord Jagannath comes out of his splendid temple in Jagannath Puri in India, benedicting all the people of the world who may not be able to see him otherwise, granting pure spiritual peace and harmony.

I am indeed glad that besides the world's major cities like London, New York, Tokyo, Sydney, Paris - amongst others - the devotees in Birmingham have got together to organise this Festival in order to receive the Great Lord's blessings. We are indeed grateful that the Supreme Lord's close friend and foremost disciple, His Divine Grace Srila BV Narayan Maharaja, is with us today to enable us to have his saintly association. The Festival in Birmingham is unique in many ways: more so, as the Deity of Lord Jagannath - 15 feet high - being the largest deity of him in the world - is seen.

While mentioning about Lord Jagannath, I may quote from Mr. B. P. Singh's book "India's culture: The State, The Arts and Beyond" in which he states that "in the realm of religion and spirituality, the Hindu view of life and the two other religions - Jainism and Buddhism - dominated the Indian thought process and Human activity from the beginning of the year AD1.

In ancient India, the theme governing Hindu activity and world view centred around four concepts: (i) dharma (righteousness); (ii) artha (economic and political goals); (iii) Kama (pleasure) and (iv) moksha (freedom from the cycle of life, death and re-birth). Dharma, inclusive of artha and kama is the grand design of life and moksha is its culmination. In many ways, dharma is the basis of the

universe, for it refers to the rules of social intercourse laid down for every person in terms of his/her varna (social status), ashrama (the stage of life), and guna (the qualities of inborn nature).

It may be pointed out that all the four goals pertain to legitimate human activities but, on the scale of values, moksha takes percedence over the rest. In the attainment of freedom from the cycle of life, the body is not an obstacle but an instrument. Moksha can be attained both through gyan (knowledge) or through bhakti (devotion). Moksha is a state of knowledge, or, more correctly, a sense of realising the truth. Moksha is essentially self-knowledge. The liberated person performs his/her duties in a state of tranquility and detachment and transmits light to all those who come in contact with her/him.

The notion of karma (deed) is integral to the Hindu view of life. Dharma and Karma are inseparable as they together determine the domain of human life. All Indian religious traditions believe that human actions have consequences that are inescapable—good acts lead to joy and evil acts to sorrow. Whatever cannot be enjoyed or suffered in this life, flows on to the next birth which may not necessarily be in a human form.

The Hindu religious philosophy is expounded in a large number of texts and legends, among which the Vedas, the Upanishads, the Ramayana and the Mahabharata with its Bhagwad Gita, are the most significant."

In the end, I once again congratulate and thank the organisers of the Festival for organising this Festival, as it would promote Universal togetherness of the various cultural communities in this part of the United Kingdom. This Festival re-emphasises the need for inculcating the knowledge of religion and spirituality in our lives to enable live a balanced, peaceful and prosperous existence in the world.

Hare Krishna, Hare Krishna.

तदुपरान्त आभार प्रकट करते हुए श्रीलमहाराजजीने समागत विशिष्ट अतिथियोंको उत्सवमें भाग लेनेके लिये धन्यवाद दिया।

इसके पश्चात् श्रीलमहाराजजीने भगवान जगन्नथदेवकी प्राकट्य लीला एवं रथयात्राके रहस्यपूर्ण भावोंका संक्षेपमें वर्णन किया।

धर्म सभाके बाद Mr. John ने महाराजजीसे कुछ प्रश्न किये। उनका विवरण इस प्रकार है।

Mr. John—आपके भगवान कौन हैं?

श्रील महाराजजी—भगवान एक और अद्वितीय हैं। जो सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता हैं, वे ही भगवान हैं। **G**—Generator, **O**—Operator, **D**—Destroyer। मेरा भगवान, आपका भगवान और समस्त जगतोंके भगवान एक ही हैं, दूसरा कोई नहीं हैं। इसलिए शास्त्रोंमें कहा गया है 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'।

Mr. John—आपके Birmingham आनेसे जन गणमें किस प्रकारका प्रभाव पड़ेगा?

श्रील महाराजजी—जिन्होंने हमारी हरिकथा और कीर्त्तन श्रवण किया है, वे सभी धीरे-धीरे जन्म और मृत्युके चक्करसे छुटकारा पाकर साधु-सङ्गमें भजन करके भगवत्सेवा प्राप्त करेंगे।

Mr. John—पारमार्थिक क्षेत्रमें पाश्चात्य देशवासियोंकी अपेक्षा भारतीय उन्नत क्यों हैं?

श्रील महाराजजी—भारतवासीके रक्तमें ही भजनका भाव वर्त्तमान है और पाश्चात्य वासियोंके रक्तमें **3 W and 6 D** वर्त्तमान हैं।

Mr. John—3 W and 6 Dसे आपका क्या तात्पर्य है?

श्रील महाराजजी (मन्द मन्द मुस्कराते हुए)

3 W—Wine, Women, Wealth

6 D—Dog, Drink (Alcohol), Dance (in night club), Divorce, Duplicity, Diplomacy.

भारतवासी God का भजन करते हैं और पाश्चात्यवासी इसके विपरीत Dog का भजन करते हैं। भारतीय शरीर छोड़नेके समय भगवान और उनके भक्तोंका चिन्तन करते हैं और पुनः भक्त रूपमें ही जन्म ग्रहण करते हैं। पाश्चात्यवासी शरीर छोड़ते समय Dog का चिन्तनकर पुनः Dog को ही प्राप्त होते हैं। इसलिए पाश्चात्य देशोंमें Dog की संख्या अधिक है।

यह सुनकर समस्त सभा उच्च स्वरसे हँसने लगी।

बर्मिंघममें श्रीलमहाराजजीका सप्ताह पर्यन्त कथा एवं कीर्तनके कार्यक्रमका आयोजन कोवेन्टरी रोडस्थित नामधारी गुरुद्वारेमें किया गया। श्रीपाद आश्रम महाराज और बर्मिंघम मठवासी भक्तोंसे प्रभावित हो स्थानीय सिक्ख समुदायने २२ जूनसे २९ जून तक यह सेवा भक्तिभावसे अर्पित की। श्रीजगन्नाथ रथयात्रासे सम्बन्धित रहस्यूपर्ण लीलाओंको श्रीलमहाराजजीके मुखारविन्दसे श्रवण करनेके लिये प्रायः पाँच सौ श्रोता प्रतिदिन एकत्रित होते। पचास श्रद्धालु भक्तोंने दीक्षामंत्र भी ग्रहण किये।

बर्मिंघमके पश्चात् अन्तिम दिनका कार्यक्रम लण्डन स्थित Convey Hall में किया गया। इसी हॉलमें लगभग तीस वर्ष पूर्व श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीने ईंगलैण्डमें अपना प्रथम भाषण दिया था। इस अवसर पर उपस्थित उनके वरिष्ठ शिष्योंने इस हॉलसे सम्बन्धित श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके कुछ अमिट संस्मरण प्रस्तुत किये। अपने वक्तव्यमें श्रीलमहाराजजीने श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके आदर्शोंसे अनुप्राणित होकर आपसी द्वैषकी भावनाओंको परित्यागकर उनकी शिक्षाओंको अनुसरण करनेकी आवश्यकता पर बल दिया।

इस प्रकार अपनी ११वीं विदेश यात्रामें शुद्ध हरिकथाका विपुलरूपमें प्रचार-प्रसार कर श्रीलमहाराजजी ३० जूनको पुनः भारतभूमिमें लौट आए।

यूरोपमें श्रीलमहाराजजीके साथ इस प्रचार यात्राकी विभिन्न सेवाओंमें श्रीपाद तीर्थ महाराज, श्रीपाद वन महाराज, श्रीपाद आश्रम महाराज, श्रीपाद अरण्य महाराज, श्रीपुण्डरीक दास, श्रीमान् ब्रजनाथ दासाधिकारी, श्रीमान् धृष्टद्युम्न प्रभु, श्रीमती वृन्दादेवी दासी, श्रीमती तुंगविद्या देवी दासी, श्रीमती श्यामरानीदेवी दासी आदि भक्तोंका योगदान विशेष रूपसे सराहनीय है। ❑

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५ वि. सं. २०५८ भाद्रपद मास, सन् २००१, ५ अगस्त —२ सितम्बर { संख्या ६

नवनीतप्रियाष्टकम्

[प॰ राधाकृष्ण शास्त्री, साहित्याचार्य]

नवबलाहकतुल्यतनुं शुभं अधरवेणुधरतडिदम्बरम्।
तनुरुचा शतमन्मथमन्मथं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।१।।

नवीन "वर्षाकालीन" मेघके समान सुन्दर शरीरवाले, स्वाधरोंपर मुरलीको धारण किये हुए, विद्युत्प्रभा सदृश पीताम्बर पहने हुए, इस प्रकार अपनी परम मनोहर देहकान्तिसे सैकड़ों मन्मथ (कामदेव) के मनका भी मथन करनेवाले परम निपुण नवनीतप्रिय भगवान श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।।१।।

शुचिशिखण्डसुशोभितशेखरं विविधपुष्पसुसज्जितविग्रहम्।
सुरभिपांसुललाटविराजितं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।२।।
तरणिजातटकुञ्जविहारिणं भुजगकालियमानविदारिणम्।
शिवविरञ्चिमहेन्द्रनुतं परं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।३।।
अघबकीबकदैत्यविनाशकं वनविरञ्चिविमोहविमोचकम्।
नमुचिसूदनदर्पविदारकं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।४।।
कमलकोमलचञ्चललोचनं स्मितमुखं चलकांचनकुण्डलम्।
कुटिलकुन्तलमानतकन्धरं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।५।।
जननमृत्युजराभयभञ्जनं प्रणतकाममहाहरिचन्दनम्।
त्र्यघहरं भुविसात्वतनन्दनं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।६।।
व्रजवधूविटमग्रहसङ्गिनं धृतकराब्जनगं व्रजरक्षणम्।
अवनिमण्डलमङ्गलमङ्गलं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।७।।
अजमनादिमनन्तमनञ्जनं धरणिभारहरं खलगञ्जनम्।
स्थितिलयोदयकारणकारणं पटुतरं नवनीतप्रियं भजे।।८।।
शुभमिदं कलिकल्मषखण्डनं पठतियोऽवहितेनहृदाष्टकम्।
पतति ना नपुनर्भवसागरे मुदमसौ लभते च रमापतेः।।९।।

जो पवित्र मयूरपिच्छके मुकुटकी शोभासे युक्त हैं, विविध प्रकारके सुमनोंसे शरीरको सजाये हुए हैं तथा जिनके भालपर गोधूलि सुशोभित हो रही है, ऐसे परम कुशल नवनीतप्रियका मैं भजन करता हूँ।।२।।

सूर्य–नन्दिनी यमुनाके कूलवर्त्ती निकुञ्जोंमें विहार करनेवाले, कालीनागके अभिमानका चूर्ण करनेवाले, शिव–ब्रह्मा–इन्द्रादि देवोंसे अभिवन्दित परमोत्कृष्ट परम चतुर भगवान नवनीतप्रियका मैं भजन करता हूँ।।३।।

जो अघासुर, बकासुर, बकी (पूतना) प्रभृति दैत्योंके विनाशक हैं, वृन्दावनमें ब्रह्माके व्यामोहका विमोचन करनेवाले हैं और नमुचिसूदन (इन्द्र) के मदका दमन करने वाले हैं, ऐसे परम निपुण नवनीतप्रिय श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।।४।।

जिनके नेत्र कोमल कमलके सदृश विशाल एवं चञ्चल हैं, मन्द हास्यसे युक्त मुख है, कानोंमें चाञ्चल्य युक्त स्वर्णकुण्डल शोभा पा रहे हैं, कुटिल कुन्तल–से घुंघराले बाल अलग ही अपनी छटा दिखला रहे हैं, ग्रीवाको झुकाये हुए ऐसे परम चतुर नवनीतप्रिय श्रीनन्दनन्दनका मैं भजन करता हूँ।।५।।

जो जन्म–मरण एवं जराके भयका भञ्जन करनेवाले हैं, प्रणतजनोंकी मनोरथ–पूर्त्ति हेतु पूर्ण कल्पवृक्ष हैं, त्रिविध पाप–तापको हरण करनेवाले, पृथ्वीपर यदुवंशमें अवतरित होकर यदुनन्दन कहलानेवाले हैं, ऐसे परम निपुण नवनीतप्रिय श्रीनन्दनन्दनका मैं भजन करता हूँ।।६।।

जो व्रजाङ्गनाओंके परम प्रेमी हैं, बड़े भ्राता बलरामजी जिनके सङ्गी हैं, जिन्होंने अपने करकमलोंपर गिरिराज (गोवर्द्धन) को धारण करके व्रजकी रक्षा की है, जो पृथ्वी मण्डलके समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल करनेवाले हैं, ऐसे परमदक्ष नवनीतके प्यारे श्रीनन्दनन्दनका मैं भजन करता हूँ।।७।।

जो अजन्मा हैं, आदिरहित हैं, अनन्त हैं, निरञ्जन हैं, पृथ्वीके बढ़े हुए भारका हरण करनेवाले हैं, जो दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं तथा जो जगतकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके कारणके भी कारण हैं, अर्थात् परम कारण हैं, ऐसे परम पटु नवनीतप्रियका मैं भजन करता हूँ।।८।।

कलियुगके कलुषका खण्डन करनेवाले परम पवित्र शुभदायक इस नवनीतप्रियाष्टकका सावधानचित्त होकर जो हृदयसे पाठ करेगा, वह मनुष्य फिर कभी भी भवसमुद्रमें गोता नहीं लगावेगा और भगवान नन्दनन्दनका प्रियभाजन बनेगा।।९।।

कलि

(पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४५, संख्या ५, पृष्ठ १०३ से आगे)

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

(२) कलिका स्थान—पान

अब पानरूपी कलिका विचार करते हैं। समस्त प्रकारके मद्योंको ही पान कहते हैं। पान कहीं जलके रूपमें होता है और कहीं धूम्राकारमें। तन्त्रमें कहा गया है—

पर्णपुगौ ताम्रकूटस्तरिता मदिरा सुरा।
व्रतविध्वंशिनो ह्येते बलिनश्चोत्तरोत्तराः।।
नागवल्या प्रवर्द्धन्ते विलासेप्साः सुदुर्जयाः।
गुवाकेन सदाचित्तचाञ्चल्यं परिलक्ष्यते।।
ताम्रकूटात् मतिभ्रंशो जाड्यं वैमुख्यमेव हि।
तरिता सेवनाद्बुद्धिनाशः किल भविष्यति।।
अहिफेनं धूम्रपानं मद्रिका चाष्टसंख्यकाः।
स्वल्पकाले प्रकुर्वन्ति द्विपदांश्च चतुष्पदान्।।
एते चोपाधयः शश्वद् बहिर्मुखेषु कल्पिताः।
दुर्वृत्तकलिना साक्षात् शुद्धभक्तिनिवृत्तये।।

पान, सुपारी, तम्बाकू, गाँजा, मदिरा और सुरा—इन सब मद्योंका व्यवहार करनेसे समस्त प्रकारके व्रत नष्ट हो जाते हैं। ये सब दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होते हैं। पानके सेवनसे विलासिता जागृत होती है। सुपारीके द्वारा चित्त चञ्चल होता है। तम्बाकूके द्वारा मतिभ्रष्टता, आलस्य और भगवद्विमुखता होती है। गाँजेके सेवनसे बुद्धिका नाश होता है। अफीम, धूम्रपान और आठ प्रकारकी मदिराएँ अल्पकालमें ही द्विपदोंको चतुष्पदोंके समान कर देती है अर्थात् मनुष्योंको पशुके समान कर देती है। बहिर्मुख जीवकी भक्तिरूपी लताको नष्ट करनेके लिए दुष्ट कलिने इन समस्त उपाधियोंकी सृष्टि की है।

अन्य तन्त्रोंमें भी लिखा है। यथा—

संविदा कालकूटञ्च ताम्रकूटञ्च दुस्तरम्।
अहिफेनं खर्जुरसं तारिका तरिता तथा।।
इत्यष्टौ सिद्धिद्रव्याणि भक्तिह्रासकराणि वै।
स्वकार्यसिद्धये साक्षात् कलिना कल्पितानि हि।।

भाँग, कालकूट (बछनाग), तम्बाकू, धतूरा, अफीम, खजूर रस, ताड़ी और गाँजा—ये आठ सिद्धि-द्रव्य हैं। कलि अपने कार्यकी सिद्धिके लिए, अपने मायाजालमें फँसानेके लिए इन्हीं आठ प्रकारके द्रव्योंका सहारा लेता है।

अन्य तन्त्रोंमें मदिराके विषयमें—

माध्विकमैक्षवं द्राक्ष्यं तालखर्जुरपानसं।
मैरेयं माक्षिकं टांकं माधुकं नारिकेलजं।
मुख्यमन्नविकारोत्थं मद्यं द्वादशधा स्मृतम्।।

माध्विक—मधुसे उत्पन्न मद्य, ऐक्षव—ईखसे उत्पन्न, द्राक्ष्य—अंगूरसे बनी हुई, ताल—ताड़ीसे बनी हुई, खजूर—खजूरसे उत्पन्न, पनस—कटहलके रससे उत्पन्न, मैरेय—गुड़से बनने वाली एक प्रकारकी मदिरा, माक्षिक—मधुमक्षियों द्वारा संग्रहीत मद्य, टांक—भाँगसे बनी हुई मदिरा, माधुक—महुआसे बना हुआ, नारिकेल जलजात—नारियलके जलसे उत्पन्न और अन्नजात—अन्नको सड़ा गलाकर तैयार किया गया मद—ये बारह प्रकारके मद्य हैं। मूल श्लोकमें मन शब्दके अर्थमें लिखा गया है—'पानं मद्यादिः।' मद्यादि शब्दसे सभी मदिराओंको समझना होगा। ताम्बूलसे आरम्भ कर अन्नसे बने मद्यतक समस्त मद्य व्रतनाशक हैं। जो धर्ममें श्रद्धा रखते हैं, वे अवश्य ही इन सब मद्य-मदिराओंसे दूर रहेंगे। मद्य-मदिराओं द्वारा वैराग्य और भजनके मार्गमें उपकार होता है—केवल मदिराके दास ही अपने समर्थनमें ऐसा कहते हैं।

(३) कलिका स्थान—स्त्री

अब 'स्त्री'—शब्दका विचार किया जा रहा है। स्त्री शब्दसे धर्मपत्नी एवं अधर्मपत्नी दोनोंका ही बोध होता है। परन्तु यहाँ पर धर्मपत्नीकी बात नहीं कही गई है, क्योंकि शास्त्रमतमें—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते।।
(उदाह-तत्त्व)

धर्मपत्नीकी सहायतासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पञ्चम पुरुषार्थरूप भक्तिकी सेवा करें—यही गृहस्थ पुरुषोंकी नित्यविधि है। विवाहित पत्नीकी सहायतासे जीवन निर्वाह करनेसे कलिदोष नहीं लगता। जहाँ पुरुष स्त्रैण भावसे अपनी पत्नीके वशीभूत होकर कर्त्तव्य-विमूढ़ होता है, वहीं पर विवाहित पत्नीमें कलिका अवस्थान होता है। धर्मशून्य स्त्रीसङ्ग ही कलिका बल है। वैष्णव-ऋषिगण, अम्बरीषादि राजागण एवं श्रीकृष्णचैतन्यपार्षद श्रीवासादि भक्तगण आदर्श गृहस्थके उदाहरण हैं। इसलिए श्रीमहाप्रभुने संन्यासियोंको गृहस्थ वैष्णवके निकट दण्डवत् करनेकी शिक्षा दी है। यथा श्रीचैतन्यभागवत अन्तिम खण्डके अष्टम अध्यायमें—

वैष्णव तुलसी गङ्गा प्रसादेर भक्ति।
तिहों से जानेन, अन्ये ना धरे से शक्ति।।
वैष्णवेर भक्ति एइ देखान साक्षात्।
महाश्रमी वैष्णवेर करे दण्डपात।।
संन्यास ग्रहण कैले हेन धर्म तार।
पिता आसि पुत्रेरे करेन नमस्कार।।
अतएव संन्यासाश्रम सबार वन्दित।
संन्यासी संन्यासी नमस्कार से विहित।।
तथापि आश्रम धर्म छाड़ि वैष्णवेरे।
शिक्षागुरु श्रीकृष्ण आपने नमस्करे।।
शिक्षागुरु नारायण जे करायेन शिक्षा।
ताहा जे मानये, सेई जन पाय रक्षा।।

(चै॰ भा॰ अ॰ ८/१४९—१५३, १६२)

समस्त शास्त्रोंमें धर्मपत्नीका आदर दृष्टिगोचर

होता है और अधर्म पत्नीको सर्वत्र ही बुरा बतलाया गया है। तथापि सहजिया और बाउलगण (बङ्गालके) पर-स्त्री लेकर उपासनाकी आड़में महाकुकर्म करते हुए कलिके शिकार होते हैं और अन्तमें महारौरवमें पतित होते हैं। वेश्यालयमें जो समस्त कुकर्म होते हैं, उनका तो यहाँ कहना ही क्या है। इसलिए स्त्रीसङ्ग भी कलिका कार्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। धर्मपत्नीके सहयोगसे भक्तिका साधनकर जीवन-निर्वाह करना एक बात है और अधर्मपत्नी अथवा उपपत्नीमें रत होना—उससे ठीक विपरीत है। अधर्माश्रित-स्त्रियाँ सर्वदा ही कलिके स्थान हैं, अतएव उनसे दूर रहना चाहिए।

(४) कलिका स्थान—सूना (हिंसा)

'सूना' का अर्थ है प्राणिवध। इच्छापूर्वक जहाँ प्राणिवध होता है, वही कलिका ऐकान्तिक स्थान है। इसलिए नारदजीने कहा है—

नह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः।।
हन्यन्त पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः।
मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्युनश्वरम्।।

जो जड़ाशक्ति है, उसमें बुद्धिको नष्ट करने वाले अन्यान्य रजोगुणोंकी आवश्यकता नहीं है। 'श्री' के मदरूप रजोगुणसे लेकर सत्कुलमें जन्मका व्यर्थ अभिमान, अवैध-स्त्रीसङ्ग, द्यूतक्रीड़ा, मद, धूम्रादि-पान, मनुष्योंमें परस्पर विषय-सम्बन्धी झगड़े, रसनेन्द्रियकी तृप्तिके लिए जीव-बलि आदि समस्त प्रकारकी जीव-हत्या तक सबमें कलिका निवास होता है।

कलि-पञ्चक सब प्रकारसे छोड़ने योग्य है

रजोगुणसे ही अर्थके प्रति लोभ पैदा होता है। इसलिए अर्थका सदुपयोग भगवान और भक्तोंकी सेवामें करते हुए विशुद्ध रूपमें जीवन निर्वाह करना चाहिए। इसके लिए यथायोग्य जितने धनकी आवश्यकता हो, उतना ही संग्रह करना कर्त्तव्य है, इसके विपरीत अपने भोगविलासके लिए सुवर्ण अर्थात् धनादिके प्रति जो आसक्ति होती है, उसमें कलिका वास होता है। अनृत अर्थात् मिथ्या भाषण और कपट व्यवहार द्वारा मनुष्यका स्वभाव अत्यन्त दूषित होता है, उसमें भी कलिका वास है। मद कलिका प्रिय स्थान है। भागवतमें कहते हैं—

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया
त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा।
जातस्मयेनान्धधियः महेश्वरान्
सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः।।

धनका अभिमान, उत्तम कुलमें जन्माभिमान, जड़ीय विद्या, संन्यास, रूप और बल—इन छः प्रकारके मदों द्वारा भयङ्कर वैष्णवापराध होता है। इनमें भी कलिका निवास होता है। वैर, जो कलिका वासस्थान है, इसमें सन्देह ही क्या है?

इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं—

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कश्चन।
न चैनं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्।।

कोई व्यक्ति तुमसे झगड़ा करे, उसको सहन करना, किसीका भी अपमान न करना, इस शरीरका आश्रय करके किसीके प्रति द्वेष साधना न करना। काम भी कलिका स्थान है। कृष्ण-सेवाके कार्योंमें भी यदि अपने भोगकी कामना हो, वहाँ भी कलिका स्थान है। उसका अवश्य परित्याग करना चाहिए।

कलिके स्थानोंका त्याग न करनेसे कभी भी हरिका जन नहीं हुआ जा सकता। इन

समस्त विषयों पर सज्जन तोषणी (श्रीभागवत पत्रिका) पुनः पुनः आलोचना करके सज्जनगणको सन्तुष्ट और सतर्क करती रहती है। पाठकविशेष मनोयोग द्वारा इस प्रवन्धका पाठकर उसपर आचरण करनेकी चेष्टा करेंगे।❑

(अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रह्मचारी, साहित्यरत्न)

भगवानकी अप्रकट-लीलाका रहस्य

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ४५, संख्या ५, पृष्ठ १०५ से आगे)

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

भगवान और उनके परिकरगण जब अन्तर्द्धान हो गये, तब इस दुःखद संवादको सुनकर महाराज परीक्षित बड़े शोकार्त्त हो गये। उस समय श्रीशुकदेव गोस्वामी लीलातत्त्व-सम्बन्धी सिद्धान्तोंका वर्णन कर महाराज परीक्षितको सान्त्वना दे रहे हैं। शरीरधारी जीवोंकी भाँति जो परमेश्वरकी जन्मचेष्टा या मरणचेष्टा होती है, उसे मायानुकरण ही समझना चाहिए, उसे वस्तुतः या तत्त्वतः नहीं मानना चाहिए। हाड़-रक्त-मांस आदिसे बने हुए शरीरको धारण करनेवाले जीवोंका जन्म और मृत्यु—दोनों ही जड़-सुख-दुःखमय हैं। 'परन्तु चिन्मयविग्रह परमेश्वरके आविर्भाव और तिरोभाव दोनों ही सम्पूर्ण चित्-सुखमय हैं।'

आनादेयमहेयञ्च रूपं भगवतो हरेः।
आविर्भाव-तिरोभावावस्योक्ते ग्रहमोचने।।
—इति ब्रह्माण्डे

अर्थात् ब्रह्माण्ड पुराण कहते हैं—'भगवान श्रीहरिका रूप जड़ीय हेयता और जड़ीय उपादेयतासे रहित होता है। परन्तु उसके सम्बन्धमें 'ग्रहण' और 'मोचन' (त्याग)—इन दो शब्दोंसे उनके आविर्भाव और तिरोभावको समझना चाहिए।' इस विषयको ऐन्द्रजालिक नटद्वारा प्रदर्शित उस खेलसे समझना चाहिए, जिसमें स्वयं जीवित रहकर भी वह कभी अपना गला काट लेता है और कभी दूसरोंके गले या अङ्गोंको काट देता है और फिर स्वयं जी उठता है या दूसरोंको जिला देता है। भगवान मुनियोंका अभिशाप ग्रहण करते हैं और उनके अभिशापसे उत्पन्न पारस्परिक कलह—शस्त्रास्त्रों द्वारा परस्पर प्रहार आदि आरम्भ होनेपर उसमें स्वयं भी योगदान करते हैं। तत्पश्चात् मर्त्त्य यादवोंके साथ स्वयं भी एरकास्त्र ग्रहणकर कुछ देरतक क्रीड़ा करते हैं और अन्तमें सबका संहार होनेपर अपनी मायाके प्रभावसे उस लीलासे अलग होकर एक जगह बैठ जाते हैं।

यद्यपि भगवान निरङ्कुश-ऐश्वर्यमय और अनन्त शक्तिमान हैं, तथापि उन्होंने यादवोंमें प्रविष्ट देवताओंको स्वर्गमें भेजकर अपने तथा अपने पार्षद यादवोंके शरीरोंको इस मर्त्त्यलोकमें न रखकर अन्तर्हित करनेके लिए इच्छा की; क्योंकि मर्त्त्यलोकमें उनका अब प्रयोजन ही क्या था? अर्थात् भगवान मर्त्त्यलोककी अपेक्षा नहीं रखते, अपने नित्यधाम गोलोककी ही अपेक्षा करते हैं। स्वर्ग-स्थित ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे वे मर्त्त्यलोकमें आविर्भूत हुए थे, और पुनः उन्हीं लोगोंकी प्रार्थनासे उन लोगोंको अपना वैकुण्ठ-गमन दिखलाकर अर्थात् ज्ञापनकर वैकुण्ठमें चले गये, यही यहाँ पर विशेष रूपसे व्यक्त कर रहे हैं। इस

श्लोककी दूसरी कोई भी व्याख्या पूर्वोक्त (भा॰ ३/२/१९) श्लोकके विरुद्ध होनेके कारण उसे शुद्ध भक्तजन स्वीकार नहीं करते, ऐसा स्वयं उद्धवजीने (भा॰ ३/२/१०) कहा है—'भगवानकी मायासे मोहित होकर जो सब यादवगण श्रीकृष्णको यह कहते कि 'ये यादव हैं, हमारे बन्धु हैं' और शिशुपाल आदि भगवानके शत्रुभाव मिश्रित विरोधीगण भगवानकी निन्दा करते, उनके वैसे-वैसे वचनोंसे मेरी बुद्धि मोहित नहीं होती, अर्थात् जिनकी बुद्धि मोहित हो जाती है, वे निश्चय ही मायामूढ़ हैं।'

—(श्रीविश्वनाथ)

भगवान श्रीविष्णुका कहीं भी जीवोंके समान जन्मग्रहणका उदाहरण नहीं है, अतएव उनकी मृत्यु कैसे सम्भव है? वे न तो किसीके द्वारा वध किये जा सकते हैं और न मोह प्राप्त होते हैं। नित्यानन्दैक-स्वरूप स्वतन्त्र भगवानको दुःख कहाँ है? सम्पूर्ण जगतके ऊपर प्रभुत्व करके भी भगवान श्रीहरि साधारण कृषककी भाँति अपनेको दुर्बल दिखलाकर अपनी नित्यलीलाओंका अनुष्ठान करते हैं। परन्तु कभी-कभी वे अपनेको भूल जाते हैं, स्त्रैण पुरुषोंके समान पत्नीके विरहसे दुःखी होकर सीताजीकी खोज करते हैं, इन्द्रजीत द्वारा नागपाशमें बँध जाते हैं—इस प्रकार जो लीलाएँ दिखलाते हैं, उसे उनकी असुर-मोहन लीला ही समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे असुरोंके अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे मोहप्राप्त हो जाते हैं, वाणोंसे उनके अङ्गोंमें घाव हो जाते हैं अथवा रक्त गिरने लगता है, अज्ञकी भाँति दूसरोंसे कुछ जाननेके लिए पूछने लगते हैं और शरीर त्यागकर स्वर्ग गमन करते हैं—इत्यादि लीलाएँ वे असुर-मोहनके लिए नटके नाट्याभिनयकी भाँति करते हैं। अतएव देवतालोग भगवानकी ऐसी लीलाओंको 'असत्य कुहक' अर्थात् मिथ्या वञ्चनामात्र ही समझते हैं। भगवान श्रीहरिकी जो आविर्भाव और तिरोभावादि लीलाएँ हैं, वे प्राकृत शरीरधारी जीवोंकी भाँति नहीं हैं, बल्कि वे प्राकृत हेयगुण-वर्जित सम्पूर्ण रूपसे निर्मल हैं। परन्तु इन लीलाओं द्वारा दुष्ट व्यक्ति तो मोहित होते ही हैं, साथ ही भगवानके तत्त्वको न जाननेवाले सरल सज्जन व्यक्ति भी मोहित हो पड़ते हैं। परमात्मा श्रीहरिकी ऐसी लीलाएँ जीवोंकी अपनी-अपनी चित्तवृत्तिकी योग्यताके अनुसार फल प्राप्तिके लिए ही समझना चाहिए।'

—(श्रीमध्वाचार्यकृत महाभारत-तात्पर्य २/७९-८३)

'भगवान श्रीहरि अपने जिस-जिस आविर्भावके समय भ्रान्ति या माया प्रदर्शन नहीं करते हैं, सर्व जीवोंके ईश्वर अच्युत स्वयं सच्चिदानन्द विग्रह होकर भी उस-उस लीलाके तिरोभावके समय वे जीवोंके शरीर-त्यागका अनुकरण करके असुरोंको अन्धतमो-लोकोंमे भेजनेके लिए मोहित करके अपने शरीर जैसा दिखनेवाला दूसरा एक भौतिक शरीर पृथ्वीपर सुलाकर स्वयं सशरीर वैकुण्ठको पधार जाते हैं।

—(महाभारत-तात्पर्य ३२ अध्याय)

श्रीवादिराज स्वामी श्रीमध्वसम्प्रदायमें द्वितीय मध्वाचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इन तार्किक-करि-केशरी द्वारा रचित युक्तिमल्लिका ग्रन्थके अन्तर्गत 'शुद्धिसौरभ' नामक अंशके संख्या १८-३६ द्रष्टव्य हैं तथा ३७-३९ संख्यामें कहा गया है—'नेत्रद्वारा चन्दनकी लकड़ी देखनेसे यह जाना जाता है कि यह सुगन्धी चन्दनकी लकड़ी है। सुगन्धी-विषयक ऐसा ज्ञान नासिकाके सहारे

ही नेत्र ग्रहण करते हैं, नहीं तो पहले नासिकाद्वारा चन्दनकाष्ठका सौरभ अनुभूत न हुए रहनेसे केवल नेत्रद्वारा दर्शनसे सुगन्धका ज्ञान सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार अप्राकृत वस्तुके सम्बन्धमें कोई भी प्रमाण कानोंकी सहायतासे ही ग्रहण किये जाते हैं। अप्राकृत वस्तुकी उपलब्धिके विषयमें श्रुति ही प्रमाण है और श्रुतिको कानोंसे सुनकर ही ग्रहण किया जाता है। इस विषयमें श्रुति-विरोधी प्रत्यक्षादि प्रमाण समर्थ नहीं। अतएव ईश्वर-तत्त्व विचारके सम्बन्धमें अज्ञ लोगोंकी दोषपूर्ण दृष्टि कदापि प्रमाण नहीं है।'

इसके अतिरिक्त गीताके चौथे अध्यायके ६, ९, १४; सातवें अध्यायके ६, ७, २४, २५; नवें अध्यायके ८, ९, ११, १२, १३; दसवें अध्यायके ३, ८ तथा सोलहवें अध्यायके १९, २० आदि श्लोक विशेष रूपसे आलोच्य हैं।

अन्तमें श्रीमद्भागवत ११/३१/८-९ श्लोकोंमें परीक्षित महाराजके प्रति श्रीशुकदेवके कथनको पाठकोंके समक्ष उपस्थितकर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः।।
सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम्।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः।।

अर्थात् भगवान श्रीकृष्णकी गति मन और वाणीसे परे—अचिन्त्य है। इसलिए तो जब भगवान अपने धाममें प्रवेश करने लगे, तब देवताओंमें से कुछ लोग उनको देख न सके और कुछ देवता उनको देखकर बड़े विस्मित हुए। जैसे बिजली मेघमण्डलको छोड़कर जब आकाशमें प्रवेश करती है, तब मनुष्य उसकी गति देख नहीं पाते, केवल देवता ही लक्ष्य कर सकते हैं। उसी प्रकार ब्रह्मादि देवता भी श्रीकृष्णकी गतिके सम्बन्धमें कुछ भी जान नहीं सके, केवल-मात्र भगवानके पार्षदगण ही उसे लक्ष्य कर सके। ❑

श्रीमद्भागवतसे अधिक महत्त्वपूर्ण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[२३ मई २००१ (प्रातः) अलाचुआ, फ्लोरिडा]

श्रीलरूप गोस्वामी, श्रीलसनातन गोस्वामी, श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीलजीव गोस्वामी तथा श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीके समान श्रीचैतन्य महाप्रभुने अधिक कुछ नहीं लिखा है। उनके चरित केवल आठ श्लोक पाये जाते हैं, जिन्हें शिक्षाष्टकके नामसे जाना जाता है। इसके अतिरिक्त उनके कुछ अन्य श्लोक भी पाये जाते हैं, उदाहरणस्वरूप निम्न श्लोक—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

(चै. च. म. १३/८०, पद्यावली-७४)

मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, क्षत्रिय-राजा नहीं हूँ, वैश्य अथवा शूद्र नहीं हूँ, अथवा ब्रह्मचारी नहीं हूँ, संन्यासी भी नहीं हूँ; किन्तु उन्मीलित (अर्थात् नित्य स्वतः प्रकाशमान) निखिल परमानन्दपूर्ण-अमृतसमुद्ररूप श्रीकृष्णके पादपद्मोंका दास-दासानुदास कहकर अपना परिचय देता हूँ।

कुछ अन्य श्लोक भी महाप्रभु द्वारा रचित बताये जाते हैं, किन्तु वे प्रामाणिक नहीं हैं। शिक्षाष्टकके श्लोक प्रामाणिक हैं तथा वे समस्त

वेदों तथा अन्य शास्त्रोंसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यही नहीं, ये श्लोक श्रीमद्भागवतसे भी अधिक श्रेष्ठ हैं। श्रीमद्भागवत शिक्षाष्टकका भाष्य है, क्योंकि ये श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा उच्चरित है, जो समस्त अवतारोंके मूल अवतारी हैं, जबकि श्रीमद्भागवतके रचयिता व्यासदेव एक कलावतार मात्र हैं। श्रीशिक्षाष्टकको एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ शास्त्र माना जाना चाहिए।

शिक्षाष्टकमें सर्वश्रेष्ठ साध्य तथा उसे प्राप्त करनेकी प्रणाली भी दी गई है। किन्तु केवल भाग्यवान जीव ही उसकी उपलब्धि कर सकते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्दके साथ इन श्लोकोंके अर्थोंमें छिपे श्रीकृष्ण-लीलाके मधुर भावोंका आस्वादन करते थे। (यदि कोई इसकी उपलब्धि कर ले तथा निर्धारित प्रणालीका पालन करे, तो उसे भी आस्वादन प्राप्त होगा तथा वह अपने मार्गसे च्युत नहीं होगा)।

'परम विजयते श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तनम्'—एक साधकको जान लेना चाहिए कि हरे कृष्ण अथवा हरे राम—इन दोनों ही नामोंमे श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल हैं। श्रीयुगलने अपनी समस्त शक्ति, समस्त कृपा तथा अपना समस्त माधुर्य इन नामोंमें सञ्चरित कर दिया है। अतएव ये नाम श्रीकृष्ण तथा राधिकासे भी बढ़कर हैं। ये केवल सोलह नाम नहीं हैं, ये प्रकाश हैं। वास्तवमें नाम केवल दो हैं, हरे कृष्ण या हरे राम—राधा और कृष्ण। यदि कोई समझ ले कि ये नाम ही राधा और कृष्ण हैं तथा ये नाम श्रीराधा कृष्णसे भी अधिक शक्तिशाली हैं, तो क्या वह केवल सोलह मालाका ही प्रतिदिन जप करेगा या अधिक? प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि यदि वह नहीं खाये-पिये, तो जीवित नहीं रह सकता। इसीलिए वह चौबीस घण्टे दूसरोंके साथ स्पर्धा तथा कलह करता है, (अपने जीवनयापन हेतु) व्यापार करता है तथा जिस प्रकार भी हो सके, धन उपार्जन करता है। क्यों? केवल जीवित रहनेके लिए। जब तुम यह जान जाओगे कि केवल नाम ही तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ है, तब यह नाम तुम्हारा सर्वस्व हो जाएगा। तब तुम निरन्तर जप करोगे। तुम्हारा जप एक अबाध मधुधारा अथवा अबाध नदीधाराकी भाँति चलेगा। जिस प्रकार हिमालयसे उदित गङ्गा निर्विघ्न रूपसे सागर तक बहती जाती है, यदि कोई निरन्तर इस प्रकार जप करे, तब यदि उसका चित्त इधर उधर जायेगा तो वह स्मरण करेगा—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। निद्रित अवस्थामें भी वह स्मरण करेगा हरे कृष्ण हरे कृष्ण। जब चल रहा है तब- हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे। यदि वह प्रति क्षण जप करता है, तब उसे स्वतः ही स्मरण होगा और इसीको कहते हैं हरिनाम। साथ ही वह कृष्णके साथ उच्चकोटिके प्रगाढ़ सम्बन्धके साथ नाम करेगा। वह सोचेगा—'कृष्ण मेरे हैं।' वह दीक्षा लेगा तथा दिव्यज्ञान प्राप्त करेगा।

दिव्यज्ञान क्या है? समस्त तत्त्वों यथा कृष्णतत्त्व, मायातत्त्व, जीवतत्त्व, भक्तितत्त्व, राधातत्त्व, रसतत्त्व तथा विलासतत्त्वको सञ्चरित करनेकी पद्धतिका नाम दीक्षा है। हमने उचित रूपसे अभी दीक्षा नहीं ली है, कुछ रिक्त है। नहीं तो दिव्य ज्ञानके उपस्थित रहनेपर किसी प्रकारके पाप, अपराध तथा अनर्थ नहीं रहते। भोगकी लालसा नहीं रहती तथा समस्त प्रकारके शुभ उपस्थित रहेंगे। किसी प्रकारका रोग-शोक नहीं रहेगा। उस समय हम राधा-कृष्ण, महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभुको विस्मरण कर सकेंगे? यह सम्भवपर नहीं। यदि ये लक्षण उदित नहीं हुए हैं, तब अवश्य हमारे अन्दर कुछ कमी है।

हम यदि श्रीचैतन्य महाप्रभुके इन आठ

श्लोकोंको श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा की गई व्याख्याके अनुरूप ग्रहण करेंगे, तभी समझ सकेंगे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने नामके विषयमें सभी कुछ समझाया है।

हम नामजप किस प्रकार करें? 'तन्नाम रूप चरितादि' श्लोकके अनुसार यदि श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके उपदेशोंको समझोगे, तो तुम यह नहीं कहोगे—अहो सोलह माला करके मैंने सब कुछ कर लिया। यदि मेरा चित्त इधर-उधर भी जा रहा था, तब भी कोई हानि नहीं। यह जप नहीं है। चित्तको लगाकर जप करो। किस प्रकार? उसी नामकी मधुर-मधुर लीलाओंका स्मरण करते-करते। साथ ही जिह्वासे अति शक्तिशाली नाम उच्चारण करो—हरे कृष्ण। किसी शुद्ध रसिक तत्त्वज्ञ वृन्दावनके भक्तके आनुगत्यमें नामजपमें डूबे रहो। शारीरिक रूपसे अथवा मनके द्वारा वृन्दावनमें रहो, तभी कुछ समझ सकोगे। यदि यह नहीं कर सकते तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। यदि हरिकथा श्रवण या हरिनाम जपमें रुचि नहीं है, तब तुम दुर्बल होकर विचलित हो जाओगे। ऐसा नहीं होना चाहिये। शिक्षाष्टककी व्याख्याको समझाया जा रहा है, इसे धारण करनेकी चेष्टा करो, यही तुम्हें बचा सकता है। तुम्हारा भोजन, आवास तथा जीवननिर्वाह स्वतः ही हो जाएगा। यदि तुमने सर्वोपरि भगवान कृष्णके चरण-कमलमें आश्रय लिया है, तो अपने जीवनयापनके लिए तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। हरिदास ठाकुर, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा अन्य भक्तोंने अपने जीवननिर्वाहके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, उन्हें वह स्वतः ही उपलब्ध था।

हम जराग्रस्त नहीं होना चाहते और न ही पीड़ा भोगना चाहते हैं, किन्तु ये बिना निमन्त्रणके आ जाते हैं। इसी प्रकार तुम्हारा भरण-पोषण भी बिना निमन्त्रणके हो जाएगा। यदि विश्वास न हो तो प्रयोग करके देखो। सात दिन तक कुछ नहीं करो, केवल हरे कृष्ण महामन्त्र जप करो, सभी देख-रेख स्वयं हो जायेगी।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनम्।।

(शिक्षाष्टकम् १)

नामकी महिमा अनेक प्रकारसे वर्णन की गई है, परन्तु चैतन्य महाप्रभुने नामको किस प्रकार महिमान्वित किया है? इस प्रथम श्लोकसे लेकर अन्तिम श्लोक 'आश्लिष्य वा पादरतां' तक उन्होंने नामकी महिमा कही है। महाप्रभुने इन श्लोकोंमें जो वस्तु प्रदान की है, उसे एकमात्र श्रीरूप गोस्वामीजी ही अनुभव कर सके। इसलिए उन्होंने कहा—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी।।

(विदग्धमाधव १/१२, चै.च.अ. १/९९)

नान्दीमुखीजी योगमाया पौर्णमासीजीसे कह रही हैं—अहो! 'कृष्ण' इन दोनों अक्षरोंमें न जाने कितना अमृत भरा हुआ है अथवा ये दोनों अक्षर न जाने किस मधुर अमृतके सागरसे उत्पन्न हुए हैं, जिसका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। देखो, जब ये मुखमें (जिह्वापर) नृत्याङ्गनाकी भाँति नृत्य करते हैं, तब अनेकानेक मुख पानेकी अपूर्व लालसा होती है; जब कर्णकुहरोंमें प्रवेश करते हैं, तब करोड़ों-करोड़ों कर्णोंकी स्पृहा जग उठती है; और जब चित्तप्राङ्गणमें उदित होते हैं, तब समस्त इन्द्रियोंकी सारी क्रियाओंको स्तब्ध कर देते हैं।।

श्रीरूपगोस्वामी ही ऐसा कह सकते हैं, हम नहीं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे श्रीरूपगोस्वामी नामकी महिमा वर्णन कर सकते हैं।

'चेतोदर्पणमार्जनम्' का क्या अर्थ है? दो प्रकारका चित् है—एक चित् तथा एक चित्त। चित्का अर्थ है महत्-तत्त्व, आत्माका आवरण जो अणुचित् है। किन्तु यहाँ चित्तसे तात्पर्य है हृदय। 'चेतोदर्पणमार्जनम्' यदि दर्पण स्वच्छ हो, तो उसमें मुख तथा समस्त शरीर देखा जा सकता है, किन्तु मैला होनेपर नहीं। इसी प्रकार हृदय-दर्पणको स्वच्छ करनेके लिए नामजप करो। कौन-सा नाम? यही प्रश्न है। जिस प्रकार हम जप कर रहे हैं, वह सन्तोषजनक नहीं है, यह जान लो। एक छोटा बच्चा पाठशाला नहीं जाना चाहता था, किन्तु उसके माता-पिता बलपूर्वक कारमें ले गए। वह रो रहा था, फिर भी उसे उन्होंने अध्यापककी गोदमें डाल दिया तथा उसे छोड़ कर चले गए। वह सारा दिन रोता रहा, किन्तु उसका अध्यापक बहुत दयाशील था। उसने बच्चेको एक रङ्गीन चित्रोंकी पुस्तक दी तथा कहा, 'अ' से अनार 'आ' से आम, देखो-देखो। अध्यापकने उसकी बहुत प्रशंसा भी की। तुम एक अच्छे छात्र हो, तुमने सब कुछ पढ़ लिया। अध्यापकने उसे एक आम भी खानेको दिया। बालक बहुत प्रसन्न हो गया। अगले दिन वह अपनी माँसे पूछने लगा, मैं पाठशाला कब जाऊँगा? कुछ समय पश्चात् बालकको कुछ कठिन पाठ सीखनेमें कठिनाई हुई। जब वह याद न कर सका तब अध्यापकने उसके कान मल दिये। बालक भ्रमित हो गया।

गुरु भी ऐसा ही करते हैं। किञ्चित् योग्यता न होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। यदि दीक्षा लो तो पाओगे कि अभी उद्देश्य बहुत दूर है। इन प्रारम्भिक साधनके द्वारा उद्देश्यको कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रारम्भमें गुरु समस्त वास्तविकताको प्रकट नहीं करते। वे कब बताते हैं? जब शिष्य कुछ उन्नत हो जाता है तथा वह गुरु-वैष्णवोंकी भर्त्सनाको सहन करने लगता है। उस समय शिष्य कुछ अनुभूति कर सकता है तथा गुरु भी कृपा करके कुछ बता सकते हैं। वे क्या कहेंगे? वे अपने शिष्यकी बुरी आदतोंका निवारण करते हैं, कहते हैं—यह ठीक नहीं है, तुम्हें ऐसा बनना चाहिए।

इसलिये रुचि न होने पर भी नाम जप करो। श्रवणमें रुचि नहीं है तथा नींद आती है, तब भी प्रवचन में जाओ, वहाँ केवल उपस्थित रहने मात्रसे बहुत शीघ्र रुचि आएगी। 'चेतोदर्पणमार्जनम्' चित्तका मार्जन नाम जपसे ही होगा, किन्तु जैसा नाम जप हम कर रहे हैं, उससे नहीं, नाम किञ्चित् शुद्ध होना चाहिए।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इसकी व्याख्या की है। क्यों? हमारी जिह्वा प्राकृत है तथा शुद्ध नाम चिन्मय है। चिन्मय नामका प्राकृत जड़ वस्तुओंसे कुछ लेना देना नहीं है। यह जड़ जिह्वापर या प्राकृत मनमें प्रकट नहीं होता। शुद्ध नामका इनसे स्पर्श भी नहीं होता। यह अत्यन्त चमत्कारिताकी बात है। फिर हम इसे कैसे स्पर्श कर सकते हैं? उच्चकोटिके शुद्धनामके द्वारा ही 'चेतोदर्पण- मार्जनम्' होता रहेगा। तुम्हारा चि त्तदर्पण स्वच्छ हो जायेगा। किन्तु यह भी जानो कि दर्पणमें वास्तविक स्वरूप नहीं आता। जो प्रतिछवि देखते हो, वह उल्टी है। तुम्हारा दक्षिणनेत्र वाम तथा वामनेत्र दक्षिण हो जायेगा। तुम्हारा हृदय भी दर्पणमें उल्टी स्थितिमें हो जायेगा, दर्पणमें देखकर भी स्वरूपकी पूर्ण अनुभूति नहीं होगी। कुछ अनुमान तो होगा, किन्तु और अधिक अनुभूति होनी चाहिए।

एक भक्त—यदि कोई शुद्धनाम नहीं करता तो उसका क्या कोई लाभ है? क्या हृदय शुद्ध होता है?

श्रीलमहाराज—यदि नामापराध हो तब भी लाभ है। तुम धनी हो सकते हो तथा समस्त प्रकारके इन्द्रियसुख भोग कर सकते हो।

भक्त—क्या नामापराधसे चित्त शुद्ध होगा?

श्रीलमहाराज—नहीं। तुम्हें वैष्णवोंके आनुगत्यमें रहना चाहिए। पहले हरिकथा श्रवण करो, नाम महिमा श्रवण करो, फिर श्रवण तथा कीत्तर्नसे नामाभास उदित होगा। कभी-कभी नामापराध नहीं होगा। दृढ़ रूपसे करते-करते नामाभास और अधिक प्रकट होगा। यदि तुम सौभाग्यवान हो तथा एक लाख नाम प्रतिदिन करते हो, तब कभी-कभी शुद्धनाम भी आएगा। अश्रु आयेंगे, हृदय गद्‌गद होगा। यदि ऐसा हो तब समझो नामाभास कुछ-कुछ हो रहा है। नामाभासके बाद शुद्ध नाम आयेगा। शुद्ध नाम या तो उन वैष्णवोंकी अहैतुकी कृपासे आएगा जो स्वयं शुद्ध नाम करते हैं या कृष्णकी कृपासे, अन्यथा नहीं। धन्यवाद।

(अनुवादक—श्रीमती जानकीदेवी)❑

श्रीगौरतत्त्व

—डा॰ सत्यपाल गोयल

यद्यपि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कौन हैं, उनके सम्बन्धमें कोई भी मरणधर्मा प्राणी कितना लिख सकता है? उनको समझ लेना इतना सहज नहीं है, परन्तु उनके सम्बन्धमें लिखे बिना, अभीतक जो भी कुछ लिखा जा चुका है, वह सब अधूरा ही रहेगा। यदि आजसे ५०० वर्ष पहले उन्होंने करुणापूर्वक अवतार न लिया होता तो श्रीमती राधिका और श्रीकृष्णकी रसमयी मञ्जरी भावमयी साधनाका अस्तित्व न होता। उनके नित्यपार्षद श्रीरूप गोस्वामी पाद, श्रीसनातन गोस्वामी पाद, श्रीजीव गोस्वामी पाद एवं श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी पाद जैसे भक्तिरत्न वृन्दावन भूमिको नहीं मिलते। हमारे जैसे पतित जनोंको भक्तिका शुद्ध रसमय मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। सारा संसार उनके द्वारा रचित भक्ति साहित्यके लिए ऋणी है और रहेगा।

जिन्होंने उनके प्रेम भावकी अनुभूति नहीं की है, उनको उनके भगवद् अवतार होनेमें शङ्का है। वे उनके केवल साधक स्वरूपको ही मानते हैं, उनकी भगवत्तापर प्रश्न दागते रहते हैं। श्रीचैतन्य भागवत, श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीचैतन्य मङ्गल, श्रीचैतन्य चन्द्रामृत आदि ग्रन्थोंमें उनके अवतार स्वरूपको अनेक पुराणोंके श्लोकोंद्वारा प्रमाणित किया है। सार्वभौम भट्टाचार्य, जो कि उनके प्रति निष्ठावान नहीं थे, उन्होंने उनको षडभुज दर्शन देकर उनका भ्रम निवारण किया था। जगाई-माधाई उद्धारके समय उन्होंने सुदर्शन चक्रका आह्वान किया था। किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभुके आग्रहपर वापस कर दिया। श्रीशचीमाताको भी उन्होंने अपने भगवत्स्वरूपका दर्शन कराया है। अन्य अवतारोंकी भाँति दुष्टोंका दमन करना उनके इस अवतारका उद्देश्य नहीं था, अपितु राधाभावसे कृष्णप्रेमका आस्वादन करना ही इस अवतारका प्रधान उद्देश्य था, जो कि आगामी उदाहरणोंसे सिद्ध हो जायेगा।

द्वापर युगमें भगवान श्रीकृष्णने "रसो वै सः" के अनुरूप अपने वामभागसे श्रीराधाजीको प्रकट किया तथा राधाजीकी कायव्यूहरूपा गोपियोंके सङ्ग प्रेमरसका आस्वादन किया। किन्तु श्रीकृष्णको राधाजीका प्रेम वैचित्र्य भाव अधिक प्रिय लगा जिसमें वे भावावस्थामें श्रीकृष्ण होकर राधाजीके प्रेमका आस्वादन करती थी। इस भावपर एकमात्र राधाजीका ही अधिकार है। वे जिस प्रकार इस प्रेम स्वरूपका आनन्द लेती हैं, इसका आस्वादन करनेके लिए ही श्रीकृष्णने राधाभाव और उनकी अङ्गकान्ति लेकर श्रीगौराङ्गके रूपमें अवतार लिया। इसलिए वे राधालिङ्गितविग्रह कहलाते हैं। जो समस्त सात्त्विक भाव, सञ्चारी भाव राधाजीमें देखनेका

मिलते हैं, वे सभी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुमें मिलते हैं। इसलिए उन्हें कलियुगपावन प्रेमावतार कहा गया है। प्रेमका जो उत्कृष्ट स्वरूप देखनेको मिलता है, वह या तो महाप्रभुजीमें ही मिलता है या फिर राधाजीमें मिलता है। व्रजके अन्य किसी गोपीमें नहीं। स्वरूपसे सभी जीव श्रीकृष्णकी दासियाँ हैं, इसलिए मञ्जरी भावसे ही कृष्ण आराधना करनेका सार उनके द्वारा तथा उनके कृपासिद्ध गोस्वामीगणोंद्वारा अपने ग्रन्थोंमें प्रतिपादित किया है।

श्रीगौराङ्गके भगवदावतारके प्रमाण

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः।।

(श्रीमद्भा॰ ११/५/३२)

अर्थात् जो 'कृष्ण' इन दोनों वर्णोंका कीर्त्तन करते हैं, जो कान्तिसे अकृष्ण हैं अथात् गौर वर्ण हैं, विद्वान पण्डितजन अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र और पार्षदोंसे परिवेष्टित उन्हीं महापुरुषकी सङ्कीर्त्तनप्रधान यज्ञद्वारा आराधना करते हैं।

कौन नहीं जानता है कि महाप्रभु गौराङ्गने ही नाम सङ्कीर्त्तन प्रारम्भकर कलिहत जीवोंको कीर्त्तनका मार्ग दिखाया। गीतामें भी नाम, जप एवं कीर्त्तनको यज्ञकी संज्ञा दी है, उसे अपनी विभूति या स्वरूप कहा है। अतएव नाम सङ्कीर्त्तनकारी श्रीगौराङ्ग स्वयं भगवानके अवतार हैं—ऐसा श्रीमद्भागवतके उक्त श्लोकसे स्पष्ट होता है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने भगवदावतार एवं उनकी लीलाओंके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतको ही एकमात्र अमल (विशुद्ध) प्रमाण माना है। यथा—

आराध्यो भगवान व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।
रम्याकाचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः।।

अर्थात् भगवान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनका श्रीधाम वृन्दावन आराध्य वस्तु हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे कृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। यह सिद्धान्त ही हम लोगोंके लिए परम आदरणीय है, अन्य मत ग्रहणीय नहीं हैं।

अतएव श्रीमद्भागवतका पूर्व श्लोक ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके भगवदवतार होनेका पर्याप्त प्रमाण है। फिर भी अन्य पुराणों एवं शास्त्रोंमें उनके अवतारके जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उन्हें पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करनेका प्रयास करूँगा।

महाभारतमें भगवदावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको आठ नामोंसे स्मरण किया गया है। यथा—

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनांगदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिपरायणः।।

(महाभारत दान पर्व अध्याय १४९)

१. सुवर्णवर्ण (गौराङ्ग), २. हेमाङ्ग (गौराङ्ग), ३. समस्त अङ्गोंका सुन्दर गठन (गौराङ्ग), ४. चन्दनचर्चित (गौराङ्ग) ५. संन्यासी (गौराङ्ग), ६. कृष्णनाममें निष्ठा (गौराङ्ग) ७. शम (मनके संयमी) (गौराङ्ग), ८. शान्तिपरायण (गौराङ्ग)—ये आठ नाम महाप्रभु गौराङ्गके ही हैं।

अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादिवैभवम्।
कलौ सङ्कीर्त्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिता।।

(तत्त्वसन्दर्भ)

अङ्ग, उपाङ्ग आदि वैभवोंके साथ प्रकटित भीतरसे साक्षात् कृष्ण तथा बाहरसे राधाकी गौर अङ्गप्रभा धारण किए हुए कलियुगमें जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य रूपमें आश्रय लिया है।

अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा।।

(आदिपुराण)

अर्थात् भगवान कहते हैं कि मैं ही नित्य प्रच्छन्न विग्रह ब्राह्मणश्रेष्ठ होकर भगवद्भक्त रूपसे (श्रीचैतन्यमहाप्रभु) अपने भक्तजनोंकी सदा रक्षा करता हूँ।

अहमेव क्वचिद् ब्रह्मन् संन्यासाश्रमाश्रितः।
हरिभक्तिं ग्राहयामि कलौ पापहतान्तरान्।।

(आदिपुराण)

भगवान कहते हैं—हे ब्राह्मण! मैं कलियुगमें संन्यास ग्रहणकर पापहत मनुष्योंको हरिभक्ति प्रदान करता हूँ।

यद्यपि कलियुगमें अनेक संन्यासी हुए हैं तथा होंगे, जो मनुष्योंमें कृष्णभक्तिका प्रचार करेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सभी भगवानके अवतार होंगे। यह भी सम्भव है कुछ दम्भी लोग इस श्लोककी आड़ लेकर स्वयंको भगवानका अवतार घोषितकर, लोगोंका शोषण प्रारम्भ कर दें। साधारण लोगोंको इससे सावधान रहनेकी आवश्यकता है। वर्त्तमानमें १७० से अधिक साधु अपनेको भगवानका अवतार घोषित किए हुए हैं, जो भयङ्कर रोगोंसे ग्रस्त होकर भौतिक डाक्टरोंकी शरणमें हैं तथा उनमेंसे कुछ हिरासतमें सड़ रहे हैं।

आदिपुराणके उक्त श्लोक महाप्रभु श्रीचैतन्यके भगवदवतार होनेकी ही पुष्टि करते हैं, क्योंकि भगवानके जो लक्षण शास्त्रोंमें उल्लिखित हैं, वे सब उनमें संघटित हो रहे हैं। यथा श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है—

भागवत भारतशास्त्र आगम पुराण।
चैतन्य कृष्ण अवतार प्रकट प्रमाण।।
प्रत्यक्षे देखह नाना प्रकट प्रभाव।
अलौकिक कर्म अलौकिक अनुभाव।।
देखिया ना देखे जत अभक्तेर गण।
उलूक ना देखे जेन सूर्येर किरण।।

(चै॰ च॰ आदि ३/८३–८५)

गोलोकं च परित्यज्य लोकानां त्राणकारणात्।
कलौ गौराङ्गरूपेण लीला लावण्य विग्रहः।।

(मार्कण्डेय पुराण स्वयं भगवत्ता श्लोक ५१)

मैं अनेक लीलाओंके सम्पादनके लिए परम मनोहर विग्रह धारण करनेवाला होकर भी कलियुगमें भक्तजनोंकी रक्षा हेतु गोलोकको छोड़कर श्रीगौराङ्गरूपसे अवतीर्ण होऊँगा।

यो रेमे सहवल्लवी रमयते वृन्दावनेऽहर्निशं।
यः कंसं निजधान कौरवरणे यः पाण्डवानां सखा।।
सोऽयं वैष्णव दण्डमण्डितभुजः संन्यासवेश स्वयं।
निःसन्देहमुपागतः क्षितितले चैतन्यरूपः प्रभुः।।

(गरुड़ पुराण स्वयं भगवत्ता श्लोक ३८)

अर्थात् जिन प्रभुने श्रीकृष्ण चैतन्य रूपमें श्रीधाम वृन्दावनमें गोपियोंके साथ रासलीला करते हुए अनेक क्रीड़ाएँ कीं एवं जिन्होंने कंसको मार डाला, कौरवोंके संग्राममें जो पाण्डवोंके सखा बनकर पार्थसारथी कहलाये, निःसन्देह वे अघटित घटना पटीयान् स्वयं प्रभु संन्यास वेष धारणकर, वैष्णवदण्डसे अपनी भुजा सुशोभितकर पृथ्वीतलपर श्रीकृष्ण चैतन्यरूपसे पधारेंगे।

श्रीगरुड़ पुराणकी उक्त आकांक्षा निश्चित ही महाप्रभु चैतन्यके रूपमें ही साकार हुई है। उन्होंने ही वैष्णव संन्यासीके रूप दण्ड धारणकर मायावादियोंको निरुत्तरकर इस पृथ्वीतलपर वैष्णव विचारका प्रसार किया। जगतके लोगोंको शिक्षाष्टक रूपी ८ रत्न प्रदान किये तथा अचिन्त्य भेदाभेदकी शिक्षा दी और घोषणा की कि—

पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम।।

(श्रीचैतन्य चरितामृत)

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

अद्वैताचार्य द्वारा प्रभुकी पूजा एवं गदाधरका आश्चर्य करना

एकदिन प्रभु गदाधरको साथ लेकर अद्वैताचार्यके दर्शनके लिए गये। वहाँ जाकर दोनोंने देखा कि वे तुलसी पूजा कर रहे हैं एवं जल प्रदान कर रहे हैं। दोनो भुजाओंको उठाकर 'हरिबोल! हरिबोल!' बोलते हुए कभी रो रहे हैं तो कभी ठहाके लगा रहे हैं। उनकी ऐसी अवस्था देखकर प्रभु भक्तप्रेममें आविष्ट होकर मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। अपने भक्तियोगके बलसे श्रीअद्वैताचार्य भी समझ गये कि ये ही मेरे प्राणनाथ हैं। वे मन ही मन कहने लगे—"हे चोरशिरोमणि! इतने दिनोंतक चोरी-चोरी यहाँ-वहाँ घूमते रहे। परन्तु यह भूल गये कि अद्वैतके सामने आपकी चोरी नहीं चलेगी। अब देखता हूँ कि यहाँसे बचकर कैसे जायेंगे? आजतक आप चोरी करते रहे अर्थात् मुझे प्रणाम करते आए, परन्तु आज मैं चोरके ऊपर चोरी करूँगा।"—ऐसा कहकर अद्वैताचार्य पूजाका सारा सामान लेकर आ गये तथा पाद्य, अर्घ्य, आचमन इत्यादिके द्वारा महाप्रभुकी पूजा की। तत्पश्चात् उनके श्रीचरणोंमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप इत्यादिके द्वारा उनकी आरति उतारते हुए श्लोक पढ़ने लगे—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण्यहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

अर्थात् हिरण्यकशिपुके आदेशसे जब असुरोंने प्रह्लादजीके शरीरपर बहुत भारी पत्थर बाँधकर उन्हें समुद्रमें डाल दिया तो उस समय वे भगवानकी स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे ब्रह्मण्य देव! हे गायों एवं ब्राह्मणोंके हितकारी! हे जगतके कल्याणकारी प्रभो! आपको मेरा पुनः पुनः प्रणाम।" पुनः पुनः रोते-रोते इस श्लोकको पढ़ते हुए श्रीअद्वैताचार्य अश्रुओंसे प्रभुके श्रीचरणोंका प्रक्षालन करने लगे। वे हाथ जोड़कर प्रभुके श्रीचरणोंके निकट खड़े हो गये। उन्हें ऐसा करते हुए देखकर गदाधरको बहुत आश्चर्य हुआ। वे बोले—"हे आचार्य! आप तो उम्रमें, भक्तिमें, ज्ञानमें, सब प्रकारसे निमाईसे बड़े हैं। अतः आपको इस प्रकार एक बालककी पूजा इत्यादि नहीं करनी चाहिए। इससे तो इनका अकल्याण ही होगा।" उनकी बात सुनकर अद्वैताचार्य बोले—"गदाधर! जिसे तुम अभी बालक कह रहे हो, कुछ ही दिनोंमें तुम और सारा जगत इन्हें जान जाएगा तथा मेरी तरह ही इनकी पूजा करेगा।" यह सुनकर गदाधर विचार करने लगे—अद्वैताचार्य प्रकाण्ड विद्वान होनेके साथ-साथ परम वैष्णव भी हैं। अतः इनकी कोई भी क्रिया निरर्थक नहीं हो सकती। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये निमाई पण्डित स्वयं भगवानके अवतार हों। अभी वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी समय प्रभुकी मूर्च्छा भङ्ग हो गई। उन्होंने देखा कि अद्वैताचार्य भावाविष्ट होकर खड़े हुए हैं, अपनेको छिपानेके लिए प्रभु दोनों हाथ जोड़कर अद्वैताचार्यकी स्तुति करने लगे तथा उनकी चरण-धूलिको अपने शरीरपर मलते हुए कहने लगे—"हे महाशय! आपके दर्शनकर मैं धन्य हो गया। मैंने अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। आप मेरे ऊपर कृपा करें क्योंकि आपकी कृपा होनेसे ही किसीकी जिह्वापर कृष्णनाम स्फुरित हो सकता है। आप ही इस भव-बन्धनको काट सकते हैं। क्योंकि आपके हृदयमें सर्वदा कृष्ण विलास करते हैं।"

इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान, जिनका स्वभाव ही है—अपने भक्तोंकी महिमाको बढ़ाना, अद्वैताचार्यकी महिमा प्रकाशित करने लगे। उन्हें इस प्रकार अपना

सम्मान करते देख अद्वैताचार्य मन-ही-मन कहने लगे—"प्रभो! आप क्या चतुराई दिखाएँगे? चोरके घरमें भी मैंने पहले ही चोरी कर ली है अर्थात् आप अपनेको छिपा रहे थे, परन्तु मैंने आपकी चोरी पकड़ ली। मैंने जान लिया है कि आप स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं।"

कुछ देर बाद अद्वैताचार्य बोले—"हे विश्वम्भर! आप मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। अब मैं यहीं पर रहूँगा जिससे सदा-सर्वदा आपके दर्शन कर सकूँ। इसके अतिरिक्त समस्त वैष्णवोंकी भी आपकी दर्शन करनेकी एवं आपके साथ मिलकर कीर्त्तन करनेकी प्रबल इच्छा है।" यह सुनकर प्रभुने हँसते-हँसते उनकी बात स्वीकार कर ली तथा अपने घर चल पड़े।

प्रभुकी विरहावस्था

अब प्रभुने वैष्णवोंके साथ मिलकर कीर्त्तन करना आरम्भ कर दिया। कीर्त्तनके समय उनके शरीरमें जैसा आवेश होता था, उसे देखकर सभी वैष्णववृन्द विस्मित हो जाते थे। प्रेममें आविष्ट होकर जब प्रभु काँपने लगते थे तो सौ लोग भी मिलकर उन्हें सम्भाल नहीं पाते थे। नेत्रोंसे बहती हुई अश्रुधाराको देखकर ऐसा प्रतीत होता मानो उनके नेत्रोंसे गङ्गा, यमुना प्रवाहित हो रही हों। इन आश्चर्य भावोंको दर्शनकर वैष्णवोंको विश्वास हो गया कि ये साधारण मनुष्य नहीं हैं। कोई उन्हें अंशावतार बता रहे थे। कोई कह रहे थे कि ऐसा लगता है इनके शरीरमें कृष्णका आवेश होता है। कोई प्रभुको शुकदेवजी, नारदजी अथवा प्रह्लादजीका अवतार मान रहे थे। उनकी स्त्रियाँ विचार करने लगीं कि अवश्य ही श्रीकृष्ण निमाई पण्डितके रूपमें प्रकटित हुए हैं।

प्रभु प्रायः अन्तर्भावमें डूबे रहते थे। जब कभी उन्हें बाह्यज्ञान उदित होता, तो उस समय वे सभी वैष्णवोंके गलेसे लिपटकर रोते-रोते कहते—"अरे भाइयो! कृपा करके बतावें कि मुझे मुरलीवदन श्रीकृष्णके दर्शन कहाँ होंगे?" एक दिन वे सभीसे बोले—"मैं आज आप लोगोंको अपना दुःख सुनाता हूँ, आपलोग सुनिये।" यह सुनकर सभीके हृदयमें उत्कण्ठा जग गई कि प्रभु क्या कहने जा रहे हैं। कुछ देर बाद प्रभु बोले—"मैं जब गयासे वापस लौट रहा था तो मार्गमें 'कानाइर नाट्यशाला' नामक एक स्थानपर पहुँचा। वहाँपर मैंने तमालवृक्षके समान श्यामवर्णके एक सुन्दर बालकको देखा। उसके कानोंमें सुन्दर-सुन्दर कुण्डल झिलमिला रहे थे। उसके शिरपर मोरपंख शोभित हो रहा था। उसके हाथमें वंशी एवं चरणोंमें नूपुर सुशोभित हो रहे थे। नीलस्तम्भको भी पराजित करनेवाले सुन्दर-सुन्दर भुजाओंमें रत्नजड़ित अलङ्कार एवं वक्षस्थलपर कौस्तुभमणि सुशोभित हो रहा था। बन्धुओ! उसके रूपका क्या वर्णन करूँ? उसका दर्शन करते ही मैं अपनी सुध-बुध खो बैठा तथा स्तम्भकी भाँति खड़ा ही रह गया। उसी समय वह मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए मेरे पास आया तथा एक क्षणके लिए मुझे आलिङ्गनकर कहीं छिप गया।" इतना कहते ही प्रभु "हा कृष्ण" कहते हुए मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़े। घबराकर सभीने प्रभुको "कृष्ण, कृष्ण" कहते हुए उठाया तथा उनके शरीरपर लगी धूल झाड़कर उन्हें शान्त किया।

स्थिर होनेपर भी प्रभु सर्वदा अन्तर्भावमें ही डूबे रहते थे तथा "हे कृष्ण, आप कहाँ छिप गये" ऐसा कहकर विलाप करने लगते। वे जिस किसी वैष्णवको देखते, उसीके गलेसे लिपटकर रोते-रोते पूछते—"क्या आपने कृष्णको कहीं देखा?" ऐसा कहकर फूट-फूटकर रोने लगते।

एक दिनकी बात है। गदाधर प्रभुके दर्शनके लिए गये। उन्हें देखते ही प्रभु बोले—"गदाधर! पीताम्बरधारी कृष्ण कहाँ हैं?" प्रभुने जिस विरहार्त्तिपूर्वक पूछा, उसे सुनकर गदाधरका हृदय मानो फटने लगा। वे विचार करने लगे कि मैं इन्हें क्या उत्तर दूँ। फिर कुछ देर कुछ विचारकर प्रभुको सान्त्वना प्रदान करनेके उद्देश्यसे बोले—"कृष्ण तो

सब समय आपके हृदयमें ही तो विराजमान रहते हैं।" यह सुनकर कि 'कृष्ण मेरे हृदयमें हैं', उनका दर्शनके लिए प्रभु अपने नखोंसे अपनी छातीको फाड़ने लगे। यह देखकर गदाधरने जल्दीसे प्रभुके दोनों हाथोंको पकड़ लिया तथा तरह-तरहसे समझा बुझाकर उन्हें शान्त किया। अन्दरसे शचीमाता दुःखी होकर सब देख रही थी। गदाधरकी चतुराईसे शचीमाता प्रसन्न हो गईं तथा विचार करने लगीं—"निमाईकी जब ऐसी अवस्था होती है तो मैं भी भयके कारण उसके समीप नहीं जा पाती, परन्तु यह छोटे-से बालक गदाधरने इसे कैसे शान्त कर दिया।" शचीमाता बोली—"बेटा गदाधर! तुम सब समय इसके साथ रहना। इसे छोड़कर कहीं मत जाना।"

प्रभुके अद्भुत भावोंको देखकर कभी-कभी शचीमाताकी भी प्रभुके प्रति पुत्रबुद्धि न रहती। वे विचार करने लगतीं कि निमाई कोई साधारण पुरुष नहीं है। क्योंकि इसके नेत्रोंसे जैसे अश्रुधारा प्रवाहित होती है, वह किसी साधारण मनुष्यके लिए सम्भव नहीं है। न जाने कौन महापुरुष हमारे घरमें प्रकट हुए हैं। ऐसी बुद्धिसे प्रेरित होकर वे प्रभुके सामने जानेसे डरती थीं। सन्ध्याके समय सभी वैष्णवलोग प्रभुसे मिलनेके लिए आते थे। उस समय जब मुकुन्द, जो कि उत्तम गायक थे, भागवतसे सुन्दर-सुन्दर भक्तिकी महिमायुक्त श्लोकोंका मधुरस्वरसे गान करते तो उनका सुमधुर कीर्त्तन श्रवणकर प्रभु आविष्ट हो जाते तथा "हरिबोल, हरिबोल" बोलते हुए गर्जन करने लगते। इस प्रकार सारी रात कीर्त्तनके आनन्दमें एक मुहूर्त्तके समान व्यतीत हो जाती। इस प्रकार अपने घरसे ही प्रभुने सङ्कीर्त्तनका प्रचार करना आरम्भ कर दिया, जिससे भक्तोंके दुःख-कष्ट नष्ट हो गये तथा वे सभी आनन्दसमुद्रमें निमग्न हो गये।

रात्रिकीर्त्तनसे पाषण्डियोंका क्रोधित होना

सारी रात कीर्त्तन होनेके कारण पाषण्डियोंकी निद्रामें बाधा पहुँचने लगी, जिससे वे वैष्णवोंसे द्वेष करने लगे तथा नाना प्रकारसे जगह-जगह उनकी निन्दा करने लगे। कोई कहता कि ये लोग क्या पागल हो गये हैं, जो सारी रात चिल्लाते रहते हैं? इन्हें इसका भी भय नहीं है कि इस प्रकार चिल्लानेसे भगवान रुष्ट होकर सबका सर्वनाश कर देंगे। योग व ज्ञानका अवलम्बन न कर न जाने क्यों ये पागलोंकी भाँति उछल-कूद मचाते हैं एवं गला फाड़कर चिल्लाते हैं। पाषण्डियोंका सबसे अधिक क्रोध था श्रीवासके प्रति। वे बोलते—इन चार भाइयोंके पास कुछ है तो नहीं, केवल पेट भरनेके लिए ही ये लोग पागलोंकी तरह चिल्लाते हैं। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो चिल्लानेकी क्या आवश्यकता है? क्या मन ही मन भगवानका नाम लेनेसे वे सुन नहीं सकते?

उसी समय कोई दूसरा बोलता—"अरे भाइयो! इस एक श्रीवासके कारण अब हम सबकी नौबत आनेवाली है। मैंने आज सुना है कि मुसलमान बादशाहके आदेशसे उसके सिपाही यहाँ आनेवाले हैं। उन्हें जो भी कीर्त्तन करता मिल गया या उसकी सहायता करता हुआ मिल गया, उसे पकड़कर बादशाहके पास ले जाएँगे। इस श्रीवासके पास तो कुछ भी नहीं है, इसलिए यह तो कहीं भी भाग जाएगा। परन्तु हमारा तो सबकुछ है। हम सबकुछ छोड़कर कहाँ जाएँगे? इसलिए इसके कारण तो अब हमारा ही सर्वनाश होनेवाला है। इतनेमें ही कोई दूसरा बोलता—मैंने उसी दिन कह दिया था कि हम सभी लोग मिलकर इसके घरको तोड़कर गङ्गामें बहा देते हैं तथा इसे यहाँसे भगा देते हैं। परन्तु उस दिन तो सभीने इसे परिहास मात्र समझा। अतः उसीका फल अब सभीको भोगना पड़ेगा। दूसरा कोई पाषण्डी बोलता—"अरे! भयकी क्या बात है? हम सभी लोग श्रीवास तथा उसके तीन भाइयोंको पकड़कर उनके हवाले कर देंगे।" इस प्रकारसे अनेक प्रकारकी बातें सुनाई देने लगीं।

श्रीवासका भय एवं निर्भीकरूपमें प्रभुका विहार

यह बात जब श्रीवासजीके कानोंमें पहुँची तो वे कुछ भयभीत हो गये, क्योंकि राज्य मुसलमानोंका था तथा वे हिन्दु धर्मावलम्बियोंसे दुर्व्यवहार करते थे। अन्तर्यामी प्रभु अपने प्रिय भक्तके हृदयमें छिपे भयको जान गये। अभीतक भक्तोंको यह भी पता नहीं था कि प्रभु अवतीर्ण हो चुके हैं एवं ये शचीनन्दन ही स्वयं कृष्ण हैं। अतः अब प्रभुकी भक्तोंके समक्ष अपनेको प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई। वे नगरोंमें चारों ओर निर्भीक होकर घूमते रहते थे। उन्हें इस प्रकार घूमते देखकर पाषण्डीलोग कहते—"देखो तो यह निमाई पण्डित कैसा ढीठ है? यह सुनकर भी कि बादशाहके सिपाही इन लोगोंको पकड़ने आ रहे हैं, यह कहीं छिपता नहीं है, बल्कि घूम रहा है।" अन्य कोई कहता—"देखो तो सही, आने दो सिपाहियोंको, वे इसकी अकड़ ठीक कर देंगे।"

श्रीवासको चतुर्भुजरूपका दर्शन

एकदिन प्रभु भ्रमण करते-करते गङ्गाके सुरम्य तटपर जा पहुँचे। वहाँ जाकर चारों ओर देखने लगे। उस समय उन्हें गायोंका एक झुण्ड गङ्गाके किनारे दिखाई दिया। उनमेंसे कुछ तो घास चर रही थीं, कुछ पूँछ उठाकर इधर-उधर दौड़ रही थीं, कुछ सो रही थीं तथा कुछ गङ्गामें जलपान कर रही थीं। इस दृश्यको देखकर प्रभु गर्जन करने लगे तथा बार-बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहने लगे। फिर उसी आवेशमें दौड़ते-दौड़ते श्रीवासजीके घरमें पहुँच गये। वहाँ जाकर गरजते हुए बोले—"श्रीवास क्या कर रहा है?" ऐसा कहकर जिस घरके अन्दर श्रीवासजी नृसिंह भगवानकी पूजा कर रहे थे, उसके दरवाजेपर जोर-जोरसे ठोकर मारने लगे तथा दहाड़ते हुए कहने लगे—"तू किसकी पूजा करता है तथा किसका ध्यान करता? तू जिसका ध्यान तथा पूजा करता है, देख आज वह स्वयं तेरे दरवाजेपर आया है। यह सुनते ही जैसे ही श्रीवासजीका ध्यान भङ्ग हुआ तो सामने शंख, चक्र, गदा एवं कमलाका फूल धारण किए हुए चतुर्भुजरूपमें प्रभु श्रीगौरसुन्दरको वीरासनमें बैठे हुए देखा। इस स्वरूपका दर्शनकर श्रीवासजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर चुपचाप बैठे ही रह गये। उन्हें इसका भी ज्ञान न रहा कि इस समय क्या करना चाहिए। उसे इस प्रकार मोहित हुआ देखकर प्रभु बोले—"श्रीवास! इतने दिनोंतक मैं तेरे आस-पास घूमता रहा। परन्तु आजतक तू मुझे पहचान नहीं पाया। तू नहीं जानता कि उच्च सङ्कीर्त्तन एवं नाड़ा (अद्वैताचार्य) के हुङ्कारसे ही मैं अपने समस्त परिकरोंके साथ वैकुण्ठ छोड़कर इस धराधाममें अवतरित हुआ हूँ। अतः अब तुझे चिन्ताकी कोई बात नहीं है, क्योंकि अब मैं दुष्टोंका संहारकर साधुओंका उद्धार करूँगा। अतः अब तू निश्चिन्त होकर मेरी स्तुति कर।"

यह सुनकर तथा प्रभुको अपने समक्ष साक्षात् रूपमें प्रकट हुआ देखकर श्रीवास प्रेमाविष्ट होकर रोने लगे। उनके भय-क्लेश आदि सब नष्ट हो गये तथा वे पुलकित होकर खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर भगवानकी स्तुति करने लगे—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय।।

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/१)

अर्थात् "हे जगन्द्वन्द्य! नवीन मेघके समान श्यामल आपका श्रीअङ्ग है। उसपर स्थिर विद्युतके समान झिलमिलाता हुआ आपका पीताम्बर है। आप गोपराज नन्दके प्रिय पुत्र हैं। आपके गलेमें गुञ्जामाला, कानोंमें मकराकृति कुण्डल तथा सिरपर मोरपंखोंका मुकुट है। इन सबकी कान्तिसे आपके मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षस्थलपर लटकती हुई वनमाला तथा नन्हीसी हथेलीपर दही-भातका कवल, बगलमें बेत और शृङ्ग तथा कमरके फेटेमें आपका अत्यन्त प्रिय वेणु शोभा पा

रहा है। आपके चरणयुगल अति कोमल हैं, मैं आपका स्तव करता हूँ।" "हे प्रभो! आप ही विष्णु हैं, आप ही कृष्ण हैं, आप ही यज्ञेश्वर हैं तथा आपका ही चरणामृत यह गङ्गादेवी है। आप ही जानकीपति श्रीराम एवं भगवान नृसिंह हैं। ब्रह्मा शिव आदि सभी आपके चरणोंके दास हैं। आपने ही वामनरूपमें बलिको छला तथा उसपर कृपा की। आप ही नीलाचलचन्द्र श्रीजगन्नाथ हैं। प्रभो! आपकी महिमाका क्या गान करूँ? स्वयं लक्ष्मीजी भी आपकी मायासे मोहित होकर आपको पूर्णरूपसे जान नहीं पातीं, तो फिर मेरे जैसे तुच्छ जीवकी तो बात ही क्या है। प्रभो! इतने दिनोंतक आप मुझे छलते रहे। कितनी ही बार आपने मेरे वस्त्रोंको धोया, कितनी ही बार मुझे प्रणाम किया। परन्तु मेरा दुर्भाग्य मैं आपको पहचान नहीं पाया। परन्तु प्रभो! आज आपका दर्शनकर केवल मेरा ही नहीं, मेरे पितृकुल एवं मातृकुल दोनोंका ही उद्धार हो गया।" स्तुति करते-करते श्रीवास आविष्ट होकर दोनों भुजाओंको उठाकर उदण्ड नृत्य करने लगे। उनकी ऐसी दशा देखकर प्रभु मुस्कुराते हुए बोले—"श्रीवास! तुम्हारे घरमें तुम्हारी स्त्री, पुत्र, भाई इत्यादि जितने भी सदस्य हैं, सभीको बुलाओ। वे भी मेरा दर्शनकर धन्य हो जाएँ तथा सभीलोग मिलकर मेरी पूजा करो। यह सुनकर श्रीवासने अपने भाई, पत्नी, दास, दासी सभीको प्रभुके चरणोंमें समर्पित किया तथा सभीने मिलकर प्रभुकी पूजा की। प्रभु सन्तुष्ट होकर गर्जन करते हुए बोले—"श्रीवास! अपने मनसे भय निकाल दो। तुम्हें भय है कि सिपाही तुम्हें पकड़कर ले जाएँगे। तुम चिन्ता मत करो। सबको प्रेरणा देनेवाला मैं हूँ। यदि मैं राजाको प्रेरित करूँगा, तभी तो वह आदेश देगा। परन्तु यदि फिर भी वह स्वतन्त्ररूपसे अर्थात् मेरी इच्छाके विरुद्ध सिपाहियोंको आदेश देगा तो सबसे पहले मैं उनकी नावमें बैठकर राजाके पास जाऊँगा। मुझे अपने सामने देखकर क्या राजा अपने सिंहासनपर बैठा रह सकता है? यह सम्भव नहीं है। वह अवश्य ही मेरे चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना करेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ अर्थात् यदि राजाके ऊपर मेरे दर्शन करनेका प्रभाव नहीं पड़ा तथा उसने मुझसे कुछ पूछा तो मैं क्या करूँगा सुनो। मैं कहूँगा—हे बादशाह! आप अपने सभी काजियोंको बुलवाओ तथा उनके सामने आपके पास जितने भी घोड़े, हाथी, पशु, पक्षी इत्यादि हैं, सभी प्राणियोंको मंगवाओ। बादशाह जब ऐसी व्यवस्था कर देगा तो मैं उस समय बादशाहसे कहूँगा कि अब आप अपने काजियोंको आदेश दें कि वे अपने शास्त्र 'कुरान' पढ़कर अर्थात् 'अल्लाह' का नाम लेकर सभी प्राणियोंको रुलाओ। यदि वे एसा नहीं कर पाये, तो मैं कहूँगा कि आप अपने इन काजियोंकी बातोंमें आकर कीर्त्तन बन्द कराना चाहते हैं। आपने इनका प्रभाव देख लिया। इनके अन्दर तो लेशमात्र भी शक्ति नहीं है। अब आप मेरी शक्ति देखिए। ऐसा कहकर मैं पागल हाथियोंको मँगवाकर तथा वहाँ जितने भी प्राणी होंगे, सभीको 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर रुलाऊँगा। उस समय सभी प्राणी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर रोने लगेंगे। स्वयं बादशाह तथा उसके सभी सहयोगी भी 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' कहते हुए दहाड़ मारकर रोने लगेंगे। यदि तुम्हें मेरी बातोंपर विश्वास न हो तो मैं अभी यहींपर तुम्हें ऐसा कर दिखाता हूँ। इसे तुम स्वयं देख लो।" ऐसा कहकर प्रभुने श्रीवासजीके भाईकी छोटी-सी चार वर्षकी बालिका 'नारायणी', जो सामने ही खड़ी थी, उससे कहा—"नारायणी, तुम 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर रोओ।" इतना सुनते ही वह अबोध बालिका 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' कहकर जोर-जोरसे रोने लगी। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा ऐसे प्रवाहित हो रही थी, मानो गङ्गा-यमुनाकी धारा बह रही हो। उससे श्रीवासजीका सारा घर भीग गया। तब प्रभु हँसते हुए बोले—"क्यों श्रीवास, तुम्हारा भय दूर हुआ कि नहीं?" यह सुनकर सर्वशास्त्रवेत्ता श्रीवास बोले—"प्रभो! आप तो कालके भी काल हैं। इच्छामात्रसे ही आप सारे जगतका

संहार कर सकते हैं। आपके नामके बलसे तो मुझे पहले ही किसी प्रकारका भय नहीं था। अब जबकि आप स्वयं मेरे घरमें विराजमान हैं, तो मुझे भला किसका भय हो सकता है?" ऐसा कहकर श्रीवास प्रभुके चरणोंमें गिरकर फूट-फूटकर रोने लगे। प्रभु हँसते हुए बोले—"श्रीवास! जो कुछ तुमने देखा अथवा सुना है, उसे किसीके सामने प्रकट मत करना।" ऐसा कहकर प्रभुने अपने स्वरूपको अन्तर्द्धान कर लिया। अब जब उनका आवेश दूर हुआ तो वे कुछ लज्जित होकर श्रीवासको सान्त्वना देकर अपने घरकी ओर चल दिये। (क्रमशः)

।। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः।।

विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका प्रचार कर पुनः मथुरा प्रत्यागमनके उपलक्ष्यमें

१२ वीं विदेश यात्राके पश्चात् पुनः मथुरा आगमनपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठवासियोंकी ओरसे स्वागत

हे विश्वविजयि—आप तीन महिने पहले मथुरासे विदाई लेकर अमेरिका, ईटाली, इंग्लैण्ड आदि पाश्चात्य देशोंमें श्रीगुरु-गौराङ्ग-श्रीराधाविनोदबिहारीजी का तथा उनकी वाणीका प्रचार, प्रकाश करने तथा 'महद्विचलनं नृणां गृहीणां दीनचेतसां', 'महान्तेर स्वभाव तारिते पामर। निज कार्य नाहि, जान तार घर।।' तथा 'पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम। सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम।।' इन महद्वाक्योंको सार्थक करनेके लिए एवं विश्ववासी कलिहत जीवोंके हृदयको धोकर श्रीगौरसुन्दर-राधाकृष्णके भक्तिका उनके हृदयमें उदय कराकर आप पधारे हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे परिव्राजकाचार्यवर्य—हे विश्वपरिक्रमकारी, आप अपने उम्रकी ओर ध्यान न देकर अपने प्रभु (आचार्यकेशरी), श्रीगौरसुन्दर-श्रीराधा-विनोदविहारीजीका प्रकाश तथा उनकी वाणीका प्रचार करनके लिए पृथ्वीकी परिक्रमा कर रहे हैं तथा 'तीर्थी कुर्वन्ती तीर्थानि' इस वाक्यको सार्थक कर रहे हैं एवं विचरण कर रहे हैं। अतएव आप ही परिव्राजकाचार्यवर्य शब्दवाच्य हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे जगद्गुरो—आपके द्वारा इस जगद्वासियोंके कल्याणमें चिन्तनशील तथा उनके हृदयमें जगद्गुरु श्रीकृष्ण एवं उनके परिकरोंके शुद्धभावोंको उदय करानेमें प्रयत्नशील तथा जो जगद्वासी लोग जगन्नाथ (बलदेव, सुभद्रा) को भूल गये हैं, उनको पुनः रथयात्रा आदिके द्वारा उनके पाषण्ड हृदयोंको दण्डित करनेवाले पाषण्डदण्ड नित्यानन्दस्वरूप! आप ही जगद्गुरो वाच्य हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे विदग्ध शिरोमणे—आपने कहा था कि मैं जल्द आऊँगा, किन्तु आये तीन महिने बाद। यह तीन मास हमारे ऐसे गुजरे, जैसे चातक पानीके आशमें। आपकी सेवा, दर्शन तथा कथामृतरूप पानीके बिना। हम यह नहीं कह सकते कि आप सर्वत्र हैं। "मैं आपलोगोंसे दूर नहीं हूँ। यहाँसे मैं १०-१२ घण्टेमें दूनियाकी उस छोर तक पहूँच गया और वापस आया, जैसे दिल्ली जाकर वापस आया।" हमें इन उद्धव या कृष्णकी जैसी बातोंसे सान्त्वना मिल नहीं सकती, जैसी बातें उन्होंने वृन्दावन या कुरुक्षेत्रमें समझायी थीं। हम तो आपके श्रीचरणकमलोंको सर्वदा इस मथुरा-वृन्दावनमें चाहते हैं। आप कृष्णलीलाकथाओंमें दक्ष हैं, औदार्य-माधुर्य गुणोंसे युक्त हैं; अतः आपको सारा विश्व चाहता है। किन्तु हम स्वार्थी नहीं हैं कि आप हमें ही हरिकथा सुनाइये। यह तो हमारा ही दुर्दैव है कि आप हमसे कभी कभी दूर चले जाते हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे औदार्यमय—परम करुणावरुणालय, श्रीनामप्रेम-प्रदानकारी, श्रीरागभक्तिप्रचारकारी, श्रीराधाकृष्ण-मिलिततनु औदार्यविग्रह श्रीगौरसुन्दर पात्रापात्रका विचार न करके जिस प्रकार हरिनाम सङ्कीर्त्तन, नामप्रेम और रागमार्गभक्तिका वितरण किये थे, उसी प्रकार आप भी देश-विदेशोंमें हरिनाम सङ्कीर्त्तन तथा नामप्रेमका तथा भक्तिका प्रचार-प्रकाश कर रहे हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजीने कहा है कि वैष्णवोंके कृपापात्र वे ही हैं, जिनकी आँखें सुन्दर रूप देखनेके लिए झपटती है, जिनकी जिह्वा मांस मदिराका स्वाद चखनेके लिए लपकती है तथा जिनके पैर सङ्गीतके तालपर थिरकते हैं। अतः आप इनका परिवर्त्तन कर रहे हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे माधुर्यमय—आप अपने वाणी तथा गुणोंके द्वारा सभी पक्षोंको एकत्रित कर उनको श्रीगौरसुन्दर-श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका रसपान करा रहे हैं। अतः आपका स्वागत है।

हे वीर विक्रमशाली—आप अपने प्रभु श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक आचार्यकेशरीके प्रियपात्र, आपके जेष्ठ गुरुभ्राता ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें विश्ववासी कलिहत जीवोंके हृदयसे कामक्रोधादि, कर्मज्ञानादि, ढोंगी सम्प्रदाय तथा मुक्तिवासनादि मत्त हस्ती आदि जङ्गली पशुओंको सिंहगर्जनाकर विदूरित कर रहे हैं। 'सुनिया गोविन्द रब पलाय आपन सब, सिंहनादे जेन करि गण।' अतः आप अपने प्रभु आचार्यकेशरी जैसे ही (आत्मवत् जायते पुत्र) हैं एवं उनका जगतमें प्रकाश कर रहे हैं। अतः आपका स्वागत है।

हम आपका वन्दन, अभिनन्दन, स्वागत क्या करें। आप अपने सुकोमल चरणकमल हमारे कामक्रोधादि मरुभूमिसम तप्त-हृदयमें उदित कराकर उसे शीतलता प्रदान कीजिए।

श्रीभक्तिप्रज्ञान प्रभु दास्य परम्।
प्रणमामि सदा नारायण पदम्।।

विविध संवाद

—श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

रूसमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचार

विश्वव्यापी श्रीगौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'के अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुगृहीत श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज रूसकी राजधानी मास्को एवं कुरिलोवोमें अत्यधिक सफलतापूर्वक एकादश दिन प्रचार करनेके उपरान्त मथुरामें आ गये हैं। रूस जानेसे पहले नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीलभक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजजीकी शतवार्षिकी व्यासपूजाके उपलक्ष्यमें ७-७-२००१को जिस धर्मसभाका आयोजन किया गया था, उसकी अध्यक्षता श्रील महाराजजीने की। सभामें वृन्दावनस्थित वृन्दावन शोधसंस्थानके जितने भी अध्यापकगण उपस्थित थे, उन्होंने श्रील वन महाराजजीकी विद्वता एवं उनके द्वारा की गई धामवासिओंकी सेवापर विशेषरूपसे प्रकाश डाला। श्रील महाराजजीने सभापतिके भाषणमें विशेष जोर देकर कहा कि "सेइ से विद्यार फल जानिओ निश्चय। कृष्ण पादपद्मे यदि चित्तवृत्ति रय।।" "सा विद्या तन्मतिर्यया" एवं "विद्या भागवतावधि" आदि शास्त्रयुक्तियों द्वारा श्रील महाराजजीने बहुत ही गम्भीर परन्तु

सरल रूपसे व्याख्या करके सभीको यह समझा दिया कि विद्याका वास्तविक फल भगवानके श्रीचरणोंमें भक्ति होना ही है। इसीको शास्त्रमें पराविद्या कहा गया है। इसी पराविद्याका दान करनेके लिए श्रील वन महाराजजीने विश्वविद्यालयकी स्थापना की, जिसको सभी लोग वन महाराजजीका कालेज कहकर पुकारते हैं। सभाके अन्तमें गौड़ीय मठोंके उपस्थित सभी वैष्णवोंने अत्यधिक हर्षपूर्वक इस प्रकार कहा कि मथुरा–वृन्दावन विद्वत् सभामें एवं गौड़ीय मठोंकी सभामें सभापतित्व करनेकी योग्यता केवल मात्र गौड़ीय वेदान्त समितिकी ही है।

१५–७–०१ से २५–७–०१ पर्यन्त रूसकी राजधानी मास्को एवं कुरिलोवोमें प्रधान आलोच्य विषय इस प्रकार थे—भक्तिदेवीका स्वरूप, परमपूज्यपाद श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीकी तिरोभाव तिथिका पालन, श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके साथ उनका सम्बन्ध, ध्रुव महाराज क्यों शुद्ध भक्त नहीं हैं, अनेक प्रकारके अनर्थोंमें भेद एवं उनसे बचनेका उपाय, भावभक्तिका लक्षण इत्यादि। भक्तिदेवीके स्वरूपकी आलाचना करते हुए श्रील महाराजजीने पूर्वपक्ष उत्थापन करते हुए कहा कि भक्ति स्वरूप शक्तिकी वृत्ति है। जड़ेन्द्रियोंके द्वारा भजन सम्भव नहीं है। तब हमलोग जड़ेन्द्रियोंके माध्यमसे साधन करें कैसे? साधारणरूपसे हम तो हताश हो जाते हैं। श्रील महाराजजीने उत्तरपक्षमें कहा इसमें हताश या निराश होनेकी कोई बात नहीं है। गौड़ीय गुरुवर्गने इसका सामञ्जस्य किया है—'श्रीकृष्ण परम करुण अहैतुकी कृपामय'। स्वयं भगवान एवं तदीय अर्थात् श्रीगुरु, वैष्णव, गिरिराज गोवर्द्धन, गङ्गा, यमुना, तुलसी आदिकी कृपासे भक्तिदेवी हमलोगोंकी इन्द्रियोंके साथ तदात्म्य हो जाती हैं। तदात्म्यका अर्थ तत्स्वरूपतः अर्थात् उन्हींके स्वरूपको प्राप्त करना। जैसे लोहेमें आग। लोहा आगमें जलकर लाल हो जाता है। इस अवस्थामें बाह्यिक दृष्टिसे ऐसा प्रतीत होता है कि लोहा दूसरी वस्तुको जला रहा है, किन्तु लोहेका धर्म जलाना नहीं है। आगका ही धर्म जलाना। ऐसे ही भक्तिवृत्तिके सम्बन्धमें समझना पड़ेगा।

कोई श्रद्धालु व्यक्ति श्रील महाराजजीसे बोला—स्वामीजी! रूसके ये भक्त अत्यन्त पुराने हैं एवं भावभक्त है। भाव अवस्थाको प्राप्त कर चुके हैं।

श्रील महाराजजीने उत्तरमें बताया—भावभक्त भावभक्त कहने पर नहीं चलेगा। शास्त्रमें श्रील रूप गोस्वामी पादने साधनभक्ति, भावभक्ति, प्रेमाभक्ति आदिकी संज्ञा भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें लिखी है। श्रील रूप गोस्वामीने बताया है—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः।।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातेभवाङ्कुरजने।।

अर्थात् प्रेमकल्पवृक्षकी प्रथमावस्था भावरूप अङ्कुर जिनके हृदयमें उदित हुआ है, उनलोगोंके हृदयमें निम्नलिखित अनुभाव प्रकाशित हो जाते हैं।

क्षान्ति—क्षान्ति अर्थात् क्षोभके कारण उपस्थित होनेपर भी क्षोभित नहीं होना। जैसे कि द्रौपदीके वस्त्रहरणके समय पञ्चपाण्डवोंमेंसे भीम एवं अर्जुन अत्यन्त क्राधित होकर उठ

खड़े हुए कि सबको आज समाप्त कर दूँगा। युधिष्ठिर महाराजने अक्षोभित चित्तसे भीम और अर्जुनको समझाकर कहा—"धैर्य धारण करो। समयकी प्रतीक्षा करो। क्या होता है, देखो।" इधर क्षोभका कारण उपस्थित होनेपर भी युधिष्ठिर महाराज क्षोभित नहीं हुए।

अव्यर्थकालत्व—निरन्तर वाक्यके द्वारा स्तव, स्मरण, प्रणामादि करना। जैसे कि हमारे षड्गोस्वामी। इनके जीवन-चरित्रकी आलोचना करनेपर देखते हैं—

संख्यापूर्वकनामगाननतिभिः कालावसानीकृतौ
निद्राहारविहारकादिविजितौ चात्यन्तदीनौ च यौ।
राधाकृष्णगुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ।।

मैं उन रूप-सनातनादि षड्गोस्वामियोंकी वन्दना कर रहा हूँ, जो लोग संख्यापूर्वक नामजपादि एवं प्रणामोंके द्वारा कालयापन करते थे, निद्रा-आहार- विहारको जो जीत चुके थे एवं अत्यन्त दीन होकर श्रीश्रीराधाकृष्णके स्मरण-माधुर्यजनित परमानन्दमें विभोर रहते थे।

विरक्ति—चक्षु-कर्णादि इन्द्रियसमूहके रूप, रस, शब्दादि विषय-ग्रहणमें स्वाभाविक अरोचकता। साधारणरूपमें चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रियसमूह रूप, रस, शब्दादि विषयोंको रुचिके साथ ग्रहण करते हैं। किन्तु इस विषयमें अरोचकताको विरक्ति कहा गया है। जैसे भरत महाराजके चरित्रके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें श्रील शुकदेव गोस्वामीका मन्तव्य है—

यो दुस्त्यज्यान् दारसुतान् सुहृद्राजं हृदिस्पृशः।
जहौ युवैव मलवदुत्तमःश्लोकलालसः।।

राजर्षि भरत महाराजने उत्तमश्लोक भगवानके प्रति अनुरागी हो कर यौवनवस्थामें ही हृदयके लिए अत्यन्त आग्रहकी वस्तु जिनको सहज ही परित्याग करना सम्भव नहीं, ऐसी युवती स्त्री, पुत्र, कलत्र, वन्धुवान्धव और राज्यको मलकी भाँति परित्याग कर दिया था। यह विरक्तिका उदाहरण है।

मानशून्यता—अपना उत्कर्ष रहनेपर भी जो अभिमानहीनता है, उसको मानशून्यता कहा गया है। जैसे श्रील रघुनाथदास गोस्वामीका ज्ञाति-खुड़ा कालिदास। वे समस्त वैष्णवोंका अधरामृत छल, बल, कौशलसे लेते थे। यहाँतक कि नीचजातिका भी अधरामृत आस्वादन किया था। इस मानशून्यताके कारण श्रीमन्महाप्रभुने उनको अपना चरणामृत पान करनेका सुयोग दिया था, जो और किसीको नहीं दिया था।

आशाबन्ध—श्रीकृष्णप्राप्तिकी दृढ़ सम्भावनाको ही आशाबन्ध कहा गया है। जैसे श्रीलरूप गोस्वामी पादने बताया—हे गोपीजनवल्लभ! मेरा प्रेम नहीं है। श्रवणकीर्त्तनादि भक्तिसाधन भी नहीं है। वैष्णवयोग आदि भी नहीं है अर्थात् भक्तियोग नहीं है। भगवन्निष्ठ ज्ञान, शुभकर्म या परिचययोग्य उच्च सद् जाति भी नहीं है। फिर भी दीन हीन जनके प्रयोजनके सम्बन्धमें आपको समधिक दयालु जानकर आपकी प्राप्तिके विषयमें अच्छेद्यमूल आशा ही मुझको यत्परोनास्ति व्यथा दे रही है। हाय! हाय! अब मैं क्या करूँ?

समुत्कण्ठा—अपनी अभीष्ट प्राप्तिके विषयमें गुरुतर लोभको समुत्कण्ठा कहा गया है। जैसे शवरी देवी। अपने गुरु मातङ्ग ऋषिके निकट आशीर्वादप्राप्त होकर 'भगवान रामचन्द्र आयेंगे' ऐसा जानकर प्रतिदिन अत्यन्त उत्कण्ठाके

साथ रास्तेमें फूल बिछा देती थी। भगवान रामचन्द्रके कोमल पैरोंमें किसी प्रकार आघात न लग जाए—यह सोचकर ही मानो पलक बिछाये रहती थी। भगवान रामचन्द्र आ जायेंगे। आज नहीं तो कल अवश्य आयेंगे। इस अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ नित्य प्रतिदिन रास्ताको फूलके द्वारा ढक देती थी। यह समुत्कण्ठाका उदाहरण है।

नामगाने सदा रुचि—वृथा कालयापन न कर सब समय नामगानमें रुचिसम्पन्न होनेको नामगाने सदा रुचि कहा गया है। जैसे हमारे षड्गोस्वामीगण।

आसक्तितद्गुणाख्याने—इससे भगवानके गुणोंके वर्णन करनेमें अत्यधिक आसक्तिको समझना पड़ेगा। जैसे श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय परिकर नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरको बाइस बाजारमें मारे जानेके लिए मुसलमान काजीके द्वारा आदेश दिया गया। जल्लाद लोग उनको इच्छानुसार चाबुक मारने लगे। चाबुककी मार खा रहे हैं, फिर भी भगवानके नामगुणमें आसक्तिके कारण अनर्गल नामोच्चारण कर रहे हैं। एक पलके लिए भी उनका नाम-विस्मरण नहीं हुआ।

प्रीतिस्तद्वसतिस्थले—इसका अर्थ है—भगवद्धाम प्रीति। अर्थात् श्रीधाम नवद्वीप, जगन्नाथ पुरी धाम, श्रीधाम वृन्दावन—इन सब स्थानोंमें वास करना पड़ेगा। विशेष करके व्रजधाममें वासके लिए अत्यधिक प्रीति होनी चाहिए। जैसे हमारे गोस्वामीवर्ग एक-एक वृक्षके नीचे एक-एक रात्रि शयन करते थे। हम सोच सकते हैं कि कहीं एक वृक्षके प्रति आसक्ति न हो जाय, इसलिए ऐसा करते थे? श्रील महाराजजीने बताया बात यह नहीं है। श्रीरूप-सनातन हुशेन शाह राजाके प्रधान मन्त्री थे, व्यक्तिगत सचिव थे, कोषाध्यक्ष थे; उसमें आसक्ति नहीं हुई, एक पेड़के नीचे एकसे अधिक दिन रहनेमें पेड़के प्रति आसक्ति हो जायेगी? बात यह नहीं। क्योंकि जितने ही वृक्ष हैं, सब कृष्णकी लीला देख चुके हैं, ये साधारण वृक्ष नहीं। सभी वृक्षोंके नीचे नई-नई लीलाएँ हुई हैं। इसलिए उन सबकी स्फूर्त्तिके लिए एक-एक वृक्षके नीचे रहते थे, उनसे प्रार्थना करते थे—आप सब हमारे हृदयमें वे लीलाएँ स्फूर्त्ति करावें। वे लोग क्या करते थे? कहा गया है—

राधाकुण्डतटे कलिन्दतनया तीरे च वंशीवटे
प्रेमोन्मादवशादशेषदशया ग्रस्तौ प्रमत्तौ सदा।
गायन्तौ च कदा हरेर्गुणवरं भावाभिभूतौ मुदा
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ।।

मैं श्रीरूपसनातनादि षड्गोस्वामियोंकी चरण-वन्दना करता हूँ, जो प्रेमोन्मादके कारण अशेष दशादि ग्रस्त होकर प्रमत्त अर्थात् पागलोंकी भाँति कभी राधाकुण्डके तटपर, कभी यमुनाके तटपर, कभी वंशीवटपर सब समय भावमें डूबे रहते थे। भगवानके उन्नत गुणकथाका गान करते-करते भावविभोर हो जाते थे।

अतः इस संज्ञाके द्वारा संज्ञित होनेसे ही कोई भावभक्त है या नहीं, यह देखना पड़ेगा। इसलिए कोई कुछ कहनेपर आपलोग भी वही कहेंगे—यह ठीक नहीं है। इसलिए एक बात सब समय याद रखेंगे—Look before your leap. ❑

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ आश्विन मास, सन् २००१, ३ सितम्बर—१ नवम्बर { संख्या ७

श्रीश्रीराधिकाष्टकम्

[श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचितम्]

रसवलितमृगाक्षीमौलिमाणिक्यलक्ष्मीः प्रमुदितमुरवैरिप्रेमवापीमराली।
व्रजवरवृषभानोः पुण्यगीर्वाणवल्ली स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।१।।

जो सुरसिका मृगनयनी स्त्रियोंकी शिरोमणिके समान शोभा पा रही हैं, जो मुर नामक शत्रुको मारनेवाले परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्णके प्रेम–सरोवरकी हंसिनी हैं एवं जो व्रजश्रेष्ठ श्रीवृषभानु राजाकी पवित्र कल्पलता–स्वरूपा हैं, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।१।।

स्फुरदरुणदुकूलद्योतितोद्यन्नितम्बस्थलमभि वरकाञ्चीलास्यमुल्लासयन्ती।
कुचकलसविलासस्फीतमुक्तासरश्रीः स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।२।।
सरसिजवरगर्भाखर्बकान्तिः समुद्यत् तरुणिमघनसाराश्लिष्टकैशोरसीधुः।
दरविकसितहास्यस्यन्दिविम्बाधराग्रा स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।३।।
अतिचटुलतरं नं काननान्तर्मिलन्तं व्रजनृपतिकुमारं वीक्ष्य शङ्काकुलाक्षी।
मधुरमृदुवचोभिः संस्तुता नेत्रभङ्ग्या स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।४।।
व्रजकुलमहिलानां प्राणभूताखिलानां पशुपपतिगृहिण्याः कृष्णवत् प्रेमप्रात्रम्।
सुललितललितान्तःस्नेहफुल्लान्तरात्मा स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।५।।
निरवधि सविशाखा शाखियूथप्रसूनैः स्त्रजमिह रचयन्ती वैजयन्ती वनान्ते।
अघविजयवरोरःप्रेयसी श्रेयसी सा स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।६।।
प्रकटितनिजवासं स्निग्धवेणुप्रणादैर्द्रुतगति हरिमारात् प्राप्य कुञ्जे स्मिताक्षी।
श्रवणकुहरकन्डूं तन्वती नम्रवक्त्रा स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।७।।
अमलकमलराजिस्पर्शिवातप्रशीते निज सरसि निदाघे सायमुल्लासिनीयम्।
परिजनगणयुक्ता क्रीड़यन्ती वकारि स्नपयति निज दास्ये राधिका मां कदा नु।।८।।
पठति विमलचेता मृष्टराधाष्टकं यः परिहतनिखिलाशासन्ततिः कातरः सन्।
पशुपपतिकुमारः काममामोदितस्तं निजजनगणमध्ये राधिकायास्तनोति।।९।।

रक्तवर्णके पटवस्त्रोंसे सुशोभित नितम्बों पर इधर–उधर झूलती हुई क्षुद्र घण्टिकाओं द्वारा जो नृत्य प्रकाश करती हैं एवं स्तनरूपी कलशोंके ऊपर इधर–उधर डोलती हुई सुदीर्घ मुक्तामालाओंके द्वारा जिनकी शोभा सम्पन्न होती है, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।२।।

जिनका कटि–प्रदेश सुन्दर पद्म–कर्णिकाकी भाँति अतिशय कान्तिविशिष्ट है, जिनकी किशोरावस्थारूप अमृत नवयौवनरूप कर्पूर द्वारा मिश्रित है एवं जिनके विम्बाधरके अग्रभागसे मन्द हास्यरस प्रकाशित हो रहा है, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।३।।

गौओंको चराकर वनसे आते हुए अति चपल व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णका दर्शन करके जिनके दोनों नेत्र शङ्काकुल हो जाते हैं एवं जो नेत्रभङ्गिमा प्रकाश करके सुमधुर मृदु वाक्यों द्वारा श्रीकृष्णका स्तव करती हैं, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।४।।

जो समस्त व्रज महिलाओंकी प्राणस्वरूपा हैं, नन्दराजकी पत्नी यशोदादेवीके कृष्णतुल्य स्नेहकी पात्री हैं एवं जिनकी अन्तरात्मा ललिता सखीके सुललित आन्तरिक स्नेहसे प्रफुल्लित रहती है, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदसे अभिषिक्त करेंगी।।५।।

इस सुन्दर वनमें जो निरन्तर विशाखा सखीके सहित नाना प्रकारके वृक्षोंके विविध पुष्पोंसे वैजयन्ती मालाकी रचना करती हैं, जो श्रेयसी अर्थात् मङ्गलस्वरूपा हैं, अतएव अघासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णके सुन्दर वक्षःस्थलमें परम प्रेयसीके रूपमें गृहीत हैं, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।६।।

जो वेणुध्वनिको सुनकर कुञ्जके बीचमें विराजमान श्रीकृष्णके निकट शीघ्रतापूर्ण गमन करके अर्द्ध उन्मीलित नेत्रोंसे नतमस्तक होकर कानोंको सहलाने लगी थीं, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।७।।

निर्मल पद्मराजिको स्पर्श करनेवाली वायुद्वारा सुशीतल अपने सरोवर श्रीराधाकुण्डमें जो श्रीराधिका ग्रीष्मकालमें सायंकाल परमानन्दलाभ करती हुईं सखियोंसे परिवेष्टित होकर बकासुर विनाशी श्रीकृष्णको क्रीड़ा कराती हैं, वे श्रीमती राधिका कब मुझे अपनी दासीकी पदवीसे अभिषिक्त करेंगी।।८।।

जो समस्त प्रकारकी आशाओंका परित्याग करके कातर-स्वभावसे निर्मलचित्त होकर इस विशुद्ध श्रीराधाष्टकका पाठ करते हैं, गोपराज-नन्दन श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होकर उसकी श्रीराधिकाके निजगणोंमें गणना करते हैं।।९।। ❑

श्रीलघु-भागवतामृत

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने "लघु-भागवतामृत" नामक प्रसिद्ध-ग्रन्थमें श्रीकृष्ण-तत्त्व, श्रीकृष्णका प्रकटाप्रकट लीला-तत्त्व और श्रीवैष्णव-तत्त्व—इन तीन विषयोंका विशेष रूपसे विवेचन किया है। श्रीमद्रूपगोस्वामीजीने जगतके विभिन्न प्रकारके उपास्य तत्त्वोंमें कृष्ण-तत्त्वको ही सर्वश्रेष्ठ माना है। स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेशरूप—इन त्रिविध भगवत्-रूपोंका उनके साथ विवेचन कर अन्तमें कृष्णको ही सर्वश्रेष्ठ उपास्य-तत्त्व निर्धारित किया है। स्वयंरूप वह रूप है, जो अन्य रूपोंकी अपेक्षा नहीं करता, वरन् स्वयं स्वतः सिद्ध है। तदेकात्मरूप उसे कहते हैं, जो स्वयंरूपकी अपेक्षा करता है और आकार आदिमें कुछ-कुछ भिन्न रूप जैसा प्रतीत होता है। स्वयंरूप और तदेकात्मरूप—ये दोनों विलास और स्वांश भेदसे दो प्रकारके होते हैं।

स्वांशरूपसमूह न्यून शक्तियुक्त हैं। ज्ञानशक्ति आदिके द्वारा भगवान् जब महान् जीवोंमें आविष्ट होते हैं, तब उसे भगवान्का "आवेश अवतार" कहते हैं। ये सभी भगवत्-अंश प्रपञ्चसे सर्वथा अतीत तथा परस्पर अभिन्न होते हैं।

धर्मकी रक्षाके लिए जब पूर्वोक्त रूपसमूह जगतमें आविर्भूत होते हैं, तब वे अवतार कहलाते हैं। अवतार तीन प्रकारके हैं—(१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार और (३) लीलावतार।

(१) कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी और क्षीरोदकशायी—ये तीन विष्णुरूप ही पुरुषावतार हैं। (२) विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन गुणावतार हैं। इनमेंसे विष्णु ही शुद्धसत्त्वका विस्तार करते हैं, इसलिए उनका एक नाम सत्त्वतनु भी है। उनके अवतार भी सत्त्वतनु हैं। विष्णु निर्गुण हैं। विष्णुके स्वांश और कलाओंसे भी ब्रह्मा और

शिवकी शक्ति न्यून होती है। विष्णु और उनके अवतारोंकी शक्तियाँ चित्-शक्ति या चित्-शक्तिके अंश हैं। (३) लीलावतार अनेक हैं। चतुःसनादि पच्चीस मन्वन्तरावतारोंके अनेक भेद हैं। चारयुगोंमें चार युगावतार होते हैं। कल्पावतार, मन्वन्तरावतार और युगावतार मिलकर ४१ हैं।

आवेश-अवतार चार प्रकारके होते हैं—प्राभव, वैभव, परावस्थ और न्यूनावस्थ। चार कुमार, नारद, पृथु और कल्कि आदि आवेश आवतार हैं। कलिकालमें विष्णु प्रत्यक्ष रूप धारणपूर्वक आविर्भूत नहीं होते, इसलिए उनका नाम त्रियुग है। प्राभवावस्थ आवेश-अवतार दो प्रकारके हैं। (१) मोहिनी, हंस आदि विस्तृत कीर्त्तिवाले हैं। (२) धन्वन्तरी, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, कपिल आदि अल्प कीर्त्ति-विशिष्ट हैं। कूर्म, मीन, नारायण-ऋषि, नर-सखा, श्रीवराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ, बलदेव, यज्ञ आदि चौदह और कुछ रूपोंको लेकर वैभवावस्थ आवेश अवतार इक्कीस हैं।

परावस्थ अवतारोंमें नृसिंह, राम और कृष्ण हैं। ये तीनों षडैश्वर्यशाली हैं। जैसे एक दीपसे दूसरे दीपको जलानेसे दोनों ही समान रहते हैं, वैसे ही ये सभी पूर्ण-शक्तिविशिष्ट हैं। इनका स्थान सबसे ऊपर महावैकुण्ठमें है। श्रीनन्दनन्दन कृष्ण व्रज, मथुरा, द्वारका और गोलोकमें नित्य-विराजमान हैं। दूसरे सभी अंश या कला हैं। इसलिए श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। माधुर्यादि गुणोंकी अधिकताके कारण श्रीकृष्णको शास्त्रोंमें ब्रह्म-स्वरूपसे श्रेष्ठ बतलाया गया है। अप्राकृत गुणयुक्त कृष्ण-स्वरूप प्रपञ्च और ब्रह्मसे सर्वदा अतीत होने पर भी पूर्णानन्द घनाकृति रूपसे महाशक्ति-विशिष्ट हैं। ब्रह्म निराकार, निर्विकार और निधर्मक वस्तु-विशेष हैं। इसलिए वे सूर्य-स्थानीय कृष्णके प्रभा मात्र हैं। भृगुके द्वारा ऋषियोंने यह स्थिर किया कि गुणावतारोंमें विष्णु ही श्रेष्ठ हैं। सदाशिव महावैकुण्ठ-नायक नारायणसे अभिन्न तत्त्व हैं। सभी स्वरूपोंकी अपेक्षा कृष्णकी श्रेष्ठता है। इसलिए वे परव्योमनाथ नारायणसे भी श्रेष्ठ हैं। परव्योमनाथ नारायणकी देवी श्रीलक्ष्मीजी भी श्रीकृष्णके रूपसे मोहित हो पड़ती हैं।

शास्त्रोंमें सर्वत्र कृष्णके लिए स्वयं पदका प्रयोग किया गया है। इसलिए कृष्णरूप ही स्वयंरूप है। कृष्णकी जन्मादि लीलाएँ अनादि हैं। ये सब लीलाएँ समय-समय पर उनकी इच्छासे भूतल पर प्रकटित होती हैं।

प्रेमी भक्त वृन्दावनमें कृष्णकी लीलाओंका अब भी दर्शन करते हैं। कृष्ण अधोक्षज इन्द्रियातीत होकर भी अपने शक्तिके प्रभावसे भक्तोंको दर्शन दिया करते हैं। कृष्णके बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे तथा पूर्व-उत्तर कुछ भी भेद नहीं हैं। पुराणोंमें कृष्ण-लीलाके लिए सर्वत्र वर्त्तमान कालका प्रयोग पाया जाता है।

कृष्ण-लीला प्रकट और अप्रकट भेदसे दो प्रकारकी है। कृष्णकी इच्छासे लीला-शक्ति उनके परिकरोंको प्रपञ्चमें (भूतल पर) प्रकट कराती हैं। जो प्रपञ्चसे अगोचर है, उसीका नाम अप्रकट लीला है। जो लीलाएँ प्रपञ्चातीत होनेके कारण अप्रकट लीला कहलाती हैं, वे ही भूतल पर प्रकटित होने पर प्रकट लीला कहलाती हैं।

कृष्ण चतुर्भुज और द्विभुज होने पर भी द्विभुज कृष्णकी ही श्रेष्ठता है। प्रकट-लीलामें स्वयं-कृष्ण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध भेदसे चार चतुर्व्यूहोंका प्रकाश है। साक्षात् कृष्ण गोप-गोपियोंके साथ वृन्दावनमें ही नित्य-विहार करते हैं। वासुदेव चतुर्व्यूह अवलम्बनपूर्वक यदुपुरीमें गमन करते हैं। द्वारकामें प्रद्युम्नाख्य व्यूह और अनिरुद्धाख्य व्यूहका विस्तार करते हैं। व्रजकी प्रकट लीलामें जो तीन महीनेका विरह होता है, उनमें विस्फूर्त्ति नामक भाव आविर्भूत होता है। तीन महीनेके पश्चात् व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके साथ मिलन

होता है। प्रकट लीलामें जो विच्छेद है, वह थोड़ी देरके लिए होता है। इस प्रकार तीनों धामोंमें कृष्णकी नित्यलीला है।

धाम दो प्रकारके हैं—(१) माथुर धाम और (२) द्वारका धाम। मथुरा धाममें गोकुल और पुर भेदसे दो प्रकोष्ठ हैं। वस्तुतः गोकुल ही गोलोक है। प्रकट-लीलामें जो कुछ देखा जाता है, वही गोलोकमें वैभवावस्था लाभ करती हैं। तीनों धामोंकी लीलाएँ नित्य होने पर भी गोकुल लीलाकी माधुरी सबसे अधिक है। यह माधुरी ब्रह्मा और शिवके लिए भी अगोचर है। इस गोकुल लीलाकी माधुरी भौतिक विचारोंसे अतीत है। इसे केवल शुद्ध प्रेमभक्ति द्वारा ही जाना जा सकता है।

श्रीरूपगोस्वामीजीने इन कृष्ण-तत्त्वामृत और लीला-माधुर्यामृतका विशदरूपसे वर्णनकर अन्तमें भक्तामृतकी सूचना दी है। भक्तोंमे प्रह्लाद श्रेष्ठ हैं। प्रह्लादसे पाण्डव श्रेष्ठ हैं। पाण्डवोंसे यादव श्रेष्ठ हैं। यादवोंमें उद्धव श्रेष्ठ हैं। उद्धवसे व्रजदेवियाँ श्रेष्ठ हैं। गोपियोंमें श्रीमती राधिकाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीमती राधिकासे और कोई श्रेष्ठ भक्त नहीं है।

यहाँ संक्षेपमें श्रीरूपगोस्वामीजीके सिद्धान्तोंका संग्रह किया गया। श्रीरूपगोस्वामीजीने और भी अनेक विषयोंमें अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। किन्तु मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंका ही यहाँ उल्लेख किया गया है।

श्रीरूपगोस्वामीजीने सर्वत्र शास्त्र-प्रमाण एवं सुयुक्ति देकर अपने सिद्धान्तोंका स्थापन किया है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके लोगोंको इनमेंसे बहुतसे सिद्धान्त रुचिप्रद नहीं लगते। परन्तु जो भगवान्‌को यथार्थतः प्राप्त करनेके लिए साधन करते हैं, उन्हें श्रीरूपगोस्वामीजीके सिद्धान्त ही रुचिकर होते हैं।

जिनका जैसा स्वभाव होता है, उन्हें वैसे ही देव-भाव, वैसे ही शास्त्र-वचन और वैसा ही सङ्ग रुचिकर होता है। 'समशीला भजन्ते वै' के अनुसार जगतमें भिन्न-भिन्न प्रकारके देव-भाव, भिन्न-भिन्न प्रकारके साधन और भिन्न-भिन्न प्रकारके आचार स्वभावतः हो पड़ते हैं।

उपास्य वस्तु एक होता है। लघु-भागवतामृतके अनुसार सभी उपास्योंमें श्रीनन्दनन्दन ही श्रेष्ठ हैं और सभी उपासकोंमें व्रजगोपियोंके अनुगत साधकवर्ग ही सर्वश्रेष्ठ उपासक हैं।

श्रीरूपगोस्वामीजीने कहीं भी शुष्कतर्कका अवलम्बन नहीं किया है। सभी क्षेत्रोंमें रसपूर्ण वचनों द्वारा शुद्ध भक्तिकी ही व्याख्या की है। श्रीरूपगोस्वामीजी धन्य हैं। उनके प्रति महाप्रभुकी कृपा धन्य है और धन्य हैं ऐसे साधक, जो रसतत्त्वमें प्रवेश करनेके अधिकारी हो गए हैं। भक्तवृन्द इस ग्रन्थको विशेष यत्नके साथ अध्ययनकर श्रीरूप- गोस्वामीजीके सिद्धान्तोंको ग्रहण करनेकी चेष्टा करेंगे। ❑

ऐकान्तिक और व्यभिचारी

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

ऐकान्तिकता किसे कहते हैं?
एकला ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य।।

अर्थात् एकमात्र कृष्ण ही ईश्वर हैं और सभी उनके भृत्य हैं, वे जीवको जैसा नचाते हैं, जीव वैसा ही नृत्य करता है। जिसका केवल मात्र एक ही अन्त होता है, वह ऐकान्तिक या भक्त-भृत्य है। एक कहनेसे—संख्यागत समस्त प्रकारके नानात्वके विपरीत भावका बोध होता है। श्रीगीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।

(गीता २/४१)

अर्जुन! एकमात्र व्यवसायात्मिका बुद्धि रखना; अव्यवसायी व्यक्ति नाना प्रकारकी बुद्धियों द्वारा सञ्चालित होकर असंख्य विषयोंकी सृष्टि करते हैं। यदि लक्ष्य वस्तु एक न होकर अनेक या दो हो तो उससे दो नावोंमें पैर रखनेके फलकी भाँति अहित ही होता है।

व्यभिचारका लक्षण

ऐकान्तिकताके अभावमें जीव अनेक विषयोंमें आसक्त होनेपर व्यभिचारी हो पड़ते हैं। आचारके अपव्यवहारको ही व्यभिचार कहते हैं। यह व्यभिचार ही लक्ष्यभ्रष्ट जीवका उपास्य है। असंयत व्यक्ति अनेकानेक लक्ष्योंके पीछे धावित होते हैं; परन्तु एकको भी प्राप्त नहीं कर पाते। जहाँ स्वजातीय आशय स्निग्ध व्यक्ति अर्थात् एक ही उद्देश्यवाले स्निग्ध व्यक्ति एकत्र नहीं होते, वहीं विषय-जातीय सङ्गमें ही व्यभिचार होता है। अद्वयज्ञान भगवान्, परमात्मा और ब्रह्म एक ही वस्तु हैं; परन्तु व्यवसायात्मिका बुद्धिके अभावमें वह अद्वय वस्तु अनेक-सी प्रतीत होती है। ऐकान्तिकताका अभाव ही व्यभिचार का हेतु है।

अद्वैतवादकी ऐकान्तिकतामें व्यभिचार

निर्विशेषवादी एक ब्रह्मकी कल्पना तो करते हैं, परन्तु साथ ही पञ्च देवताओंकी उपासना भी करते हैं। बहु-ईश्वरवादके व्यभिचारसे रक्षा पानेके लिए वे एक ब्रह्मकी उपासना स्वीकार करते हैं, फिर पञ्चोपासना द्वारा स्वयं ही व्यभिचारका पोषण करते हैं।

बहु-ईश्वरवादी असत् साम्प्रदायिक हैं

एक सेवक जिस प्रकार अनेक स्वामियोंकी सेवा करनेमें असमर्थ होता है, उसी प्रकार ऐकान्तिक व्यक्ति बहु-ईश्वरवादको स्वीकार नहीं करता। जो लोग यह कहते हैं कि व्यभिचारको अङ्गीकार करनेसे उदारता होती है, वे कभी भी साम्प्रदायिक नहीं हो सकते। उपास्य तत्त्व कभी अनेक नहीं हो सकता। अनुरागका अभाव एवं विरोधका स्वभाव—इन दोनोंसे बहु-ईश्वरवादकी सृष्टि होती है। श्रीमद्भागवत कहते हैं—

''भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्-
ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।''

(श्रीमद्भा॰ ११/२/३७)

उपास्य अनेक होने पर ही भय उत्पन्न होता है

अद्वय-कृष्णज्ञानसे पतित होने पर ही मनुष्य द्वितीयवस्तु (कृष्णेतर वस्तु) के प्रति अभिनिविष्ट होता है। यह द्वितीय अभिनिवेश ही अभयपद ऐकान्तिकताको भुलाकर उसे भयरूप व्यभिचारके फौलादी पञ्जेमें डाल देता है। विषयका अनेकत्व ही भयका कारण है। सच्चिदानन्द विग्रह परमेश्वर कृष्ण ही एकमात्र विषय हैं। जो लोग अपनी कामनाओंकी पूर्त्तिके लिए सूर्य, गणेश, शक्ति और रुद्रकी उपासना करते हैं, वे बहु-ईश्वरवादी एवं व्यभिचारी हैं। भगवद् विमुखता द्वारा ही पञ्चदेवताओंकी कल्पना होती है।

कृष्णोपासक एवं पञ्चोपासकमें भेद

अनेक प्रकारकी कामनाओंसे छुटकारा प्राप्त करनेपर ही जीव अद्वयज्ञान तत्त्व श्रीकृष्णको लाभ कर सकता है। ऐसी अवस्थामें विभिन्न प्रकारकी उपासनाएँ नहीं होतीं। परन्तु व्यभिचारी सम्प्रदाय इस युक्तावस्थाके प्रति भी कटाक्ष करनेसे नहीं चूकते। उनका कहना है—कृष्ण भक्त स्वार्थी होते हैं तथा भगवान्को व्यक्तिगत (personal) बनाना चाहते हैं। इसलिए ऐकान्तिक भक्तोंका गणेश पूजकोंसे मतभेद है। गणेश पूजासे अर्थकी सिद्धि होती है—इसमें सन्देह नहीं; परन्तु कृष्णकी पूजा करनेसे पार्थिव अर्थ अनर्थ-सा प्रतीत होने लगता है। जड़-अर्थकी कामनावाले व्यभिचारियोंका दल पञ्चोपासनाके प्रति श्रद्धा करके ऐकान्तिकताका विनाश कर डालता है तथा ऐकान्तिक कृष्णभक्तको अपने जैसा स्वार्थी एवं जड़-अर्थका दास समझता है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि कृष्ण कोई जड़-वस्तु नहीं हैं। व्यभिचारी व्यक्ति कृष्णदास्यमें जो ऐकान्तिकता और स्वार्थपरता देखते हैं, वह उन लोगों जैसी नीच स्वार्थपरता नहीं है। गणेशपूजनका स्वार्थ अर्थप्राप्ति है। परन्तु कृष्णभक्तोंका स्वार्थ कृष्णको सुख प्रदान करना है।

पञ्चोपासक इस तथ्यको न समझ पानेके कारण ऐसा मानते हैं कि जगत्के पञ्चायती शासनके अन्तर्गत प्रतिष्ठित रहना ही उचित है। भक्तोंकी ऐकान्तिकता दूरकर हम पाँच व्यक्तियोंको वोट देकर व्यभिचार फैलाएँगे। जड़ जगत्में पाँचका अधिकार रहे; परन्तु जिन्होंने ऐकान्तिकता और अनुरागका स्वरूप समझ लिया है, वे नानात्व, बहुत्व और साधारण भावोंका आदर न कर 'भगवान् ही एकमात्र मेरे और जगत्के प्रभु हैं'—ऐसा समझते हैं। इस ऐकान्तिकतामें किसी प्रकारका व्यभिचार नहीं है।

ऐकान्तिक भक्तका स्वभाव या लक्षण

ऐकान्तिक भक्त केवल एक भगवान्की सेवा करता है; साथ ही अपने स्वजातीयाशय स्निग्ध उद्देश्यके अनुकुल सहचरों (भगवद्भक्तों) को अपनेसे अपृथक् मानता है। जहाँ कृष्णेतर (कृष्णके अतिरिक्त दूसरी) वस्तुके प्रति जीवका अनुराग और सहानुभूति होती है, वहाँ कृष्णभक्ति नहीं होती। कृष्णभक्त बहु-ईश्वरवादियोंका सङ्ग नही करते। वे बहु-ईश्वरवादियोंको सन्मार्ग पर लानेके लिए प्रयत्न तो करते हैं, परन्तु उनकी भगवद्विमुख चेष्टाओंका न तो समर्थन करते हैं और न आदर ही। व्यभिचारी समाज शुद्धवैष्णवको स्वार्थी समझकर उसे पाँचमिशाली मतवादी बनानेकी भरपूर चेष्टा कर सकता है। परन्तु वैसी अपचेष्टाका परित्याग करने पर वे भी ऐकात्निक हो सकते हैं। बिना ऐकान्तिकताके किसी प्रकार भी कल्याण नहीं हो सकता है। ❑

श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[श्रीकृष्णजन्माष्टमी महामहोत्सवकी शृंखलामें १६ अगस्त, २००१ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें एक विद्वत्-गोष्ठीका आयोजन किया गया, जिसमें मथुरा-वृन्दावनके मूर्धन्य विद्वान् उपस्थित हुए। गोष्ठीमें आलोच्य विषय था—'श्रीमद्भागवतका चरम प्रतिपाद्य विषय।' उपस्थित समस्त विद्वानोंने अपने-अपने विचारों द्वारा श्रीकृष्ण एवं उनकी भक्तिको ही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य स्थापित किया। अन्तमें श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने भी अनुपम एवं सारगर्भित वक्तृता द्वारा अपने विचारोंको प्रकट किया जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है]

श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय क्या है? इसके सम्बन्धमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने कहा है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर श्रीमन्महाप्रभुके विचारोंको प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—श्रीमद्भागवत ही सर्वश्रेष्ठ तथा अमल प्रमाण है। वेद, उपनिषद्, पुराण आदिके वचन भी शब्द-प्रमाण हैं, किन्तु इन सबमें श्रीमद्भागवत ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। श्रीमद्भागवतमें तीन विषयोंका प्रतिपादन है—सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन। सम्बन्धकी दृष्टिसे सदैव वृन्दावनमें विराजमान रहनेवाले व्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर ही परम तत्त्व, परमाराध्य तत्त्व

और असमोर्द्ध्व तत्त्व हैं। अभिधेय तत्त्वकी दृष्टिसे व्रजवधुओंकी आराधना ही चरम आराधना है तथा प्रयोजन तत्त्वकी दृष्टिसे व्रजदेवियोंका अनुपम प्रेम ही चरम प्रयोजन है। इन्हीं तीनों विषयोंका श्रीमद्भागवतमें प्रतिपादन किया गया है।

सम्बन्ध तत्त्व—इसके विषयमें श्रीमद्भागवतका निम्नलिखित श्लोक प्रमाण है—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

श्रीकृष्ण अद्वयज्ञान परतत्त्व-वस्तु हैं। ये अद्वयज्ञान परतत्त्व श्रीकृष्ण ही सम्बन्धतत्त्व हैं। ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् इनकी ही तीन प्रतीतियाँ हैं। तत्त्वविद् व्यक्ति अद्वयज्ञान परतत्त्वको ही तत्त्व कहते हैं, उन्हींको अपने-अपने अधिकारके अनुसार ज्ञानीजन ब्रह्म कहते हैं, योगीजन परमात्मा और भक्तजन भगवान् कहते हैं। वे अद्वय अर्थात् अद्वितीय, असमोर्द्ध्व, परमतत्त्व हैं, वे निर्विशेष नहीं, बल्कि सविशेष तत्त्व हैं। उनकी चिच्छक्ति, तटस्थाशक्ति और अचिच्छक्तिकी परिणति क्रमशः चिज्जगत, जीवजगत और मायाजगत हैं। व्यक्तिगत रूपसे जीव चित्तत्त्व होनेपर भी स्वयंको जड़ शरीर तथा जड़ विषयोंसे सम्बन्धित समझता है। चित् कभी जड़ नहीं होता, किन्तु भगवान्की अघटनघटनपटीयसी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे जीव अपनेको त्रिगुणात्मक समझता है। यह भगवान्की मायाशक्तिके द्वारा सम्भव होता है। अद्वय-ज्ञान परतत्त्वको अपने अधिकारानुसार ज्ञानी लोग ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म—चित्का आंशिक प्रतिफलन है, जिसे किसी अवस्थामें भगवान्की अङ्गकान्ति भी कहा गया है। इनमें सत्ता और आनन्दका अभाव है। सबके हृदयमें अङ्गुष्ठ परिमाणमें निवास करनेवाले, साक्षीरूपमें विराजमान, सबके नियन्ता, भगवान्के अंशके अंशके कला क्षीरोदकशायी विष्णु ही परमात्मा हैं। सत् और चित् उनमें आंशिक रूपसे प्रतिफलित तो होता है, परन्तु इनमें आनन्द नहीं है, ये आनन्दरहित हैं। भगवान्में सत्, चित् और आनन्द सम्पूर्णरूपमें अपनी पराकाष्ठामें प्रकाशित होते हैं।

भगवान्के असंख्य अवतार हैं, उनमें कोई-कोई पुरुषावतार कारणार्णवशायी महाविष्णुके अंश हैं और कोई-कोई आवेशावतार आदि हैं। ये सब अवतार असुरों द्वारा उत्पीड़ित जगत्की रक्षा करनेके लिए प्रत्येक युगमें अवतरित होते हैं। किन्तु व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं। अवतारोंके मूल-पुरुष, आद्य पुरुषावतार महाविष्णु भी व्रजेनन्दन श्रीकृष्णके अंशांशकला हैं।

इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।।

भक्तियोगके प्रभावसे निर्मल मनको पूर्णतया एकाग्रकर श्रीव्यासदेवजीने आत्मगत सहज समाधिमें कान्ति, अंश तथा स्वरूपशक्तिसे समन्वित श्रीकृष्णको एवं उनके पीछे गर्हित भावसे स्थित उनके आश्रित मायाको देखा। श्रीव्यासदेव कहते हैं—*'अपश्यत् पुरुषं पूर्ण'*।

उन्होंने श्रीकृष्णके साथ उनकी परा नामक स्वरूपशक्ति, स्वरूपशक्तिकी कायव्यूह-स्वरूपा अगणित व्रजाङ्गनाओं, उनके अनन्त परिकरों, उनके रासादि अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यमयी लीलाओंको भी देखा। उनसे विमुख जीवोंका पतन और उन्मुख जीवोंकी भगवत्सेवा प्राप्तिको भी देखा। तदनन्तर निखिल जीवोंके पारमार्थिक कल्याणके लिए श्रीमद्भागवतस्वरूप समाधिलब्ध फलको जगत्में प्रकट किया—

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा।।

उक्त श्लोकमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको पूर्णपुरुष कहा गया है। साथ ही भगवद्भक्तिको चरम

अभिधेयके रूपमें प्रतिपादित किया गया है।

आदिगुरु श्रीचतुर्मुख ब्रह्माजीने भी स्वकृत स्तवमें व्यक्त किया है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।।

अहो! श्रीनन्द, यशोदा आदि व्रजवासी गोप-गोपियाँ धन्य हैं। वास्तवमें उनका अहो भाग्य है, क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी, सुहृद और मित्र हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि व्रजवासियोंके परम सुहृद व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सनातन, परम आनन्दमय ब्रह्म या स्वयं-भगवान् हैं। निर्विशेष ब्रह्म इनकी ही अङ्गकान्ति तथा परमात्मा इनकी ही अंशांश-कला हैं।

अभिधेय तत्त्व—श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोकमें अभिधेय रूपमें कृष्ण-भक्तिका ही प्रतिपादन हुआ है। फिर भी ***'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्'***, केवल भक्तिद्वारा ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है, श्रीभगवान्को अपने भक्तोंके भक्त ही अतिशय प्रिय होते हैं। ***'भक्तिरेवैनं नयति'***, एकमात्र भक्तिके द्वारा ही उन परम पुरुषको पाया जा सकता है, योगादिके द्वारा नहीं।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।

भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा—हे उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनों-दिन बढ़ने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति।

श्रीमद्भागवत श्रवणका फल है—परम पुरुष कृष्णमें शोक, मोह, भयको दूर करनेवाली भक्ति। भक्ति शीघ्र ही भगवान्को वशीभूत कर लेती है।

ब्रह्मानन्दमें मग्न एवं ब्रह्मचिन्तारत मुनिगण क्रोधाहङ्कारसे मुक्त होकर भी भगवान्की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं, क्योंकि भगवान्के गुण ऐसे ही मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर बरबस खींच लेते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

जो चतुःसनकी भाँति आत्माराम हैं, 'निर्ग्रन्था' अर्थात् विषयोंसे रहित हैं, वे, उरुक्रम भगवान् श्रीकृष्णके श्रीचरण-कमलोंमें अहैतुकी भक्ति करते हैं। इसलिए अहैतुकी भक्ति भी श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है।

प्रयोजन तत्त्व—श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।।

प्रेमलक्षणा भक्तियोगसे भगवत्-सेवाव्रतधारी साधुपुरुषोंके हृदयमें एकान्तप्रिय श्रीभगवान्के नाम-सङ्कीर्त्तनसे अनुराग एवं प्रेमका अङ्कुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है। लोक लज्जा छोड़कर कभी हँसने लगता है तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है, कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है एवं कभी उनको रिझानेके लिए नृत्य भी करने लगता है।

यह प्रेमभक्तिका लक्षण है। यही भगवत्प्रेम प्रयोजन है। ऐसा ही प्रेम चरम प्रयोजन है।

सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्।।

इस (श्रीमद्भागवत) में निखिल वेदान्तोंका सार वर्णित हुआ है। यह आत्मैकत्वस्वरूप

ब्रह्मवस्तुविषयक कैवल्यरूप ऐकान्तिक भगवत्प्रेम ही चरम प्रयोजन है।

'ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्'—श्रीकृष्ण अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं; उन्हींकी अङ्गकान्तिको ज्ञानीजन ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं; योगीजन उन्हींकी अंशांशकलाको परमात्माके रूपमें दर्शन करते हैं, भक्तजन उन्हींको अपने प्रेमनेत्रोंसे भगवान्‌के रूपमें देखते हैं; उन्हीं अद्वयज्ञान परतत्त्वकी व्रजवासीजन प्रेमपरिप्लुत होकर श्रीगोपाल-गोविन्द रूपमें सेवा करते हैं।

शास्त्रोंमें यद्यपि एक ही अद्वयज्ञान परतत्त्वको ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा गया है, तथापि ये तीनों पर्यायवाची शब्द नहीं हैं अर्थात् ये तीनों एक ही तात्पर्यवाची नहीं हैं। इन तीनोंमें वैशिष्ट्य है। शास्त्रोंमें 'ब्रह्म' और 'परम ब्रह्म, सनातन ब्रह्म, पूर्ण ब्रह्म'—इन दो प्रकारके ब्रह्मका उल्लेख प्राप्त होता है। इसलिए 'ब्रह्म' से परमपूर्ण सनातन ब्रह्मका अधिक वैशिष्ट्य है। उसी प्रकार 'आत्मा' से भी परमात्मा और 'परमात्मा' से भी भगवान् या स्वयं-भगवान्‌का अधिक वैशिष्ट्य है।

कतिपय दार्शनिक ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्‌को एक ही पर्यायवाची शब्द मानते हैं, जैसे—पानी, जल, अम्बु, नीर इत्यादि पर्यायवाची शब्द हैं। किन्तु यह विचार सर्वथा युक्तिसङ्गत नहीं है। परन्तु जल, वाष्प और हिम—ये तीनों तत्त्वतः जल होनेपर भी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। इनमें परस्पर वैशिष्ट्य है। जलसे वाष्प या हिम; वाष्पसे जल या हिम अथवा हिमसे जल या वाष्पका बोध नहीं होता; इनमें तारतम्य वर्त्तमान है। इसी प्रकार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इनमें परस्पर वैशिष्ट्य वर्त्तमान है।

इस विषयमें सूर्य या पर्वतका उदाहरण दिया जा सकता है। पर्वत दूरसे देखने पर काला मेघ जैसा दीखता है। निकट आनेपर उसमें वृक्ष, पौधे इत्यादि दीखते हैं। और अधिक निकट आनेपर उसमें कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी, जल-स्थल आदि पर्वतका पूर्णस्वरूप स्पष्टरूपसे देखा जा सकता है। इसी प्रकार ब्रह्म बहुत दूरगत प्रतीति है, ज्ञानके द्वारा देखा जाता है। परमात्मा योगके द्वारा अङ्गुष्ठ परिमाणमें देखे जाते हैं, किन्तु भक्तिके द्वारा भगवान्‌के साथ उनके धाम, परिकर आदि सम्पूर्णरूपसे भगवत्तत्त्वका पूर्ण दर्शन होता है। सूर्यको हम देख नहीं पाते, केवल उसका प्रकाश देखते हैं। कोई-कोई योग्य व्यक्ति सूर्यका रूप, उनके रथ और रथके घोड़ों आदिका भी दर्शन कर सकते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् पर्यायवाची शब्द नहीं हैं, इनमें वैशिष्ट्य है।

'सर्ववेदान्तसारं'—समस्त वेदोंका सार ब्रह्म और भगवान्‌का ऐक्य, दोनोंका जो सम्मिलित स्वरूप है, जो अद्वितीय वस्तु है, 'तन्निष्ठम्', उनके प्रति कैवल्यैकप्रयोजनम्। कैवल्यका अर्थ यहाँ मुक्ति नहीं है। क्योंकि श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र ही मुक्तिका निरादर देखा जाता है।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।

भगवान्‌के देने पर भी भक्त मुक्तिको स्वीकार नहीं करते। इसे अत्यन्त हेय समझते हैं। विशेषकर ***'श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं'***, श्रीमद्भागवत निर्मल पुराण है। यह वैष्णवमात्रका प्रिय ग्रन्थ है। ज्ञानी या योगियोंको यह प्रिय नहीं है। जिसमें कुहक—मुक्तिकी गन्ध भी नहीं है। कैवल्य या मुक्ति भागवतका प्रतिपाद्य विषय नहीं हो सकता है। यहाँ कैवल्यका अर्थ है केवल या विशुद्ध। अनन्य, ऐकान्तिक भक्तिको ही यहाँ कैवल्य कहा गया है। सर्वश्रेष्ठ ऐकान्तिक भक्ति व्रजवासियोंकी है। उनमें भी गोपियोंकी तथा समस्त गोपियोंमें भी श्रीमती राधिकाकी कृष्णके प्रति ऐकान्तिक भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। जो उन्नतोज्ज्वल, रूढ़, अधिरूढ़, मोदन, मादन भावयुक्त हैं, उन

श्रीमती राधिकाका भाव ही कैवल्य है तथा वही भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद कहते हैं—*'कैवल्यम् नरकायते'*—यदि कैवल्यका तात्पर्य एकत्वरूप मुक्तिसे है, तो वह कैवल्य नरकके समान त्यज्य है। वैष्णव लोग कैवल्यको नरक मानते हैं। ऐसी मुक्ति श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य नहीं हो सकता। विशेषकर श्रीकृष्णको कैवल्यनाथ, कैवल्यपति कहा गया है अर्थात् जो ऐकान्तिक प्रेमभावके पति हैं, उसके विषय हैं। श्रीकृष्ण भी गोपियोंके अद्भुत प्रेमकी महिमा कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना।।

मैं देवताओं जैसी लम्बी आयु पाकर भी तुम्हारे ऋणसे उऋण नहीं हो सकता, क्योंकि दुर्जय गृहश्रृंखलाओंका छेदनकर तुमलोगोंने मेरा भजन किया है। इसलिए मैं तुम्हारा ऋणी रह गया। अब तुम अपनी साधुतासे ही मुझे उऋण कर सकती हो, अन्यथा नहीं। गोपियोंका यही प्रेम श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। और भी, उद्धवजी भी गोपियोंकी चरण-रजकी प्रार्थना करते हैं—

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

श्रुतियाँ भी जिनको आजतक ढूँढ़ रही हैं, उन्हींको गोपियोंने अपने हाथका खिलौना बना लिया। श्रीकृष्णकी भी आराध्य वस्तु हैं—ये गोपियाँ।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्।।

जिन श्रीचरणकमलोंका योगी लोग ध्यान करते रहते हैं, साक्षात्रूपसे पाते नहीं, उन चरणकमलोंको गोपियोंने साक्षात्रूपसे प्रेमपूर्वक अपने वक्षःस्थलपर रखा। गोपियोंका प्रेम ही सर्वोत्तम है, चरम प्रयोजन है।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।

जिन गोपियोंके मुख निःसृत हरिकथासे त्रिभुवन पवित्र हो जाता है, वह हरिकथा है महाभाववती गोपियोंका कृष्णको धूर्त, लम्पट, चोर इत्यादि कहना।

'मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा' 'मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्या'—आदि गोपियोंके द्वाराउच्चरित वचन ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त मुग्ध कर देते हैं। परन्तु इसके (ऐसी हरिकथाके) अधिकारी बहुत कम हैं।

श्रीमद्भागवत गायत्रीका भाष्य है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः।।

यह गायत्रीका विस्तार है। गायत्री वेदमाता हैं। ब्रह्माजीकी पत्नी जो गायत्री हैं, वे मूल गायत्री श्रीराधाजीकी छाया हैं। गायत्रीमें कहा गया है—*'भर्गो देवस्य धीमहि।'* इसके अनेक अर्थ हैं। किन्तु एक विशेष अर्थका श्रीजीव गोस्वामीने अग्नि पुराणसे आविष्कार किया है। उसके अनुसार देवस्य अर्थात् कृष्ण देवस्य भर्गः (तेजः) शक्तिः (स्वरूपशक्ति) इति धीमहि। स्वरूपशक्ति श्रीराधाजीका ध्यान करता हूँ। श्रीमद्भागवत गायत्रीका भाष्य है, श्रीमद्भागवतके प्रथम श्लोकमें भी ऐसा ही कहा गया है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजो-वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।

इसमें कहा गया है—*'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि'*, जो अपने मायातीत धाममें स्थित हैं, जहाँ कुहकका अर्थात् मुक्तिरूप कपटताका प्रवेश नहीं है, मैं उनका ध्यान करता हूँ। उपसंहारमें भी कहा है—*'तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि'*। इसलिए 'सत्यं परं धीमहि' ही भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। *'निरस्तसाम्यातिशयेन'*—निरस्त अर्थात् उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है। वे हैं—कृष्णकी प्रिया श्रीमती राधिका। *राधसा स्वधाम्नि ब्रह्मणि रंस्यते नमः*। अपने धाममें उस ब्रह्मको रमण कराती हैं। आद्यरस अर्थात् शृङ्गार रसकी मूल श्रीवृषभानुनन्दिनी यदि नहीं रहतीं तो अकेले कृष्णसे शृङ्गार रसका प्रकाश नहीं होता। राधाजीका उत्कर्ष प्रकाशित करनेके लिए ही चन्द्रावली विपक्षा गोपी हैं, किन्तु वे राधाजीका प्रकाश मात्र हैं। उनकी राधाजीसे समता या तुलना नहीं हो सकती। यहाँ अन्वयका तात्पर्य है—रासस्थलीमें दो गोपियोंके मध्य कृष्ण तथा दो कृष्णके मध्य गोपी। मिलनमें खूब आनन्द हो रहा है, श्रीकृष्ण उनके नूपुर आदि बाँध रहे हैं। व्यतिरेक रूपमें—अपने और अन्यान्य गोपियोंमें श्रीकृष्णका समभाव देखकर राधाजी राससे अन्तर्हित हो गईं। उनके चले जानेपर श्रीकृष्ण सोचने लगे, यदि राधिका ही नहीं हैं तो रास किसलिए? इसलिए *'शत कोटि गोपी हरिते नारिल कृष्णेर मन'*। श्रीकृष्ण भी सबको छोड़कर राससे अन्तर्हित हो गए। शृङ्गार रसकी चौंसठ कलाओं और रसमें अभिज्ञ केवल श्रीराधिका ही हैं। इसलिए वे ही श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य परम सत्य-तत्त्व हैं।

कृष्ण रसतत्त्वमें अभिज्ञ हैं, *'रसो वै सः'* हैं, किन्तु मादन-भावके अभिज्ञ नहीं हैं। श्रीमती राधिकाके मादनाख्य भावकी उपलब्धिके लिए ही श्रीमतीजीके आन्तरिक भावों तथा उनकी स्वर्णकान्तिको अङ्गीकार कर कलिकालमें श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें प्रकटित हुए हैं। स्वराट्—राधाजी स्वयं प्रकाशित हैं, उन्हें किसीने प्रकाशित नहीं किया। मादन अवस्थामें समस्त चमत्कारिताएँ एकसाथ प्रकाशित होती हैं। मिलनकी अवस्थामें भी विरहका प्रकाश होता है।

'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः'—राधिकाजीके पक्षमें इसका अर्थ है—जिन्होंने रस-ब्रह्मको आदिकवि शुकदेव गोस्वामीके हृदयमें विस्तार किया। वे शुकदेव गोस्वामीकी गुरुस्वरूपा हैं, शुक उनके क्रीड़ाशुक हैं। *मुह्यन्ति यत् सूरयः*—आदिकवि ब्रह्मा भी जिसमें मोहित हो जाते हैं, उस रस-ब्रह्मका राधाजीने शुकदेव गोस्वामीके हृदयमें विस्तार किया। अन्य अर्थके अनुसार भक्तजन रासमें राधाजीके उत्कर्षको देखकर, रासमें उनके प्रति कृष्णकी प्रीति देखकर रसास्वादनजनित मूर्च्छाको प्राप्त हो जाते हैं। जड़ चेतन हो जाता है और चेतन जड़। चन्द्र रास देखकर परासौलीमें स्थिर हो गए। यमुना स्तम्भित हो गईं, बहना उनका धर्म है, किन्तु वे स्थिर हो गईं। *'तेजो वारि मृदां'* अर्थात् चलनेवाले चन्द्र रुक गए, यमुना स्तम्भित हो गईं, पाषाण तरल हो गए। राधिकाके उत्कर्षको देखकर या उनकी विरह दशा देखकर उनका धर्म विपरीत हो गया। साधारण अर्थमें तेजमें वारि, मिट्टीमें जलका बोध। त्रिसर्गो अमृषा—तीनों सर्ग सत्य जैसे होते हुए भी नश्वर हैं, असत्य नहीं हैं। वे भगवान्की सङ्कल्प शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिए मिथ्या नहीं हैं। त्रिसर्गका राधापक्षीय अर्थ—त्रिसर्ग (श्री, भू और लीला) का उद्भव जिनसे हुआ, अर्थात् राधाजीसे। अथवा लक्ष्मियाँ, महिषियाँ और गोपियोंका विस्तार जिनसे हुआ। अथवा अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था शक्तियोंकी स्थिति जिनमें है—वे श्रीराधाजी।

'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि'—महा मायासे बहुत ऊपर प्रकाशवान

नित्य गोलोक वृन्दावन धाममें वे श्रीराधिका नन्दनन्दनको रमण कराती हैं, आनन्द देती हैं, ये प्रतिपाद्य विषय है। पराशक्ति ही परं सत्य-स्वरूपा हैं, उन्हींका 'धीमहि'—ध्यान करता हूँ। यह श्रीमद्भागवतका

श्रीगौरतत्त्व

(वर्ष ४५ संख्या ६ पृष्ठ १३४ से आगे)

—डॉ॰ सत्यपाल गोयल

उपनिषद् एवं अन्य पुराणोंमें भी प्रछन्न रूपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके भगवत् अवतार होनेके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। शास्त्र (जो माताके स्वरूप हैं) ही तो (पिता स्वरूप) भगवान्‌का परिचय जीवको कराते हैं। अन्यथा जीव मायाके प्रभावमें भगवत्-स्वरूप तथा अपने स्वयंके स्वरूप—'दासत्व' को भूला रहता है।

भगवान् कृष्ण इस धराधामपर उपलब्ध थे। उस समय भी दुर्योधन, कंस, शिशुपाल, जरासन्ध आदिने उनसे शत्रुभाव रखा, भगवान्‌के रूपमें नहीं माना। जबकि भीष्मपितामह, सञ्जय, अर्जुन, युधिष्ठिर आदिने उनको साक्षात् भगवान्‌के रूपमें अपने हृदयमें स्थान दिया।

उसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतारको तत्कालीन अनेक भक्तोंने उन्हें भगवान्‌के रूपमें माना तथा अनुभूति की। श्रीगीताजी एवं महाभारतमें भगवान् कृष्णने कहा है कि मैं जिस रूपको धारण करता हूँ, उसीके अनुसार मेरे कर्म और प्रभाव रहते हैं। अतएव साधारण जन मुझे वैसा ही समझते हैं। मैं अपनी योगमायाका आश्रय लेकर अपनी अवतारलीला करता हूँ। मेरे जन्म और कर्म दिव्य होते हैं। उन्हें जो तत्त्वसे जान लेता है, उसको मेरी भक्ति (प्रेम) प्राप्त हो जाती है तथा वह पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता है।

अतएव भगवत् अवतारको पहचाननेमें भूल होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। जीव अणु और भगवान् विभु हैं, उनकी मायासे जीव भ्रममें पड़ जाए, तो असम्भव क्या है? भगवान्, सन्तों तथा शास्त्रोंकी कृपासे ही जीवका भगवान्‌से परिचय होता है।

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः।।

(गौतमीय तन्त्र)

भक्तिपूर्वक केवल एक तुलसी दल एवं एक चुल्लू जल अर्पण करनेसे भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तोंके निकट स्वयंको बेच देते हैं।

उक्त श्लोक दर्शाता है कि भगवान् अल्प सन्तोषी हैं। वे अपने भक्तों (प्रेमियों) द्वारा अर्पित तुलसी दलसे प्रसन्न हो जाते हैं। एक चुल्लूभर जलसे ही तृप्त होकर अपने प्रेमी भक्तोंके वशमें हो जाते हैं। व्रजगोपियाँ एक चुल्लूभर छाछ पिलाने पर परं ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णको नाच नचवाती थीं। यह उनकी भक्तवत्सलता है।

लगभग पाँच सौ से अधिक वर्ष पूर्व श्रीअद्वैताचार्यजीने नियमित तुलसी दल और गङ्गाजलका अर्घ्य देकर भगवान्‌का आह्वान किया। भगवान्‌ने उनके इस तुलसी दल और गङ्गाजलको स्वीकारकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतार लेकर सभी भक्तोंको कृतार्थ किया। श्रीमहाप्रभुके अवतार तथा श्रीकृष्णका छाछ भर पानकर नाचकी पुष्टि गौतमीय तन्त्रके श्लोक द्वारा होती है।

वैवस्वतान्तरे ब्रह्मण् गङ्गातीरे सुपुण्यदे।
हरिनाम तदा दत्त्वा चाण्डालान् हडिकांस्तथा।।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शतशोऽथ सहस्रशः
उद्धरिष्याम्यहं तत्र तप्तस्वर्णकलेवरः।
संन्यासश्च करिष्यामि काञ्चनग्रामसमास्थितः।।

(स्वयं भगवत्ता श्लोक १०८ ऊर्ध्व वामन संहिता)

हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तरमें मैं सुपवित्र गङ्गाके किनारे तपे हुए सोना जैसा वर्ण एवं विग्रह धारणकर, हरिनाम प्रदानकर, शतसहस्र (असंख्य) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और निम्न जातिके व्यक्तियोंका उद्धार करूँगा और काञ्चन ग्राम जाकर संन्यास ग्रहण करूँगा।

उक्त श्लोकसे महाप्रभु चैतन्यदेवके रूपमें श्रीकृष्णके अवतारकी शत-प्रतिशत पुष्टि होती है। ऐसे अनेक श्लोक विविध पुराणों, तन्त्रों, संहिताओं तथा आगम ग्रन्थोंमें मिलते हैं, जिनसे गौराङ्ग महाप्रभुके अवतारकी पुष्टि होती है।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्।।

(श्रीमद्भागवत ७/९/३८)

प्रह्लादजी कहते हैं—हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वद्रोहियोंका संहार करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर (छन्नः) गुप्तरूपसे अवतार धारण करते हैं। इसलिए आपका एक नाम 'त्रियुग' है क्योंकि छन्न अवतार किसी भी शास्त्रमें सहज रूपमें प्रकाशित नहीं हुआ है, अर्थात् कलियुगका अवतार सङ्केतोंमें ही दर्शाया गया। कलियुगी दुष्टोंका अन्त रावण और कंसा जैसा नहीं है। कलियुगी दुष्ट ऊपरसे धर्मध्वजी तथा अन्दरसे असुर वृत्तिके होते हैं। उनका विनाश भी छन्न रूपसे ही कृष्ण नामकी तेज धारसे ही होगा।

महान् प्रभुर्वैः पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः।
सुनिर्मलामिमां शान्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः।।

(श्वेताश्वेतर ३/१२)

वे महाप्रभुके रूपमें जाने जाएँगे जो लोगोंकी आसुरी प्रवृत्तिको सत्त्वमें बदलेंगे। वे सुनिर्मल शान्तिको प्रदान करनेवाले होंगे। उनकी अङ्गकान्ति अव्यय है; क्योंकि वे स्वयं अव्ययतत्त्व हैं।

यहाँ शान्तिसे तात्पर्य किसी अस्त्र-शस्त्रका उपयोग किए बिना सहज रूपसे लोगोंके चित्तका परिवर्त्तनकर उनके हृदयको सुनिर्मल बनाएँगे और इस धरापर वे पुरुष महाप्रभुके रूपमें कहलाएँगे। अतएव जैसा कि श्रीमद्भागवत (७/९/३८) में कहा गया है, छन्न रूपमें ही कलियुगमें अवतार होगा। अतएव शास्त्रोंमें भी छन्नरूपमें ही इस अवतारका सङ्केत दिया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है—हे अर्जुन! मेरे हजारों अवतार होते हैं तथा तुमने भी हजारों बार जन्म लिया है। किन्तु तुमको स्मरण नहीं है। प्रछन्न अवतारोंका सङ्केत भर ही धर्मशास्त्रोंमें मिलता है। अन्य लीला अवतारोंका विस्तारके साथ विवेचना मिलता है। विशिष्ट अवतारोंका लीला वर्णन नहीं मिलता।

श्रीब्रह्माकी आयुके प्रत्येक मनुके ७१ दिव्ययुग वर्षोंमें जो २८ वें दिव्ययुग (चतुर्युग) के कलियुगमें ही श्रीकृष्ण भगवान्, महाप्रभु चैतन्यके रूपमें अवतार धारणकर राधाभाव एवं उनकी अङ्गकान्तिसे कृष्णप्रेमका आस्वादन स्वयं करते हैं तथा गोपीभावसे किस प्रकार श्रीकृष्णकी प्रेमभक्ति प्राप्त हो सकती है, उसका पथ प्रदर्शन करते हैं।

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धो हरीन्दुः।।

(चै. च. आ. १/६)

श्रीरूप गोस्वामीपाद कहते हैं—श्रीमती राधिकाजीके अलौकिक प्रेमकी महिमा कैसी है? मेरी अद्भुत मधुरिमा कैसी है, जिसका राधाजी आस्वादन करती हैं; मेरी मधुरिमाकी अनुभूतिसे राधिकाजीको कौन-सा अनिर्वचनीय सुख मिलता है—इन तीन लालसाओंकी पूर्त्तिकी अभिलाषासे राधाभाव लेकर श्रीकृष्णचन्द्र श्रीशचीमाताके गर्भसमुद्रसे

श्रीगौराङ्गदेवके रूपमें आविर्भूत हुए।

मूलरूपसे श्रीमन्महाप्रभुके अवतारका यही उद्देश्य है। असुरोंका नाश करना उनका लक्ष्य नहीं है। जिस प्रेमका आस्वादन वे द्वापरमें कृष्ण अवतारमें नहीं कर सके, उसीका आस्वादन करनेके लिए राधामिलित विग्रहके रूपमें कलियुगी भक्तोंको प्रेमका पथ दिखाने आए। यथा—

एइमत चैतन्यकृष्ण पूर्ण भगवान।
युगधर्म प्रवर्त्तन नहे तार काम।।
कोन कारणे जबे हइल अवतारे मन।
युगधर्म काल हैल से काले मिलन।।
दुइ हेतु अवतरि लजा भक्तगण।
आपने आस्वादे प्रेम नाम सङ्कीर्त्तन।।
सेइ द्वारे आचण्डाले कीर्त्तन सञ्चारे।
नाम प्रेममाला गान्थि पराइल संसारे।।
एइमत भक्तभाव करि अङ्गीकार।
आपनि आचरि भक्ति करिल प्रचार।।

(चै. च. १/४/३७—४१)

कृष्णनाम ही जिनका आधार है, कृष्ण ही जिनके प्रेष्ठ हैं, जो सदैव उन्हींके प्रेममें राधाजीकी भाँति नित्य अवगाहन करते रहते हैं, जिनके नेत्रोंसे निरन्तर प्रेमजन्य अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं—उन श्रीगौरहरिके बारेमें श्रीरूपगोस्वामीपाद लिखते हैं—

हरेकृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नाम गणना
कृतग्रन्थिश्रेणी सुभगकटिसूत्रोऽज्ज्वलकरः।
विशालाक्षो दीर्घार्गलयुगलखेलञ्चितभुजः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।

(स्तवमाला, चैतन्याष्टक ५ श्लोक)

उनकी स्वयं भगवत्ता सिद्ध होती है।

'हरे कृष्ण' महामन्त्रका उच्चस्वरसे कीर्त्तन करते हुए जिनकी रसना नृत्य करती रहती है, उच्चारित नाम गणनाके लिए बाएँ हाथकी अंगुलियाँ सुशोभित हो रही हैं, जिनके विशाल नेत्र और आजानुलम्बित भुजाएँ हैं—वे चैतन्य महाप्रभु क्या कभी मेरे नयन पथके पथिक होंगे?

सेइ राधा भाव लइया चैतन्य अवतार।
युगधर्म नाम प्रेम कैल परचार।।

(चै. च. १/४/२२०)

अनेक सन्तों एवं सभी धर्मग्रन्थों और पुराणोंमें कलियुगमें कृष्णनामका जप ही कृष्णप्रेम पानेका एकमात्र साधन है—ऐसा पुकार-पुकार कर कहा है। यही कृष्णनाम जप युगधर्म है; जिसका प्रचार स्वयं राधाभावको अङ्गीकार कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके अवतार रूपमें भगवान् कृष्णने किया।

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः।।

(विदग्धमाधव १/२)

सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि तुम्हारे हृदयमें स्फूर्त्ति लाभ करें। जिस सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वलरसका दान जगतको चिरकालसे नहीं दिया, उसी स्वभक्ति सम्पत्तिका दान करनेके लिए वे कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं।

इस प्रकार समस्त शास्त्रोंमें प्रकट और प्रछन्न रूपमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रेमावतार कलियुग-पावनावतारी रूपका वर्णन मिलता है, जिससे

श्रीगौराङ्ग सुधा

(वर्ष ४५ संख्या ६ पृष्ठ १४० से आगे)

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

प्रभुके श्रीअङ्गमें विभिन्न भावावेश

इस प्रकार प्रभु जिन-जिन भावोंके विषयमें कहीं पर कुछ भी सुनते तो उन्हीं भावोंमें आविष्ट हो जाते थे। जब कभी दास्यभाववाले श्लोकोंको सुनते तो दास्यभावमें ऐसे आविष्ट हो

जाते कि दो प्रहरतक रोते रहते थे। उस समय उनके नेत्रोंसे गङ्गाकी धाराओंकी भाँति झर-झर अश्रु प्रवाहित होते रहते। जब हँसने लगते तो एक प्रहरतक हँसते ही रहते। जब मूर्च्छित होते तो उस समय उनके शरीरमें श्वास भी बन्द हो जाता था तथा एक प्रहरतक वे उसी अवस्थामें पड़े रहते थे। जब कभी अक्रूरके मथुरागमनका श्लोक सुनते तो उस समय अक्रुरके भावमें आविष्ट होकर कहने लगते—"हे महाराज नन्द! आप कृष्ण एवं बलरामको साथ लेकर मथुरा चलिए। राजा कंसने आपको धनुर्यज्ञमें बुलवाया है।" इस प्रकार प्रभु नाना प्रकारके भावोंमें आविष्ट होकर नाना प्रकारकी बातें करने लगते, जिन्हें सुनकर एवं देखकर वैष्णवोंको बहुत आनन्द होता।

वराहरूपमें मुरारीको दर्शन

एकदिन कहीं पर प्रभुने भगवान् वराहदेवके विषयमें सुना तो वे गर्जन करते हुए मुरारीगुप्तके घरकी ओर दौड़े। प्रभु मुरारीसे बहुत प्रेम करते थे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र हनुमानजीसे करते थे, क्योंकि ये मुरारीगुप्त हनुमानके ही अवतार थे। जब प्रभु मुरारीके घर पहुँचे तो मुरारीने प्रभुकी चरण-वन्दना की। परन्तु प्रभु तो भावमें आविष्ट थे। वे शूकर-शूकर कहकर चारों ओर देखने लगे। यह सुनकर मुरारी भी आश्चर्यचकित होकर चारों ओर देखने लगे कि आखिर बात क्या है? उसी समय प्रभु दौड़कर विष्णुके मन्दिरमें प्रविष्ट हो गए। उनका आकार वराह जैसा हो गया और उनके चार पैर प्रकट हो गए। उन्होंने सामने रखे हुए एक बहुत बड़े जलके पात्रको अपने दाँतोंसे उठा लिया तथा भयङ्कर गर्जन करने लगे।

प्रभुको वराह रूपमें देखकर मुरारी गुप्त स्तब्ध हो गए तथा भयसे थर-थर काँपने लगे। प्रभु बोले—"मुरारी! मेरी स्तुति कर।" परन्तु स्तुति तो दूर, मुरारी गुप्तजीके मुखसे भयसे एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। यह देखकर प्रभु फिरसे बोले—"मुरारी! तू भय मत कर, बोल-बोल। इतने दिनों तक तू मुझे पहचान नहीं पाया कि मैं यहीं पर हूँ।" यह सुनकर मुरारीजी काँपते हुए कहने लगे—"प्रभो! अपनी स्तुति आप ही जानते हैं। अनन्त ब्रह्माण्डोंको जो अपने एक ही फणपर धारण करते हैं, वे सहस्रबदन (शेषनाग) अपने हजारों मुखसे आपका गुणगान करते हैं, परन्तु फिर भी शेष नहीं कर पाते। सारा संसार जिन वेदोंके अनुसार अपना-अपना कार्य कर रहा है, वे वेद भी आपके तत्त्वको सम्पूर्णरूपसे नहीं जानते, तो मेरे जैसे एक तुच्छ जीवकी क्या सामर्थ्य है कि मैं आपके गुणोंका गान कर सकूँ? आपका गुणगान तो वही कर सकता है तथा आपको वही जान सकता है, जिसे कृपाकर आप स्वयं जनाएँगे।" ऐसा कहकर मुरारी गुप्त प्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर रोने लगे। यह सुनकर प्रभु मुरारी गुप्त पर प्रसन्न हो गये तथा निराकार निर्विशेषवादियोंके प्रति क्रोधपूर्वक कहने लगे—"काशीमें प्रकाशानन्द नामक एक संन्यासी है। वह ऐसा दुष्ट है कि अपने शिष्योंको वेद पढ़ाता है, परन्तु मेरे आकारको स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि भगवान्के हाथ-पैर-आँख-कान इत्यादि कुछ भी नहीं है। इस प्रकार वह मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े करता है। सर्वयज्ञमय मेरा पवित्र चिन्मय श्रीअङ्ग है, ब्रह्मा, शिव आदि जिसका गुणगान करते हैं। ऐसे मेरे पवित्रकारी दिव्य स्वरूपको मिथ्या बताता है, यह उसका कैसा दुःसाहस है? परन्तु मुरारी, मैं आज तेरे सामने अपने स्वरूपको प्रकाशित कर रहा हूँ। मैं स्वयं यज्ञवराह हूँ। मैंने ही वराहरूप धारणकर वेदोंका उद्धार किया था। इस समय सङ्कीर्त्तन धर्मका प्रचारके लिए मैं इस धराधाम पर अवतीर्ण हुआ हूँ। अब मैं भक्तोंको कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टोंका

संहार करूँगा, क्योंकि यदि कोई दुष्ट मेरे भक्तोंको कष्ट पहुँचाता है तो मैं इसे सहन नहीं कर सकता। चाहे वह मेरा पुत्र ही क्यों न हो, मैं उसे काट डालता हूँ। मुरारी! मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ। ऐसा मैंने किया भी है। वराहरूप धारणकर हिरण्याक्ष असुरको मारनेके पश्चात् जब मैंने पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय मेरे स्पर्शसे पृथ्वीने एक पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम नरकासुर हुआ। मैंने स्वयं उसे शिक्षा प्रदान की। कुछ समय पश्चात् मेरा पुत्र एक महाराज बन गया। वह देवताओं, ब्राह्मणों, गुरु-वैष्णवोंकी आदरपूर्वक सेवा करता था। परन्तु दुर्भाग्यसे वह बाणासुर आदि दुष्टोंके सङ्गमें पड़ गया, जिससे उसकी बुद्धि विकृत हो गई तथा वह भक्तोंका द्रोही हो गया। अब वह ब्राह्मणों एवं भक्तोंको सताने लगा। परन्तु अपने भक्तोंकी हिंसा मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए अपने भक्तोंके लिए मैंने अपने पुत्रका भी वध कर दिया। मुरारी! तूने अनेकों जन्मोंमें मेरी सेवा की है। इसीलिए मैंने अपना रहस्य तुझे बताया है।"

प्रभुकी बात सुनकर मुरारीगुप्त प्रभुके चरणोंमें गिरकर फूट-फूटकर रोने लगे। इस प्रकार प्रभु अपने सेवकोंके घर-घर जाकर उनके सामने अपने स्वरूपको प्रकाशित करने लगे। प्रभुके स्वरूपका दर्शनकर अब तो सभी भक्तोंका हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगा तथा अब उन्हें किसी प्रकारका भय भी नहीं रहा। अब तो वे बाजारोंमें, गलियोंमें सर्वत्र ही उच्चस्वरसे हरिनामका कीर्त्तन करने लगे।

नित्यानन्द प्रभुसे मिलन

अपने जिन-जिन परिकरोंको प्रभुने जगत्में अवतरित करवाया था, प्रायः वे सभी प्रभुसे मिल गये। परन्तु नित्यानन्द प्रभु अभी तक नहीं आये। अपने बड़े भाई नित्यानन्दको न आया देखकर प्रभु बहुत दुःखी रहने लगे। उधर प्रभु नित्यानन्द बाल्य अवस्थामें ही माता-पिताको छोड़कर एक संन्यासीके साथ घरसे निकल पड़े तथा अनेक वर्षोंतक भारतके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे। भ्रमण करते-करते जब वे श्रीधाम वृन्दावनमें उपस्थित हुए तो उन्हें वहाँकी समस्त मनोहारी लीलाओंका स्मरण हो आया। वे भावविह्वल होकर वृन्दावनमें सर्वत्र कृष्णकी खोज करने लगे। वे जिसे भी देखते, अत्यन्त कातरतापूर्वक उसीसे पूछते—"भाई! क्या तुमने मेरे कन्हैयाको कहीं देखा है? कृपा करके बताओ मुझे वह कहाँ मिलेगा?" जब वे गायोंके समूहको देखते तो गायोंके गलेसे लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगते। एक दिन उन्हें आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि तुम्हारा कन्हैया इस समय श्रीधाम नवद्वीपमें प्रकट होकर लीलाएँ कर रहा है। यह सुनकर प्रभु भावाविष्ट होकर नवद्वीपकी ओर चल पड़े। नवद्वीप पहुँचने पर नन्दनाचार्यके घरमें छिप गये। वे विचार करने लगे कि यदि यह मेरा कन्हैया है तो स्वयं मुझे लेने यहाँ आएगा।

उधर उसी दिन जब महाप्रभु समस्त वैष्णवोंके मध्य बैठे हुए थे तो उस समय सबसे कहने लगे—"मैंने रात्रिमें एक अद्भुत स्वप्न देखा कि हमारे घरके सामने एक विशाल तालध्वज रथ उपस्थित हुआ अर्थात् उस रथकी ध्वजापर तालवृक्ष अङ्कित हुआ था। (बलदेवजीके रथका नाम तालध्वज रथ है)। उस रथमें एक विशालकाय महापुरुष विराजमान थे। उनके कन्धेपर हल एवं मूषल शोभायमान हो रहे थे। वे नीलवस्त्र धारण किए हुए थे तथा उनके बाएँ कानमें एक विचित्र कुण्डल झिलमिला रहा था। उनके अपूर्व स्वरूपका दर्शनकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे कोई अन्य नहीं, बल्कि स्वयं बलदेवजी ही रथमें सवार होकर हमारे घरमें उपस्थित हुए हैं। वे आस-पासके लोगोंसे पूछ रहे थे—"क्या निमाई पण्डितका घर यही है।" यह सुनकर मैं आदरपूर्वक

उनके पास गया तथा उनसे पूछा—"आप कौन हैं तथा कहाँसे पधार रहे हैं?" मेरा प्रश्न सुनकर वे हँसते हुए बोले कि मैं तुम्हारा भाई हूँ। कल तुम्हारा तथा मेरा मिलन होगा। यह सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। न जाने क्यों उस समय मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं और वे एक ही हैं।" ऐसा कहते ही प्रभु बलदेवजीके भावमें आविष्ट होकर गर्जन करते हुए कहने लगे—"मद लाओ, मद लाओ!" अकस्मात् प्रभुकी विचित्र दशा देखकर भक्तलोग भयभीत हो गये। उसी समय श्रीवासजी बोले—"प्रभु यदि आप मदिरा चाहते हैं तो वह तो आपके पास ही है। जिसे आप कृपाकर पिलाएँगे, केवल वही उसे प्राप्त कर सकता है।" यह देखकर वैष्णववृन्द विचार करने लगे कि इसका अवश्य ही कुछ विशेष कारण है। उसी समय प्रभु कुछ शान्त होकर कहने लगे—"अवश्य ही नवद्वीपमें कोई महापुरुष उपस्थित हुए हैं। अतः आपलोग जाकर खोजिए कि वे कहाँ विराजमान हैं। यह सुनकर हरिदास तथा श्रीवासजी खोजनेके लिए निकल पड़े। वे दोनों विचार करने लगे कि अवश्य ही बलदेव प्रभु ही नवद्वीप धाममें आए हैं। अतः आनन्दसे विह्वल होकर दोनों ही घर-घर जाकर खोजने लगे। खोजते-खोजते तीन प्रहर बीत गए, परन्तु उन्हें किसी महापुरुषके दर्शन नहीं हुए। अतः अन्तमें हारकर वे प्रभुके पास लौट आए तथा उन्हें बताया कि हमने वैष्णवोंके घरोंमें, संन्यासियोंके आश्रमोंमें, यहाँ तक कि पाषण्डियोंके घरोंमें भी जाकर देखा, परन्तु सारे नवद्वीपमें किसी अपरिचित महापुरुषके दर्शन नहीं हुए।" उनकी बातें सुनकर प्रभु मुस्कुराते हुए बोले—"आप सभी लोग मेरे साथ आइए। हम सभी लोग मिलकर उन्हें खोजते हैं।" यह सुनकर सभी लोग उल्लसित होकर प्रभुके साथ चल पड़े। सभीको साथ लेकर प्रभु सीधे नन्दनाचार्यके घर पहुँचे। वहाँ जाकर सभीने देखा कि वहाँ एक महापुरुष विराजमान हैं। उनके शरीरसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश निकल रहा था। उस समय वे ध्यानमग्न थे तथा उनके होठोंपर मन्द-मन्द मुस्कान छा रही थी। उनकी अद्भुत भक्तिके प्रभावको जानकर प्रभुने अपने सभी भक्तोंके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा उनके सामने चुपचाप हाथ जोड़कर खड़े हो गए। ध्यानमें ही नित्यानन्द प्रभुने अपने प्राणनाथको पहचान लिया। उन्हें अपने सामने जानकर आँखें खोलीं तो प्रभुका दर्शनकर स्तम्भित हो गए तथा अपलक नेत्रोंसे प्रभुका दर्शन करने लगे। इस प्रकार बहुत समयतक नित्यानन्द इसी प्रकार स्तम्भित रह गए। वे न तो बोल रहे थे, न हिल-डुल रहे थे। बस उनकी दृष्टि श्रीगौरसुन्दरके श्रीमुखकमलपर गड़ी हुई थी। उनकी ऐसी अवस्था देखकर वहाँपर उपस्थित सभी भक्तलोग आश्चर्यचकित रह गए। तब प्रभुने श्रीवासजीको भागवतका एक श्लोक पाठ करनेका सङ्केत किया। प्रभुजीका सङ्केत पाकर श्रीवासजीने कृष्णके रूपके विषयमें एक श्लोक पाठ किया—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्त्तिः।।

(श्रीमद्भागवत १०/२१/५)

इस श्लोकको सुनते ही नित्यानन्द प्रभु मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। जब वे आनन्दमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े तो प्रभु श्रीवासजीको पुनः पुनः श्लोकको दुहरानेके लिए कहने लगे। इस प्रकार कुछ देर बाद श्लोक सुनकर नित्यानन्द प्रभुकी मूर्च्छा दूर हो गई। अब तो उन्होंने जो रोना आरम्भ किया, उसको देखकर सभीके हृदय द्रवित हो गए। श्लोक सुनते-सुनते उनका उन्माद बढ़ता ही जा रहा था। कभी-कभी वे रोते-रोते जब पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ते तो

सबको ऐसा लगने लगता कि उनकी हड्डियाँ चूर्ण-विचूर्ण हो जाएँगी। सभी भक्तलोग भगवान्से प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभो! इनकी रक्षा कीजिए, इनकी रक्षा कीजिए।" नित्यानन्द प्रभु बार-बार श्रीगौरसुन्दरके मुखकी ओर देखते जिससे उनका आनन्द और भी अधिक बढ़ जाता। वे कभी नृत्य करने लगते, कभी प्रभुको प्रणाम करने लगते, कभी गोपभावमें आविष्ट होकर बाहुताल देने लगते मानो प्रभुको कुस्तीके लिए आमन्त्रित कर रहे हों, तो कभी जोर-जोरसे दोनों पैरोंसे उछलने लगते। उनके इन भावोंका दर्शनकर अर्थात् कृष्णप्रेमके उन्मादका दर्शनकर श्रीगौरसुन्दर एवं सभी वैष्णवलोग आनन्दसे रोने लगे। इस प्रकार नित्यानन्द प्रभुका प्रेमोन्माद बढ़ता ही जा रहा था। अब क्योंकि बहुत देर हो गई थी, अतः सभी वैष्णवलोग उन्हें पकड़कर शान्त करनेका प्रयास करने लगे। परन्तु सभी लोग मिलकर भी महाबली नित्यानन्दको पकड़ नहीं पा रहे थे। जब सभी वैष्णव लोग उन्हें पकड़नेमें असमर्थ हो गए, तब महाप्रभु स्वयं नित्यानन्दके निकट गए तथा उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। प्रभुकी गोदमें जाते ही नित्यानन्दने अपना सर्वस्व श्रीगौरसुन्दरके चरणकमलोंमें समर्पित कर दिया। अब वे प्रभुकी गोदमें एक अबोध बच्चेकी भाँति शान्त होकर लेट गए तथा प्रभु प्रेमसे उनके सिरपर हाथ घुमाने लगे। उस समय श्रीगौरसुन्दरके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, जिससे नित्यानन्दका सारा शरीर भीग रहा था। यह देखकर वैष्णवोंको प्रतीत होने लगा, मानो युद्धभूमिमें लक्ष्मणजी शक्तिबाणसे घायल हो गए हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी उन्हें अपनी गोदीमें लिटाकर रो रहे हैं तथा उनके नेत्रोंसे बहनेवाली अश्रुधारासे लक्ष्मणजीका सारा शरीर भीग गया है। कुछ समय पश्चात् नित्यानन्दको बाह्यज्ञान हुआ तो सभी वैष्णववृन्द जय-जयकार करने लगे। आज श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्दप्रभुको गोदमें धारण कर रखा है। इस विपरीत दृश्यको देखकर गदाधर मन-ही-मन हँसने लगे। जो अनन्तदेव (शेषनाग) सर्वदा प्रभुको धारण करते हैं, आज प्रभुने स्वयं उन्हें ही धारण कर रखा है। इस प्रकार आज अनन्तदेवका सारा गर्व चूर्ण हो गया है। चेतना आनेके बाद भी वे कुछ नहीं बोले और न ही श्रीगौरसुन्दर कुछ बोल रहे थे। बस, दोनों ही प्रेमसे एकटक एक दूसरेको निहार रहे थे। कुछ समय बाद प्रभु बोले—"आजका दिन मेरे लिए बहुत ही शुभ है, जो ऐसे भक्तियोग एवं प्रेमके विकारोंका दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हे महाशय! आप अवश्य ही भगवान्की पूर्ण शक्ति हैं। आपका भजन करनेसे जीव कृष्णको प्राप्त कर सकता है। आप तो चौदह भुवनोंको पवित्र कर सकते हैं। अब आप कृपापूर्वक बताइए कि आपका आगमन कहाँसे हो रहा है?"

यह सुनकर नित्यानन्दजीने गृहत्यागसे अबतकका सारा विवरण सुना दिया कि मैं तीर्थोंका भ्रमण करते हुए वृन्दावन गया। वहाँ आकाशवाणी सुनाई दी कि अभी कृष्ण गौड़देशमें हैं। यह सुनकर मैं अभी सीधा चला आ रहा हूँ।

प्रभु—"आज हम सभी अपनेको कृत-कृत्य मान रहे हैं। क्योंकि जैसे-जैसे भावोंका हमने आज आपके शरीरमें दर्शन किया, ऐसे भावोंके विषयमें न सुना था और न ही इससे पहले देखा था।"

इस प्रकार प्रभु स्वयं अपने प्रिय नित्यानन्दकी वन्दना करने लगे। (क्रमशः)

विविध संवाद

झूलनोत्सव एवं श्रीरूप गोस्वामीजीका तिरोभाव

३१ जुलाई मङ्गलवारसे ४ अगस्त शनिवारतक ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त नारयण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें श्रीराधाविनोदविहारीजीका झूलनोत्सव वृन्दावनके श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें अत्यधिक आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रीलरूप गोस्वामी पादके तिरोभाव उत्सवके दिन श्रील महाराजजीके साथ अनेक भक्तोंने प्रातःकाल रूपगोस्वामीजीकी समाधिका दर्शन एवं परिक्रमा की। वहाँपर श्रील महाराजजीने 'यङ् कलि रूप शरीर न धारत' गानकी विशद आलोचना की।

सन्ध्याके समय विद्वत्सभाका आयोजन किया गया, जिसमें श्रीकृष्णचैतन्याश्रय तीर्थ (अतुलकृष्ण) गोस्वामीने अध्यक्ष पदको समलङ्कृत किया। इनके अतिरिक्त डा. श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, श्रीमनोहरलाल शास्त्री, श्रीअच्युत भट्ट, श्रीलक्ष्मी नारायण बाबाजी, फणिलालजी आदि विद्वानोंने भी सभाको सुशोभित किया। सभाके प्रारम्भमें श्रीप्राणगोपाल गोस्वामीने मङ्गलाचरण किया। तत्पश्चात् सभी विद्वानोंने श्रीरूपगोस्वामीके अप्राकृत जीवनचरित्र पर प्रकाश डाला। सभाके अन्तमें श्रील महाराजजीने सबको धन्यवाद ज्ञापन किया।

बलदेव पूर्णिमा

श्रावण पूर्णिमाके दिन श्रील महाराजजीने बलदेव पूर्णिमा या रक्षा बन्धनके विषयमें प्रवचन दिया। श्रील महाराजजीने कहा कि पहले सभी लोग रक्षाबन्धनके दिन अनन्त पहनते थे, क्योंकि अनन्तदेव जगत्की रक्षा करते हैं। श्रील महाराजजीने कहा कि श्रीकृष्ण-जयन्ती, श्रीगौर-जयन्ती, श्रीनृसिंह जयन्ती आदि तिथियोंमें जिस प्रकार भक्तलोग उपवास करते हैं, उसी प्रकार श्रीबलदेव पूर्णिमाको उपवास करना चाहिए। ऐसा नहीं करनेसे अपराध होता है। श्रीबलदेव प्रभु भी भगवान् श्रीकृष्णकी तरह अवतारी हैं। श्रीबलदेव प्रभुकी कृपाके बिना कोई भी श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवाको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है।

श्रीश्रीकृष्ण जन्माष्टमी और नन्दोत्सव

श्रीजन्माष्टमीसे एक दिन पहले सन्ध्याके समय लगभग पाँच बजे सैकड़ों भक्त श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके समक्ष शोभायात्राके लिए उपस्थित हुए। एक असाधारण शोभायात्रा अनेक झाँकियोंके साथ प्रारम्भ हुई। सभी भक्त अत्यन्त उत्साहित एवं आनन्दित होकर उच्चस्वरसे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित सङ्कीर्त्तनमें भाग लेकर श्रीगुरुगौराङ्ग, श्रीराधाविनोदविहारीजीके कृपाभाजन हुए।

जन्माष्टमीके दिन प्रातःकाल श्रील महाराजजीने श्रीकृष्णतत्त्वके विषयमें प्रवचन दिया। श्रीलमहाराजजीके उपरान्त श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजजीने श्रीमद्भागवतसे पाठ एवं प्रवचन किया। इसी प्रकार सन्ध्याको प्रायः छः बजे तक अनेक भक्तों द्वारा अखण्ड पाठ किया गया। मध्यरात्रिके बारह बजे श्रीकृष्णका महाभिषेक श्रीलमहाराजजी द्वारा सम्पन्न हुआ जिसका दर्शन हजारों लोगोंने किया।

अगले दिन प्रातःकालसे ही सभी भक्त नन्दोत्सवकी तैयारियाँ करने लगे। श्रील महाराजजीने कहा कि श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथि होनेके कारण यह उत्सव हमारे लिए सोनेपर सुहागाके समान है। जिस प्रकार खीरमें कर्पूर मिलानेसे वह और भी अधिक स्वादिष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यह उत्सव भी हमारे लिए विशेष रूपसे वरणीय है। श्रील महाराजजीने पहले श्रील स्वामी महाराजजीके वरिष्ठ शिष्योंको उनके चरणोंमें कथारूपी पुष्पाञ्जली अर्पित करनेका सौभाग्य प्रदान किया एवं तत्पश्चात् वे स्वयं श्रीलस्वामी महाराजजीका गुणगान करने लगे। इस उत्सवमें लगभग पन्द्रह हजार अतिथियोंने

प्रसाद सेवन किया।

श्रीजन्माष्टमी महामहोत्सवके उपलक्ष्यमें विद्वत्सङ्गोष्ठी

श्रीजन्माष्टमी महामहोत्सवकी शृंखलाकी अन्तिम कड़ीके रूपमें दिनाङ्क १६ अगस्त २००१, गुरुवारको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विद्वत्सङ्गोष्ठीका आयोजन किया गया, जिसमें मथुरा मण्डलके मूर्धन्य विद्वानोंको निमन्त्रित किया गया। सङ्गोष्ठीका विषय था— श्रीमद्भागवतका चरम प्रतिपाद्य। सङ्गोष्ठीके सभापतिके रूपमें मथुरास्थित गोपालपीठाधीश्वर श्रीविट्ठलेशजीका वरण किया गया। सङ्गोष्ठीके सञ्चालक थे—सप्तविषयाचार्य श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी। इनके अतिरिक्त श्रीमनोहरलाल शास्त्री (मुख्य अतिथि), श्रीमुरारीलाल चतुर्वेदी (श्रीरङ्गलक्ष्मी महाविद्यालय, वृन्दावनके प्राचार्य), डॉ. पुरुषोत्तम लालजी चतुर्वेदी, श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, श्रीश्यामसुन्दर चतुर्वेदी, डॉ. अच्युतलाल भट्ट (वृन्दावन), पं. हरिहरजी पाण्डेय, श्रीजगदीशप्रसाद शास्त्री, श्रीबंशीधर चतुर्वेदी (प्रधानाचार्य, माथुर चतुर्वेद विद्यालय), पं. हरिहर शास्त्री, श्रीठाकुरजी चतुर्वेदी, पं. विष्णु दत्त पाण्डेय (हाथीगली) आदि विद्वानोंने सभाको समलङ्कृत किया।

सभाके प्रारम्भमें मङ्गलाचरणके पश्चात् श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके अध्यक्ष श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने उपस्थित सभी विद्वानोंका सम्मान पुष्प, चन्दन और निर्माल्य द्वारा किया। तदनन्तर संयोजक महोदयने श्रीलमहाराजजीसे दो शब्द कहनेका अनुरोध किया। श्रील महाराजने अपने सम्भाषणमें सर्वप्रथम सभाके आयोजनके विषयमें प्रकाश डाला, जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण-जन्मभूमि न्यास द्वारा मथुरा मण्डलके विद्वानोंकी उपेक्षा पर अत्यन्त दुःख प्रकाश किया। उन्होंने कहा कि जब श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका संस्कार हुआ, तो प्राणोंकी बाजी लगाई यहाँके लोगोंने, किन्तु आज जब किसी विद्वत्सभाका वहाँ आयोजन होता है, तो यहाँके विद्वानोंकी उपेक्षा कर अयोध्या, काशी आदि स्थानोंसे विद्वानोंको बुलाया जाता है। मथुरा मण्डल प्रारम्भसे ही हमारी संस्कृतिका केन्द्र रहा है। सर्वदा ही यहाँ भजनशील वैष्णव विद्वान् होते रहे हैं। किन्तु आज यहीं इनका अनादर हो रहा है, जो हृदयको विद्ध कर देनेवाली बात है। तत्पश्चात् श्रील महाराजने प्रस्तुत विषय पर किञ्चित् प्रकाश डालकर संयोजक महोदयसे ही सर्वप्रथम इसके सम्बन्धमें कहनेका अनुरोध किया। अनन्तर सभी विद्वानों तथा सभापतिने प्रस्तुत विषय पर बहुमूल्य विचार प्रकट किए। सभाके अन्तमें श्रील महाराजजीने संक्षेपमें 'आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयः' श्लोकके आधार पर संक्षिप्त सम्भाषण प्रदान कर उपस्थित सभी विद्वानोंके प्रति अपना आभार व्यक्त कर अपना वक्तव्य समाप्त किया।

(श्रील महाराजजी प्रदत्त भाषण इसी अङ्कमें 'श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य विषय' शीर्षकके रूपमें दिया गया है।)

श्रीराधाष्टमी

श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें श्रीराधाष्टमीका शुभ उत्सव सम्पन्न हुआ। श्रील महाराजजीके आनुगत्यमें सभी भक्तोंने मिलकर श्रीमती राधाजीका अभिषेक किया। तीन विभिन्न स्थानोंसे चाव आया। सभी भक्त कीर्त्तन करते हुए बड़े उत्साहके साथ जब चाव लेकर मठके द्वार तक पहुँचे, स्वयं श्रील महाराजजीने उनका स्वागत किया एवं थोड़े ही देरमें देखते-देखते हजारोंकी संख्यामें भक्तलोग आने लगे। श्रील महाराजजीके प्रवचनके उपरान्त सभीने महाप्रसादकी सेवा की। श्रील महाराजजीने कहा कि किसी-किसी कल्पमें श्रीमतीजीका आविर्भाव बरसानामें होता है, कभी-कभी वे माँ कृतिकाके गर्भसे भी जन्म ग्रहण करती हैं, परन्तु इस कल्पमें निश्चय ही श्रीमतीजीका आविर्भाव रावलमें हुआ। ❑

श्रीपुरुषोत्तमधाम (श्रीजगन्नाथपुरी) में श्रीपुरुषोत्तम व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति (रजिस्टर्ड)
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ. प्र.)
& *(०५६५) ५०२३३४, ५०३२२५*

आदरणीय सज्जनो!

इस वर्ष पुरुषोत्तम माह (अधिक माह) में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीके आनुगत्यमें श्रीपुरुषोत्तम धाम जगन्नाथपुरीमें अन्तिम १५ दिवस श्रीपुरुषोत्तम व्रत पालन करनेका आयोजन किया गया है। समितिके उपाध्यक्ष श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीके पौरोहित्यमें समितिके प्रमुख त्रिदण्डी संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंके संचालकत्वमें ***२ अक्टूबर मंगलवार पूर्णिमासे १६ अक्टूबर मंगलवार अमावस्या*** तक १५ दिवस प्रतिदिन श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्ति ग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन, कीर्त्तन, श्रीजगन्नाथजी तथा प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लीलास्थलियोंके दर्शन और परिक्रमादिकी व्यवस्था की गयी है।

तदनुसार श्रद्धालु यात्रियोंके १५ अक्टूबर २००१ (सोमवार) तक श्रीपुरीधाममें उपस्थित रहना आवश्यक है। आवश्यक जानकारी तथा नाम पंजीकरणके लिए शीघ्रातिशीघ्र श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें इसके व्यवस्थापक श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज एवं श्रीब्रजनाथ दासजीसे सम्पर्क करें।

श्रीपुरुषोत्तम व्रतके समय परिक्रमा एवं दर्शन कार्यक्रम

प्रथम दिवस—श्रीगम्भीरा, सिद्धबकुल हरिदास ठाकुरकी भजनकुटी, श्वेतगङ्गा, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका भवन, श्रीजगन्नाथ मन्दिर।

द्वितीय दिवस—श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' की आविर्भावस्थली, जगन्नाथवाटिका, श्रीगुण्डिचा मन्दिर, श्रीनृसिंहदेव, श्रीइन्द्रद्युम्न सरोवर आदि।

तृतीय दिवस—श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' की भजनकूटी, चटक पर्वत, टोटा गोपीनाथ, श्रीगौड़ीय मठ-समूह, यमेश्वर टोटा आदि।

चतुर्थ दिवस—श्रीपरमानन्दपुरी कूप, लोकनाथ महादेव आदि।

पञ्चम दिवस—नरेन्द्र सरोवर, मार्कण्डेय सरोवर आदि।

षष्ठ दिवस—चक्रतीर्थ, बंकिम मुहाना, बेड़ी हनुमान।

सप्तमदिवस—आलालनाथ, बेंटपुर (श्रीराय-रामानन्द भवन), माधवीदेवी वास-भवन।

अष्टम दिवस—कोनार्क सूर्यमन्दिर आदि।

नवम दिवस—भुवनेश्वर, लिङ्गराज, अनन्त वासुदेव, बिन्दु-सरोवर, गौरी-कुण्ड, धवलगिरि, उदयगिरि आदि।

दशम दिवस—श्रीसाक्षीगोपाल, दण्डभाङ्गा नदी तट, अठारह नाला, श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का पादपीठ इत्यादि लीलास्थलियोंके दर्शन होंगे।

(इच्छुक श्रद्धालु यात्री श्रीनीलमाधवका भी दर्शन पृथक्‌रूपसे कर सकते हैं)

श्रीब्रह्मकुण्ड (श्रीगोवर्द्धन)

[illegible]

[illegible]

श्रीरामेश्वरप्रसाद भालवल्लभ शास्त्री

श्रीब्रह्मकुण्ड (श्रीगोवर्द्धन)

श्रीहरिदेवजीके मन्दिरके नीचे मनसादेवी मन्दिरके समीप श्रीमानसीगंगाके दक्षिणीतटसे संलग्न श्रीब्रह्मकुण्ड एक अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। श्रीकृष्ण– द्वैपायन वेदव्यासने श्रीकूर्मपुराण और वराह पुराणमें इस प्राचीन कुण्डकी महिमाका वर्णन किया है। यथा कूर्मपुराणमें—

यत्र ब्रह्मादयो देवाः समाजग्मुर्भुवस्थले। ब्रह्मस्तुत्याभिषेकं च हरेश्चक्रे विधानतः।।
सामवेदोद्भवैर्मन्त्रैः सर्वकामार्थसिद्धये। ब्रह्मकुण्डं यतो जातं ब्रह्मादिभिर्विनिर्मितं।।
उसी कूर्म पुराणमें, ब्रह्मकुण्डमें स्नान और आचमनका मन्त्र—
ब्रह्मादिनिर्मितस्तीर्थ शुद्धकृष्णभिषेचन। नमः कैवल्यनाथाय देवानां मुक्तिकारक।।
इति मन्त्रं दशावृत्या मज्जनाचमनैर्नमन्। द्वयोर्मध्ये कृतं दानं सहस्त्रं गुणितं भवेत्।।
पुण्यं मानसिकं यत्र फलमक्षयमाप्नुयात्। मनसि संस्थितान्कामान् चिन्तनात्सर्वमाप्नुयात्।।
गुप्तदानं प्रकुर्वीत स्वर्णगौरजतादिकं। अन्नवस्त्रादिकं चैव पात्रपृथ्वीगृहादिकं।।
दशायुतगुणं पुण्यं फलं तद्द्विगुणं लभेत्। नारीकेलफलादीनां हस्तश्वादिविधायिनां।।
पुण्यं लक्षगुणं जातं फलं स्यात्तच्चतुर्गुणां। मनसा क्रियते दानमक्षयं फलमाप्नुयात्।।

अर्थात् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंको दर्शन करनेकी अभिलाषासे ब्रह्माजीने कृष्णके बछड़ों तथा सखामण्डलीका अपहरणकर किसी कन्दरामें छिपा दिया। श्रीकृष्णने महती कृपाके द्वारा सारे अपहृत बछड़ों और ग्वालबालोंका स्वयं ही रूप धारणकर ब्रह्माजीको अपनी आश्चर्यजनक विभुतिका दर्शन कराया। ब्रह्माजीका मोह दूर होनेपर उन्होंने महादेव शङ्कर एवं अन्यान्य देवताओंके साथ वर्त्तमान श्रीहरिदेव मन्दिरके समीप श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें गिरकर अपने दोषोंको क्षमा करानेके लिए तथा सर्वार्थ सिद्धिके लिए सामवेदीय मन्त्रोंसे स्तव–स्तुति कर उनका यहींपर अभिषेक किया। उसी अभिषेक जलसे ही ब्रह्मकुण्ड उत्पन्न हुआ है। तत्पश्चात् इस कुण्डमें ब्रह्मादि देवताओंने स्नान किया। तभीसे इस कुण्डका नाम ब्रह्मकुण्ड हुआ है।

स्नान–आचमन–प्रार्थना मन्त्र—हे ब्रह्मादि द्वारा निर्मित तीर्थ! हे परम शुद्ध! हे कृष्णके अभिषेक स्थल! हे कैवल्य नायक! आपको नमस्कार है। आप देवताओंको संसार बन्धनसे मुक्त करानेवाले हैं। इस मन्त्रको दस बार पाठपूर्वक स्नान, आचमन और नमस्कार करें। यहाँ दान करनेसे हजार गुणा फल होता है। मन ही मन पुण्य करनेपर भी अक्षय फल लाभ होता है। यहाँ सब प्रकारकी मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं। यहाँ स्वर्ण, चाँदी, वस्त्र, अलङ्कार आदिके दानसे लाखों गुणा पुण्य और उससे भी चार गुणा फल लाभ होता है। इसीके तटपर मनसा देवीका मन्दिर है। ये मनसादेवी सब प्रकारके मनोरथोंको पूरा करती हैं। ये मनसादेवी कृष्णकी योगमाया हैं, जो श्रीकृष्ण–लीलाओंको संपन्न करती हैं तथा जीवोंको श्रीकृष्णसे मिलाती हैं। वैष्णवगण इन्हें मानसी गङ्गाकी अधिष्ठात्री देवी, स्वयं भगवती गङ्गाका स्वरूप मानते हैं।

वायुपुराणके अनुसार इस कुण्डके पूर्व तटपर इन्द्र तीर्थ, दक्षिण तटपर यम तीर्थ, पश्चिम तटपर

वरुण तीर्थ तथा उत्तर तटपर कुबेर तीर्थ विराजमान हैं। ये चारों देवता कृष्णकी कृपा प्राप्त करनेके लिए वहाँ आराधना कर रहे हैं।

इसके समीप ही श्रीकृष्णके मनसे निकली हुई मानसी गङ्गा हैं, जो सब प्रकारके पापोंको जन्म मरणके क्लेशोंको अपने स्नान मात्रसे ही दूर कर देती हैं। इसीके बीचमें गिरिराजजीका मुखारविन्द है। इसी मानसी गङ्गामें गोपियोंको गङ्गापार करनेके बहाने श्रीकृष्णने नौकाविलास लीला की थी। समीप ही चक्रेश्वर नामान्तर चकलेश्वर महादेवजी स्थित हैं, जिन्होंने चक्रके द्वारा इन्द्रकी बरसायी हुई मूसलाधार वर्षा तथा विद्युतसे गोवर्द्धन और व्रजवासियोंकी रक्षा की थी। अतः गोवर्द्धनके प्रसिद्ध तीर्थोंमें यह ब्रह्मतीर्थ भी एक महातीर्थ है। इसकी सेवा करनेसे जीवमात्रकी मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं।

अन्तमें श्रद्धालु जनों एवं नगरवासियोंसे सादर निवेदन है कि वे इस ब्रह्मकुण्डके जीर्णोद्धार कार्यमें तन, मन, वचन और अर्थसे सेवा करें।

निवेदक

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज
श्रीगिरिराजजी गौड़ीय मठ,
गोवर्द्धन (मथुरा)
अथवा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ कार्त्तिक मास, सन् २००१, २ नवम्बर—३० नवम्बर
{ संख्या ८

श्रीश्रीवृन्दावनाष्टकम्

[श्रीरूपगोस्वामिविरचितम्]

मुकुन्दमुरलीरवश्रवणफुल्लहृद्वल्लवीकदम्बककरम्बितप्रतिकदम्बकुञ्जान्तरा ।
कलिन्दगिरिनन्दिनीकमलकन्दलान्दोलिना सुगन्धिरनिलेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी।।१।।

श्रीकृष्णकी मुरलीका स्वर सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुई गोपियोंसे जिनके कदम्ब आदि कुञ्ज परिपूरित हैं तथा कलिन्दगिरि–नन्दिनी श्रीयमुनाजीके कमलसमूहसे होकर प्रवाहित होनेवाले समीर द्वारा जिनका सौरभ सम्पादित होता है, वे वृन्दावन मेरे आश्रय हों।।१।।

विकुण्ठपुरसंश्रयाद्विपिनतोऽपि निःश्रेयसात् सहस्रगुणितां श्रियं प्रदुहती रसश्रेयसीम्।
चतुर्मुखमुखैरपि स्पृहिततार्णदेहोद्भवा जगद्गुरुभिरग्रिमैः शरणमस्तु वृन्दाटवी।।२।।
अनारतविकस्वरव्रततिपुञ्जपुष्पावलीविसारिवरसौरभोद्भ्रमरमाचमत्कारिणी ।
अमन्दमकरन्दभृद्विटपिवृन्दवन्दीकृतद्विरेफकुलवन्दिता शरणमस्तु वृन्दाटवी।।३।।
क्षणद्युतिघनश्रियोर्व्रजनवीनयूनोः पदैः सुबल्गुभिरलङ्कृता ललितलक्ष्मलक्ष्मीभरैः।
तयोर्नखरमण्डलीशिखरकेलिचर्योचितैर्वृताकिसलयाङ्कुरैः शरणमस्तु वृन्दाटवी।।४।।
व्रजेन्द्रसखनन्दिनीशुभतराधिकारक्रियाप्रभावजसुखोत्सवस्फुरितजङ्गमस्थावरा ।
प्रलम्बदमनानुजध्वनितवंशिकाकाकलीरसज्ञमृगमण्डला शरणमस्तु वृन्दाटवी।।५।।
अमन्दमुदिरार्बुदाभ्यधिकमाधुरीमेदुरव्रजेन्द्रसुतवीक्षणोन्नटितनीलकण्ठोत्करा ।
दिनेशसुहृदात्मजाकृतनिजाभिमानोल्लसल्लताखगमृगाङ्गना शरणमस्तु वृन्दाटवी।।६।।
अगण्यगुणनागरीगणगरिष्ठगान्धर्विकामनोजरणचातुरीपिशुनकुञ्जपुष्पोज्ज्वला।
जगत्त्रयकलागुरोर्ललितलास्यवल्गत्पदप्रयोगविधिसाक्षिणी शरणमस्तु वृन्दाटवी।।७।।
वरिष्टहरिदासतापदसमृद्धगोवर्द्धना मधूद्वहवधूचमत्कृतिनिवासरासस्थला।
अगूढगहनश्रियो मधुरिमव्रजनोज्ज्वला व्रजस्य सहजेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी।।८।।
इदं निखिलनिष्कुटावलिवरिष्ठवृन्दाटवी गुणस्मरणकारि यः पठति सुष्ठु पद्याष्टकम्।
वसन् व्यसनमुक्तधीरनिशमत्र सद्वासनः स पीतवसने वशी रतिमवाप्य विक्रीडति।।९।।

वैकुण्ठपुरीसे भी अर्थात् परव्योमस्थित कल्याणसे भी सहस्रगुण परमोन्नत (दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर) रस–सम्पत्तिको जो प्रदान करते हैं, जगद्गुरु चतुर्मुख ब्रह्मा भी जिसमें तृण–गुल्म–लता आदिके (हीन) जन्मके लिए प्रार्थना करते हैं, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।२।।

जो समस्त ऋतुओंमें फूलोंसे लदी हुई लताओंके दूर तक फैले हुए सौरभ द्वारा लक्ष्मीदेवीको भी विस्मित कर रहे हैं और अतिशय पुष्परस—मधुकी वर्षा करनेवाले वृक्ष–श्रेणीके ऊपर भ्रमण करनेवाले भ्रमरगण भी जिनकी वन्दना कर रहे हैं, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।३।।

जिनका सारा अङ्ग सौदामिनी और जलधर (नवीन मेघ) की भाँति एकत्र होकर वृन्दावनके नवीन श्रीराधा–गोविन्दकी अतिमनोहर एवं ललित वज्र–अङ्कुश आदि चिह्नित पद–पंक्ति द्वारा अङ्कित है और उन श्रीश्रीराधाकृष्णकी नखश्रेणीका अनुगमन करनेवाले किसलयों तथा अङ्कुरों द्वारा भी जो ढके हुए हैं, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।४।।

श्रीनन्द महाराजके प्रिय वान्धव वृषभानुराजकी दुहिता श्रीराधिकाकी आज्ञासे आनन्दोत्सवकी वृद्धिके लिए वृन्दासखी जहाँके स्थावर–जङ्गम (वृक्ष–मनुष्य आदि) दोनों प्रकारके प्राणियोंके उल्लासका सम्पादन कर रही हैं और प्रलम्बासुरके शत्रु श्रीबलदेवके छोटे भाई श्रीकृष्णकी

वंशीके मधुर स्वरके रसज्ञ मृगोंका समूह जिस स्थानमें विचरण करता है, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।५।।

जहाँ श्रीकृष्णकी नवजलधर कान्तिका दर्शन करके मयूरगण कौतूहलपूर्वक नृत्य कर रहे हैं एवं सूर्य-सुहृद् वृषभानुराज-नन्दिनी श्रीराधिकाके आत्माभिमान अर्थात् 'यह वृन्दाटवी मेरी है'—इस प्रीतिसूचक वचनको सुनकर लता, मृग और पक्षिगण जहाँ उल्लसित हो रहे हैं, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।६।।

जिनके कुण्डसमूह अगणित गुणोंसे सम्पन्न श्रीराधिकाकी मनोज-रण-चातुरीको सूचित कर रहे हैं और जो त्रिभुवनके प्रधान कला-कौशलके गुरु श्रीकृष्णके नृत्य-कार्यमें पद-चालनके साक्षी स्वरूप हैं, वे वृन्दावन ही मेरे आश्रय हों।।७।।

मनुष्योंके लिए दुर्लभ हरिदासकी पदवी प्राप्तकर गिरिराज गोवर्द्धन जहाँ स्वयं निवास करते हैं एवं श्रीमधुसूदनकी प्रियतमा गोपाङ्गना-चमत्कारी श्रीरासमण्डल जहाँ स्थित हैं, उन अप्रकट-काननशोभाविधायक वृन्दावनके माधुर्य द्वारा उज्ज्वल कान्तिसे युक्त श्रीवृन्दाटवी स्वभावतः मेरे आश्रय हों।।८।।

निखिल वनोंमें सर्वश्रेष्ठ वृन्दाटवीके गुणोंको स्मरण कराने वाले इस मनोहर पद्याष्टकका जो सुष्ठुरूपसे पाठ करते हैं, वे समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा प्राप्त करके तथा सर्वशुभकामनाओंकी सिद्धि प्राप्तकर पीताम्बरधारी श्रीकृष्णके प्रति प्रेम लाभ कर सुखसे विहार करते हैं।।९।।

परहिंसा और दया

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

साधारणतः परहिंसा महापाप है। परहिंसा सब पापोंका मूल है। इसलिए यह पापसे भी गुरुतर है। जो व्यक्ति बड़े भाग्यसे कृष्ण-भक्तिमें प्रवृत्त होते हैं, स्वभावतः उनमें परहिंसाकी प्रवृत्ति नहीं रहती। नारदजी कहते हैं—

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणः।
हरिभक्तौ प्रवृत्तौ ये न ते स्युः परतापिनः।।

हे व्याध! तुममें अहिंसादि गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि भगवद्भक्तजन स्वभावतः ही परपीड़क नहीं होते।

अन्य प्राणियोंका वध करना ही परहिंसाकी पराकाष्ठा है। श्रीचैतन्य भागवतमें लिखा है—

भक्तिहीन कर्मे कोन फल नाहि हय।
सेइ कर्म भक्तिहीन परहिंसा जाय।।

अर्थात् भक्तिहीन कर्मसे किसी प्रकारका सुफल नहीं होता। जिस कर्ममें परहिंसा हो, वह भक्तिहीन है।

जीवहिंसा भक्तिविरुद्ध और परोपकार भक्त्यनुकूल

जिससे परोपकार हो वही कर्म भक्ति सम्मत है और जिस कर्ममें परहिंसा हो, वह भक्तिविरुद्ध है। ऐसे कार्यसे किसी प्रकारका हित नहीं होता।

मांस भोजनके लिए परहिंसा अवश्यम्भावी है। जिस कार्यमें जीवहिंसा है, वह कार्य भक्ति-प्रतिकूल होता है। अतएव मांस भोजनसे दूर रहना चाहिए।

शास्त्रोंमें चित्तकी आर्द्रताको ही भक्तिभावका लक्षण बतलाया गया है। कृष्णभक्तिमें जैसी आर्द्रता होती है, जीवदयामें भी वैसी ही आर्द्रता होती है। जीव-दया कृष्णभक्तिका एक अङ्ग है। दयाहीन व्यक्ति कभी भक्त नहीं हो सकते। यदि कहीं भक्तिहीन दयालुता देखी भी जाय, तो उसे केवल चित्तकी आर्द्रताका सङ्कुचित भाव ही समझना चाहिए। उपर्युक्त सङ्कुचित भाव दूर होने पर भगवद्भक्ति और जीव-दया दोनों एक ही समान जान पड़ती हैं।

इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीचैतन्य-भागवतमें ऐसा ही उपदेश दिया है—

प्रभु बले—विप्र सब दम्भ परिहरि।
भज गिया कृष्ण सर्व भूते दया करि।।

अर्थात् हे ब्राह्मण! सभी प्रकारके अभिमानोंका त्यागकर सभी प्राणियों पर दयादृष्टि रखते हुए कृष्णका भजन करो।

तीन प्रकारकी दया

सब भूतोंके प्रति दया तीन प्रकारकी होती है। यथा—दैहिक, मानसिक एवं आत्मिक।

१. जीवके स्थूल देहगत दयाको दैहिक दया कहते हैं। यह सत्कर्मकी श्रेणीमें माना जाता है। भूखेको भोजन देना, पीड़ितों और रोगियोंको औषध आदि देना, प्यासेको जल पिलाना, वस्त्रहीनको वस्त्र देना आदि सब देह-सम्बन्धी दया है।

२. विद्यादान ही मानसिक दया कहलाती है।

३. आत्म-सम्बन्धी दया ही सबसे उत्तम है। जीवोंको कृष्णभक्ति प्रदान कर सांसारिक क्लेशोंसे उद्धार करना ही आत्मिक दया है।

कृष्णभक्तिका प्रचार या भक्तिदान ही नित्य दया है, इसके अतिरिक्त दूसरी प्रकारकी दया अनित्य है

प्रत्येक वैष्णव ही भूतोंके प्रति दया रखते हैं। यह उनकी महानताका परिचय है। भक्तिके साथ ही दयाका भी उदय होता है। सभी भक्त सब तरहसे दया नहीं कर पाते। भक्तोंमें जो धनवान और बलवान हैं, वे जीवों पर शारीरिक और मानसिक दया कर सकते हैं। किन्तु भक्तोंको कृष्णभक्ति रूपी धनके सिवा दूसरा धन नहीं है, वे जीवोंकी संसार-निवृत्ति एवं कृष्णभक्तिप्राप्तिके साधनमें सहायता करनेके लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। इसलिए वे स्थान-स्थान पर उच्च-सङ्कीर्त्तनका आयोजन करते हैं। इसके अतिरिक्त भक्तिके दूसरे-दूसरे सभी अङ्गोंका भी अनुष्ठान करते हैं। यही दया नित्य है। दूसरे दो प्रकारकी दया अनित्य है।

शुद्ध भक्त ही यथार्थ दयालु हैं, कर्मी और ज्ञानी नहीं

शुद्ध भक्त जीवोंकी अधोगतिको लक्ष्य कर सर्वदा द्रवित होते हैं एवं यथासाध्य उनकी शुभगतिके लिए चेष्टा करते हैं। कर्मकाण्डी व्यक्ति जीवोंका नित्य मङ्गल नहीं कर सकते, केवल देह और मन सम्बन्धी दया ही कर सकते हैं। शुद्ध भक्त भक्तिप्रचार द्वारा जीवोंका नित्य मङ्गल करनेके लिए चेष्टा करते हैं। दया भक्तिसे कोई पृथक्

वस्तु नहीं है। भक्ति और दयाका मूलवृत्ति प्रेम है। वही प्रेम कृष्णके प्रति होनेसे भक्ति है, सज्जनोंके प्रति होने पर मैत्री है, अज्ञ व्यक्तियोंके प्रति प्रयुक्त होने पर दया है और भगवत् विद्वेषी अर्थात् असत् व्यक्तिके प्रति प्रयुक्त होने पर उपेक्षा है।

मानव सर्वश्रेष्ठ क्यों है?

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

पशुओंसे मनुष्यकी तुलना

समस्त प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है। परन्तु श्रेष्ठ क्यों है—इस पर विचार करने पर हम देख पाते हैं कि हरितोषक (भगवान्‌की सेवाकी प्रवृत्ति) होनेके कारण ही मनुष्यको सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। यदि कहा जाय कि मनुष्य विचारशक्तिसम्पन्न होनेके कारण ही श्रेष्ठ है, तो यह बात विचारकी कसौटी पर खरी नहीं उतरती। क्योंकि अनेक समय बहुतसे पशु-पक्षियोंमें भी प्रचुर विचारशक्ति लक्ष्य की जाती है। परन्तु इनमें विचारशक्ति रहने पर भी दूरदर्शनका अभाव होता है। यह दूरदर्शिता हरितोषणमें (भगवत्सेवा प्रवृत्तिमें) बदल जानेपर ही उसकी सार्थकता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि कार्य पशु और मनुष्यमें समान रूपसे हैं। पशुको डंडा दिखलानेसे वह डर जाता है, उसके शरीर पर प्यारसे हाथ फेरने पर वह सन्तुष्ट होता है। परन्तु पशु पूर्वकी बात नहीं जानते अथवा आगे होनेवाली बातका भी अनुमान नहीं लगा सकते। अक्षरात्मक या शब्दात्मक वस्तु (ग्रन्थ आदि) की सहायतासे पूर्वकालकी अभिज्ञताओंसे लाभ उठानेका पशुओंको अधिकार नहीं है।

वेदमें 'भजन' और 'पूजन' शब्दोंका उल्लेख

मानव जातिका सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋक्‌संहिता है। उसमें हम पूज्य, पूजक और पूजाके विषयमें उल्लेख पाते हैं। इस संहितामें भिन्न-भिन्न देवताओंके स्तवोंका संग्रह है। स्तव करनेवाले उस समयके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। हम उस आदिम सभ्यताके ग्रन्थमें 'पूजन' शब्द पाते हैं। अपनेसे श्रेष्ठका पूजन करना चाहिए। आनुगत्य-धर्म ही 'पूजन' है। श्रेष्ठ वस्तु ही पूज्य है। पूजक पूज्यके अधीन या अनुगत होता है और पूजन-क्रिया आनुगत्यसूचक है—ये सभी बातें उक्त संहिताग्रन्थसे जानी जाती हैं।

मायाबाद या बहु-ईश्वरबाद

परवर्त्तीकालके विचारसे बहु-ईश्वरवाद (Polytheism) या पञ्चोपासना (Henotheism) का प्रादुर्भाव हुआ जो क्रमशः अहंग्रहोपासना (Pantheism) का रूप धारण कर लिया। पहले अनेक वृहद्, श्रेष्ठ या पूज्य वस्तुओंको देखकर बहु-देवता पूजाकी सूचना हुई। बह्वीश्वरवादसे क्रमशः नश्वर विचित्रता (जगत्) में वास करते समय 'अव्यक्त प्रकृतिमें लय' या 'मायावाद' अर्थात् अनेकसे अन्तमें किसी एक कल्पित जड़ निर्विशेष अवस्थाको प्राप्त करनेकी चेष्टा जीव हृदयमें उत्पन्न हुई। यही मायावाद है। यह अत्यन्त हेय विचार है।

विष्णुका श्रेष्ठत्व

एक दूसरा भी विचार है। वह यह है कि

अनेक श्रेष्ठ वस्तु या अनेक देवता पूज्य स्वीकृत होने पर भी वे समस्त श्रेष्ठ देवता जिन्हें सर्वश्रेष्ठ पूज्य समझकर पूजते हैं, जिनके समान कोई नहीं है, उनसे बड़ा होनेका तो बात ही क्या है, ऋङ्मन्त्र उन विष्णुका स्तव इस प्रकार करते हैं—

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।' अर्थात् सूरिगण (मुक्तपुरुष अथवा श्रेष्ठ देवगण) ही उन विष्णुके परम नित्य पदका नित्यकाल दर्शन करते हैं या उनकी नित्य सेवा करते हैं।

ऋक् संहितामें कहीं भी ऐसे किसी देवताका उल्लेख नहीं मिलता, जो विष्णुके परमपदसे श्रेष्ठ हो। विभिन्न देवताओंकी पूजा तथा अपेनेसे श्रेष्ठ, धनी, मानी, बलवान, पण्डित और कुलीन पुरुषोंको सम्मान प्रदान करना—यह दोषकी बात नहीं है। परन्तु उनकी स्वतन्त्र उपासना अर्थात् उनको भगवान्से स्वतन्त्र एक-एक ईश्वर जानकर अथवा उनको भगवान्का दास या वैष्णव नहीं मानकर उनकी पूजा ही दूषणीय है। उसके द्वारा *'एकमेवाद्वितीयम्'* मन्त्रके प्रतिपाद्य अद्वय वस्तुकी सेवा नहीं होती, बल्कि वेदान्त-विरोधी बहु-ईश्वरवाद ही स्वीकृत होता है।

विष्णुपूजा और इतर देवपूजामें अन्तर

तत्त्व वस्तु एक और अद्वितीय है। सर्वश्रेष्ठ तत्त्व क्या है—इस विषयमें स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने ब्रह्मसंहिता ग्रन्थसे जीवोंको उपदेश दिया है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।

श्रीव्यासदेवने भी पद्मपुराणमें इसीको दुहराया है—

विष्णु सर्वश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः।

अर्थात् जो लोग समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर—सर्वेश्वरेश्वर विष्णुको और उनके अधीन तत्त्वोंको समान दर्शन करते हैं, उनमें वास्तव ज्ञानका अभाव है, ऐसा समझना चाहिए। वास्तव अद्वय पूज्यवस्तुमें शक्तिमत्ताका अभाव नहीं होता। जो लोग विष्णुके अतिरिक्त दूसरे देवताओंकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वह किसी न किसी रूपमें भगवान्की ही पूजा है, परन्तु उनकी वह पूजा अविधिपूर्वक है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।

विष्णु ही परम हैं। वे सब देवताओंके मूल हैं। दूसरे समस्त देवता उन अद्वयतत्त्व वस्तुके अधीन तत्त्व होनेके कारण उनके प्रति जो सम्मान प्रदर्शित होता है, वह फलतः अद्वय वस्तुको ही प्राप्त होता है; परन्तु पूजकका वह कार्य अवैध है। जिस प्रकार एक वृक्षको ले लीजिए, उसकी डालियाँ और पत्तियाँ वृक्ष ही हैं; फिर भी जड़ मूल-तत्त्व है। पत्तियाँ और डालियाँ अधीन तत्त्व हैं। यदि पानीके अभावमें पेड़ सूख रहा हो, तो डालियों और पत्तियोंमें दिया हुआ जल भी पेड़को ही प्राप्त है, फिर भी वह कार्य अवैध है; जड़में दिया हुआ जल ही वैध है। क्योंकि जड़ उस पानीको यथायोग्य रूपमें डालियों और पत्तों—सबमें वितरण कर देता है। उसी प्रकार सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा ही वैध है। इसके अतिरिक्त दूसरे देवताओंकी स्वतन्त्र रूपमें पूजा अवैध है। वैसी पूजासे पूजकका कदापि मङ्गल नहीं हो सकता।

सभी जिनकी पूजा करते हैं, वे अद्वयतत्त्व ही श्रीभगवान् हैं। किसी गृहपतिके दरवाजे पर खड़े हुए चौकीदारको ही घरका मालिक समझ लेना बुद्धिमानी नहीं है। ऐसा समझना भूल है या अविधि है। वास्तव वस्तुकी पूजा ही यथार्थ पूजा है या विधिपूर्वक पूजा है।

वैष्णवका मानदधर्म और देवपूजा

श्रीगौरसन्दरने हमें मानद-धर्मकी सुन्दर रूपसे शिक्षा दी है। यदि हममें मानद-धर्मका अभाव है तो बाहरी जगत्की वस्तुओंकी कामनाके कारण हृदय मत्सरतासे पूर्ण होनेके कारण हमारी जिह्वा पर श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन उदित नहीं होता। वैष्णव निर्मत्सर होते हैं, अतएव अन्यान्य देवता या जागतिक श्रेष्ठ वस्तुओंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करनेमें कभी भी नहीं पिछड़ते हैं। वे तो सबमें अपने इष्टदेव श्रीकृष्णका निवास है—ऐसा जानकर समस्त देवताओं और जीवोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं। परन्तु यह सत्य है कि वे कृष्णका सम्बन्ध छोड़कर किसीको सम्मान प्रदान करनेके पक्षपाती नहीं हैं। बाह्य जगत्के कर्मी लोग वैसा तात्कालिक सम्मान देने पर भी वह उनके मत्सर हृदयका सामयिक उच्छ्वास और कपटता मात्र है।

विष्णुकी सर्वश्रेष्ठता और परमेश्वरत्व

यदि हम ऋग्वेदके स्तवके प्रति विशेष रूपसे विचार करते हैं, तो देख पाते हैं कि 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदम्'—यह उपदेश ही मूल तथ्य है। यद्यपि दूसरे देवतागण विष्णुके साथ देव-पर्यायमें गिने गए हैं, तथापि विष्णुका तुरीय पद ही परम पद है और वही सूरियों द्वारा नित्य सेवनीय हैं। पुनः वे देवता परतत्त्व अद्वय विष्णुकी ही विभिन्न शक्तियाँ होनेके कारण उनकी देव-पर्यायमें गणना होना कोई अयुक्तिसङ्गत नहीं है। परन्तु यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी स्वतन्त्र तत्त्व नहीं हैं। हम अनेक समय माता-पिताको 'प्रत्यक्ष देवता', अधिकतर शौर्यवीर्यसम्पन्न व्यक्तिको 'देवता' के नामसे पुकारते हैं; परन्तु क्या वे ही परमेश्वर हैं? क्या उनसे बड़ा उनके ऊपर और कोई ईश्वर नहीं है? ऐसा विचार करने पर हम देख पाते हैं कि वे परमेश्वर नहीं हैं। वे विष्णुके अणु अंश-तत्त्व हैं। उनमें भगवान्की कोई विभूति या गुण बिन्दु-बिन्दु परिमाणमें प्रकाशित है। इसलिए वे श्रद्धाके पात्र हैं। परन्तु असमोद्ध्र्व परम-तत्त्व-वस्तु भगवान्की भाँति कोई भी एकच्छत्र श्रेष्ठ या परम स्वतन्त्र नहीं है। इसलिए विभिन्न देवता लोग प्राकृत बुद्धिसम्पन्न साधारण लोगों द्वारा परम-तत्त्वके रूपमें पूजित होने पर भी सूरिगण अर्थात् पूर्णप्रज्ञ व्यक्ति विष्णुके तुरीय पदको ही परम पद मानकर उनकी सेवा करते हैं। इसलिए पूर्णप्रज्ञ श्रीमन्मध्वाचार्यचरणने प्राचीनतम वेदमन्त्ररूप शब्द प्रमाण—वेद मन्त्रों द्वारा विष्णुको ही परमतत्त्व प्रमाणित किया है।

प्राकृत धारणाकी दौड़

अविकुण्ठ और अव्यापक अर्थात् प्राकृत सीमायुक्त पदार्थोंका अपनी प्राकृत इन्द्रियों द्वारा दर्शन करते-करते हमारी ऐसी कुबुद्धि हो गई है कि हम वैसी ही बुद्धिका प्रयोग वैकुण्ठ या सर्वव्यापक वस्तु, प्राकृत मन-बुद्धिकी धारणासे अतीत अधोक्षज विष्णुके ऊपर भी

करना चाहते हैं। परन्तु ऐसा असम्भव है।

मानवकी श्रेष्ठताका कारण और परिचय

मनुष्य क्यों श्रेष्ठ है? मनुष्य श्रौतपथका आचरण कर सकता है अर्थात् वह पूर्व-पूर्व महाजनोंके द्वारा प्रदर्शित आचरणोंका विषय श्रवण कर सकता है और उसके अनुसार जीवनका गठन कर सकता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके पश्चात् जीव सुदुर्लभ, अनित्य किन्तु परमार्थप्रद मनुष्यका जन्म प्राप्त करता है। अतएव भगवत्सेवा ही मनुष्य जन्मका एकमात्र कर्त्तव्य है—उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवत्-ज्ञानको प्राप्त करना ही मनुष्य जीवनका चरमफल है। इस गमनशील जगत्में मनुष्य या तो देवत्वकी ओर अग्रसर होगा और नहीं तो पशुत्वकी ओर पतित होगा ही। भगवान्की बात दूर रख कर जो मैं यह समझूँ कि मैं नित्य-भगवान्का नित्यदास नहीं हूँ, तो वैसे नश्वर 'मैं' का कदापि कल्याण नहीं हो सकता है।

साधुके मुखसे हरिकथा श्रवणके अभावमें ही शरीर और मनका धर्म प्रबल होता है

हमारे ऐसे कौन बन्धु हैं जो हरिकथाके दुर्भिक्षसे हमारी रक्षा कर सके? मनुष्य जाति अहङ्कारके अधीन होकर इतनी दूर तक अविवेकी हो गई है कि वह कुसिद्धान्तपूर्ण बातोंको ही सिद्धान्त मानकर उन्हींका प्रचार करनेकी दाम्भिकता करती है और हिताहित विवेकके विरुद्ध खड़ी होकर आपात्-मधुर एवं इन्द्रिय-सुखकर बातोंको ही अङ्गीकार कर स्वयं अपने पैरों पर कुठाराघात करती है। यदि हम सत्सङ्गके प्रभावसे पशु स्वभाववाले व्यक्तियोंके सङ्गसे दूर रहनेका सुयोग प्राप्त करें, तभी हमारा यथार्थ कल्याण सम्भव है। कुसङ्गमें पड़ने पर मनुष्य कभी प्राकृत बहादुर (!) बनता है, तो कभी प्राकृत पागल। 'हरिभजनमें ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है और क्षण भरका समय नष्ट किए बिना अभीसे हरिभजन आरम्भ करूँगा'—ऐसा दृढ़ उत्साह और निश्चयताके साथ हमें मनुष्य जीवनके चरम कल्याणके साधनमें जुट जाना आवश्यक है। यदि हम देर करते हैं तो बहिर्मुख असत् लोग हमें अहितकर परामर्श देनेका सुयोग पा जाएँगे। वे हमारे पास आकर कभी तो यों कहेंगे—'शरीमाद्यं खलु धर्मसाधनम्', कभी कहेंगे—'स्वदेशकी सेवा करना ही परमधर्म है' और कभी यह कहेंगे—'जिस ग्राममें निवास कर रहे हो, उस ग्राम्यदेवता या समाजको भौतिक साधनोंसे समृद्ध करना ही तुम्हारा धर्म है।' इत्यादि। इस प्रकार देहधर्म और मनोधर्मका उपदेश देकर वे हमारा सर्वनाश करेंगे। उनके मनोहर वचनोंको सुनकर हम भी उस समय कहेंगे—'भाई! जब ईश्वरने हमको कुक्कुरदन्त (Canine teeth) प्रदान किए हैं, जब इतने पशु-पक्षी, मद्य-मांस और मछली आदि जीव-जन्तुओंकी सृष्टि की है एवं इन सबको हमारे खाद्य और शरीर पुष्टिके लिए उपयोगी बनाकर भेजा है, तब हमलोग इन सबका भक्षणकर अपने शरीरको पुष्ट बनाएँगे और यही ईश्वर द्वारा निर्द्धारित हमारा परम कर्त्तव्य है—ऐसा संसारमें प्रचार करेंगे। उस समय हमारा विचार ऐसा होगा कि 'हम युवक हैं, इसलिए युवकका धर्म हम अवश्य पालन करेंगे। ईश्वरने हमें इन्द्रियाँ प्रदान की हैं, उन

सबके विषय भी बनाए हैं, इसलिए हम इन्द्रियोंके द्वारा भोगे जानेवाले प्रत्येक विषयोंका संग्रह करेंगे। ईश्वर तो निराकार हैं, निर्विशेष हैं, निरञ्जन हैं, निर्विलास हैं, उनको हाथ, पैर, आँख, नाक या रसना कुछ भी नहीं है। समस्त प्रकारकी इन्द्रियाँ हमको ही हैं—इधर भोगकी सामग्रियाँ भी हैं। अतएव वे सभी हमारे भोगके लिए ही बनी हैं। भगवान् तो कदापि इन सबको भोग नहीं सकता है।' इस प्रकार अनेक अपराधमय विचारोंका जगत्में प्रचार करेंगे। ऐसी दशामें हम अपने नित्यमङ्गलके विरोधी असत् लोगोंको ही अपना मित्र समझेंगे; क्योंकि वे हमारी इन्द्रियोंको रुचिकर लगनेवाली बातें बतलाएँगे तथा उसी बुरे मार्गको दिखलाएँगे। परन्तु हमारे वैसे मित्र कितने दिनों तक यथार्थ बन्धुका काम करेंगे? उनकी शक्ति या सामर्थ्य ही कितनी है? क्या हम इन तथाकथित मित्रोंके स्वरूपका विवेचन करनेका थोड़ा भी समय नहीं पाते?

हरिसेवा छोड़नेसे दुर्गति

जिन इन्द्रियों द्वारा हम इस बाह्य जगत्का दर्शन कर रहे हैं, वे इन्द्रियाँ ही क्या 'मैं' हूँ? श्रीभगवान् रहें या न रहें, इससे हमारा कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है, परन्तु हम नित्यधर्मकी आलाचना छोड़कर वर्त्तमान समयमें देश या समाज-शासन (Civic administration) को ही लेकर व्यस्त हैं। हम अनेक धर्मोंका नाम लेकर अधर्मको ही धर्म समझ बैठे हैं। अत्यन्त नास्तिक व्यक्तिको ही धार्मिक और ईश्वर विश्वासी समझते हैं। अत्यन्त विष्णुविरोधी और वैष्णवापराधी व्यक्तिको ही परम वैष्णव मानते हैं। विषय-भोग-संग्रहकी बातोंको ही धर्मोपदेश मानते हैं। पुण्य और पापसंग्रहकी नाना प्रकारकी चेष्टा करते हैं। कभी पुण्य और पाप त्याग करनेकी चेष्टाकी आड़में नास्तिक हो पड़ते हैं। परन्तु मुण्डक उपनिषद् (३/३) में ऐसा कहा गया है—

यदा पश्यं पश्यते रुक्मवर्णं
कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।

—जब ब्रह्मयोनिका अर्थात् ब्रह्म जिनकी अङ्गकान्ति है, उन हेमकान्ति परमेश्वर पुरुषोत्तमका दर्शन करने पर ही जीव विद्वान् होता है और पुण्य-पापकी प्रवृत्तिका त्याग करता है, उस समय वह अञ्जन अर्थात् मनोधर्मकी मलिनतासे सर्वथा मुक्त होकर हरिसेवामें नियुक्त होनेके कारण परमसाम्य या शान्तिको प्राप्त होता हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

कृष्णभक्त निष्काम, अतएव शान्त।
मुक्ति-भुक्ति-सिद्धिकामी सकलई अशान्त।।

अर्थात् कृष्णभक्त निष्काम होनेके कारण शान्त होते हैं। इसके विपरीत भुक्ति (भोग), मुक्ति और सिद्धिकी कामना करनेवाले व्यक्ति सर्वदा अशान्त रहते हैं। अतएव कृष्णसेवा (भक्ति) के बिना शान्ति प्राप्त करना असम्भव है।

सबको निरन्तर हरिभजनके लिए उपदेश

क्या मनुष्य इतना ही मूर्ख है कि कृष्णभजनको छोड़कर उसका और कोई दूसरा कर्त्तव्य हो सकता है—ऐसा सोचकर वह परमार्थप्रद सुदुर्लभ मनुष्य-जन्मको बेपरवाह नष्ट कर सकता है। कृष्ण-भजनके अतिरिक्त

जीवोंका कोई दूसरा कर्त्तव्य नहीं है या हो भी नहीं सकता है। इस विषयमें आपलोग क्या एकबार भी विवेचन नहीं करते, एक बार भी विचार करके देखते नहीं, एक बार भी मनुष्य नामकी सार्थकता दिखला नहीं सकते? निरन्तर हरिभजन कीजिए, समस्त जीवोंको हरिभजनमें नियुक्त कीजिए, समस्त जीवोंकी चेतन-वृत्तिके पास पहुँच कर उन्हें हरिभजन करनेके लिए उत्साहित कीजिए। समस्त जीवोंकी, समस्त अजीवोंकी पूर्ण सार्थकता इसी बातमें है कि वे कृष्णपादपद्ममें प्रतिष्ठित हों। दूसरी समस्त इतर चेष्टाओंको छोड़कर कृष्णके चरणकमलोंमें चेतनकी वृत्तियोंको नियुक्त करना ही हमारा एक मात्र कर्त्तव्य है। अनेक वस्तुएँ हमारे लिए कदापि पूज्य नहीं हो सकती। विष्णुका पद ही 'परम' पद है, वे ही हमारे एकमात्र सेवनीय हैं, आराध्य हैं या भजनीय हैं।

(श्रील प्रभुपादके बङ्गला भाषणसे अनुदित)

अपनी बुद्धिमत्ता पर अहङ्कार मत करो

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[१० जून २०००, मार्कण्डेय प्रभुके घर, बर्कले, केलिफर्निया, अमेरिका]

श्रील नारायण महाराज—इन प्रभुका नाम क्या है?

एक भक्त—श्रीपरीक्षित् दास। (साङ्केतिक नाम व्यवहृत हुआ है।) ये श्रील स्वामी महाराजके शिष्य हैं।

श्रील महाराज—ये बहुत बुद्धिमान हैं तथा तत्त्व दर्शनके विषयमें जानना चाहते हैं। मेरे विचारसे ये बहुत सरल हैं। (परीक्षित् प्रभुको इङ्गित करके) तुम्हें और अधिक योग्य होना चाहिए, विशेष रूपसे हमारी धाराके प्रामाणिक सिद्धान्तोंमें। जैव धर्म पढ़ो तथा समस्त सिद्धान्तोंमें पारङ्गत बनो। मैं प्रारम्भिक कालसे ही जैव धर्म पढ़ता आ रहा हूँ और जो कुछ आज मुझमें देख रहे हो, वह जैव धर्मकी कृपा है।

परीक्षित् दास—महाराज! मैं आपके सङ्गमें सब कुछ अधिक स्पष्ट रूपसे समझ पा रहा हूँ। सत्यके प्रकाशके द्वारा अन्धकारमें भी देखा जा सकता है। इन्टरनेट पर आपके तथा सत्यके विषयमें दी गई जानकारी अज्ञानतापूर्ण है। सत्य भाषण करनेके कारण आप अत्यन्त विवादास्पद हो गए हैं। धर्मसंस्थाओंकी ग्राम्यकथाके कारण बहुत-सी गलत धारणाएँ हैं और यह सब उचित मार्ग-दर्शनके अभावमें बाह्यिक जानकारीके कारण है।

श्रील महाराज—क्या तुम जानते हो वेदोंको 'श्रुति' क्यों कहा गया?

परीक्षित् दास—श्रवण किए जानेके कारण।

श्रील महाराज—पढ़नेके कारण क्यों नहीं? इसका एक गूढ़ार्थ है। शास्त्रोंके विशेष सिद्धान्तोंको पढ़कर नहीं समझा जा सकता। क्या तुम्हें यह श्लोक याद है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

(मुण्डक ३/२/३, कठ १/२/२३)

परीक्षित् दास—हाँ, किन्तु मैंने यह सुना नहीं, पढ़ा है।

श्रील महाराज—इस श्लोकका क्या अर्थ है?

श्रीपाद अरण्य महाराज—आत्माका एक बहुत सुन्दर स्वरूप है।

श्रील महाराज—केवल आत्माका ही नहीं।

अरण्य महाराज—तथा भगवान् परमात्मा हैं। उनका एक सुन्दर स्वरूप है। एक आत्मा परमात्माका साक्षात् दर्शन एक प्रेममय सम्बन्धमें किस प्रकार करता है? 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो'—यह विशद् व्याख्यानोंके द्वारा नहीं जाना जा सकता।

श्रील महाराज—यह श्लोक परमब्रह्म भगवान् कृष्णके लिए कहा गया है। 'अयम्' का क्या तात्पर्य है?

श्रीपाद माधव महाराज—'अयम्' अर्थात् एकवचन।

श्रील महाराज—यह शब्द आत्माके लिए व्यवहृत नहीं हुआ है। यदि परमात्मा श्रीकृष्णको अनुभव कर लिया जाए तो अन्य समस्त आत्माओंका अनुभव स्वयमेव हो जाएगा। इसलिए, अयम् आत्मा। उनको 'प्रवचनेन'—विशद् व्याख्यानोंसे अनुभव नहीं किया जा सकता।

अरण्य महाराज—'न मेधया'—उन्हें अपनी बौद्धिकता अथवा कल्पनाके द्वारा नहीं जाना जा सकता। 'न बहुना श्रुतेन'—समस्त वेद तथा श्रुतियोंके अध्ययनसे भी जान पाना सम्भव नहीं। जिस पर वे अपनी कृपा करते हैं, उसीके सम्मुख स्वयंको प्रकाशित करते हैं। वे अपनी इच्छा द्वारा ही किसीके सामने प्रकट होते हैं, अन्यथा उन्हें नहीं समझा जा सकता।

श्रील महाराज—इसकी व्याख्या क्या है?

अरण्य महाराज—व्याख्या है कि भगवान्के प्रतिनिधि सद्गुरुके चरणोंकी सेवा करनेसे ही परम सत्यको जाना जा सकता है।

श्रील महाराज—सेवा इतनी सहज नहीं है कि सभी भगवान्की सेवा कर सकेंगे। तुम किस प्रकार सेवा करोगे?

अरण्य महाराज—गुरुसेवा द्वारा।

श्रील महाराज—तुम विचार करो कि बौद्धिकता कुछ नहीं कर सकती। तुम श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत या अन्य कोई चिन्मय शास्त्र बुद्धिके द्वारा अथवा अध्ययन द्वारा नहीं समझ सकते। तुम शण्ड तथा अमर्क (प्रह्लाद महाराजके दो प्राकृत अध्यापक) से श्रवण करके भी नहीं समझ सकते। फिर कैसे समझोगे?

अरण्य महाराज—

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्ग प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः।।

(बृहन्नारदीय पुराण ४/३३, हरिभक्तिविलास १०/२७८)

[भक्ति भगवान्के भक्तोंके सङ्गसे प्रकट होती है तथा भक्तोंका सङ्ग पूर्वसञ्चित सुकृतिके द्वारा प्राप्त होता है।]

श्रील महाराज—हमें प्रार्थना करनी चाहिए, "मुझे अनुभूति या वास्तविक विज्ञता नहीं है। मैंने स्वयंको आपके चरणकमलोंमें समर्पित कर दिया है, कृपया प्रचोदयात्।" सभी मन्त्रोंमें

'प्रचोदयात्' शब्द आता है अर्थात् कृपा करके आप अपने स्वरूपमें मेरे हृदयमें प्रकट हों। यदि कोई इस प्रकार अपने आपको (बिना शर्त) समर्पित करता है तो वह योग्य पात्र बन जाता है। कृष्ण उसके सम्मुख आविर्भूत होंगे। भगवान् श्रीनारायणने स्वयं इन तथ्योंको ब्रह्माके सम्मुख प्रकाश किया, "मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? प्रेमभक्ति क्या है?" किन्तु ब्रह्मा समझ नहीं सके। भगवान्ने कहा, "तुम मेरे प्रति समर्पित हो, इसलिए मैं तुम्हारे हृदयमें आविर्भूत होऊँगा।"

आधुनिक समयमें लोग अपनी बुद्धिका प्रयोग करना चाहते हैं। वे शरणापन्न नहीं होना चाहते। उन्हें विश्वास नहीं है, न ही गुरुदेवके वचनोंमें श्रद्धा है। उन्हें शास्त्रोंके दिव्य वचनोंमें अथवा हरिनाममें भी श्रद्धा नहीं है। वे सोचते हैं, "मैं कहीं कुछ काम करके धन उपार्जन करूँ।" वे हरिनाम जप पर निर्भर नहीं करते और न ही गुरुदेवका आश्रय लेते हैं।

उसके विपरीत व्यासदेवने सब कुछ परित्याग कर दिया। 'भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले'—उन्होंने जड़ीय कामनाओंसे रहित विशुद्ध भक्तियोगके द्वारा अपने चित्तको समाहित कर दिया। 'अपश्यत् पुरुषं पूर्णम्'—पूर्ण समर्पणके कारण उन्होंने श्रीकृष्णको राधिका, समस्त गोपीगण, नन्द, यशोदा तथा सब लीलाओं सहित देखा। जिस प्रकार चलचित्र देखा जाता है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने कृष्णजन्मसे द्वारकालीला तक सारी लीलाएँ देखीं। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीमद्भागवतम्की रचना की। ***'यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परम पुरुषे'***—परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतके श्रवण मात्रसे परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति उदित होकर शोक, मोह तथा भयको नष्ट कर देती है।

हमें भगवान्के नाम तथा उनकी कथा श्रवणमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए। हमें शरणागत होना चाहिए अर्थात् अपने हृदयका समर्पण कर देना चाहिए। शरणागतिसे भी अधिक—आत्मनिवेदन करना चाहिए। शरणागति भक्तिका केवल द्वार है। उसके पश्चात् श्रवण, कीर्त्तन, विष्णु स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन। अर्जुन भी आत्मनिवेदन कर रहे हैं, किन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। बलि महाराजका आत्मनिवेदन भी पूर्ण नहीं है। शरणागति हनुमानमें भी है, किन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। इसी प्रकारका अपूर्ण आत्मनिवेदन पाण्डव, उद्धव, द्वारकावासियोंमें तथा रुक्मिणी, सत्यभामामें है। यशोदामें यह अति उच्च कोटिका है, किन्तु पूर्ण नहीं है। वे कृष्णसेवामें गोपियोंकी भाँति अपना शरीर समर्पित नहीं कर सकतीं। यदि पूर्ण आत्मनिवेदन है तो गोपियोंमें।

परीक्षित् दास—मुझे और भी श्रवण करनकी इच्छा है।

व्रजनाथ दास—तो उच्चकोटिके वैष्णवोंके मुखसे हरिकथा श्रवण ही सबसे बड़ा समर्पण है।

श्रील महाराज—किन्तु कुछ विरले ही यह कर सकते हैं। साधारणतया जिनकी सुकृति नहीं है, वे नकली गुरुके पास जाएँगे।

वदन्ति तत्तत्त्वविदः

(जन्माष्टमीके उपलक्ष्यमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें आयोजित विद्वत् सभामें प्रस्तुत प्रवन्ध)

—डॉ॰ वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, शुद्धाद्वैतरत्न, निम्बार्कभूषण, (डी. लिट्)

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

(श्रीमद्भा॰ १/२/११)

इस श्लोककी पूर्व पीठिका पर भी विचार आवश्यक है। श्रीमद्भागवतजीका प्रथम स्कन्ध है, मङ्गलाचरणके पश्चात् ऋषियोंने श्रीसूतजीसे प्रश्न किया है। श्रीबलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने मानव सामर्थ्यसे बढ़कर गूढ़ मानव वेषसे जो चरित्र किए, उन्हें आप श्रवण करावें।

हमें यह भी समझावें कि प्रभुके अन्तर्हित होनेके पश्चात् धर्म किसकी शरणमें गए। *'धर्मः कं शरणं गतः।'* (१/१/२३) श्रीसूतजीने श्रीशुकदेवजीको प्रणाम किया 'यं प्रव्रजन्तम्' से और कहा—ऋषियोंने अच्छा प्रश्न किया है, यह लोकमङ्गलका प्रश्न है। मनुष्योंका परम धर्म है—भगवान्में भक्ति करना। स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। (१/२/६)

अच्छी प्रकार धर्मका सेवन करनेसे भगवान्में रति होनी चाहिए, अन्यथा श्रममात्र है।

इस प्रकरणमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका विश्लेषण पठनीय है। कामका अर्थ इन्द्रिय-प्रीति, सभी जानते हैं; परन्तु सूतजीने निषेध कर दिया—*'कामस्य नेन्द्रियप्रीतिः'* (१/२/१०)

जीवको तत्त्वजिज्ञासा करना उचित है—

इस पद्यके पश्चात् 'वदन्ति तत् तत्त्वविदः' श्लोक है, जिसका संक्षिप्त आशय है—उस तत्त्वके तीन नाम तत्त्वज्ञोंने बतलाए हैं—ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्। यहाँ आचार्योंके अभिप्राय भी पठनीय हैं।

जीवकी तत्त्वजिज्ञासाका फल कर्मसे प्राप्त स्वर्गादि नहीं है। ऐसा श्रीचक्रवर्त्तीजीने लिखा है—*'इह प्रसिद्धः स्वर्गादिः स नैव'।* श्रीवल्लभाचार्यजीने मत व्यक्त किया—*'धर्मस्तु न केवलं कर्मसाध्यः किन्तु श्रुतिबोधितकर्मसाध्यः।'* अपवर्गका अर्थ चक्रवर्त्तीजीने तो प्रेमभक्ति लिखा है।

भागवतजीके प्राचीन मान्य टीकाकार ***श्रीधरस्वामी***का मत है कि इस श्लोकमें तत्त्वजिज्ञासाका अर्थ है—धर्मजिज्ञासा—धर्म ही तत्त्व है।

अद्वयम्से क्षणिक विज्ञानपक्षका व्यावर्तन किया है। तत्त्वके तीन नाम हैं—

उपनिषद्वेत्ता कहते हैं—ब्रह्म। हैरण्यगर्भ मत है—परमात्मा। सात्त्वत मत है—भगवान्।

अन्वय अग्रिम श्लोकके तत्में है—'तच्च'—

वह तत्त्व सपरिकर भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है। ज्ञान 'परोक्ष तत्त्व' आत्मा—क्षेत्रज्ञमें देखते हैं। *'किं तत् आत्मानं परमात्मानम्'।* इससे भक्तिकी दृढ़ता कही गई है।

दीपनीकारका कथन है—तत्का अन्वय अगले श्लोकके 'चात्मानं'के चकारसे है।

वेदान्त वाक्योंमें विश्वासका नाम श्रद्धा कहलाता है। नित्य-अनित्य वस्तुका विवेक

ज्ञान कहलाता है। इस लोक, पर लोकके फलभोगके प्रति विराग वैराग्य कहलाता है। इससे युक्त परमेश्वरानुराग लक्षणा भक्तिसे जीव-ब्रह्म ऐक्यरूप तत्त्वको साक्षात् जानते हैं।

*श्रीवीरराघवाचार्यजी*ने लिखा है कि जो ज्ञानगुणक और/अर्थात् ज्ञानस्वरूप है, वह 'अद्वयम्', अपनेसे तुल्य या अधिक वस्त्वन्तररहित ब्रह्म-परमात्मा-भगवत् शब्द द्वारा अभिहित है। तत्त्ववेत्ता उसे 'तत्त्व' कहते हैं। ब्रह्म-परमात्मा-भगवत् शब्द सामान्य-विशेष शब्द हैं। सबका आश्रय भगवान् है। जैसे आकाश शब्द है, वह कारण रूपमें भगवान्में है, अतः भगवत्परक हुआ।

*श्रीमध्वाचार्य श्रीविजयध्वज*का मत है कि अद्वयम्का अर्थ असम-अधिकज्ञान-ज्ञानस्वरूप देशकालादिमें उपबृंहित बढ़ा सर्वान्तर्यामी हुआ—ब्रह्म हो गया और वही परमात्मा भगवान् अभिहित हुआ।

उभाभ्यां भाष्यते साक्षात् भगवान् केवलः स्मृतः। बढ़नेसे ब्रह्म, आदानादि करनेसे आत्मा कहा है, वह केवल भगवान् ही। 'तस्मादत्र सगुणं प्रमाणवेद्यम् न निर्गुणम्'।

श्रीजीव गोस्वामीजीका अभिप्राय—'तत्त्वं—परमसुखरूपत्वं तस्य ज्ञानस्य बोध्यते।' इसलिए उसे नित्य कहा गया है। अद्वय उसकी शक्ति है। ब्रह्म परमात्मा भगवान् तो यहाँ कहा है, किन्तु जीव नहीं कहा। तीन नाम ही तत्त्वके कहे गए हैं।

ब्रह्म और भगवान्के व्याख्यानमें परमात्मा स्वयं आ जाता है।

स्फुरत् अविविक्त शक्ति-शक्तिमान् भेदसे प्रतिपाद्यमानको ब्रह्म कहा गया है।

यही तत्त्व स्वरूप भूत शक्तिसे अन्य शक्तियोंका मूलाश्रय शक्ति-शक्तिमान् भेदसे भगवान् कहा जाता है।

सार—

१. शक्तिवर्गलक्षणतद्धर्मातिरिक्त केवल ज्ञान ब्रह्म।

२. अन्तर्यामित्वमयमायाशक्तिप्रचुरचित्-शक्त्यंशविशिष्टको परमात्मा

३. परिपूर्ण सर्वशक्तिविशिष्टका नाम भगवान् है।

श्रीजड़भरतने कहा है—

ज्ञानं विशुद्धं परमात्ममेकं,
अनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं,
यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति।।

वरुण ***''तस्मै नमो भगवते-ब्रह्मणे परमात्मने''***—परमात्माका अर्थ सर्वजीव नियन्ता है।

मनुजीने ध्रुवजीसे कहा था—"आनन्द मात्र उपपन्न समस्त शक्तौ"। यहाँ आनन्द मात्र विशेष्य है, समस्त शक्तियाँ विशेषण हैं, इनसे विशिष्ट भगवान् ही है।

विष्णु पुराणमें भगवान्का अर्थ है— ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-वीर्य-तेज।

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः।।

तच्च—त्रिधा आविर्भावयुक्त तत्त्व भक्ति द्वारा ही साक्षात् किया जाता है। भक्तिसे अर्थात् प्रभुकी कथा आदि रुचिसे परावस्थारूप प्रेम लक्षणामें पूर्वोक्त तत्त्व आत्मामें—शुद्ध चित्तमें देखते हैं।

आत्माका अर्थ है—स्वरूप-जीव-माया शक्तिका आश्रय ज्ञान-वैराग्य युक्त आत्मज सहित भक्तिसे सेवित प्रभु हैं।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीजीने लिखा है कि सेव्य-सेवक-सेवादि विभाग होने पर भी वह अद्वय है। अर्थात् शक्ति-चिदादि उनके विलास वैकुण्ठादि भिन्नाभिन्न भावनासे सङ्गत हैं। भगवान्के सामान्य स्वरूप मात्रकी उपादेयतामें ब्रह्म हैं—अन्तर्यामी आदिके उपादानसे योगी अधिकारीके लिए परमात्मा हैं।

अचिन्त्य अनन्त चिदानन्दमय स्वरूप रूप-गुण-लीला आदि अनेक धर्मवत्ता ग्रहण योग्यतासे भक्त्याधिकारीके लिए भगवान् एक ही भाषित होता है।

ब्रह्म—परमात्मोपासकोंको प्रेम प्राप्ति दुर्लभ है। अतः भगवान्में ही ब्रह्मत्व है। परमात्मत्व है। ब्रह्मोपासक ज्ञानियोंसे श्रेष्ठ है—परमात्मोपासक योगी। उनसे भी श्रेष्ठ है—भगवदुपासक।

गीताजीमें लिखा है—

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
श्रद्धावान् भजते माम् स मे युक्त तमोमतः।।

योगिनामपि—यहाँ पञ्चमी अर्थमें षष्ठी है। ऐसा श्रीरामानुजाचार्यजीका कथन है।

ब्रह्ममतमें—आत्मामें, तत् पदार्थसे ईश्वरमें त्वं पदार्थसे जीवमें अनुभव करते हैं (पश्यन्ति)। परमात्मा अर्थमें आत्मा अन्तर्हृदयमें अन्तर्यामीको देखते हैं (ध्यानसे)। भगवान् अर्थमें मनमें चकारसे बाहर भगवान्को अपनी आँखोंसे उनके माधुर्यका आस्वादन करते हैं।

भक्ति—गुरुमुखसे सुनकर ग्रहण कर भगवद्विषयक श्रवण कीर्त्तनमें भक्ति शब्द रूढ़ है। ऐसे ब्रह्मोपासकों द्वारा परमात्मोपासकों द्वारा अपने साध्यकी सिद्धिके लिए भक्ति करनी चाहिए।

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह।।
तेन ब्रह्मपरमात्मनोः साधने ज्ञान योगौ भक्त्यैव सिद्धौ स्याताम्।

ज्ञान और योग दोनों भक्तिसे ही सिद्ध हैं।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजका तात्पर्य—

आपका कथन है—तत्त्वका अर्थ है—सांख्य शास्त्रके २५ तत्त्व। इनमें एककी जिज्ञासा भी कठिन है। आपने यह भी सुबोधिनीजीमें लिखा है कि सभी अपने-अपने शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, तत्त्ववेत्ता हैं। तथापि प्रमाण बल विचारसे वेद सबसे उपजीवक हैं। अतः तत्त्ववेत्ताका अर्थ वेदका ज्ञाता हुआ। सभी वेदार्थी हैं।

श्रुतिमें ब्रह्म, स्मृतिमें परमात्मा, पुराणमें भगवान्। शब्दमात्रका भेद है, अर्थ भेद नहीं है।

क्रम यह है—जीवको तत्त्व जिज्ञासा करना है। यही फल है।

१. विचारसहित प्रमाणसे निःसन्देह शब्द ज्ञान होता है। किन्तु अन्तःकरण दोषसे उसका साक्षात्कार नहीं होता।

२. अन्तःकरण शुद्ध होवे, वेदादि प्रमाणमें श्रद्धा हो, अर्थका मनन—निदिध्यासनसे साक्षात्कार जैसा ज्ञान हो तो विषयोंसे वैराग्य होगा—फिर श्रवणादि साधन भक्ति होगी—फिर परम भक्ति होगी—फिर सर्वत्र भगवत् साक्षात्कार होगा। हृदयमें भी और बाहर भी।

ज्ञान-वैराग्ययोः सदभाव निरूपणात् भक्तिर्मुख्या
(सुबोधिनी)

श्रीनिम्बार्काचार्य मतपोषक ***श्रीशुकदेवाचार्यजी*** का मत है कि जीवनका फल धर्म, उसका फल अर्थ, उसका फल काम, उसका फल इन्द्रियप्रीति, पुनः जीवन, पुनः फल धर्म—चक्रवत् परिवर्त्तन कुछ मानते हैं। उसका निराकरण करके तत्त्व जिज्ञासा शब्दका लक्षणा द्वारा तत्त्व विचारमें प्रवृत्ति करनी चाहिए।

आपने आत्माके सम्बन्धमें मत प्रस्तुति किए हैं—

१. आत्मा जड़ है—क्षणिक है—कर्मांश है।

२. परमात्मा नहीं है—आत्मा स्वतन्त्र है। ये सब मत हेय हैं।

तत्त्व है, जिसे शब्द (वेद) बतलावें।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (श्रुति प्रमाण)

वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः। (स्मृति प्रमाण)

शास्त्रयोनित्वात् (१/१/३ ब्रह्म सूत्र प्रमाण)

वह आत्मतत्त्व जड़ नहीं है।

ब्रह्म—क्षणिक विज्ञानप्रवाहविपरीत एक है, अनादि सिद्ध ज्ञानरूप है। बृहद् वस्तुभूत है।

परमात्मा—सब जीवोंसे उत्कृष्ट है।

भगवान्—षड् गुण सम्पन्न है, निधर्मिक नहीं है।

सारांश—वेदके द्वारा समझने योग्य—ज्ञान—वैराग्ययुक्त भक्तिसे साक्षात्कार किया जा सकता है।

ज्ञान काण्डमें जो ब्रह्म, योगमार्गमें उसे परमात्मा, भक्ति मार्गमें भगवान् कहा गया है।

अतः एकाग्र मनसे भक्तिप्रधान धर्मका अनुष्ठान करना चाहिए। (श्रीधरस्वामी)

श्रीमद् वल्लभाचार्यजीने एक और रहस्य प्रस्तुत किया है कि ***'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'*** के अनुसार धर्मके फल अनेक हैं, किन्तु भगवान् सत्त्वसे प्रसन्न होते हैं। तभी वह फल है, अन्यथा वह धर्म भी व्यर्थ है।

सत्त्वका अर्थ है—भगवान्, वह जिसमें रहे, वह सात्त्वत कहलाता है।

'सत्त्वो भगवान् स वर्त्तते येषां ते सात्त्वन्तः'

(१/२/१४ सुबोधिनी)

सात्त्वतोंके पति भगवान् ही श्रोतव्य, कीर्त्तितव्य और पूज्य हैं।

श्रीजीव गोस्वामीजीने सन्दर्भसारमें और भी स्पष्ट किया है कि अष्टादश संहितामें श्रीकृष्णका ही चरित्र है—

जैसे—१–१०/११ में तो श्रीकृष्णलीलाका ही विस्तार है।

द्वितीय में श्रीब्रह्मा–नारद संवादमें, तृतीयमें विदुर–उद्धव संवादमें, चतुर्थमें वह नर–नारायण अर्जुन कृष्ण रूपमें प्रकट हुए, कहा गया है। पञ्चममें भक्तिकी महिमा कथनमें, षष्ठमें 'केशव रक्षा करें' से, सप्तममें नृसिंह लीला कृष्णकी ही है, अष्टममें अजित भगवान् द्वारा कालनेमिका वध होकर भी पुनः कृष्ण द्वारा कंसकी मुक्ति हुई, नवम स्कन्धमें 'यस्याननं', द्वादशमें 'श्रीकृष्ण कृष्णसख' पद्य द्वारा तांत्रिक पूजासे श्रीकृष्णकी महिमा कही गई है।

श्रीजीव गोस्वामीने माना है कि श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दरूप हैं। उनके समान और कोई नहीं है। वे सिद्ध तत्त्व हैं। जीव तटस्था शक्ति होनेसे स्वरूपगत समान नहीं। प्रकृति जड़ है, बहिरङ्गा शक्ति होनेसे उनके समान नहीं। श्रीकृष्ण एकमात्र स्वशक्तिकी सहायतासे परमाश्रय हैं। उन श्रीकृष्णके बिना उनकी शक्तियाँ भी असिद्ध हैं। कृष्ण तत्त्वके ही

तीन भेद हैं—ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्। अपवर्ग रूप भक्ति ही धर्मका फल है—धन नहीं, धनसे भगवत्-सेवा करना ही फल है। धनका फल विषयभोग नहीं है। कामका लाभ जीवन पर्यन्त है, अतः भगवद्धर्माचरण फल है। जीवनका फल स्वर्गप्राप्ति भी नहीं। तत्त्वजिज्ञासा है अर्थात् कृष्णप्रेम प्राप्ति किस प्रकार हो, यह फल है।

श्रीगौराङ्ग सुधा

(वर्ष ४५ संख्या ७ पृष्ठ १६३ से आगे)

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

श्रीवासके घरमें व्यासपूजा

नित्यानन्दप्रभुको पाकर प्रभु एवं अन्यान्य वैष्णवोंके आनन्दकी सीमा न रही। अब सभी लोग मिलकर कृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर कीर्त्तन करने लगे। नित्यानन्द प्रभु प्रायः सब समय आविष्ट ही रहते थे, परन्तु कीर्त्तनके समय महाप्रभुका दर्शन कर तो उनकी विचित्र ही दशा हो जाती थी। वे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती, जिससे आस-पासकी सारी जमीन ही भीग जाती थी। एक दिन प्रभुने नित्यानन्द प्रभुसे कहा—"हे श्रीपाद नित्यानन्द! कल आषाढ़ पूर्णिमा है। अतः कल व्यासपूजा है। अब आप विचार कर बोलिए कि आप व्यासपूजा कहाँ करेंगे?" नित्यानन्द प्रभु श्रीगौरसुन्दरका इङ्गित समझ गए। इसलिए वे श्रीवास पण्डितका हाथ पकड़ कर प्रभुके समक्ष ले आए तथा बोले—"प्रभो! कल व्यासपूजा इस ब्राह्मणके घरमें होगी।"

इसपर प्रभु बोले—"श्रीवास, श्रीपाद नित्यानन्दने आपके ऊपर बहुत भार दे दिया।"

श्रीवास—"प्रभो! यह कोई भार नहीं है। आपकी कृपासे व्यासपूजाकी समस्त सामग्री—वस्त्र, मूंगदाल, उपवीत, घी, नारियल, पान इत्यादि मेरे घरमें ही विद्यमान है। केवल व्यासपूजाकी पद्धति-पुस्तक मेरे पास नहीं है। उसे भी मैं कहींसे माँगकर ले आऊँगा। यह तो मेरे लिए सौभाग्यकी बात है कि कल मैं व्यासपूजाका दर्शन करूँगा।" यह सुनकर प्रभु श्रीवासके प्रति बहुत सन्तुष्ट होकर बोले—"श्रीपाद! चलिए हम सभी इस पण्डितके घर चलते हैं।" यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु सहित सभी लोग आनन्दसे प्रभु श्रीगौरसुन्दरके साथ चल पड़े। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे बलराम एवं कृष्ण गायें चराने वनमें जा रहे हैं तथा सखा लोग उन्हें घेरे हुए आनन्दसे नाचते-कूदते और गाते हुए जा रहे हैं। जब सभी लोग श्रीवासजीके घरमें प्रविष्ट हो गए तो प्रभुने घरका दरवाजा बन्द करनेका आदेश दिया। जब दरवाजा बन्द हो गया तो आनन्दसे व्यासपूजाके अधिवासका कीर्त्तन आरम्भ हो गया। (किसी शुभकार्यसे एक दिन पहले कुछ कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, उसे अधिवास कहते हैं।) सभी भक्त लोग आनन्दसे कीर्त्तन करने लगे तथा उन सभीके मध्यमें दोनों ही प्रभु उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। कभी-कभी दोनों ही आनन्दसे एक दूसरेको

आलिङ्गन कर क्रन्दन करने लगते। कभी दोनों ही एक दूसरेके चरणोंको स्पर्श करनेका प्रयास करते, परन्तु दोनों ही परम चतुर होनेके कारण दोनों ही असफल हो जाते। उसी समय श्रीगौरसुन्दरकी नित्यानन्द प्रभुके स्वरूपको प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई। अतः वे बलरामजीके भावमें आविष्ट होकर खाटके ऊपर चढ़ गए तथा 'मद लाओ' 'मद लाओ' कहने लगे। उसी समय प्रभु श्रीगौरसुन्दर नित्यानन्दसे बोले—"नित्यानन्द! तुम जल्दीसे मुझे अपना हल एवं मूषल दो।" प्रभुका आदेश पाकर नित्यानन्द प्रभुने आनन्दसे अपना हल एवं मूषल प्रभुके हाथोंमें थमा दिए। परन्तु सबको हलमूषल दिखाई नहीं दिया। किसी-किसीको ही दिखाई दिया। इस प्रकार नित्यानन्दजीसे हलमूषल लेकर प्रभु 'वारुणी लाओ' 'वारुणी लाओ' कहने लगे। यह सुनकर सभी लोग उलझनमें पड़ गए कि इस समय क्या किया जाय। फिर सभीने युक्तिकर (विचारकर) एक घड़ा गङ्गाजल भरकर प्रभुको पकड़ा दिया। प्रभुने कुछ जलको पानकर लिया तथा बचे हुए जलको सभी भक्तोंको बाँट दिया। उस अवशिष्ट जलको पान कर सभीको लगा जैसे वास्तवमें ही वह कादम्बरी (गुड़से बना एक द्रव्य विशेष) ही हो। सभी लोग प्रेमाविष्ट होकर बलरामजीकी स्तुति करने लगे। उसी समय प्रभु नाड़ा-नाड़ा कहकर पुकारने लगे। प्रभुके मुखसे नाड़ा शब्द सुनकर कोई भी समझ नहीं पाया कि आखिर प्रभु किसे बुला रहे हैं। तब सभीने प्रभुसे पूछा—"प्रभो! आप नाड़ा किसे कह रहे हैं?"

प्रभु बोले—"मैं जिसकी हुङ्कार सुनकर यहाँ आया हूँ तथा जिसे तुम लोग अद्वैताचार्य कहकर पुकारते हो। उसी नाड़ाके लिए मेरा अवतार हुआ है। परन्तु वह नाड़ा मुझे वैकुण्ठसे यहाँ लाकर स्वयं निश्चिन्त होकर हरिदासके साथ शान्तिपुरमें रह रहा है। सङ्कीर्त्तनका प्रचारके लिए ही मेरा यह अवतार हुआ है। मैं घर-घर, नगर-नगर जाकर कीर्त्तनका प्रचार करूँगा। परन्तु विद्या, धन, उच्चकुल, ज्ञान एवं तपस्याके मदमें आकर जिसने मेरे भोले-भाले भक्तोंके चरणोंमें अपराध किया है अथवा करता है, ऐसे अधम एवं पतित व्यक्तियोंको छोड़कर चण्डाल-ब्राह्मण सभीको ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी दुर्लभ कृष्णप्रेमको मैं सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे प्रदान करूँगा।"

यह सुनकर सभी भक्तवृन्द आनन्द सागरमें तैरने लगे। कुछ क्षण पश्चात् जब प्रभुका आवेश अन्तर्हित हो गया तथा वे स्थिर हो गए, तो सभीसे पूछने लगे कि मुझसे क्या चञ्चलता हो गई।

भक्तवृन्द—"हे प्रभो! आपने जो कुछ कहा वह सब अटल सत्य ही है।" यह सुनकर प्रभु सभीको आलिङ्गन करते हुए कहने लगे—"मुझे कभी-कभी क्या हो जाता है, पता नहीं। अतः आपलोग कृपाकर कभी भी मेरा अपराध ग्रहण नहीं करेंगे।" प्रभुकी बातें सुनकर सभी भक्तलोग हँसने लगे तथा नित्यानन्द प्रभु आविष्ट होकर जमीन पर लोट-पोट खाने लगे। कभी जोर-जोरसे ठहाके लगाने लगते तो कभी जोर-जोरसे रोने लगते। कभी-कभी बाल्यभावमें आविष्ट होकर

अपने सभी कपड़ोंको खोल देते। ऐसे समयमें कोई उन्हें शान्त कर दे, ऐसा कोई नहीं था। वे केवल प्रभुका ही अङ्कुश मानते थे। अतः प्रभुने स्वयं आगे बढ़कर उन्हें शान्त किया।

प्रभु बोले—"श्रीपाद! अब आप शान्त हो जाइए। कल आपको व्यासपूजा करनी है।" ऐसा कहकर प्रभु अपने घर चले गए तथा भक्तलोग भी अपने-अपने घरको चले गए। नित्यानन्द उस दिन श्रीवासजीके घरमें ही रह गए। आधी रातके समय जब घरमें सभी लोग सो रहे थे, तो अचानक नित्यानन्द प्रभुने अपने सन्न्यासका दण्ड तथा कमण्डलुके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। प्रातः काल श्रीवासजीके भाई रामाइ पण्डितने जब दण्ड और कमण्डलुके टुकड़े-टुकड़े देखे तो वे विस्मित हो गए तथा यह बात उन्होंने श्रीवासजीसे कही। श्रीवासजी बोले—"शीघ्र जाकर प्रभुसे कहो।" रामाइ पण्डितके कहने पर जब प्रभु वहाँ पर आए तो देखा, नित्यानन्द प्रभु आविष्ट होकर कभी हँस रहे हैं तो कभी रो रहे हैं। प्रभु उनसे कुछ बोले नहीं। उन्होंने उन टुकड़ोंको उठाया तथा नित्यानन्दको साथ लेकर गङ्गास्नानके लिए चल पड़े। उनके साथमें श्रीवास आदि अन्यान्य भक्तवृन्द भी चल पड़े। गङ्गा किनारे जाकर प्रभुने उन टुकड़ोंको गङ्गामें बहा दिया। उसी समय नित्यानन्दप्रभु गङ्गामें कूद पड़े तथा विभिन्न प्रकारसे तैरने लगे। तभी कहींसे एक मगरमच्छ उनके सामने आ गया। उसे देखकर वे बच्चेकी तरह उसे पकड़कर उससे खेलनेके लिए उसके निकट जाने लगे। यह देखकर श्रीवास, गदाधर आदि भक्तवृन्द भयसे हा-हाकार करने लगे। परन्तु नित्यानन्द प्रभुको कोई भय नहीं। वे तो मत्त सिंहकी भाँति निर्भय होकर उसकी ओर बढ़ रहे थे। यह देखकर प्रभुने आवाज लगाई—"श्रीपाद! जल्दीसे बाहर आइए। आज व्यासपूजा है। आपको व्यासजीकी पूजा करनी है।" प्रभुका आदेश सुनकर वे झट गङ्गासे बाहर आ गए तथा प्रभुके साथ घरकी ओर चल पड़े। कुछ ही देरमें सभी वैष्णववृन्द भी व्यासपूजाका दर्शन करनेके लिए श्रीव्यासजीके घरमें उपस्थित हो गए। व्यासपूजाका सारा कार्य स्वयं श्रीवासजी ही कर रहे थे तथा वहाँ पर उपस्थित सभी वैष्णवलोग मधुर स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। उस समय श्रीवासजीका घर वैकुण्ठ सदृश हो गया। इस प्रकार श्रीवासजीने शास्त्रविधिसे पूजाका सारा कार्य पूर्ण कर श्रीनित्यानन्द प्रभुके हाथोंमें दिव्य सुगन्धिमाला प्रदान की तथा उनसे निवेदन किया—"हे प्रभो! आप यह माला लीजिए तथा शास्त्रविधि अनुसार मन्त्र पढ़कर व्यासजीको प्रणाम कर उन्हें यह माला धारण कराइए। शास्त्रोंके अनुसार यदि कोई व्यासजीको प्रणाम करता है तो वे उस पर सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उसकी मनोभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं।" यह सुनकर उन्होंने माला तो हाथमें ले ली। परन्तु मन्त्र पढ़कर उसे व्यासजीको न पहनाकर चुपचाप खड़े होकर अच्छा-अच्छा कहने लगे। बहुत देर तक इसी तरह माला हाथमें लेकर मन-ही-मन कुछ कहते हुए इधर-उधर देखने लगे। यह देखकर श्रीवासजी प्रभुके पास गए तथा उन्हें बताया कि आपके श्रीपादजी व्यासजीकी पूजा नहीं कर रहे हैं।

यह सुनकर प्रभु विश्वम्भर दौड़े-दौड़े

आए तथा नित्यानन्दप्रभुके सम्मुख खड़े हो गए। प्रभु बोले—"श्रीपाद! जल्दीसे आप माला अर्पणकर व्यासजीकी पूजा कीजिए।" जैसे ही नित्यानन्दजीने प्रभुको अपने सम्मुख देखा, तो तुरन्त उनके गलमें माला पहना दी। इस प्रकार नित्यानन्दजीने दिखाया कि व्यासदेवके भी मूल श्रीगौरसुन्दर हैं, उनकी पूजा करनेसे व्यासकी पूजा हो जाती है। जैसे ही उन्होंने प्रभुको माला पहनाई, वैसे ही श्रीगौरसुन्दरने षड्भुज रूप प्रकट किया। उस समय उनकी छः भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल एवं मूषलका दर्शन कर नित्यानन्दप्रभु मूर्च्छित हो गए। उन्हें मूर्च्छित देखकर उपस्थित सभी वैष्णवलोग भयभीत होकर कृष्णका स्मरण करते हुए उनसे प्रार्थना करने लगे—"हे कृष्ण! इन पर कृपा कीजिए। इनकी रक्षा कीजिए।" इस प्रकार उन्हें मूर्च्छित देखकर श्रीगौरसुन्दर स्वयं अपने हाथोंसे उन्हें उठाते हुए कहने लगे—"नित्यानन्द! उठो, स्थिर होओ। जिस कार्य (कीर्त्तनका प्रचार) के लिए तुम्हारा अवतार हुआ है, अब वह पूरा होनेवाला है, और तुम्हें क्या चाहिए। तुम तो स्वयं प्रेममय हो। तुम्हारी कृपाके बिना कोई भी प्रेमभक्तिको प्राप्त नहीं कर सकता। अतः तुम उठो तथा जिसे तुम्हारी इच्छा हो, उसे प्रेमभक्ति दान करो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि तुम्हारे प्रति किसीका लेशमात्र भी द्वेष रहा तो चाहे वह कितनी ही निष्ठापूर्वक मेरा भजन करे, वह कभी भी मेरा प्रिय नहीं हो सकता।"

प्रभुकी अमृत सदृश वाणीको सुनकर तथा उनका कोमल स्पर्श पाकर नित्यानन्दप्रभुकी मूर्च्छा भङ्ग हो गई तथा वे प्रभुके षड्भुज रूपका दर्शनकर आनन्दित हो गए।

जिन अनन्तदेवके हृदयमें सर्वदा ही प्रभु विराजमान रहते हैं, उन प्रभुको षड्भुज रूपमें देखकर नित्यानन्दको जो आश्चर्य हुआ वह केवल अवतारके अनुरूप एक लीला थी।

नित्यानन्दप्रभुका नित्यसिद्ध स्वभाव है कि वे एक क्षणके लिए भी प्रभुकी सेवा किए बिना नहीं रह सकते। जब-जब प्रभु जगत्में अवतीर्ण होते हैं, तब-तब उन्हींके साथ अवतरित होकर मन, प्राण देकर उनकी सेवा करते हैं। लक्ष्मणके रूपमें अपने प्रभु रामचन्द्रजीकी सेवा अन्न, जल, निद्राका त्यागकर भी की। फिर भी उनकी सन्तुष्टि नहीं हुई। बलरामजीके रूपमें बड़े भाईके रूपमें आने पर भी सर्वदा ही उनके अन्दर दास्य भाव ही रहता था। वे सब समय कृष्णका ही आदेश पालन करते तथा उनको सन्तुष्ट रखते थे। वे प्रभु स्वयं श्रीमन्महाप्रभु तथा वे अनन्तदेव स्वयं नित्यानन्दप्रभु ही हैं। अतः जो बलदेवजी तथा नित्यानन्दमें भेद देखता है, वह नितान्त मूढ़ है। सेवाविग्रहके प्रति जिसका अपराध होता है, विष्णुके चरणोंमें भी वह अपराधी ही होता है। यद्यपि लक्ष्मीजी ब्रह्मा, शिव आदिकी भी पूज्या हैं, परन्तु फिर भी स्वयं नारायणकी सेवा करना उनका स्वभाव है। उसी प्रकार यद्यपि शेषदेव भी सर्वशक्तिमान् भगवान् हैं, तथापि प्रभुकी सेवा करना ही उनका स्वभाव है। अपने सेवकोंके ऐसे सेवा स्वभावसे ही भगवान् उनके वशमें होकर उनका गुणगान करनेमें आनन्दकी अनुभूति करते हैं। ऐसे वैष्णवोंकी अवज्ञा कर विष्णुकी

पूजा निष्फल हो जाती है। वैष्णवोंकी तो बात ही क्या, एक साधारण जीवको भी कष्ट पहुँचाने वालेकी भगवान्‌की पूजा निष्फल हो जाती है।

अभ्यर्चयित्वा प्रतिमासु विष्णुं
निन्दन् जने सर्वगतं तमेव।
अभ्यर्च्य पादौ हि द्विजस्य मूर्द्ध्न
द्रुह्यन्निवासो नरकं प्रयाति।।

(नारदीय पुराण)

अर्थात् जो व्यक्ति प्रतिमामें भगवान्‌की पूजा करता है, परन्तु समस्त जीवोंके हृदयमें विराजमान भगवान्‌की अवज्ञा करता है, उसकी पूजा वैसी ही है, जैसे कोई मूढ़ व्यक्ति ब्राह्मणके चरणोंकी पूजाकर उसके सिर पर प्रहार करता है। अर्थात् ऐसी पूजाके द्वारा उसका उद्धार नहीं होता, बल्कि उसका नरकगमन ही होता है।

(क्रमशः)

विविध संवाद

जयपुर प्रचार संवाद

विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीके प्रचारक एवं श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अनगृहीत श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी सितम्बर ४ को दिल्लीसे शताब्दी एक्सप्रेससे यात्रा कर गुलाबी नगरी जयपुरमें पदार्पण किए। रेलवे प्लेटफार्म पर पहुँचते ही सम्पूर्ण प्लेटफार्म हरिनाम सङ्कीर्त्तनसे गूँज उठा। शताब्दी एक्सप्रेसके अवतरण द्वारसे लेकर प्लेटफार्मके निकासी द्वार और आगे टेक्सी स्टैण्ड तक जयपुरके भक्तोंने सम्पूर्ण मार्गको गुलाबकी पंखुड़ियोंसे ढक दिया। शंख, करताल और मृदङ्गकी ध्वनिके साथ सङ्कीर्त्तनके द्वारा भक्तवृन्द अत्यधिक आनन्द एवं उत्साहके साथ श्रील महाराजजीका स्वागत कर रहे थे। स्टेशन पर उपस्थित जनता, शताब्दी एक्सप्रेसके यात्री, सभी श्रीलमहाराजजीके स्वागतको विस्फारित नेत्रोंसे देख रहे थे। भक्तोंने श्रील महाराजजीको फूल मालाओंसे ढक दिया। स्टेशनमें इतने सुन्दर स्वागत समारोहको देखकर आसानीसे प्रतीत हो रहा था कि जयपुरके प्रभु श्रीराधागोविन्ददेवजी अपने निजजनका अभिनन्दन करनेके लिए सभीके अन्दर ऐसी प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। जयपुरमें यह अभिनन्दन अनूठा और अपूर्व था।

श्रील महाराजजीने ६ तारीखसे १२ तारीख तक प्रत्यह प्रातः ९ बजेसे ११.३० बजे तक श्रीराधागोविन्द मन्दिरमें तथा सायं ६ से ७ बजे तक श्रीराधागोपीनाथ मन्दिरमें अपनी वीर्यवती कथाएँ कीं। प्रत्यह श्रीगोविन्ददेव मन्दिरमें कथा प्रारम्भ होनेसे पहले श्रील महाराजजीके अनुगत भक्तमण्डली उच्च तथा उद्दण्ड सङ्कीर्त्तनके साथ नगर भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचती थी। श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजीके कर्ण-मन-रसायन भजनोंके साथ सब भक्त झूम उठते थे। प्रथम दिन प्रवचन प्रारम्भसे पहले श्रीपाद ओमप्रकाश व्रजवासीजीने श्रील महाराजजीका स्वागत

वाचनिका प्रदान की तथा समवेत भक्तमण्डलीको महाराजश्रीकी अपूर्व महिमाओंका स्मरण कराया।

श्रील महाराजजीने अपने प्रथम दिनके प्रवचनमें श्रीश्रीराधागोविन्दजीके प्राकट्यके सम्बन्धमें विशेष रूपसे गूढ़ विवेचना की। श्रीमन्महाप्रभु एवं महाप्रभुके भक्तों द्वारा ब्रजकी लीला–स्थलियों एवं श्रीविग्रहोंके प्रकाशके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले श्रीलरूप गोस्वामीपादने किस प्रकार श्रीबज्रनाभके द्वारा प्रकाशित श्रीगोविन्ददेवजीको आजसे लगभग ५०० वर्ष पूर्व वृन्दावनके गोमाटीला नामक स्थानसे प्रकाशित किया, इसपर श्रील महाराजजीने विशद रूपसे प्रकाश डाला। महाराजजीके मुखसे इस कथाको सुनकर जयपुरके श्रद्धालु जनता तथा श्रीगोविन्दजी मन्दिरके वर्त्तमान प्रधान सेवाइत एवं व्यवस्थापक श्रीअञ्जन कुमार गोस्वामीजी बड़े ही आकर्षित एवं प्रसन्न हुए।

श्रील महाराजजीने श्रीगोविन्ददेवजीका वृन्दावनसे आना, श्री सम्प्रदायके वैष्णवों द्वारा राधाजीको गोविन्ददेवसे अलग करना, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरके आदेशसे श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु द्वारा गल्तामें श्रीब्रह्ममाध्वगौड़ीय सम्प्रदायको प्रामाणिक सम्प्रदायके रूपमें स्थापित करना इत्यादि विषयोंका दिग्दर्शन कराया।

श्रीमद्भागवतका प्रवचन करते हुए श्रील महाराजजीने ध्रुवजी, प्रह्लाद महाराज, भरत महाराज, चित्रकेतु महाराज, हनुमानजी, पाण्डव तथा उनमें अर्जुन, उद्धवजी आदियोंकी चरित्र श्रेष्ठता–क्रमानुसार अति सूक्ष्म रूपसे विवेचन प्रस्तुत किया। अन्तमें गोपियोंकी श्रेष्ठता तथा गोपियोंमें श्रीमती राधिकाकी सर्वश्रेष्ठताको बतलाते हुए श्रील महाराजजीने कहा कि यही श्रीमद्भागवतकी प्रतिपाद्य वस्तु है। प्रेमकी पराकाष्ठाकी परिप्रेक्षीसे श्रीमती राधिकाजीकी श्रीकृष्णसे श्रेष्ठता बतलाते हुए श्रीमतीजीके मादनाख्य महाभाव (जिसका श्रीकृष्णमें अभाव है) का एक उदाहरण [प्रेम सरोवरके निकट मधुमङ्गलके 'मधुसूदन (भ्रमर) को भगा दिया, मधुसूदनको भगा दिया' बोलनेसे श्रीकृष्णकी गोदमें बैठी हुई श्रीमतीजीका अचेतन होना] उत्थापन किया। श्रील महाराजजीने बताया कि गोपियोंके तीक्ष्ण वाक्य श्रीगोविन्द देवको ब्रह्माकी स्तुतिसे भी अच्छे लगते हैं। श्रील महाराजजीने सद्गुरु पदाश्रयके महत्वके बारेमें सुन्दर–सुन्दर विचार व्यक्त किए।

श्रीश्रीराधागोपीनाथ मन्दिरमें श्रील महाराजजीने श्रीमन्महाप्रभुका आविर्भाव, बाल्य लीला, गया–यात्रा, सन्यास आदि मधुर लीलाओंका वर्णन किया। ९ तारीखको श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजजीकी तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें उनकी अप्राकृत गुणावलीका कीर्त्तन हुआ तथा उनके सुयोग्य शिष्य श्रीपाद रसानन्द ब्रह्मचारीजीके द्वारा विशाल भण्डारेका आयोजन हुआ।

१३ तारिख, एकादशी प्रातःकाल गुप्ताजीके घरमें अनेक श्रद्धालुओंको श्रील महाराजजीने हरिनाम प्रदान किया।

१३ एवं १४ सितम्बरको सायं ५ बजेसे ७ बजे तक हनुमान वाटिका, वैशाली नगरमें श्रीनाम–सङ्कीर्त्तन एवं हरिकथा आयोजित हुई।

१६ सितम्बरको जयपुरवासी भक्तवृन्दके भव्य सम्बर्न्धना तथा पुनर्निमन्त्रणके साथ श्रील

महाराजजीने दिल्ली प्रस्थान किया।

श्रीओमप्रकाश व्रजवासीने खेद व्यक्त की कि जयपुरमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी कोई शाखा-मठ नहीं है तथा साथ-ही-साथ एक शाखा-मठकी स्थापनाके लिए उन्होंने श्रद्धालुओंसे सहयोग तथा श्रील महाराजजीसे कृपायाचना की।

इस आयोजनके लिए श्रीओमप्रकाश व्रजवासीजी, श्रीकृष्णकुमार गुप्ताजी, श्रीकृष्णप्रिय अधिकारीजी, श्रीमती निर्मला शर्मा, गोविन्ददेव मन्दिरके गोस्वामी, गोपीनाथ मन्दिरके गोस्वामी तथा समस्त सहयोगी भक्तवृन्द श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे धन्यवादके पात्र बने हैं। q

जयपुरमें श्रील महाराजजीका स्वागत

श्रीश्रीराधागोविन्ददेवजी

प्रवचन करते हुए श्रील महाराजजी

कीर्त्तन करते हुए भक्तगण

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा—२००१

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

	२६—३१ अक्टूबर	नगर सङ्कीर्त्तन, मथुरा, कार्त्तिकव्रत अधिवास। भूतेश्वर, जन्मभूमि, आदिकेशव, दीर्घविष्णु, पद्मनाभ, आदिवराह, द्वाराकाधीश, शतघड़ा।
	१ नवम्बर बृहस्पतिवार	(मथुरामें) श्रीशरदपूर्णिमा, कार्त्तिकव्रत आरम्भ, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरह महोत्सव, विश्रामघाटमें परिक्रमाका सङ्कल्प, पीपलेश्वर महादेव, रङ्गेश्वर महादेव, कंसटीला।
बस द्वारा	२ नवम्बर शुक्रवार	(प्रतिपदा) (मथुरासे) मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन।
बस द्वारा	३ नवम्बर शनिवार	(द्वितीया) (मथुरासे) भद्रवन, भाण्डीरवन, मानसरोवर, लौहवन।

बस द्वारा	४ नवम्बर रविवार	(तृतीया) (मथुरासे) दाऊजी, ब्रह्माण्डघाट, महावन, गोकुल, रावल, भातरोल, अक्रुरघाट होते हुए वृन्दावन, श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें वास।
	५ नवम्बर सोमवार	(चतुर्थी) हरिकथा और विश्राम।
	६ नवम्बर मङ्गलवार	(पञ्चमी) कालीय दह, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भजन कुटीर और समाधि, श्रीसनातन गोस्वामीका भजन कुटीर, श्रीमदनमोहन, दानगली।
	७ नवम्बर बुधवार	(षष्ठी) सेवाकुञ्ज, श्रीराधादामोदर, इमलीतला, श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, शृङ्गारवट, निधुवन, श्रीराधारमण, श्रीगोकुलानन्द, श्रीश्यामसुन्दर।
	८ नवम्बर बृहस्पतिवार	(अष्टमी) श्रीगोपीनाथ, धीरसमीर, वंशीवट, गोपीश्वर महादेव, श्रीगोविन्दजी, बनखण्डी।
	९ नवम्बर शुक्रवार	(नवमी) पूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर महाराजका आविर्भाव। हरिकथा।
	१० नवम्बर शनिवार	(दशमी) बेलवन।
	११ नवम्बर रविवार	(एकादशी) वृन्दावन परिक्रमा।
बस द्वारा	१२ नवम्बर सोमवार	(द्वादशी) वृन्दावनसे पैंठा, चन्द्रसरोवरसे होकर गोवर्द्धन मोदीभवनमें वास।
	१३ नवम्बर मङ्गलवार	(त्रयोदशी) हरिकथा और विश्राम।
	१४ नवम्बर बुधवार	(चतुर्दशी) गोवर्द्धन परिक्रमा—दानघाटी, आन्यौर, गोविन्दकुण्ड, पूछरी, सुरभीकुण्ड, जतीपुरा। शामको—मानसी गङ्गा, हरिदेव।
	१५ नवम्बर बृहस्पतिवार	(अमावस्या) दीपावली, दानघाटीमें अन्नकूट।
	१६ नवम्बर शुक्रवार	(प्रतिपदा) राधाकुण्ड परिक्रमा, उद्धवकुण्डके समीप अन्नकूट महोत्सव, कुसुम सरोवर।
बस द्वारा	१७ नवम्बर शनिवार	(द्वितीया) डीग, आदिबद्री होकर गोवर्द्धन, विश्राम।
बस द्वारा	१८ नवम्बर रविवार	(तृतीया) गोवर्द्धनसे बरसाना। रास्तेमें सूर्यकुण्ड और कमई करहलाका दर्शन। मोदीभवन बरसानामें वास।
	१९ नवम्बर सोमवार	(चतुर्थी) श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजका तिरोभाव। हरिकथा, विश्राम।
बस द्वारा	२० नवम्बर मङ्गलवार	(पञ्चमी) काम्यवन, वृन्दादेवी, गोविन्दजी, कामेश्वर, पञ्चपाण्डव, विमलाकुण्ड, पिछल पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा, भोजन थाली, चरण पहाड़ी।
	२१ नवम्बर बुधवार	(षष्ठी) गह्वरवन परिक्रमा। हरिकथा और विश्राम।
	२२ नवम्बर बृहस्पतिवार	(सप्तमी) पीलीपोखर, ऊँचागाँव, सखीगिरि पर्वत।
बस द्वारा	२३ नवम्बर शुक्रवार	(अष्टमी) गोपाष्टमी। बरसानासे नन्दगाँव, मार्गमें प्रेमसरोवर, सङ्केत, उद्धवक्यारी, ललिताकुण्ड, नन्दभवन, बरसाना।
बस द्वारा	२४ नवम्बर शनिवार	(नवमी) कोकिलावन, जावट, बैठान, चरण पहाड़ी, कोसी, बरसाना।
बस द्वारा	२५ नवम्बर रविवार	(दशमी) चरण पहाड़ी, पावन सरोवर, टेर कदम्ब, बरसाना।
	२६ नवम्बर सोमवार	(एकादशी) श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका तिरोभाव। हरिकथा।
बस द्वारा	२७ नवम्बर मङ्गलवार	(द्वादशी) बरसानासे खदीरवन, रामघाट, विहारवन, चीरघाट, वत्सवन, गरुड़गोविन्दसे होकर वृन्दावन। श्रीरूप सनातन गौड़ीय मठमें वास।
	२८ नवम्बर बुधवार	(त्रयोदशी) हरिकथा, दर्शन और विश्राम।
	२९ नवम्बर बृहस्पतिवार	(चतुर्दशी) हरिकथा और विश्राम।
	३० नवम्बर शुक्रवार	(पूर्णिमा) वैष्णव होम, ऊर्जाव्रत समापन।
	१ दिसम्बर शनिवार	(प्रतिपदा) श्रीदुर्वाषा ऋषि गौड़ीय आश्रम दर्शन।

È È È

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ मार्गशीर्ष मास, सन् २००१, १ दिसम्बर—३० दिसम्बर { संख्या ९

श्रीराधाकुण्डाष्टकम्

[श्रीरघुनाथदासगोस्वामिविरचितम्]

श्रीमदीश्वरीकुण्डाय नमः

वृषभदनुजनाशात्रर्मघर्मोक्तिरङ्गैर्निखिलनिजसखीभिर्यत् स्वहस्तेन पूर्णाम्।
प्रकटितमपि वृन्दारण्यराज्ञा प्रमोदैस्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।१।।
व्रजभुवि मुरशत्रोः प्रेयसीनां निकामैरसुलभमपि तूर्णं प्रेमकल्पद्रुमं तम्।
जनयति हृदि भूमौ स्नातुरुच्चैः प्रियं यत्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।२।।
अघरिपुरपि यत्नादत्र देव्याः प्रसादप्रसरकृतकटाक्षप्राप्तिकामः प्रकामम्।
अनुसरति यदुच्चैः स्नानसेवानुबन्धैस्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।३।।

व्रजभुवनसुधांशोः प्रेमभूमिर्निकामं व्रजमधुरकिशोरीमौलिरत्नप्रियेव।
परिचितमपि नाम्ना यच्च तेनैव तस्यास्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।४।।
अपिजन इह कश्चिद् यस्य सेवाप्रसादैः प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्रसुनोः।
सपदि किल मदीशादास्यपुष्पप्रशस्या तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।५।।
तटमधुरनिकुञ्जाः क्लृप्तनामान उच्चैर्निजपरिजनवर्गैः संविभज्याश्रितास्तैः।
मधुकररुतरम्या यस्य राजन्ति काम्यास्तदति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।६।।
तटभुवि वरवेद्यां यस्य नर्मातिहृद्यां मधुरमधुरवार्त्तां गोष्ठचन्द्रस्य भङ्ग्या।
प्रथयति मिथ ईशा प्राणसख्यालिभिः सा तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।७।।
अनुदिनमतिरङ्गैः प्रेममत्तालिसंघैर्वरसरसिजगन्धैर्हारिवारिप्रपूर्णैः।
विहरत इह यस्मिन् दम्पत्ती तौ प्रमत्तौ तदति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।८।।
अविकलमति देव्याश्चारुकुण्डाष्टकं यः परिपठति तदीयोल्लासिदास्यार्पितात्मा।
अचिरमिह शरीरे दर्शयत्येव तस्मै मधुरिपुरतिमोदैः श्लिष्यमाणां प्रियां ताम्।।९।।

अनुवाद—

श्रीकृष्ण द्वारा वृषभ नामक दैत्यका विनाश किए जाने पर वृन्दावनेश्वरी श्रीश्रीराधिकाजीके परिहासपूर्ण वचनोंके साथ [अर्थात्—तुमने व्रजराजनन्दन होकर भी वृषभासुरका वध किया है, अतएव तुम्हें गोहत्याका पाप लगा है; राजा द्वारा किए गए पाप प्रजासमूहका भी स्पर्श करते हैं। इसलिए हमें जो पाप लगा है, उससे हमें भी सब तीर्थोंके जलमें स्नान कर शुद्ध होना पड़ेगा।] अपनी समस्त सखियोंके अपने हाथोंसे लाए गए जलसे पूर्ण होकर जो राधाकुण्ड श्रीनन्दनन्दन द्वारा आमोदपूर्वक इस पृथ्वीपर प्रकटित हुए हैं, वे अतिशय रमणीय सुप्रसिद्ध श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।१।।

जो राधाकुण्ड अपनेमें स्नान करनेवाले व्यक्तिके हृदय क्षेत्रमें चन्द्रा–रुक्मिणी–सत्यभामा आदि मुरनाशन श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंकी अतिशय कामना द्वारा भी दुष्प्राप्य, अति सुप्रसिद्ध प्रेमकल्पतरुको उत्पन्न करा देते हैं, वे अतिमनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।२।।

और दूसरोंकी तो बात ही क्या कहूँ, स्वयं अघशत्रु श्रीकृष्ण भी मानिनी श्रीराधाजीके विस्तृत प्रसादजनित कटाक्ष–लाभकी आशासे स्नान–सेवानुबन्धन हेतु यत्नपूर्वक जिस राधाकुण्डका अनुसरण करते हैं, वे अतिमनोरम श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।३।।

व्रजकी मधुररसाश्रिता किशोरियोंकी शिरोमणिस्वरूपा प्रियतमा श्रीराधाकी भाँति ही जो व्रजभुवनचन्द्र श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रियपात्र हैं एवं श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा ही श्रीराधाके नाम पर ही जिनका नाम प्रचारित हुआ है अर्थात् 'श्रीराधाकुण्ड' यह नाम प्रकाशित हुआ है, वे अतिकमनीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।४।।

जिस राधाकुण्डके सेवानुग्रहसे विवेक आदि शून्य व्यक्ति भी श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णकी प्रणयास्पदरूप प्रेमकल्पलतिका होकर मदीश्वरी श्रीराधाके दास्यरूप पुष्पसमृद्धिको लाभकर

प्रशंसाके पात्र होते हैं, वे अतिरमणीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।५।।

श्रीराधाके निज-परिजनों द्वारा अर्थात् श्रीललिता आदि सखियों द्वारा दिए गए उत्तम नामोंसे युक्त, (अर्थात् पूर्वतट पर चित्रा-सुखद कुञ्ज, अग्निकोणमें इन्दुलेखा-सुखद कुञ्ज इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध) एवं सखियोंके विभाग द्वारा परिजनोंसे आश्रित, भ्रमरोंके गुञ्जारोंसे गुञ्जित, सबके वाञ्छनीय, मधुर रसके उद्दीपक निकुञ्जसमूह जिनके तटों पर सुशोभित हो रहे हैं, वे अतिशय मनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।६।।

जिनके तट-प्रदेशकी उत्तम वेदिकाके ऊपर परमेश्वरी श्रीराधाजी अपनी प्राण-सखियोंके साथ वृन्दावनचन्द्र श्रीव्रजराजनन्दनके क्रीड़ा-कौतुकादि सम्बन्धी अतिशय मधुरा वार्त्तासमूहको परस्पर वाक् चातुरीके साथ प्रकाशित कर रही हैं, वे अतिशय मनोहर श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।७।।

उत्तम कमल-सौरभयुक्त मनोहर सलिलसे पूर्ण जिस राधाकुण्डमें श्रीराधाकृष्ण युगल प्रमत्त होकर प्रेममत्त गोपियोंके साथ अतिशय रङ्गसे प्रतिदिन विहार करते हैं, वे अतिशय रमणीय श्रीराधाकुण्ड ही मेरे आश्रय हों।।८।।

जो श्रीमती राधिकाकी सदा-उल्लासदायिनी सेवामें (दासतामें) आत्मसमर्पणपूर्वक श्रीराधिकाके इस मनोहर कुण्डाष्टकका निर्मल चित्तसे सर्वतोभावेन पाठ करेंगे, मधुरिपु श्रीकृष्ण आनन्दित होकर परम हर्षयुक्ता प्रेयसी श्रीराधाका उस साधकको इस शरीरमें स्थिति कालमें ही दर्शन करवा देते हैं।।९।।

असत्सङ्ग

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनाद ठाकुर

असत्सङ्गसे असत् व्यक्तियोंके सङ्गका अर्थात् कुसङ्गका बोध होता है। भक्ति-साधकोंको असत्सङ्गसे सर्वथा बचना चाहिए। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका इस विषयमें यह उपदेश बड़ा ही महत्वपूर्ण है—

असत्सङ्ग त्याग—एइ वैष्णव आचार।
स्त्रीसङ्गी एक असाधु, कृष्णाभक्त आर।।

(चै. च. म. २२/८४)

अर्थात् असत्सङ्गका त्याग करना वैष्णवोंका श्रेष्ठ सदाचार है। असत्सङ्गसे अवैध स्त्रीसङ्ग करनेवाले दुर्जन तथा कृष्णभक्ति-रहित अभक्त पुरुष—इन दोनोंका ही बोध होता है। ऐसे असत्सङ्गका सर्वतोभावेन परित्याग करना ही वैष्णवोंके लिए उत्तम आचरण है। केवल एक साथ रहने, खाने, पीने या टहलने आदिसे ही सङ्ग नहीं होता, बल्कि ये समस्त क्रियाएँ प्रीतिपूर्वक या आसक्तिके साथ सम्पन्न होने पर ही वास्तविक सङ्ग होता है। असत् व्यक्तियोंके साथ प्रीतिपूर्वक असत् विषयोंकी आलोचना करनेसे असत्सङ्ग होता है। असत्-व्यक्ति दो प्रकारके होते हैं—(१) स्त्रीसङ्गी और (२) कृष्णभक्ति रहित अभक्त पुरुषगण।

स्त्रीसङ्गी कौन हैं

स्त्रीसङ्गमें आसक्त रहनेवाले व्यक्ति स्त्रीसङ्गी

कहलाते हैं। काञ्चन-कामिनीसे मुग्ध संसारासक्त व्यक्ति तथा सहजिया, बाउल सांई आदि कपट-धार्मिकजन और वामाचारी तान्त्रिकगण—ये सब स्त्रीसङ्गी हैं। मूल बात यह है कि जिन लोगोंकी स्त्रियोंके प्रति आसक्ति या प्रीति होती है तथा जिन स्त्रियोंकी पुरुषोंमें आसक्ति या प्रीति होती है—वे दोनों ही स्त्रीसङ्गी हैं। ऐसे स्त्रीसङ्गियोंका यत्नपूर्वक त्याग करनेकी आज्ञा श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने दी है।

अभक्त और उनका सङ्गत्याग

कुछ लोग शुष्कज्ञान या शुष्क-वैराग्यका अवलम्बन करके स्त्रीसङ्गसे दूर तो रहते हैं, परन्तु कृष्णकी उपासना नहीं करते। ऐसे लोग ही द्वितीय श्रेणीके असत् व्यक्ति—कृष्णाभक्त हैं। कृष्णाभक्तसे उन लोगोंका बोध होता है जो कृष्णके भक्त नहीं हैं। कर्मी, ज्ञानी, योगी, दूसरे-दूसरे देवताओंके उपासक, मायावादी, नास्तिक आदि नाना प्रकारके कृष्णभक्तिरहित अभक्त देखे जाते हैं। वैष्णव लोग ऐसे अभक्तोंका सङ्ग त्यागकर शुद्धभक्तोंका ही सङ्ग करते हैं। यद्यपि उपरोक्त अभक्तोंमेंसे कोई-कोई थोड़ी बहुत भगवत्-सम्बन्धी चेष्टा तो करते हैं, तथापि जब तक वे प्राकृत गुणोंके बन्धनसे मुक्त नहीं हो जाते, तब तक कृष्णेतर बुद्धि ही उनमें नैसर्गिक रूपमें प्रबल रहती है और उनके प्राकृत चित्तमें सर्वदा प्राकृत क्षोभ पैदा होता रहता है। भक्तजनका यह कर्त्तव्य है कि वे सभी प्राकृत विषयोंको असत् जानकर उनका त्याग करें। कृष्णभक्तिसे रहित अभक्त लोग अप्राकृत अधिकार प्राप्त करने पर ही कृष्णभक्त हो सकते हैं। परन्तु जब तक वे प्राकृत बुद्धिसे युक्त रहते हैं, तब तक भक्तजन उनको असत् समझ कर उनके सङ्गका वर्जन करेंगे।

असत्सङ्गकी दो श्रेणियाँ—(क) बालिश, (ख) विद्वेषी

(क) बालिश और उनके प्रति व्यवहार—

जो लोग दुर्जन या शठ न होने पर भी अज्ञतावश स्त्रीसङ्गप्रिय हैं अथवा कृष्णके अतिरिक्त अन्यान्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे अज्ञ या बालिश कहलाते हैं। अतः वे भक्तोंके कृपापात्र हैं। भक्तजन यदि यथार्थतः उन्हें अज्ञ समझें तो अवश्य ही उनपर उनको कृपा करनी चाहिए। इसलिए उन बालिशोंको जहाँ तक सङ्ग प्रदान करनेकी आवश्यकता समझें उतना सङ्ग प्रदान करेंगे। ऐसा करनेसे उनको असत्सङ्गका दोष स्पर्श नहीं करता है। प्रीतिके साथ किसी विषयके सम्बन्धमें परस्पर आलाप-व्यवहार करना ही सङ्ग है। यदि यज्ञ व्यक्ति भक्तोंकी भक्ति-कथामें रुचि न रखें, तो उन अज्ञ व्यक्तियोंको असत् समझ कर उनका सङ्ग परित्याग करना चाहिए। परन्तु यदि वे भक्तोंकी भक्ति-कथामें रुचि रखनेवाले हों तो वे शीघ्र ही सत् बन जाते हैं और भक्त कहलाते हैं। इसलिए ऐसे व्यक्तियोंको भक्तजन अपना सङ्ग प्रदान करेंगे।

(ख) द्वेषी और अपराधी व्यक्ति तथा उनके प्रति व्यवहार—

जो लोग प्रतिष्ठा और भोग-मोक्षकी अभिलाषा द्वारा परिचालित होकर शठतापूर्वक धर्मध्वजी या योषित्-सङ्गी बनते हैं अथवा मायावाद आदि कुमतोंका आदर करते हैं, वे अपराधी या द्वेषी हैं। भक्तजन विशेष यत्नपूर्वक ऐसे लोगोंकी उपेक्षा करेंगे या उनका सङ्ग

छोड़ देंगे। जो लोग ऐसे व्यक्तियों पर भी कृपा करनेके लिए अपना सङ्ग उनको प्रदान करते हैं, उनका पतन हो जाता है। उनकी कृष्ण-बहिर्मुखता इतनी प्रबल होती है कि उनका सङ्ग करनेसे शुद्ध-वैष्णवोंमें भी प्रेमका धीरे-धीरे अभाव होता जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं—

प्रभु कहे—हैल आज पाषण्डी सम्भाष।
एइ वा कारणे नहे प्रेमेर प्रकाश।।

(चैतन्यभागवत)

—आज मेरी बातचीत पाखण्डियोंसे हुई है, शायद इसीलिए मेरे हृदयमें प्रेमका प्रकाश नहीं हो रहा है।

सङ्गके प्रभावसे सत् या असत् होता है

संसर्गके कारण ही मनुष्य सत् या असत् बनता है। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है—***'संसर्गजा हि गुणदोषा भवन्ति सर्वे।'*** शास्त्रोंमें जिस प्रकारसे सत्सङ्गका अनन्त माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसी प्रकारसे असत्सङ्गके अनन्त दोषोंका भी बार-बार उल्लेख किया गया है। जब तक अप्राकृत तत्त्वमें श्रद्धा या रतिका उदय नहीं होता, तब तक विषय-तृष्णा सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं होती। अवसर पाते ही इन्द्रियाँ झट विषयोंकी ओर दौड़ने लगती हैं।

स्त्रीसङ्गी और स्त्रीसङ्गीके सङ्गीके सङ्गका फल

खास कर स्त्रियोंके अवैध सङ्गसे पुरुषोंका पतन होता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

न तथाऽस्य भवन्मोहो बद्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो तथा तत्सङ्गिसङ्गतः।।

(भा. ३/३१/३५)

स्त्रीसङ्ग तथा स्त्रीसङ्गीके सङ्गसे जीवको जैसा मोह होता है, वैसा मोह अन्य विषयोंसे नहीं होता। सत्य, शौच, दया, धर्म, शम, दम आदि मनुष्यके सभी सद्गुण स्त्रीसङ्गीके सङ्गसे नष्ट हो जाते हैं। अतएव बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे योषित्-क्रीड़ामृगका सङ्ग नहीं करेंगे। पुनः कहते हैं—

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गात् याति संक्षयम्।।
तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ामृगेषु च।।

(भा. ३/३१/३३-३४)

भगवद्भक्तोंका असत्सङ्ग किस प्रकार होता है

भगवद्भक्तजन भगवत्-सम्बन्धके बिना क्षणमात्र भी रह नहीं सकते। असत्सङ्गमें असत् विषयोंकी ही चर्चा होती है, जिससे भक्तजन अत्यन्त दुःखी होते हैं। इसीलिए कात्यायन-संहितामें कहा गया है—

वरं हुतवहज्वाला पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ताविमुखजनसंवासवैशसम्।।

जलती हुई आगकी ज्वाला सही जा सकती है, पिंजड़ेमें बन्द होना भी कहीं अच्छा है, परन्तु अभक्तोंके साथ निवास करना या उनसे सम्भाषण करना भक्तोंको असहनीय होता है।

असत्सङ्गका त्याग करना ही उत्तम आचार है

जब तक अनर्थकी निवृत्ति नहीं होती, तब तक साधकको असत्सङ्गसे यत्नपूर्वक बचना चाहिए। भजन करते-करते अनर्थसमूह दूर होने पर असत्सङ्गके प्रति स्वाभाविक रूपमें अरुचि पैदा हो जाती है। फिर भी यदा-कदा असत्सङ्ग हो पड़ता है। अतः भक्ति-साधकोंको इस विषयमें सदा सावधान रहना चाहिए। असत्सङ्गत्याग—यह वैष्णवोंके

लिए उत्तम सदाचार है तथा कृष्णनामैकशरण ही उनकी वैष्णवताका लक्षण है।

एते सब (असत्सङ्ग) छाड़ि आर वर्णाश्रमधर्म।
अकिञ्चन हञा लय कृष्णैक शरण।।
शरण लञा करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण तारे करे तत्काल आत्मसम।।
(चै. च. म. २२/९०, ९९)

कृष्णैकशरण ही वैष्णवताका लक्षण है

जो सब प्रकारके असत्सङ्गका त्याग कर वर्णाश्रम धर्मको भी छोड़कर सर्वथा अकिञ्चन होकर श्रीकृष्णके अनन्य शरणागत हो जाते हैं, वे शीघ्र ही श्रीकृष्णके कृपापात्र हो जाते हैं तथा कृष्णप्रेम रूप परम पुरुषार्थको प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।
कालात्रष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढंगाढं लीयतां चित्तभृङ्गः।।
—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य

अर्थात् वैराग्य, विद्या और अपने भक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिए श्रीकृष्णचैतन्य- रूपधारी एक सनातन पुरुष, जो सर्वदा कृपाके समुद्र हैं, उनके प्रति मैं शरणागत होता हूँ।

कालके प्रभावसे अपने भक्तियोगको नष्टप्राय देखकर जो कृष्णचैतन्य नामक पुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिए आविर्भूत हुए हैं, उनके चरणकमलोंमें मेरा चित्तभृङ्ग प्रगाढ़ रूपमें लीन हो जाय।

श्रीमन्महाप्रभुजी संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् जब पुरीधाममें उपस्थित हुए, उस समय उत्कलनरेश श्रीप्रतापरुद्रके राजपण्डित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीने नदीयाके सम्बन्धसे युवक संन्यासीको बड़े प्यारकी दृष्टिसे देखा। भट्टाचार्यजी उस समयके एक प्रकाण्ड विद्वान और सर्वश्रेष्ठ अद्वैतवादी थे। बड़े-बड़े अद्वैतवादी संन्यासी उनसे उपदेश श्रवण करनेके लिए आते थे। न्याय और वेदान्त दर्शनके वे अद्वितीय पण्डित थे। उन्होंने युवक संन्यासी श्रीचैतन्य महाप्रभुको वेदान्त दर्शनके सिद्धान्तोंको श्रवण कराकर उनके संन्यास-धर्मको दृढ़ करनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर अमानी-मानद धर्मके प्रचारक श्रीचैतन्यदेवने अपनी सम्मति प्रकाश की तथा सात दिनों तक लगातर सार्वभौमजीके निकट वेदान्त शास्त्रकी व्याख्या बिलकुल मौन होकर सुनते रहे। आठवें दिन सार्वभौमजीने पूछा—"आप तो बिलकुल मौन होकर श्रवण कर रहे हैं। कुछ समझ रहे हैं या नहीं?" सार्वभौमजीकी बात सुनकर महाप्रभुजीने उत्तर दिया—"आप वेदान्तके सूत्रोंका जो अर्थ बता रहे हैं, उसे तो नहीं समझ पा रहा हूँ, किन्तु व्यासदेवका अभिप्राय जो इस सूत्रोंमें स्पष्टरूपसे प्रकाशित है, उसे मैं भलीभाँति समझ रहा हूँ।"

युवक संन्यासीका उत्तर सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य बड़े चकित हुए। सार्वभौमजीने ब्रह्मको निराकार-निर्विशेष बतलाते हुए दृश्यमान् जगतको

ब्रह्मका विवर्त्त बतलाया था; परन्तु श्रीचैतन्यदेवने उस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया, बल्कि शक्तिपरिणामवादका विचार उनके सामने बड़ी दृढ़तासे उपस्थित किया।

विवर्त्तवाद और विभिन्न अक्षज मतवाद

'विवर्त्त' का तात्पर्य है—किसी एक वस्तुमें कोई दूसरी वस्तु होनेका भ्रम। जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम। इस देखे जानेवाले जगतमें इन्द्रियज ज्ञानसे जो कुछ गृहीत होता है, वह सब कुछ खण्डित रूपमें गृहीत होता है; किसी भी वस्तुके विषयमें पूर्णज्ञान नहीं होता। कारणसमूह (इन्द्रियसमूह) असमर्थ हैं—ससीम हैं; ससीम या मानव धारणाके अतीत अति सुबृहत् या अखण्ड वस्तुका विचार मानव-ज्ञानके खण्डित विचारकी पकड़में आना सम्भव नहीं है। पाश्चात्य देशके मनीषिगणने Agnosticism, Pantheism, Scepticism, Henotheism आदि मतवाद एवं भारतीय मनीषिवृन्दने विभिन्न विचार उपस्थित किए हैं।

मतभेद और साम्प्रदायिक विवादका कारण

विभिन्न पन्थके लोक विभिन्न भावसे विषयोंका दर्शन करते हैं। मन बाह्य दृष्ट वस्तुसे लब्ध ज्ञानकी समष्टि लेकर विचारमें प्रवृत्त होता है। हमलोग द्रष्टा होकर दृश्य जगतका अनुभव बाह्यज्ञानसे जिस प्रकार करते हैं, उसमें हमारा दृष्टिकोण (Angle of vision) परस्पर भिन्न-भिन्न होता है। कुछ लोग विवाद और कुछ लोग आनुगत्य धर्ममें अवस्थित हैं। शेषोक्त प्रकारके लोगोंमें कुछ लोग जब तक वस्तु-ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक आनुगत्यका केवल छल प्रदर्शन करते हैं। वस्तुगत धारणाके साथ उनकी अपनी-अपनी उपलब्धिका पार्थक्य—इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षीकृत ज्ञानसमूह अनुभूतिके साथ मिलकर जिन पृथक्-पृथक् विचारों पर प्रतिष्ठित कराते हैं, उनका पार्थक्य ही साम्प्रदायिक विवादका कारण होता है।

तर्कपथ

अपनी इन्द्रियोंकी सहायतासे किसी विचारको ठीक मानना या भूल मानना मनोराज्यके मनोधर्ममें अवस्थित है। कोई अध्यापक जब भूलसे कोई बात कह देता है, तब विभिन्न इन्द्रियोंकी सहायतासे वह बात ठीक प्रमाणित न होने पर अध्यापकके विचारोंमें भूल पाई जाती है। बाह्य ज्ञानके द्वारा प्रत्येक विषयको समझनेके लिए तर्कपथके अतिरिक्त कोई दूसरा पथ नहीं है। यह तर्कपथ खण्डित वस्तुके सम्बन्धमें सत्य होने पर भी अखण्ड वस्तुके सम्बन्धमें सत्य नहीं है। मानव खण्डित ज्ञानकी सहायतासे अखण्ड वस्तुके समीप नहीं पहुँच सकता है। विवेकी मनुष्य तर्ककी सहायतासे वस्तुको समझनेकी चेष्टा करते हैं। तर्क प्रश्नके रूपमें उपस्थित होने पर समझनेका सुयोग होता है। इसलिए श्रीगीताशास्त्रमें ऐसा कहा गया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

किसी विषयमें संशय होने पर उसे दूर करनेके लिए अभिज्ञ व्यक्तिके समीप उसका उत्तर सुनना पड़ता है। श्रवणके समय अन्यमनस्क होने पर अथवा वस्तुके विषयमें धारणा न कर सकने पर बार-बार जिज्ञासा करनी पड़ती है। यहाँ 'प्रणिपात' का तात्पर्य

है—मनोयोगके साथ श्रवण करना। प्रश्न करके उत्तर सुननके लिए उत्कण्ठित होनेसे मूर्खता, अज्ञान और भ्रान्त–धारणाएँ दूर हो जाती हैं।

अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें परिप्रश्न करनेका सार्वजनीन अधिकार है—तर्कका अधिकार नहीं है

अभिज्ञ पुरुषोंके निकट सर्व प्रकारसे परिप्रश्न करनेका सुयोग है। परन्तु 'मैं उनकी बात ग्रहण नहीं करूँगा'—इस बुद्धिसे प्रश्न करना उचित नहीं है। इससे विषयके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। प्रश्नका उत्तर मिलने पर उस उत्तरको काममें लगाना चाहिए।

भ्रमात्मक मानवज्ञान

मानव ज्ञान वर्त्तमान अवस्थामें खण्डित ज्ञान है, जो Misconception या अन्यान्य धारणाके ऊपर आधारित होता है। मानवके Concoction (उद्भावन) और इन्द्रिय–ज्ञानका परिवर्द्धन और परिवर्जन होने पर दृश्य जगत् दूसरे रूपमें प्रतिभात होगा। दृश्य जगत्में मानव द्वारा संगृहीत ज्ञान नाना प्रकारसे भ्रम उत्पादन करता है। खण्डित ज्ञान द्वारा अखण्ड ज्ञानका विचार सम्भव नहीं। मनुष्यके क्षुद्रज्ञानमें वृहत्तम वस्तुकी धारणा accomodate नहीं हो सकती है। बाह्य जगत्के दर्शनसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह मिथ्या ज्ञान है। आंशिक ज्ञानका पूर्ण ज्ञान भी सम्पूर्ण या वास्तव ज्ञान नहीं है। Idealistic चिन्ताश्रोत केवलाद्वैतवादमें घुस गया है। इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा दृश्य जगत्के मानवकी संशोधित अनुभूति भी मिथ्या अथवा दोषयुक्त है। दृश्य जगत्का दर्शन होनेसे चेतनकी वृत्ति बाधाप्राप्त होती है।

जगत् सत्य किन्तु नश्वर है

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका कथन है—जगत् नश्वर और तात्कालिक है, किन्तु साथ ही सत्य भी है। क्योंकि—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तदेव ब्रह्म।'

(तै. भृगु. १ अनु.)

दृश्यजगत् मिथ्या नहीं, खण्डित है

महाप्रभुजीने Idealistic theory (प्रपञ्च–मिथ्यावाद) स्वीकार नहीं किया है। वे कहते हैं कि अनन्तशक्तिविशिष्ट भगवान्की बहिरङ्गा शक्ति द्वारा दृश्य जगत्की उत्पत्ति हुई है। दृश्य जगत् मिथ्या नहीं है, बल्कि मनोधर्ममें दिखलाई पड़नेके कारण खण्डित है। शक्ति परिणत यह Progressive world (गमनशील जगत्) भगवान्की एक प्रकारकी सृष्टि है। उदाहरण स्वरूप ऐसा कहा जा सकता है—पहले फूल, फूलमें फल, फलमें भी पहले कच्चावस्था, फिर पूर्ण–अवस्था, फिर पक्वावस्था और अन्तमें शुष्कावस्थामें परिणति। भगवान्के द्वारा सृष्ट जगत् समय द्वारा उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय विशिष्ट है। इसी शक्तिसे चालित होकर हम माता–पितासे जनमे हैं। बाह्य जगत्से हम सम्बन्धित हैं।

बाह्य जगत्के विषयोंके प्रति दौड़नेका अर्थ है, पूर्ण वस्तुकी आलोचनासे दूर हटना। फिर भी यह जगत् विभिन्न रूपोंमें दीख रहा है, लोग साधन कर भगवान्की ओर अग्रसर हो रहे हैं, इसमें श्रीगुरुदेव उपदेश कर रहे हैं, इसमें सूर्य–चन्द्र आदि प्रकाशित हैं; क्या यह सब झूठा है। जब मनुष्यकी धारणामें जगत्

कल्पित हुआ है, नाना रूपोंमें दिखलाई पड़ रहा है, तब जगत् कुछ नहीं है—सम्पूर्ण मिथ्या है—यह कहना असत् साम्प्रदायिकता है।

जड़ और चेतन

जड़ अर्थात् अचिद् वस्तु अनुभव नहीं कर पाती। उसमें ज्ञानशक्ति (Knowing) इच्छाशक्ति (Willing) और अनुभव शक्ति (Feeling) नहीं होती; वह प्रश्नोंका उत्तर भी नहीं दे सकती। हमारे भीतर, पशुओंके भीतर चेतनता है, वृक्षोंके भीतर भी चेतनता है। चेतन और अचेतन—ये भगवान्‌की दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं। एक भीतरी अङ्गोंकी शक्ति है, दूसरी बाहरी अङ्गोंकी। बाह्य जगत्‌के साथ जीव और जगत्‌का स्वरूपतः भेद है। परन्तु भगवान् और जीवमें तत्त्वतः भेद नहीं होने पर भी परिमाणगत भेद है। भगवान् वृहद् हैं, जीव अणु है। भगवान् अविमिश्र चेतन हैं। परन्तु हमारी मृत्युके समय चेतनता लुप्त हो जाती है, बाह्य जगत्‌का अनुभव नहीं होता तथा उस समय सारी इन्द्रियाँ क्रियाशून्य हो जाती हैं। बाह्य जगत्‌में दो प्रकारके पदार्थ देखे जाते हैं—चिदाभास और जड़।

देह और देही

जीवके चेतनधर्मके साथ एक शरीर युक्त है। 'शरीर ही मैं हूँ'—श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ऐसा नहीं कहते। उनका कहना है—इस शरीरमें आत्मबुद्धि रखना ही विवर्त्तका स्थान है। देह और देही भिन्न हैं। देही Proprietor (स्वामी) है, देह Property (सम्पत्ति) है। शरीर दो प्रकार हैं—स्थूल और सूक्ष्म। इन दोनों शरीरोंका ही स्वामी आत्मा है। मन चेतनाभास है और शरीर चेतनाशून्य है। इन दोनों प्रकारके शरीरोंमें हम आत्मबुद्धि रखते हैं। यही विवर्त्त या Misconception है।

शक्ति-परिणामवादको ही श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने स्वीकार किया है। विभिन्न श्रुतियोंकी विभिन्न उक्तियोंमें सङ्गति न बैठा सकनेके कारण अनेक लोग उनका विभिन्न प्रकारसे अर्थ करके विभिन्न पथोंमें गमन किए हैं। परन्तु भगवान् श्रीचैतन्यदेवने उन परस्पर विरुद्ध जैसी दिखलाई पड़नेवाली श्रुतियोंकी उक्तियोंका सामञ्जस्य किया है। जैसे एक श्रुतिमें है—"सदेव सौम्येदमग्रमासीत्"। दूसरी श्रुतिमें है—'असतः सज्जायत।' साधारणतः पहलेसे ऐसा जान पड़ता है कि पहले 'सत्' था, उसीसे चराचर विश्वकी सृष्टि हुई है। और दूसरीसे—'असत्' से इस दृश्य जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। जैसे दूधमें दहीका उपादान रहता है, इसलिए दूधसे दही होता है; परन्तु जलसे कभी भी दही नहीं हो सकता है। सत्—कारणसूत्रसे, कार्यरूप असत्‌की उत्पत्ति कही गई है। आपाततः उक्त दोनों मन्त्रोंमें विपरीत भाव दिखलाई पड़ने पर भी वेदान्तसूत्रके अविरोध-अध्यायमें इनकी सङ्गति दिखलाई गई है। जिस शास्त्रमें ऐसी मीमांसाएँ हैं, उनका अध्ययन करनेसे हमारा प्रचुर कल्याण होगा।

श्रीचैतन्यदेवकी सहिष्णुताका आदर्श

श्रीचैतन्यदेवने सात दिनों तक मौन रहकर वेदान्त श्रवण कर अदृष्टपूर्व सहिष्णुताका आदर्श दिखलाया है। विवर्त्तवादीका अपसिद्धान्त श्रवण करनेमें ऐसा धैर्य देखकर सार्वभौम भी

आश्चर्यचकित रह गए।

सार्वभौमका पूर्व विचार और गोपीनाथ

महाप्रभुके साथ विचार करनेके पश्चात् सार्वभौम भट्टाचार्यजीने श्रीचैतन्यदेवकी विद्याकी प्रतिभा आदिका दर्शन कर उनको भगवान् स्वीकार किया और उनके चरणकमलोंमें गिर पड़े। अनाथबन्धु भगवान् श्रीचैतन्यदेवने उनको अपनी षड्भुज मूर्त्तिका दर्शन कराकर अपनी निर्मल प्रेमभक्ति प्रदान की। ये सार्वभौम पहले अपने बहनोई गोपीनाथ आचार्यसे दिल्लगीके रूपमें ऐसा कहते थे कि कोई मनुष्य क्या पर-जगत्की बात कह सकता है? चैतन्यदेव तो साधारण मनुष्य हैं। इस पर गोपीनाथ उत्तरमें कहते—मानवज्ञानकी पूर्णावस्थामें ऊपर जगत्से आया हुआ व्यक्ति ही पर जगत्की बात बतला सकता है। तब सार्वभौम यह कहते—साधारण मनुष्यको लोकातीत पुरुष मानना मूढ़ताका ही परिचय है। गोपीनाथ कहते—तुम अपनी बात और अपनी धारणा दूर रख कर श्रीचैतन्यदेवके उपदेशोंका श्रवण करो और तब विचार कर देखो कि वे पर जगत्से आए हैं या नहीं।

(क्रमशः)

वास्तव दीक्षा

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[१० जून २०००, मार्कण्डेय प्रभुके घर, बर्कले, केलिफर्निया, अमेरिका]

एक भक्त—महाराज! ये एक महिला हैं। माधवानन्द दास इनके पति हैं। (कल्पित नाम)

महिला भक्त—मैं यहाँ बैठकर आपसे कुछ प्रश्न करनेका साहस जुटा रही थी।

भक्त—ये रङ्गनाथजीकी पुत्री हैं। (कल्पित नाम)

श्रील महाराज—वह बहुत अच्छी भक्तिनी है।

भक्त—इन्होंने गुरुकुल तथा महाविद्यालयसे स्नातक शिक्षा भी प्राप्त की है।

श्रील महाराज—तुम्हारे प्रश्न क्या हैं?

महिला भक्त—अभी कुछ दिन पूर्व हमारे परिवारके एक सदस्यकी मृत्यु हो गई। वह श्रील स्वामी महाराजकी शिष्या थी। उसने अपना पूरा जीवन कृष्णसेवामें लगा दिया। उसके पास अधिक सामान नहीं था। वह बहुत विनम्र थी। मैं सोच रही हूँ कि जब कोई भक्त वृद्धावस्थासे पूर्व अचानक ही स्वास्थ्य खराब होनेके कारण अथवा अन्य कारणसे मृत हो जाए, तो क्या वह कृष्णके पास जाएगा? क्या वह दूसरे शरीरमें तत्काल ही पुनर्जन्म लेता है? क्या सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके दाह संस्कार तक रहता है?

श्रील महाराज—अपना कथन जारी रखो।

व्रजनाथ प्रभु—वह पूछ रही है कि क्या मृतशरीरकी राख गङ्गामें प्रवाहित करने तक विधि पूर्ण नहीं होती? अथवा राख गङ्गा या यमुनामें प्रवाहित करनेके पूर्व या बादमें जीवात्मा अपने लक्ष्यको प्राप्त करता है? अथवा लक्ष्य क्या है?

श्रील महाराज—यह उस भक्त पर निर्भर करता है। यह निर्भर करता है कि उसने दीक्षा

वास्तविक अर्थमें ली है या नहीं? यह निर्भर करता है कि व्यक्ति शुद्ध रूपमें हरिनाम कर रहा है या नहीं? क्या उसे अपने स्वरूपका ज्ञान था? क्या वह निष्ठाकी स्थितिको प्राप्त हो गई थी या नहीं? यदि किसीको श्रद्धा है तो वह सोचेगा कि यदि मुझे खण्ड-खण्डमें काट दिया जाए तब भी मैं हरिनाम नहीं छोड़ सकता। उसमें पारमार्थिक श्रद्धा थी या नहीं? वास्तवमें कृष्णसेवाकी वासना थी या नहीं? हो सकता है इसके बिना ही उसकी मृत्यु हो गई। वह एक धार्मिक महिला थी तथा कुछ सुकृति कर रही थी। सम्भवतः वह सदैव अच्छा सङ्ग करना चाहती थी। वह पुस्तकें वितरित करती थी तथा धन उपार्जन करके स्वामी महाराजको कर्त्तव्यवशतः अर्पण कर देती थी, परन्तु उसे बहुत अच्छा सङ्ग नहीं मिला। सम्भवतः उसकी श्रद्धा अभी कच्ची हो। ऐसी स्थितिमें उसका शरीर जलाया गया या दफन किया गया उससे कोई हानि नहीं है। इसके पश्चात् उसका एक सामान्य भक्तके घरमें जन्म हो सकता है। वहाँ वह बचपनसे ही सुन सकती है कि केवलमात्र कृष्णसेवासे ही कोई सुखी हो सकता है अन्यथा नहीं। इस पुनर्जन्ममें वह प्रारम्भसे ही जप करेगी, किन्तु शुद्ध रूपसे नहीं। कितनी ही कामनाएँ हैं तथा उसका हृदय अभी शुद्ध नहीं है। बहुतसे अनर्थ तथा अनावश्यक वस्तुएँ हृदयमें हैं। फिर भी धीरे-धीरे वह कुछ उच्च भक्तोंका सङ्ग प्राप्त करेगी। वहाँ वह समझेगी कि श्रद्धा क्या है तथा प्रारम्भसे ही उसे निष्ठा प्राप्त करनेका सुअवसर प्राप्त होगा। अपने पिछले जन्ममें उसने निष्ठा प्राप्त नहीं की थी। क्या तुम जानती हो निष्ठा क्या है?

महिला भक्त—मुझे याद नहीं है।

श्रील महाराज—निष्ठा अर्थात् भक्तिमें दृढ़ता। बुद्धिपूर्वक निर्णय लेना कि "मुझे हरिनाम करना है। इसके अतिरिक्त सफलताका अन्य कोई उपाय नहीं है।" अभी अनुभूति नहीं हुई है, किन्तु सुदृढ़ सङ्कल्प है। वह नहीं सोचेगा, "मैं विवाह करूँ या नहीं? नारदने विवाह नहीं किया, किन्तु शुकदेवजीके पिता व्यासदेवने किया। मैं क्या करूँ?" शास्त्रमें कहा गया है कि यह संसार एक कुएँके समान है। वह कुआँ क्या है? विवाह करना तथा परिवारके प्रति आसक्त होना। यदि कोई कृष्णके प्रति आसक्त है तो क्या वह संसारके प्रति आसक्त होगा? कृष्णके प्रति आसक्तिविहीन होने पर व्यक्ति इसी प्रकारके भ्रम-द्वन्द्वमें फँसा रहता है कि मैं अपने माता-पिता, पत्नी, सन्तान आदिके साथ रहूँ अथवा ये सब त्यागकर उच्च कोटिका सङ्ग प्राप्त करने जाऊँ तथा अपनी श्रद्धाको बर्द्धित करते हुए श्रवण कीर्त्तन करूँ? यदि ये दुविधाएँ वर्त्तमान हैं तो यह निष्ठा भक्ति नहीं है।

निष्ठा अभी नहीं है, किन्तु आएगी। यदि किसीकी इस स्थितिमें मृत्यु हो जाए तब क्या होगा? निष्ठा युक्त नहीं था, भ्रमद्वन्द्वमें फँसा था। ऐसी दशामें अगले पुनर्जन्ममें उसे उच्च कोटिका सङ्ग प्राप्त होगा तथा निष्ठाको प्राप्त करेगा। अब वह सुनिश्चित है कि मुझे सांसारिक जीवन नहीं चाहिए। पाण्डवोंकी भाँति, गोपियोंकी भाँति मैं भजन करूँगा। अथवा वह निश्चय करेगा कि मैं शुकदेव गोस्वामीकी भाँति विवाह नहीं करूँगा। वह एक निष्कर्ष पर पहुँच गया है—"मैं सदैव वैष्णव सेवा करूँगा।" अपने दूसरे जन्ममें भरत महाराजने निश्चय किया—"मैं सांसारिक वासनाओंमें अथवा

अन्य ऐसी किसी वस्तुमें नहीं जाऊँगा जो कृष्णसे विमुख कर दे।"

सम्भवतः हरिनाम तथा हरिकथा श्रवणमें रुचि आ गई है तथा व्यक्तिकी इस स्थितिमें मृत्यु हो जाए, तो उसको क्या प्राप्त होगा? ऐसी स्थितिमें कृष्ण व्यवस्था करेंगे कि उसे अगले जन्ममें एक उत्तम कोटिके गुरु प्राप्त हों। उनकी सेवा करनेसे तथा उनसे श्रवण करनेसे कृष्णासक्ति उत्पन्न होगी। आसक्तियुक्त दशामें मृत्यु होनेपर उसका एक अत्यन्त उच्च वैष्णव परिवारमें जन्म होगा। गीतामें कहा गया है—*"शुचिनाम् श्रीमतां गेहे"*। वहाँ उसकी साधना केवल भावभक्तिकी प्राप्तिके लिए होगी। वहाँसे हो सकता है एक जन्म, दो जन्म, सौ जन्म या सहस्र जन्मोंमें वह शुद्ध प्रेम, शुद्ध–सत्त्वको प्राप्त करे—यही रति (भाव) है।

यदि किसीकी रतिकी अवस्थामें मृत्यु हो जाए, तो वह श्रीशुकदेव गोस्वामी, श्रीनारद गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामीकी भाँति होगा। प्रारम्भसे ही वह अपनी शुद्ध–सत्त्व भक्तिका अनुशीलन करेगा। रतिमें परिपक्वता प्राप्त होनपर देहत्यागके पश्चात् योगमाया उस आत्माको तत्काल महाप्रभुके निकट भेजनेकी व्यवस्था करती है तथा वह उसी लोकमें जाता है, जहाँ महाप्रभुकी लीला वर्त्तमान है। वहाँ उच्च कोटिकी रतिके साथ वह श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरायरामानन्द आदिके सङ्गमें श्रवण–स्मरणादि करेगा।

इस रतिमें पूर्ण परिपक्वता प्राप्त होनेपर योगमाया उसे वहाँ ले जाएँगी जहाँ श्रीकृष्णकी लीलाएँ हो रही हैं तथा उसका कृष्णसे अपने निर्दिष्ट सम्बन्धानुसार किसी गोपीके गर्भसे जन्म होगा। यदि उसका सख्य भाव है, तब वह श्रीदाम, सुबल, मधुमङ्गल या अन्य सखाओंके भाईके रूपमें जन्मग्रहण करेगा। (यदि उसमें वात्सल्य भाव है, तब वह नन्दबाबा, यशोदा मैया जैसा आएगा।) इनमेंसे किसी भी भावकी सिद्धिके लिए उसे गोपीके गर्भसे ही जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। यदि वह गम्भीरतापूर्वक श्रील रूप गोस्वामीका अनुसरण कर रहा है तो उसका जन्म एक विशेष गोपीके गर्भसे होगा। बड़े होनेपर उसका कहीं विवाह होगा, विशेष रूपसे यावटमें तथा उसे श्रीमती राधिकाकी कायव्यूह गोपीका सङ्ग प्राप्त होगा। यदि प्रत्यक्ष कृष्ण–सङ्गके लिए वह योग्या नहीं हुई हो तो उसके घरके द्वार बन्द हो जाएँगे या ताले लग जाएँगे और वह प्राणत्याग कर विरह भावमें श्रीकृष्णसे मिलेगी। यदि उसे नित्यसिद्ध गोपियोंका सङ्ग प्राप्त हो तो वह अति शीघ्र ही श्रीकृष्णसे मिल पाएगी। यदि कोई कषाय शेष है या उसके सन्तान हैं, तब उसे रासमें प्रवेश नहीं मिलेगा, चाहे उसका जन्म गोपी–गर्भसे ही हुआ हो। उसका पति उसे रोकेगा तथा वह प्राण त्याग देगी। वास्तवमें यह प्राणत्याग नहीं है, क्योंकि उस लोकमें मृत्यु नहीं है। यह उस भावनाका त्याग है कि यह मेरी सन्तान है, यह मेरा पति है। उस समय समस्त बाधाएँ समाप्त हो जाएँगी तथा योगमाया उसे रासमें प्रवेश कराएँगी तथा गोपियोंकी सेवा प्रदान करेंगी।

अनेक प्रकारके कानून होते हैं तथा विभिन्न प्रकारके अपराधोंके लिए दण्ड–विधान अलग–अलग हैं। जैसे कोई बन्दूकसे खिलवाड़ कर रहा हो, अचानक गोली चल जाए तथा किसीकी मृत्यु हो जाए। यदि वह सिद्ध कर दे कि उसकी मारनेकी इच्छा नहीं थी तथा गोली

जानबूझकर नहीं मारी गई तो उसे थोड़ा ही दण्ड मिलेगा, मृत्युदण्ड नहीं। किन्तु यदि कोई मारनेकी इच्छासे गोली किसी व्यक्तिको लक्ष्य करके चलाए तथा वह आदमी मरे नहीं, तब न्यायालयसे कठोर दण्ड प्राप्त होगा। यह सभी कानून इन्हीं दिव्य कानूनोंसे आए हैं तथा उनकी छाया मात्र हैं।

यदि कोई तीन लाख नाम करता है, प्रत्येक समय पुस्तकें पढ़ता है तथा सेवामें लगा रहता है, साथ ही वह संसारोन्मुख भी है, तब उसका क्या फल है? उसकी समस्त भक्ति विषमय हो जाएगी। वे कार्य वह अपने लिए ही कर रहा है। यदि कोई रानी जैसी दिखाई दे, कुछ सेवा करते या अधिक हरिनाम करते दिखाई न दे—श्रील रूप गोस्वामी या श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीकी तरह। वह केवल 'हा कृष्ण' कहकर मूर्च्छित हो जाए। पूरे दिनमें वह १६ माला भी न कर सके, वह कृष्ण नाम उच्चारण कर अचेतन हो जाए, अश्रुधार बहे, शरीरमें पुलक हों, समस्त सात्त्विक भाव प्रकाश हो रहे हों। अचेतन अवस्थामें वह आन्तरिक रूपसे सेवा कर रहा है। वह चाह कर भी हरिनाम न कर सके। इसका क्या फल होगा? वह हरिदास ठाकुरसे भी श्रेष्ठ हो जाएगी। श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथदास गोस्वामी संख्यापूर्वक जप करना चाहते थे, किन्तु वे पुकारते थे—'हे राधे व्रजदेविके', 'हे नन्दसूनो' तुम कहाँ हो? वे गिरिराज गोवर्द्धन जाते थे तथा उनका रोदन और भी तीव्र हो जाता था। फिर वे नन्दगाँव, बरसाना तथा अन्य-अन्य स्थानों पर भ्रमण करते थे। वे सदैव विलाप करते रहते थे। फिर नाम-संख्याकी गिनती कब करेंगे?

महाप्रभु रथयात्रा उत्सवमें समस्त दिन रथके निकट रहते थे। वे क्या करते थे? वे पुकारते थे 'सेइ त पराणनाथ पाइलुँ' तथा मूर्च्छित हो जाते थे। उनका दिन इसी प्रकार व्यतीत हो जाता था। वे अपनी नाम-संख्या पूरी कर पाते थे? उत्सवके पश्चात् वे गम्भीरामें रायरामानन्दके साथ विलाप करते 'मेरे कृष्ण कहाँ हैं?' रायरामानन्द—"कृष्ण तो आपके हृदयमें हैं।" तो वे अपनी छाती फाड़ने लगते। स्वरूप दामोदर किसी प्रकार समझाकर उन्हें निवृत्त कराते। वे कृष्णका दर्शन करना चाहते। प्रातः होनेतक वे इसी प्रकार विलाप करते रहते। फिर वह अपनी नामसंख्या कब पूर्ण करेंगे? स्वरूप दामोदर जो सदैव महाप्रभुके सन्निकट रहकर उन्हें सान्त्वना प्रदान करते थे, उनके पास जप करनेका समय कहाँ था? वास्तवमें यह जपसे अधिक है, जपका फल है।

महिला भक्त—मेरी समझके अनुसार यह व्यक्तिकी श्रद्धाके स्तरपर निर्भर करता है।

श्रील महाराज—ओह, अपनी समझको मत लगाओ। सदैव हमारी गुरु-परम्पराकी समझी हुई बातों द्वारा समझनेकी चेष्टा करो। अन्यथा कुछ समझमें नहीं आएगा। तुम्हारी बुद्धि सदैव असफल होती है। अपनी समझको भूलकर गुरु-परम्पराकी समझको स्वीकार करो। विशेष रूपसे श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ तथा कुछ समय पूर्वके श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सरल शब्दोंका अनुशीलन करो।

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका वास्तविक रूपमें आनुगत्य करो। यदि इतने भक्त, गेरुआ वस्त्र धारण करके अनेक ब्रह्मचारी तथा संन्यासी उनकी सेवा कर रहे थे, उनका अनुसरण कर रहे थे, फिर वे लोग संस्थाको

त्यागकर क्यों चले गए? दुर्बल क्यों पड़ गए? इसका अर्थ है कि उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि स्वामी महाराज क्या चाहते थे? वे उनका आन्तरिक अनुसरण नहीं कर रहे थे। वे लोग गाँजा-शराब बेचकर भी अर्थ एकत्र कर रहे थे। उन्होंने सोचा—"कोई हानि नहीं, हमें प्रभुपादके लिए अर्थ उपार्जन करना चाहिए।" किन्तु तुम्हारे प्रभुपादने उनसे ये सब करनेके लिए कभी नहीं कहा।

अतएव अपनी समझको त्यागकर गुरु-परम्परासे अपने हृदयको पूर्ण करो। यदि कर सकोगे, तब समझमें आएगा कि जप तथा स्मरणमें रस है तथा कोई शङ्का भी नहीं रहेगी।

महिला भक्त—मुझे आश्चर्य होता है कि यदि हमारा ध्येय कृष्णसेवा तथा गुरुसेवा है, फिर आपसमें वाद-विवाद क्यों होते हैं—"मैं इस दलका हूँ", "मैं उस दलका हूँ", "मैं इसको अनुसरण कर रहा हूँ", "मैं उसका अनुसरण कर रहा हूँ" इत्यादि।

श्रील महाराज—क्योंकि हमारा उद्देश्य स्थिर नहीं है। तुम्हारा क्या उद्देश्य है, क्या तुम जानती हो? तुम्हारा उद्देश्य सेवा करना है, किन्तु किस रूपमें? हमें भक्तोंकी सेवा करनी चाहिए।

वनमाली देवी दासी—यह सत्य है।

श्रील महाराज—क्या तुम सभी भक्तोंकी वैसी ही सेवा कर सकती हो जैसी अपने पतिकी करती हो?

महिला भक्त—मैं प्रयत्न कर सकती हूँ।

श्रील महाराज—नहीं, तुम नहीं कर सकती। सेवाके लिए एक विशेष सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। अभी हमारा उद्देश्य स्थिर नहीं है। उद्देश्य क्या है? "मुझे कृष्णकी सेवा करनी है। मैं नित्य कृष्णदास हूँ।" पर तुम किस प्रकारके दास हो, यह सुनिश्चित होना चाहिए। यह तभी आएगा जब तुम्हारी दीक्षा वास्तविक अर्थमें हुई हो। केवल यज्ञ करने या गुरु द्वारा नाम बदलनेसे नहीं होगा। श्रील व्यासदेवने श्रील शुकदेव गोस्वामीको दीक्षा दी। नारदजीने व्यासदेवको दीक्षा दी। ब्रह्माने नारदको दीक्षा दी। श्रीचैतन्य महाप्रभुने रूपको दीक्षा दी। किन्तु कोई यज्ञ नहीं हुआ। महाप्रभुने साक्षात् रूपसे कोई मन्त्र नहीं दिया, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी महाप्रभुको ही अपना गुरु मानते हैं।

इसे दिव्य दीक्षा कहते हैं। हमारी दीक्षा यद्यपि यज्ञसे होती है, किन्तु कुछ समय पश्चात् हम कमजोर पड़ने लगते हैं तथा सब कुछ छोड़ बैठते हैं। पुनः अण्डे, मछली खाना आरम्भ कर देते हैं। यह दीक्षा कनिष्ठ अधिकारीके लिए है, उनके मनको स्थिर करनेके लिए कि 'मैं दीक्षित हूँ'। तुम नियमोंका पालन करो, इसके द्वारा तुम्हें दीक्षाकी कक्षामें प्रवेश मिला है। जब तुम परिपक्व हो जाओगे, फिर कृष्णसे अपने विशेष सम्बन्धको जान सकोगे। वह सम्बन्ध क्या है? कृष्ण मेरे मित्र हैं या पुत्र हैं या कृष्ण मेरे प्रियतम हैं? किस प्रकारके प्रियतम? ऐसी बहुत-सी बातें अभी सीखनी हैं। जब वह शिक्षा पूर्ण होगी, तब कृष्णसे अपने विशेष सम्बन्धको जान सकोगे। सभी अनर्थ दूर हो जाएँगे। दीक्षा, दी—दिव्य जन्म तथा क्षा—समस्त अनर्थ दूर हों। तभी यह वास्तवमें दीक्षा है, अन्यथा दीक्षा पूर्ण नहीं है। इस उद्देश्यको प्राप्त करना अति दुर्लभ है। उसी समय व्यक्ति वास्तवमें भक्त बनता है।

श्रीगौराङ्ग सुधा

(वर्ष ४५ संख्या ८ पृष्ठ १८९ से आगे)

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

श्रीअद्वैताचार्यको दिव्यदर्शन

एक दिन श्रीगौरसुन्दर जब भगवद् आवेशमें थे तो उस समय उन्होंने श्रीवासजीके छोटे भाई रामाइको आदेश दिया—"रामाइ! तुम अद्वैताचार्यके पास जाओ और उनसे कहना कि जिनके लिए आपने अनेक वर्षों तक रोते-रोते आराधना की तथा अनेक कठोर उपवास भी किए, वे प्रभु आज आपके लिए अर्थात् आपकी इच्छानुसार जगज्जीवोंका उद्धार करनेके लिए प्रकट हुए हैं। अब वे ब्रह्मा आदिके लिए भी दुर्लभ कृष्णप्रेम जगत्को सहज रूपमें ही प्रदान करेंगे। अतः आप अतिशीघ्र उनके पास जाइए तथा इस कार्यको प्रारम्भ कीजिए, क्योंकि प्रभु आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी इच्छा है कि इस कार्यका शुभारम्भ आप ही करें। इसके अतिरिक्त तुम उन्हें निर्जनमें नित्यानन्दजीके आगमनकी बात तथा और भी तुमने जिन समस्त लीलाओंका दर्शन किया, उन्हें बताना। उनसे कहना कि अतिशीघ्र मेरी पूजाका सारा सामान लेकर अपनी पत्नीके साथ मेरे पास आएँ।"

प्रभुका आदेश पाकर रामाइ आनन्दित होकर हरिनाम करते-करते चल पड़े। प्रभुका स्मरण कर वे इतने भावविह्वल थे कि उन्हें मार्गका भी ज्ञान नहीं था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। परन्तु फिर भी प्रभुकी कृपासे ही वे सीधे श्रीअद्वैताचार्यके घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने आचार्यको प्रणाम किया। परन्तु आनन्दसे विह्वल होनेके कारण इच्छा करने पर भी वे प्रभुका सन्देश सुना नहीं पा रहे थे। उनकी ऐसी दशा देखकर सर्वज्ञ आचार्यने अपने भक्तियोगके प्रभावसे जान लिया था कि यह प्रभुका सन्देश लेकर आया है। अतः वे स्वयं ही हँसते हुए बोले—"रामाइ! लगता है प्रभुने ही मुझे बुलवानेके लिए तुम्हें यहाँ भेजा है।" यह सुनकर रामाइ दोनों हाथ जोड़कर बोले—"हे आचार्य! जब आप सब जान ही गए हैं, तो शीघ्र चलिए।" यह सुनकर आचार्य आनन्दसे विह्वल हो गए। उन्हें अपने शरीरकी भी सुध-बुध न रही। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा देखते-ही-देखते वे मूर्च्छित हो गए। उनकी ऐसी अवस्था देखकर सभी लोग हैरान हो गए। कुछ देर बाद जब उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई तो वे सिंह जैसा गर्जन करते हुए कहने लगे—"अन्ततः मैं अपने प्रभुको जगत्में ले ही आया। मेरे लिए मेरे प्रभु वैकुण्ठ छोड़कर इस धराधाम पर अवतीर्ण हो ही गए।" ऐसा बार-बार कहते हुए आनन्दसे रोते-रोते जमीन पर लोट-पोट खाने लगे। उनकी पत्नी सीतादेवी एवं पुत्र अच्युतानन्द जिसकी उम्र अभी मात्र पाँच वर्षकी थी, वे भी प्रभुके अपने स्वरूपको प्रकाशित करनेकी बात सुनकर आनन्दसे क्रन्दन करने लगे। कुछ क्षण पश्चात् अद्वैताचार्यजीने पूछा—"रामाइ! प्रभुने मेरे लिए क्या कहा?"

रामाइ—"आपको जल्दी आनेके लिए कहा है।"

अद्वैताचार्य—"रामाइ! मैं तभी मानूँगा कि वे मेरे प्रभु हैं, यदि वे मुझे अपना ऐश्वर्य दिखाएँ तथा अपने श्रीचरणकमल मेरे मस्तक पर धारण कराएँ।"

रामाइ—"प्रभो! मैं इस विषयमें क्या कह सकता हूँ? यदि मेरे भाग्यमें हुआ तो मैं भी

आपके ऊपर प्रभुकी कृपाका दर्शन कर सकूँगा, क्योंकि आपके लिए ही प्रभुका अवतार हुआ है।" रामाइकी बातोंसे आचार्य प्रसन्न हो गए तथा प्रभुके पास जानेकी तैयारियोंमें जुट गए। वे अपनी पत्नीसे बोले—"तुम अतिशीघ्र प्रभुके दर्शनके लिए जानेकी तैयारी करो।" यह सुनकर सीतादेवीने जल्दी-जल्दी गन्ध, माला, धूप, वस्त्र, दूध, दही, मक्खन, कर्पूर, ताम्बूल इत्यादि वस्तुओंको एक पात्रमें रख दिया तथा दोनों ही उत्कण्ठित होकर प्रभुके दर्शनके लिए चल पड़े। अद्वैताचार्य रामाइसे बोले—"देखो रामाइ! मैं नन्दनाचार्यके घरमें छिपा रहूँगा। तुम प्रभुको मत बताना कि मैं आया हूँ। तुम उनसे कहना कि आचार्य नहीं आए। तब प्रभु क्या करते हैं, मैं देखना चाहता हूँ।" उधर अन्तर्यामी प्रभु जान गए कि अद्वैताचार्यजी आ गए हैं। अतः वे श्रीवासजीके घरकी ओर चल पड़े। प्रभुकी इच्छासे अन्यान्य वैष्णववृन्द भी वहाँ पर एकत्रित हो गए। सबने देखा कि प्रभु इस समय कुछ आवेशमें हैं। इसलिए कोई कुछ बोले नहीं। सभी लोग चुपचाप खड़े थे। अचानक प्रभु गर्जन करते हुए भगवान्‌के सिंहासन पर चढ़कर बैठ गए तथा कहने लगे—"वह नाड़ा (अद्वैताचार्य) ने प्रभुको जगत्‌में प्रकट करानेके लिए तुलसीदल व जलके द्वारा उनकी आराधना की थी तथा प्रतिज्ञा की थी कि यदि प्रभु इस जगत्‌में आकर इन कलिहत पापी जीवोंका उद्धार नहीं करेंगे, तो मैं अपनी चार भुजाएँ प्रकटकर समस्त पापियोंका संहार कर डालूँगा। उनकी ऐसी प्रतिज्ञासे भगवान्‌का सिंहासन भी हिल गया था। (बङ्गला भाषामें 'हिलना' शब्दका अर्थ 'नाड़ा' होता है। इसीलिए प्रभु उन्हें नाड़ा कह रहे हैं क्योंकि उन्होंने भगवान्‌के सिंहासनको हिला दिया था।) मेरा ऐश्वर्य देखना चाहता है।" यह सुनकर नित्यानन्दप्रभु श्रीगौरसुन्दरका इशारा समझ गए। अतः जल्दीसे उन्होंने प्रभुके मस्तक पर छत्र धारण कर लिया। गदाधरजी प्रभुको ताम्बूल अर्पण करने लगे तथा अन्यान्य वैष्णववृन्द प्रभुकी स्तव-स्तुति करने लगे। उसी समय वहाँ पर रामाइ पण्डित उपस्थित हुए। जैसे ही उन्होंने कहा कि आचार्य नहीं आए तो प्रभु बोले—"वह नाड़ा पहले तो मुझे यहाँ ले आया। परन्तु अब स्वयं तो नन्दन आचार्यके घरमें छिपा हुआ है तथा मेरी परीक्षा करनेके लिए तुम्हें यहाँ भेज दिया। अतः तू शीघ्र जाकर उसे यहीं ले आ।" यह सुनकर रामाइ पुनः अद्वैताचार्यके पास गए तथा सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। सुनकर आचार्य आनन्दित होकर दूरसे ही दण्डवत् करते-करते तथा स्तव-स्तुति करते हुए अपनी पत्नीके साथ प्रभुके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्शन किया—प्रभुका तपे हुए स्वर्ण जैसा सुन्दर वर्ण तथा अद्भुत लावण्य करोड़ों कामदेवोंको भी पराभूत कर रहा था। दोनों भुजाएँ सोनेके दो स्तम्भ सदृश प्रतीत हो रही थीं, जिन पर रत्नजड़ित अलङ्कार झिलमिला रहे थे। वक्षस्थल पर श्रीवत्स एवं कौस्तुभमणि सुशोभित हो रही थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झलमल-झलमल कर रहे थे। गलेमें वैजयन्तीमाला धीरे-धीरे दोलन कर रही थी। उनके श्रीचरणोंमें लक्ष्मीदेवी विराजमान थीं तथा अनन्तदेव उनके ऊपर छत्र धारण किए हुए थे। उनके श्रीचरणोंके नखकमल मणिसदृश चमक रहे थे। चरणोंके निकट ही चतुर्मुख ब्रह्मा, पञ्चमुखीशिव तथा षड्मुखीकार्त्तिकेय इत्यादि प्रणत होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। निकटमें ही नारद, शुक आदि हाथ जोड़कर आनन्दपूर्वक प्रभुका गुणगान कर रहे थे। उनके चरणोंके समीप ही मगरमच्छ पर सवार परम सुन्दरी श्रीगङ्गाजी हाथ जोड़े खड़ी थीं। तभी उनकी दृष्टि प्रभुके श्रीचरणोंमें पड़े हुए हजारों देवताओं पर पड़ी जो रोते-रोते प्रभुकी स्तुति कर रहे थे। एक ओर हजारों फणाधारी नाग

अपने फणोंको उठाकर प्रभुकी स्तुति कर रहे थे। उनके निकट ही उनकी पत्नियाँ भी सजल नयनोंसे क्रन्दन करते-करते गद्गद कण्ठसे प्रभुकी वन्दना कर रही थीं। आकाश गज, हंस, अश्व आदि हजारों विमानोंसे भरा हुआ था, जिन पर विद्यमान इन्द्रादि देवतागण एवं उनकी स्त्रियाँ आनन्दसे प्रभुका गुणगान करते हुए उनके ऊपर पुष्पवर्षा कर रहे थे। इन समस्त दृश्योंको देखकर पति-पत्नी दोनों हतप्रभ हो गए। उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। उन्हें इस प्रकार मोहित हुआ देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर अद्वैताचार्यको लक्ष्यकर बोले—"आचार्य! तुम्हारी प्रतिज्ञाके कारण मुझे यहाँ आना पड़ा। मैं तो क्षीरसागरमें सो रहा था। परन्तु तुमने जैसी मेरी आराधना की एवं जैसा सङ्कल्प किया, उससे मेरी निद्रा भी भङ्ग हो गई और मुझे यहाँ आना पड़ा। इसके अतिरिक्त मेरे चारों ओर जो इन भक्तोंको देख रहे हो, ये सभी मेरे गण हैं जो तुम्हारे लिए ही जगत्में अवतीर्ण हुए हैं। जिन वैष्णवोंका (मेरे परिकरोंका) दर्शन करनेके लिए ब्रह्मा आदि भी लालायित रहते हैं, आज तुम्हारी कृपासे साधारण मनुष्य भी उनका दर्शन पाकर धन्यातिधन्य हो जाएगा।" प्रभुके श्रीमुखसे इन सब बातोंको सुनकर आचार्य प्रेमसे विह्वल होकर अवरुद्ध कण्ठसे कहने लगे—"हे प्रभो! चारों वेद आपके विषयमें वर्णन करते हैं, परन्तु स्वयं उन्होंने भी अभी तक आपका दर्शन नहीं किया। परन्तु आज मेरे सब जन्म-कर्म सफल हो गए, जो कि वेदोंके लिए भी दुर्लभ आपके ऐसे दिव्यस्वरूपके दर्शनका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।"

बोलते-बोलते अद्वैताचार्यका कण्ठ रुद्ध हो गया तथा वे आनन्द-समुद्रमें डूब गए। उनकी ऐसी अवस्था देखकर प्रभु स्वयं ही बोले—"आचार्य! धैर्य धारण करो तथा मेरी पूजा करो।" प्रभुका आदेश पाकर वे आनन्दसे प्रभुके श्रीचरणकमलोंकी पूजा करने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने प्रभुके श्रीचरणोंको धोया एवं उनमें तुलसी और पुष्प अर्पण किए। तत्पश्चात् धूप-दीप आदिसे उनकी आरति की। पूजा करनेके पश्चात् अन्तमें प्रभुको दिव्य माला, वस्त्र तथा अलङ्कार आदि धारण कराकर प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! आप ही विष्णु हैं, आप ही कृष्ण हैं, आप ही नारायण, मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वराह आदि जितने भी अवतार हैं, सब आप ही हैं। प्रभो! चारों वेद आपका अन्वेषण करते रहते हैं परन्तु आप यहाँ छिपकर नाना प्रकारकी लीलाएँ कर रहे हैं। सङ्कीर्त्तन धर्मका प्रचार करनेके लिए आपका यह अवतार हुआ है।" इस प्रकार गुणगान करते-करते अद्वैताचार्यके शरीरमें अष्टसात्त्विक विकार प्रकट होने लगे। उनका शरीर काँपने लगा, आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया तथा देखते-ही-देखते वे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो गया तथा उन्होंने अपने श्रीचरणकमल उनके मस्तक पर धारण करा दिए। यह देखकर उपस्थित सभी भक्तवृन्द जय-जयकार करने लगे। उसी समय आचार्यकी मूर्च्छा भङ्ग हो गई। प्रभुने उन्हें आदेश दिया—"नाड़ा, मेरे कीर्त्तनमें नृत्य कर।" आदेश पाकर वे आनन्दसे नृत्य करने लगे तथा सभी भक्तवृन्द कीर्त्तन करने लगे। आचार्यका अद्भुत नृत्य देखकर प्रभु प्रसन्न हो गए तथा उन्होंने अपने गलेकी माला उनके गलेमें डाल दी। कुछ क्षण पश्चात् प्रभुने उन्हें नृत्य समाप्त करनेको कहा तो वे शान्त हो गए। उनके शान्त होने पर प्रभु बोले—"आचार्य! तुम मुझसे कुछ वर माँगो।" यह सुनकर अद्वैताचार्य कुछ बोले नहीं, चुपचाप खड़े रहे। प्रभुके पुनः पुनः कहने पर वे बोले—"प्रभो! अब आपसे क्या वर चाहूँ। जो वर मैं चाहता था, वह तो सब मिल ही गया।

आपको इस जगत्में लाकर मैंने आपके समक्ष नृत्य किया, यही मेरा अभीष्ट था। इसके अतिरिक्त मुझे क्या चाहिए, क्या नहीं, आप सब जानते ही हैं। आप अन्तर्यामी हैं। अतः मैं क्या कहूँ।"

प्रभु—"तुम्हारे लिए ही मेरा अवतार हुआ है। अब मैं घर-घर जाकर कीर्त्तनका प्रचार करूँगा तथा जिस चीजके लिए ब्रह्मा, शिव आदि भी अभिलाषा करते हैं, वह दुर्लभ कृष्णप्रेम मैं सभीको प्रदान करूँगा।" यह सुनकर आनन्दसे आचार्य बोले—"प्रभो! जो विद्या, उच्च कुल, धन आदिके मदमें आपकी भक्तिका निरादर करते हैं, वे लोग ही जब आपकी कृपासे स्त्री, शूद्र, चाण्डाल आदि सभीको कृष्णप्रेममें प्रमत्त होकर नृत्य करते हुए देखेंगे तो ईर्ष्यासे जल मरेंगे। मैं यही देखना चाहता हूँ। यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होगा।" यह सुनकर प्रभु मुस्कराते हुए बोले—"तुम्हारी इच्छा अवश्य ही पूर्ण होगी।" यह सुनकर सभी लोग आनन्दसे जय-जयकार करने लगे।

श्रीवासजीके घरमें नित्यानन्दप्रभुका विलास

श्रीनित्यानन्दप्रभु श्रीवासजीके घरमें ही रहते थे। वे श्रीवासजीको 'बाप-बाप' कहकर पुकारते थे तथा मालिनी देवीका स्तनपान भी करते थे। यद्यपि मालिनीके स्तनोंमें दूध सूख गया था, परन्तु नित्यानन्दप्रभुके स्पर्शके प्रभावसे उनके स्तनोंसे झर-झर दूधकी धारा प्रवाहित होने लगती। यह देखकर मालिनी देवी आश्चर्यचकित हो जातीं, परन्तु प्रभुके मना करने पर वे इन बातोंको किसीके सामने प्रकट नहीं करती थीं। नित्यानन्दप्रभु बाल्यभावमें आविष्ट होकर अनेक प्रकार चञ्चलताएँ करते थे। अतः प्रभु बोले—"श्रीपाद नित्यानन्द! आप कभी किसीसे झगड़ा कर लेते हैं तो कभी तरह-तरहकी शरारतें करते हैं। आप ऐसा मत किया करें। सब समय शान्त रहा करें।"

यह सुनकर नित्यानन्दप्रभु प्रणयकोपपूर्वक बोले—"मैं तो कभी शरारतें नहीं करता। शरारतें तो आप करते हैं तथा सबको अपने जैसे समझते हैं।"

प्रभु (हँसते हुए)—"श्रीपाद! मैं आपको अच्छी तरहसे जानता हूँ।"

नित्यानन्द—"अच्छा आप ही बताइए कि मैंने क्या दोष किया?"

प्रभु—"श्रीवासजीके घरमें आप भोजन करते समय सारे घरमें यहाँ-वहाँ सर्वत्र ही जूठा दाल-भात इत्यादि फैला देते हैं, जिससे सारा घर जूठा हो जाता है। फिर पूछते हैं कि मेरा क्या दोष है?"

नित्यानन्द—"ऐसा तो पागल करते हैं। क्या मैं पागल हूँ जो एसा कार्य करूँगा? लगता है मैं आप लोगों पर बोझ बन गया हूँ। अब आप सभी लोग मुझे भोजन नहीं देना चाहते हैं। तभी ऐसा बहाना बना रहे हैं कि मैं ऐसा करता हूँ, वैसा करता हूँ। अच्छी बात है, आपलोग आनन्दसे खाइए, मुझे मत दीजिए। परन्तु व्यर्थमें ही मेरी बदनामी तो न कीजिए।"

प्रभु (प्रेमसे हँसते हुए)—"मैं आपकी बदनामी सहन नहीं कर सकता। इसीलिए तो समझा रहा हूँ कि आप भावाविष्ट होकर ऐसी शरारतें न करें कि लोग आपकी निन्दा करें, क्योंकि आपकी निन्दा मेरी निन्दा है।"

नित्यानन्दप्रभु (हँसते हुए)—"आपने मुझे ठीक पहचाना। मैं बहुत ही चञ्चल हूँ। अतः जब कभी भी आप मुझे शरारतें करते हुए देखें तो मुझे अवश्य ही समझाएँगे।"

ऐसा कहकर प्रभुकी ओर देखते हुए खिलखिला कर हँसने लगे। हँसते-हँसते वे बाल्य भावमें आविष्ट होकर नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते उन्होंने अधोवस्त्र (धोती) को खोलकर अपने

सिरपर बाँध लिया तथा दिगम्बर (वस्त्रहीन) होकर जोर-जोरसे उछल-उछल कर नृत्य करने लगे। उन्हें ऐसा करते देख प्रभु बोले—"श्रीपाद! आप यह क्या कर रहे हैं? यह गृहस्थका घर है। गृहस्थके घरमें यह सब उचित नहीं है। अभी आप कह रहे थे कि क्या मैं पागल हूँ और अभी अपनी ही बातको भूल गए हैं।"

परन्तु नित्यानन्दप्रभुको अपने शरीरकी सुध-बुध ही नहीं थी। वे तो गोपबालकके भावमें आविष्ट थे। उनके इन भावोंको देखकर प्रभुको भी व्रजलीलाका स्मरण हो आया तथा उनका हृदय आनन्दसे नाचने लगा। फिर उन्होंने स्वयं नित्यानन्दको पकड़ कर अपने हाथसे उन्हें वस्त्र पहनाया। जब कभी भी नित्यानन्दजी बाल्यभावमें आविष्ट हो जाते तो उस समय छोटे बच्चेकी भाँति जिद करने लगते। अपने हाथसे कुछ भी नहीं खाते। वे मालिनीदेवीकी गोदीमें बैठ जाते और मालिनीदेवी धीरे-धीरे उन्हें पुचकारते हुए तथा उनके सिर पर हाथ फेरते हुए अपने हाथोंसे उन्हें खिलाती थी।

(क्रमशः)

विविध संवाद

श्रीजगन्नाथपुरी यात्रा संवाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरसस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रियपार्षद नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी अहैतुकी करुणा एवं उनके आचार-विचारके अनुरूप श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे इस वर्ष पुरुषोत्तम व्रतके उपलक्ष्यमें श्रीपुरुषोत्तम धाम पुरीमें अन्तिम पञ्चदश दिवस-व्यापी परिक्रमा और हरिकथा श्रवण-कीर्त्तनका अत्यधिक सुन्दर रूपसे आयोजन किया गया। इस परिक्रमाकी घोषणा गत वर्ष श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमाके समय की गयी थी।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य एवं सभापति ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं समितिके उपसभापति तथा सम्पादक ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें लगभग एक हजार श्रद्धालु भक्तोंने श्रीक्षेत्रधाम परिक्रमामें भाग लिया, जिनमें संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, वृद्ध, नवयुवक, छोटे-बड़े, देशी-विदेशी सभी प्रकारके भक्त थे।

ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने परिक्रमाके प्रारम्भ होनेसे एक दिन पहले सन्ध्यामें अपने ओजस्वी भाषणमें बताया कि जो भक्तवृन्द श्रीमन्दिरमें प्रवेश नहीं कर सकते, उन्हें बिलकुल भी दुःख नहीं करना चाहिए। नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरके आनुगत्यमें श्रील रूप गोस्वामी और श्रील सनातन गोस्वामी भी श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश नहीं करते थे। इसलिए जिन भक्तोंको वे लोग दर्शनके लिए जाने देना चाहते हैं, केवल वही जाएँ; अन्य भक्तगण बाहरसे ही सिंह द्वारसे पतितपावन भगवान् जगन्नाथजीके दर्शन करें।

श्रील महाराजजीने कहा कि जिस प्रकार गौड़ देशके भक्तोंका श्रीजगन्नाथपुरीमें आनेका मुख्य उद्देश्य श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन करना था एवं श्रीजगन्नाथजीका दर्शन गौण था, उसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके प्रिय अन्तरङ्ग भक्तोंकी लीला-स्थलियों एवं उनकी कृपा प्राप्ति ही हमारे यहाँ आनेका मुख्य उद्देश्य है एवं अन्य सब कुछ गौण है।

प्रथम दिवसकी परिक्रमा नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरकी समाधि, प्रपूज्यचरण श्रीश्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीके मठ, श्रीगम्भीरा मन्दिर, सिद्धबकुल, श्वेतगङ्गा, सार्वभौम भट्टाचार्यके

वासस्थान एवं श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें गई। श्रीगम्भीरा मन्दिरमें हुई हरिकथाका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—इसी स्थान पर श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीवल्लभ भट्टके हृदयमें प्रेरणा प्रदान कर उनको श्रीगदाधर पण्डितसे युगल मन्त्र प्रदान करवाया था। श्रीदामोदर पण्डित द्वारा श्रीमन्महाप्रभुको वाक्यदण्ड एवं महाप्रभुने उनको नवद्वीप भेजा था। छोटे हरिदासके लिए महाप्रभुका द्वार बन्द हुआ था। श्रीजगदानन्द पण्डित द्वारा बङ्गालसे लाया गया सुगन्धित तैल-भाण्डको फोड़ा गया था। श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगदानन्द पण्डितके प्रणय-कोपसे भयभीत रहते थे। श्रीमन्महाप्रभु काशीमिश्रके भवनके सप्त बन्द द्वारोंको पार कर विभिन्न स्थानोंमें भावावेशमें गमन करते थे। श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरायरामानन्दको लक्ष्यकर श्रीमन्महाप्रभुजीने यहीं पर श्रीशिक्षाष्टककी व्याख्या की थी। रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभुमें दोष दर्शन इत्यादि अनेक प्रसङ्गों पर अत्यधिक गूढ़ आलोचना हुई।

द्वितीय दिवस परिक्रमा श्रील प्रभुपादके आविर्भाव स्थल, जगन्नाथ वल्लभ उद्यान, नरेन्द्र सरोवर, गुण्डिचा मन्दिर, श्रीनृसिंह देव मन्दिर एवं इन्द्रद्युम्न सरोवरके दर्शन करने गयी। सन्ध्याकी हरिकथामें श्रील महाराजजीने श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जनके रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस मार्जनका उद्देश्य सब प्रकारके अनर्थ, अनर्थोंकी गन्ध तकको दूर करना है। श्रील महाराजजीने कहा कि जब व्रजवासियों और गोपियोंने श्रीकृष्णके कुरुक्षेत्र आनेका संवाद सुना तो उन्होंने सोचा कि अब हम अवश्य ही बलपूर्वक कृष्णको वृन्दावनमें ले आएँगे। परन्तु वृन्दावनके वन, उपवन, कुञ्ज इत्यादि सभी तो बहुत ही सोचनीय परिस्थितिमें हैं, इसलिए कृष्णको वृन्दावनमें लानेसे पहले इन सबका बहुत सुन्दर रूपसे मार्जन करना आवश्यक है। इसी चिन्तासे सभी गोपियोंने मिलकर व्रजके प्रत्येक कुञ्जका बहुत ही कुशलतापूर्वक मार्जन किया। गोपियोंके इसी भावका आनुगत्य करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने सभी भक्तोंके साथ मिलकर गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन किया जिससे श्रीजगन्नाथजी सुन्दराचलमें विराजमान हों।

श्रील प्रभुपादके आविर्भाव स्थल पर श्रील महाराजजीने कहा कि यदि ये महापुरुष इस धराधाम पर अवतरित नहीं होते तो श्रीमन्महाप्रभु, षड् गोस्वामी एवं श्रीलभक्तिविनोद धाराका स्रोत-प्रवाह बन्द हो जाता। इसी स्थान पर श्रील महाराजजी अपने परमाराध्यतम गुरुदेव एवं प्रभुपादके मधुर सम्बन्ध पर भी आलोकपात किया।

समय-समय पर श्रील भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रील मधुसूदन महाराज, श्रील आचार्य महाराज, श्रील विष्णु महाराज, श्रील माधव महाराज, श्रील अरण्य महाराज इत्यादिने भी श्रील महाराजजीके आदेशसे अनेक विषयों पर भाषण प्रदान किए।

श्रील महाराजजीने प्रसङ्गवश बताया कि गम्भीरा (जगन्नाथपुरी) एवं गोदावरी (महाप्रभु- रायरामानन्दके संवादका स्थल) को कहीं किसी भी शास्त्रमें वृन्दावन नहीं कहा गया, परन्तु यद्यपि नवद्वीपमें श्रीमन्महाप्रभुकी अत्यधिक साधारण दिखाई देनेवाली लीलाएँ हुई हैं, फिर भी उसी श्रीनवद्वीप धामको सर्वत्र गुप्त वृन्दावन कहा गया है। श्रीधाम नवद्वीपमें महाप्रभुकी नरवत् लीला होनेके कारण उसको सर्वश्रेष्ठ धाम कहा गया है।

एक दिन विश्रामके उपरान्त परिक्रमा बस द्वारा श्रीअलालनाथ मन्दिर, बैंटपुर (श्रीरायरामानन्द प्रभुका जन्मस्थान), साक्षीगोपाल, लिङ्गराज मन्दिर, अनन्त वासुदेव, गौरी कुण्ड, कोनार्क सूर्य मन्दिर, धौलिगिरि, उदयगिरि इत्यादि दर्शनकर लगभग सन्ध्या ९ बजे तक लौटी।

श्रील प्रभुपाद एवं अपने श्रीगुरुदेवकी भाँति श्रील महाराजजी भी सत्यके निर्भीक प्रचारक हैं, इसका उदाहरण अनेक स्थानों पर देखा जाता है।

उनमेंसे एक उदाहरण पर हम चर्चा करना चाहते हैं। श्रीअलालनाथजीके मन्दिरमें विदेशी भक्तोंका प्रवेश निषेध है, ऐसा सुनकर श्रील महाराजजीने वहाँ पर उपस्थित समस्त ग्रामवासी एवं पूजारीवृन्दके मध्यमें कहा—"आपलोग स्मार्त्तवादी हैं। वैष्णव लोग तो आत्माके स्तर पर विचार करते हैं। जो लोग तिलक, कण्ठी, आचार-विचार इत्यादिका थोड़ा-सा भी पालन नहीं करते, मद्य-मांस इत्यादिका सेवन करते हैं, उन्हें बिना किसी रोक-टोकके आपलोग मन्दिरमें प्रवेश करने देते हैं और जो भक्त तिलक, कण्ठी धारण करते हैं, शुद्ध गुरु-परम्परामें कृष्णमन्त्रमें दीक्षित हैं, सभी प्रकारके आचार-विचारका पालनकर भक्तिमय जीवन धारण कर रहे हैं, उन्हें आप मन्दिरमें प्रवेश करनेसे निषेध करते हैं, यह कैसा विचार है आपलोगोंका? क्या आप श्रीमद्भागवत, वेद, पुराण इत्यादि पर श्रद्धा रखते हैं? यदि रखते हैं तो मुझे बताएँ कि श्रीवेदव्यास, श्रीशुकदेव गोस्वामी किस जातिके थे? भगवान् रामचन्द्र जो शवरीके आश्रममें गए, वह कौन-सी जातिकी थी? मन्दिरमें प्रवेश पर निषेध धर्मविरोधी व्यक्तियों पर लगाया गया था, जो मन्दिर, विग्रह इत्यादिको नष्ट करना चाहते थे। परन्तु भगवान्‌के नामका आश्रय ग्रहण करने वाले और मन्दिरमें श्रद्धापूर्वक ठाकुरजीके दर्शनोंके लिए आनेवालेको तो कौन-सा ऐसा मूर्ख होगा जो उन्हें मन्दिरमें प्रवेश करनेसे रोकेगा? अर्थात् सभी उनकी प्रवृत्तिको देखकर आनन्दित होंगे।

साक्षीगोपाल, भुवनेश्वर लिङ्गराजकी कथाकी विशेष रूपसे व्याख्या की गयी।

और एक दिन परिक्रमा श्रील प्रभुपादकी भजन-स्थली, चटक पर्वत, टोटा-गोपीनाथ एवं यमेश्वर टोटाके दर्शनोंके लिए गयी। श्रील प्रभुपादने श्रीमन्महाप्रभुजीकी स्मृतिरक्षाके लिए चटक पर्वत पर मठकी स्थापना की। वंशीवट, श्रीगदाधर पण्डित, टोटा गोपीनाथ, गोवर्द्धन, यमुना इत्यादि सभी स्थानोंको उद्दीपक जानकर वे यहीं पर भजन करते थे।

सर्वप्रथम जगन्नाथ दास बाबाजी (उड़िया) ने श्रील नरोत्तम दास ठाकुरको श्रीक्षेत्रमण्डलकी परिक्रमा करवाई थी। श्रील महाराजजीने श्रीटोटा-गोपीनाथ मन्दिरमें अनेक गूढ़ तत्त्वों पर विचार किया, जिसमेंसे कुछ तत्त्वोंका संक्षिप्त वर्णन यहाँ पर दिया जा रहा है—

पूर्वपक्ष—यदि महाप्रभुने श्रीराधाजीके भाव एवं अङ्गकान्तिको धारण किया तो श्रीराधाजीमें उनका अपना भाव कुछ भी शेष नहीं रहा?

उत्तर—यद्यपि श्रीकृष्णने श्रीमती राधाजीके भाव एवं अङ्गकान्तिको अङ्गीकार किया, फिर भी श्रीमती राधाजी पूर्ण ही रहीं अर्थात् उनके भाव एवं अङ्गकान्तिमें किसी प्रकारकी कोई कमी नहीं आई। उदाहरण—जैसे अभिनय करते हुए कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिके भावको जब लेता है तो वह उस व्यक्तिके भावमें विभोर होकर ठीक उसीकी भाँति तो अभिनय करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे दूसरे व्यक्तिका भाव ही लुप्त हो गया।

पूर्वपक्ष—यदि श्रीगदाधर पण्डित स्वयं श्रीमती राधाजी हैं, तो अपने वाम्य भावको कभी भी प्रकाशित क्यों नहीं करते?

उत्तर—श्रीगदाधर पण्डितमें मादनाख्य भाव ही है, परन्तु वे उसे प्रकाशित नहीं करते, क्योंकि वह देखना चाहते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु उनके पात्रका ठीक प्रकारसे अभिनय कर रहे हैं या नहीं? दूसरा, श्रीमन्महाप्रभु नागर नहीं है। मधुर रससे उनकी सेवा नहीं हो सकती, दास्य भावसे ही श्रीमन्महाप्रभुकी सेवा करनी होगी। इसी सिद्धान्तको प्रतिपादन करनेके लिए भी यह लीला हुई। यदि गौरलीलामें श्रीगदाधर पण्डित वाम्यभावका प्रदर्शन करते तो श्रीगौरलीला कदापि सम्भव नहीं होती। इसीलिए श्रीगदाधर पण्डितने इस लीलाकी पुष्टिके

लिए सर्वत्र दाक्षिण्य भावको दिखलाया।

पूर्वपक्ष—यदि गदाधर पण्डित स्वयं श्रीमती राधारानी है, तो उन्हें श्रीचैतन्य चरितामृतमें कहीं पर गौर शक्ति, कहीं पर लक्ष्मी स्वरूपा एवं कहीं पर रुक्मिणी जैसे भावोंवाला क्यों कहा गया है?

उत्तर—मुरारी गुप्तके कड़चा, नरहरि सरकारके श्रीभजनामृतम् एवं स्वरूप दामोदरके कड़चामें भी श्रीगदाधर पण्डितको श्रीमती राधाजीसे अभिन्न स्वीकार किया गया है। यद्यपि श्रीचैतन्य चरितामृतके विभिन्न प्रसङ्गों में श्रीगदाधर पण्डितके विषयमें बाह्यतः वैषम्य दिखाई देता है तथापि वास्तविकता कुछ और ही है। इसमें किसी भी प्रकारका कोई संशय नहीं है, आवश्यकता है तो केवल ठीकसे सामञ्जस्य करनेकी। सर्वप्रथम उनमें रुक्मिणीजी जैसा भाव क्यों आरोपित किया गया, इस पर विचार करते हैं। श्रीगदाधर पण्डितमें श्रद्धासे लेकर मोदन, मादन इत्यादि श्रीमतीजीके सभी भाव थे। किन्तु अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवा एवं उनकी प्रसन्नताके लिए उन्होंने अपने भावोंको छिपा कर रखा, अर्थात् रुक्मिणीजी जैसे दाक्षिण्य भावको अङ्गीकार किया।

दाक्षिण्य भाव किसे कहते हैं, इसको समझाते हुए श्रील महाराजजीने श्रीरुक्मिणीजीका उदाहरण देते हुए कहा कि अपनी इच्छाओंको दबाकर भी अपनी इच्छाके विपरीत भी अपने प्रियतमकी सेवा करना ही दाक्षिण्य भाव कहलाता है। ऐसी सेवा अत्यधिक कठिन होती है, परन्तु श्रीमती राधाजी प्रेमका चरम आश्रय होने पर भी श्रीगदाधरजीके रूपमें ऐसी कठिन सेवा करनेकी भी शिक्षा हमको दे रही हैं। यदि गदाधर पण्डित श्रीमन्महाप्रभुको देखकर 'हा प्राणनाथ!' कहेंगे, तो श्रीमन्महाप्रभु उनको आलिङ्गन करनेके लिए आएँगे और उनका सम्पूर्ण भाव ही नष्ट हो जाएगा। दूसरी बात श्रीमती राधाजी सर्वलक्ष्मीमयी हैं, इसलिए उनको लक्ष्मीस्वरूपा कहनेमें भी किसीको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

पूर्वपक्ष—यदि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं, तो फिर वे गदाधर पण्डितके निकट जाकर भागवतका श्रवण क्यों करते हैं?

उत्तर—श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं, यह बात पूर्ण सत्य है। परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी तीन वाञ्छाओंको पूर्ण करने हेतु ही यह रूप धारण किया है। इन्हीं वाञ्छाओंकी पूर्त्ति हेतु ही उन्होंने श्रीमती राधारानीकी अङ्गकान्ति एवं उनके भावको ग्रहण किया है और अब श्रीमती राधारानीके भावको लेकर राधारानीकी भूमिकामें अभिनय कर रहे हैं। परन्तु उस भूमिकाको अत्यधिक सुन्दर रूपमें करने हेतु उन्हें कुछ विस्तृत जानकारीकी आवश्यकता है, जो स्वयं श्रीमती राधाजीके अतिरिक्त कोई भी नहीं दे सकता, क्योंकि श्रीमद्भागवतम् राधाजीका ही ग्रन्थ है, इसमें उन्हींके माहात्म्यको ही वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ आश्रय जातीय ग्रन्थ है। इसलिए स्वयं श्रीकृष्ण, श्रीमन्महाप्रभुके रूपमें श्रीगदाधर पण्डितके मुखसे श्रीमद्भागवतका श्रवण कर रहे हैं, जोकि स्वयं अपने ही भावोंका गुणगान कर रही हैं। गदाधर पण्डितकी व्याख्याओंको सुनकर श्रीमन्महाप्रभु गद्गद हो जाते थे।

पूर्वपक्ष—महाप्रभुके साढ़े तीन अन्तरङ्ग भक्तोंमें श्रीगदाधर पण्डितको क्यों नहीं लिया गया?

उत्तर—इसके पीछे एक गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। यदि गदाधर पण्डित गम्भीरा जाते तो श्रीमन्महाप्रभु उन्हें देखकर अपने भावको ही खो बैठते तो फिर बाकी बचता ही क्या? अर्थात् समस्त लीलाएँ ही नष्ट हो जातीं।

पूर्वपक्ष—यदि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं एवं गदाधर पण्डित श्रीमती राधारानी है, तो फिर श्रीमन्महाप्रभु टोटा गोपीनाथको गदाधर पण्डितको देते समय यह क्यों कह रहे हैं कि मैं अपने प्राणधनको तुम्हें दे रहा हूँ?

उत्तर—जैसा कि हम सभी जानते हैं कि श्रीचैतन्य महाप्रभु राधा एवं कृष्णका मिलित स्वरूप हैं—कभी-कभी श्रीचैतन्य महाप्रभु कृष्णके भावमें आविष्ट रहते थे एवं अधिकांशतः श्रीमतीजीके भावमें निमग्न रहते थे। जब श्रीचैतन्य महाप्रभु गदाधर पण्डितसे कह रहे हैं कि मैं अपने प्राणधनको तुम्हें दे रहा हूँ, उस समय वे श्रीमती राधाजीके भावमें थे।

पूर्वपक्ष—श्रीगदाधर पण्डितने किस-किसको मन्त्र दान दिया था?

उत्तर—श्रील लोकनाथ गोस्वामी, श्रील भूगर्भ गोस्वामी, श्रीमधु पण्डित, श्रीवल्लभ भट्ट, श्रीअद्वैताचार्यके सुपुत्र अच्युतानन्द प्रभु, श्रीनाथ चक्रवर्त्ती (श्रील कवि कर्णपूर गोस्वामीके दीक्षा-गुरु), मामू ठाकुर, अमोघ पण्डित (श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके दामाद) आदि अनेकानेक महानुभावोंको मन्त्र प्रदान किया था।

श्रीगदाधर पण्डितके तत्त्वपर और भी अनेक तर्क-वितर्क हुए, जिसका सम्पूर्ण वर्णन देना स्थानाभावके कारण सम्भवपर नहीं है। हम आनेवाले समयमें उसे प्रकाशित करनेका भरपूर प्रयास करेंगे।

अब परिक्रमा श्रीनीलमाधवजीके दर्शन हेतु गयी एवं श्रील महाराजजीने श्रीरायरामानन्द संवादका शुभारम्भ किया। सर्वप्रथम श्रील महाराजजीने कहा कि यह संवाद गम्भीर एवं रसपूर्ण है। यदि श्रीचैतन्य चरितामृतसे श्रीरूप शिक्षा, श्रीसनातन शिक्षा, रथ-यात्रा प्रसङ्ग एवं रायरामानन्द संवादको निकाल दिया जाए, तो उसमें कुछ भी शेष नहीं रहेगा। इसी प्रसङ्गकी प्रतिदिन प्रातः एवं सन्ध्या समय श्रील महाराजजीने अतीव मधुर, तात्त्विक तथा रसमय व्याख्या की, जिसे सभी भक्तोंने अत्यधिक उत्साह तथा प्रेमपूर्वक श्रवण किया। श्रील महाराजजीने बताया कि अभी हम जो भी गुरुसेवा, वैष्णव-सेवा कर रहे हैं, वह अर्चन है। परन्तु जब हम उनके मनोऽभीष्टको जानकर केवल उन्हींकी प्रसन्नताके लिए यदि अर्चन भी करेंगे, तो वह भी सेवा बन जाएगा। श्रीगुरुदेव बीज प्रदान करते हैं और वह किस प्रकारसे फलीभूत होगा, उसका भी उपाय बताते हैं। परन्तु शिष्य जब तक स्वयं साधन नहीं करेगा, तब तक वह बीज अच्छी प्रकारसे अङ्कुरित नहीं होगा।

परिक्रमा चलते-चलते प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजजीके मठमें पहुँची। सभी मठोंमें श्रील महाराजजीका विशेष आदर-सत्कार किया गया। श्रील महाराजजीने अपने गुरुदेवके साथ उनके सम्बन्ध एवं उनके द्वारा प्रभुपादकी सेवा करनेका विशेष रूपसे वर्णन किया। प्रसङ्गवशतः श्रील महाराजजी अपने प्रति श्रील गोस्वामी महाराजजीकी कृपाका वर्णन इस प्रकार किया कि इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठकी स्थापनाके समय जब श्रील महाराजजी दशमूल शिक्षा पर श्रील गोस्वामी महाराजजीके समक्ष हरिकथाका परिवेशन कर रहे थे, तो समयके अभावके कारण जब श्रील पर्वत महाराजजीने उन्हें रोका तो श्रील गोस्वामी महाराजजी बिगड़ गए और उन्होंने कहा कि यह बालक जब तक बोलना चाहे, इसे बोलने दो। जितने सुन्दर एवं सरल रूपमें इतने कठिन सिद्धान्तोंको यह वर्णन कर रहा है, ऐसा यहाँपर बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता।

अब परिक्रमा बङ्किम मुहाना (श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्राजीका प्राकट्य स्थल), बेड़ी हनुमान एवं प्रपूज्यचरण श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजजीके मठमें पहुँची।

श्रील महाराजजीने पुरुषोत्तम मासका पुरुषोत्तम धाममें पुरुषोत्तम भगवान्के निकट पुरुषोत्तम व्रतके पालनके माहात्म्यका भी वर्णन किया। श्रील महाराजजीने कहा कि हम सभी बहुत ही सौभाग्यशाली हैं कि हमें यहाँ पर श्रवण, कीर्त्तन,

स्मरण आदि नवधा भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेका भरपूर अवसर मिला है। फिर भी कोई व्यक्ति यदि इस अवसरका लाभ उठा न पाए तो उसका दुर्भाग्य है।

श्रील महाराजजी जगन्नाथपुरीसे होते हुए भुवनेश्वर स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके निर्माणाधीन मठमें दो दिन तक रहे। अनेक भक्तोंने भी उनका अनुगमन किया। वहाँ पर उन्होंने दो दिन तक हरिकथा कही एवं कुछ नये भक्तोंने उनसे हरिनाम एवं दीक्षा भी प्राप्त की। भुवनेश्वरसे वे दिल्लीमें आए। वहाँ पर ईस्ट ऑफ कैलाशके निकट गढ़ीमें दिल्लीके भक्तों द्वारा एक सुन्दर कार्यक्रमका आयोजन किया गया एवं ब्रह्मचारी व गृहस्थ भक्तोंने श्रील महाराजजीके आनुगत्यमें नगर-सङ्कीर्त्तन भी निकाला।

दिल्लीसे श्रील महाराजजीने हरिद्वारके लिए यात्रा की। भगवती गङ्गाके तट पर स्थित श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठमें वे पाँच दिन तक अपने ग्रन्थ अनुवादमें व्यस्त रहे। श्रीमाधवी कुञ्ज (श्रीसोमनाथ दासाधिकारी द्वारा निर्मित) के गृहप्रवेशके उपलक्ष्यमें अधिवासके दिन २५ अक्टूबरको एक विशाल शोभायात्रा निकाली गयी। इस यात्रामें श्रीचैतन्य महाप्रभुका श्रीविग्रह एवं श्रील महाराजजीके साथ लगभग डेढ़ सौ संन्यासी व ब्रह्मचारी एवं सैकड़ों विदेशी व देशी भक्त थे। हरिद्वारके लोगोंका कहना था कि उन्होंने पहली बार इतनी सुन्दर शोभायात्रा देखी है, जिसमें सभी भक्त, अभक्त, दर्शनार्थी एक साथमें उद्दण्ड नृत्य-कीर्त्तन करते हुए पागल-से हो गए हैं। अगले दिन प्रातः श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीराधा-विनोदविहारीजीकी मङ्गल आरतिके उपरान्त श्रीलमहाराजजीकी उपस्थितिमें वैष्णव होमका सुन्दर आयोजन किया गया। श्रील महाराजजीने वहाँ पर हरिकथाके माध्यमसे बताया कि इस स्थानका नाम हरिद्वार व हरद्वार दोनों हैं। हरि अर्थात् भगवान् श्रीबद्रीनाथके दर्शन हेतु हरिद्वार और श्रीकेदारनाथ दर्शन हेतु हरद्वार—यहाँसे होकर ही जाना पड़ता है। उन्होंने अपने गुरुदेव व पाँच सौ भक्तोंके साथ की गयी अपनी पैदल यात्राका भी स्मरण किया। इसी हरिद्वारमें दक्ष प्रजापतिने महादेव-रहित यज्ञ किया था एवं इसी स्थान पर सतीने अपनी देहका त्याग किया था। उद्धवजी, विदुरजी, धृतराष्ट्र, गान्धारी एवं श्रीवेदव्यासजी इत्यादि अनेक भक्तोंने यहीं पर आ करके अपना भजन किया था।

२७ अक्टूबरको श्रील महाराजजी हरिद्वारसे दिल्ली होते हुए मथुरामें पहुँच चुके हैं एवं कार्त्तिक माससमें आयोजित की जानेवाली श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन प्रारम्भ हो चुका है।

आतङ्कवाद

अभी कुछ दिन पहले सर्व प्रकारसे लौकिक समृद्ध, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित तथा आत्म-रक्षाके विविध दृष्टिकोणसे सुरक्षित अमेरिकाके पेन्टागन, वार्ल्ड ट्रेड सेन्टर व ह्वाइट हाउसको लक्ष्यकर आतङ्कवादियोंने प्रहार किया। उससे सारा संसार चकित और सशङ्कित हो गया। कुछ वर्षोंसे अन्तर्राष्ट्रीय जगत्में भारतकी आतङ्कवादकी गुहार अनसुनी की जा रही थी। किन्तु इस आतङ्कवादका जब आक्रमण अमेरिका पर हुआ, तब अमेरिकाके साथ सारे विश्वकी आँखें खुली हैं। परन्तु आतङ्कवादकी मूल जड़ पाकिस्तानकी जिस प्रकार सर्व प्रकारकी आर्थिक तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी बेलगाम सहायता दी जा रही है, उसके द्वारा आतङ्कवादको अनदेखा किया जा रहा है—उससे आतङ्कवाद बढ़ेगा ही—कदापि समाप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और उसके सहयोगी ब्रिटेन आदि देशोंकी दोमुखी चाल आतङ्कवादके मूल स्वरूपको समाप्त नहीं कर सकती। विश्वके राष्ट्र इस आतङ्कवादके मूल स्वरूपको समझ कर यदि कार्य करते हैं, तो जगत्का कल्याण सम्भव है—अन्यथा सम्भव नहीं।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ } श्रीगौराब्द ५१५
वि. सं. २०५८ पौष मास, सन् २००१, ३१ दिसम्बर—२८ जनवरी
{ संख्या १०

श्रीश्रीकृष्णचन्द्राष्टकम्

[श्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामिविरचितम्]

श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

अम्बुदाञ्जनेन्द्रनीलनिन्दिकान्तिडम्बरः कुङ्कुमोद्यदर्कविद्युदंशुदिव्यदम्बरः।
श्रीमदङ्गचर्चितेन्दुपीतनाक्तचन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।१।।

जिनकी कान्तिछटा नवजलधर, सुन्दर काजल तथा इन्द्रनीलमणिकी शोभाको भी पराभूत कर रही है, जिनका वस्त्र कुङ्कुम, उदय हो रहे सूर्य और विद्युत्से भी दीप्तमान् है, जिनका श्रीअङ्ग कर्पूर और कुङ्कुमयुक्त चन्दनसे चर्चित है, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।१।।

गण्डताण्डवातिपण्डिताण्डजेशकुण्डलश्चन्द्रपद्मषण्डगर्वखण्डनास्यमण्डलः ।
वल्लवीषु वर्द्धितात्मगूढभावबन्धनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।२।।
नित्यनव्यरूपवेशहार्द्दकेलिचेष्टितः केलिनर्मशम्मदायिमित्रवृन्दवेष्टितः।
स्वीयकेलिकाननांशुनिर्जितेन्द्रनन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।३।।
प्रेमहेममण्डितात्मबन्धुताभिनन्दितः क्षौणीलग्नभाललोकपालपालिवन्दितः।
नित्यकालसृष्टविप्रगौरवालिवन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।४।।
लीलयेन्द्रकालियोष्णकंसवत्सघातकस्तत्तदात्मकेलिवृष्टिपुष्टभक्तचातकः।
वीर्यशीललीलयात्मघोषवासिनन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।५।।
कुञ्जरासकेलिसीधुराधिकादितोषणस्तत्तदात्मकेलिनर्मतत्तदालिपोषणः।
प्रेमशीलकेलिकीर्त्तिविश्वचित्तनन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।६।।
रासकेलिदर्शितात्मशुद्धभक्तिसत्पथः स्वीयचित्ररूपवेशमन्मथालिमन्मथः।
गोपिकासु नेत्रकोणभाववृन्दगन्धनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।७।।
पुष्पचायिराधिकाभिमर्षलब्धितर्षितः प्रेमवाम्यरम्यराधिकास्यदृष्टिहर्षितः।
राधिकोरसीह लेप एष हरिचन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्रनन्दनः।।८।।
अष्टकेन यस्त्वनेन राधिकासुवल्लभं संस्तवीति दर्शनेऽपि सिन्धुजादिदुर्लभम्।
तं युनक्ति तुष्टचित्त एष घोषकानने राधिकाङ्गसङ्ग नन्दितात्मपादसेवने।।९।।

जिनके दोनों कपोलों पर मकराकृतकुण्डल परम निपुणताके साथ मनोहर नृत्य करते हैं, जिनका मुखमण्डल चन्द्र और कमलके गर्वको भी चूर्ण–विचूर्ण कर देता है और जो गोपाङ्गनाओंके बीच अपने निगूढ़ भावको अर्थात् प्रेमको वर्द्धित कर रहे हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।२।।

जिनका मनोहर रूप, वेश, प्रेमकेलि और प्रेमचेष्टाएँ नित्यनवीन हैं, जो क्रीड़ाकालीन सुखदायक अपने सुहृदों द्वारा परिवेष्टित हैं एवं जिनके केलिकाननकी किरणमालाएँ इन्द्रके नन्दनकाननको भी पराभूत करती हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।३।।

प्रेमरूप हेममण्डित बन्धुबान्धव जिनका अभिनन्दन करते हैं, इन्द्रादि लोकपालगण पृथ्वी पर मस्तक झुकाकर जिनकी वन्दना करते हैं एवं जो यथासमय प्रतिदिन प्रातः आदि कालोंमें विप्रों और गुरुवर्गको प्रणाम किया करते हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।४।।

जिन्होंने इन्द्र और कालिय नागका दर्प चूर्ण किया है, कंस और वत्सासुरका ध्वंस किया है और जो इन्द्र आदिके गर्वको चूर्ण करनेवाली लीलामृतधाराकी वर्षा द्वारा अपने भक्तरूप चातकोंका पोषण करते हैं तथा जो अपनी शूरता–वीरता आदि द्वारा आभीर–पल्लीके निवासी

गोपोंको परमानन्दित करते हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।५।।

जो कुञ्जमें रास-क्रीड़ारूप अमृत-सिञ्चन द्वारा श्रीराधिकाजीका सन्तोष विधान कर रहे हैं एवं जो अपनी उस रासक्रीड़ाजनित हास्य-परिहास आदि द्वारा श्रीराधिकाकी सखियोंको परितुष्ट करते हैं तथा जिनके प्रेम, चरित्र और क्रीड़ाओंकी कीर्तिराशि सम्पूर्ण जगत्के लोगोंके मानस पटलको पवित्र करती है, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।६।।

जो रासलीला-समूह द्वारा भक्तोंको अपने शुद्ध भक्तिमय सत्पथका प्रदर्शन करते हैं, जिनके मनोहर रूप और वेशद्वारा मन्मथका मन भी मथित हो रहा है और जो अपनी तिरछी चितवनसे गोपियोंके हृदयमें विविध प्रकारकी भाव-तरङ्गोंको उद्वेलित कर रहे हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।७।।

श्रीराधाजीके पुष्प-चयनके लिए आगमन करने पर जो उनके अङ्ग-स्पर्शके लिए उन्मत्त हो उठते हैं, प्रेमोत्पन्न वाम्यभाव अर्थात् प्रतिकूलतावशतः परम रमणीय श्रीराधिकाका मुखचन्द्र दर्शनकर जिनका आनन्दसागर क्षण-क्षण वर्द्धित होता है एवं जो श्रीमती राधिकाके वक्षःस्थलपर परम सुगन्धित और परम सुखजनक चन्दनके लेपके समान हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें।।८।।

जो व्यक्ति इस अष्टकके द्वारा श्रीमती राधिकाके प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रका स्तव करते हैं, श्रीलक्ष्मी आदिके लिए भी जिनका दर्शन परम दुर्लभ है, वे श्रीकृष्णचन्द्र उसके प्रति प्रसन्न होकर, श्रीवृन्दावनमें श्रीराधिकाके साथ आलिङ्गित होकर उसे परमानन्दमयी श्रीपादपद्मसेवामें नियुक्त करते हैं।।९।।

प्रश्नोत्तर

उत्तर—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

प्रश्न १—बचपनमें परमार्थका अनुशीलन करना उचित है या अनुचित?

उत्तर—बचपनमें भगवत् प्राप्तिका साधन नहीं किया जा सकता है—ऐसी धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण एवं अनुचित है। हम इतिहासमें ऐसा देखते हैं कि ध्रुव और प्रह्लाद जैसे अत्यन्त छोटी आयुवाले बालकोंने भी भगवान्की कृपा पायी है। यदि कोई मनुष्य किसी कार्यको करनेमें समर्थ हो चुका है, तो प्रत्येक मनुष्य उस कार्यको प्रयत्न करने पर अवश्य ही कर सकता है, इसमें सन्देह ही क्या है? और विशेषतः उस कार्यको बचपनसे ही करनेका अभ्यास किया जाय, तो क्रमशः वह कार्य स्वभाव-स्वरूप हो जाता है तथा सहज-साध्य हो जाता है।

(श्रीचैतन्यशिक्षामृत १/१)

प्रश्न २—यदि माता-पिता आदि गुरुजन हरि-भजन करनेमें बाधा दे रहे हों तथा

अन्यान्य उपदेश कर रहे हों, तो उनकी आज्ञाका पालन करना उचित है या नहीं?

उत्तर—गुरुजनोंके अन्यान्य उपदेशोंका भी पालन करना चाहिए—यह बात नहीं है। परन्तु यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि उनकी वैसी आज्ञा या उपदेशोंके प्रति कटु-वचन या अपमानसूचक व्यवहार आदिके द्वारा उनके प्रति घृणा प्रकाश न की जाय। बल्कि मीठे वचनोंसे नम्रतापूर्वक उपयुक्त समय पर विनयपूर्ण विचारके द्वारा उनके अन्यान्य उपदेशों या आचरणोंकी आज्ञाको स्थगित करवा लेना चाहिए। (श्रीचैतन्यशिक्षामृत २/२)

प्रश्न ३—सभी भक्त क्यों नहीं होते?

उत्तर—सभी आत्माओंमें ही भक्तिका बीज है। उसी बीजको अङ्कुरित एवं क्रमशः वृक्षके रूपमें परिणत करनेके लिए मालीगिरी अर्थात् बागवानी करनेकी आवश्यकता है। भक्ति-शास्त्रोंकी आलोचना, परमेश्वरकी उपासना, सत्सङ्ग और भक्त-निषेवित स्थानमें निवास इत्यादि कुछ कार्योंकी आवश्यकता है। भक्ति बीज अङ्कुरित होनेके समय भूमि परिष्कार, कण्टक और कङ्कड़ आदि दूरीकरणके कार्य अत्यन्त आवश्यक हैं। भक्ति-विज्ञानको जान लेने पर ये कार्यसमूह सुचारु रूपसे हो सकते हैं।

(प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ४—साम्प्रदायिक वैष्णव-मतोंके द्वारा जीवजगत्का क्या उपकार हो सकता है?

उत्तर—इतिहासकी आलोचना करनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि इस पवित्र भारत-क्षेत्रमें कभी भी सम्प्रदाय-विरुद्ध कोई मत नहीं था। जबसे पाश्चात्य विद्वानोंके साथ भारतका सम्पर्क होना आरम्भ हुआ है, तभीसे कुछ लोग सम्प्रदाय विरोधी होने लगे हैं। सम्प्रदायकी प्रणाली जीवोंके लिए नितान्त हितकर है। सम्प्रदायमें प्रवेश करनेसे साधु-पदाश्रय, सत्-धर्म शिक्षा, धर्मकी आलोचना एवं क्रमशः सच्चा वैराग्य सहज ही प्राप्त होता है। जब तक सम्प्रदाय-विरोधी बुद्धि हृदयमें प्रबल रहती है, तब तक जीवन भर तर्क-वितर्क करके भी आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता है। सम्प्रदायके कुछ लोग स्वार्थपर होकर बुरे कर्म करने लगते हैं। ऐसा देखकर सम्प्रदाय प्रणालीकी निन्दा करना विवेकरहित व्यक्तियोंका ही कार्य हो सकता है। सम्प्रदायमें प्रवेश करके सम्प्रदायकी पवित्रताको अक्षुण्ण बनाए रखनेकी चेष्टा करना ही बुद्धिमान व्यक्तिका कर्त्तव्य है। बाजारमें सब समय अच्छे द्रव्य नहीं पाए जाते, बल्कि अधिकतर बनावटी या मिलावटी द्रव्य पाए जाते हैं। ऐसा देखकर बाजारका संस्कार करना ही कर्त्तव्य है जिससे सभी लोग सरलतासे शुद्ध द्रव्य पा सकें। इसके बदले यदि कोई व्यक्ति बाजारकी वैसी बुरी अवस्था देखकर बाजार-प्रणालीको ही सदाके लिए उठा देनेके लिए प्रयत्न करें, तो उस व्यक्तिकी वैसी बुद्धिकी कोई भी भला आदमी प्रशंसा नहीं कर सकता। सम्प्रदायके पूर्व-पूर्व आचार्योंने जगत्-कल्याणके लिए ही सम्प्रदायका निर्माण किया था।

(सज्जनतोषणी ४/४, सम्प्रदाय-प्रणाली)

प्रश्न ५—वैष्णव किसे कहते हैं?

उत्तर—उदितविवेक व्यक्तियोंका नामान्तर ही वैष्णव है। (जैवधर्म, तीसरा अध्याय)

प्रश्न ६—वैष्णवधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—वैष्णवधर्म केवल मनुष्यका ही नहीं, प्राणिमात्र अथवा जीवमात्रका ही नित्यधर्म है। वैष्णव जीव जड़मुक्त अवस्थामें अपने चिद्स्वरूपसे कृष्णप्रेमका अनुशीलन करते हैं और जड़बद्ध दशामें उदित-विवेकवाले मनुष्य होकर जड़ और जड़ीय सम्बन्धोंमेंसे अनुकूल विषयोंको आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं तथा सभी प्रतिकूल विषयोंका वर्जन करते हैं। वे शास्त्रोंके विधि-निषेधोंके अधीन होकर कार्य नहीं करते, बल्कि जब जो विधि हरिभजनके अनुकूल होती है, उसका आदर करते हैं तथा जब वही प्रतिकूल जान पड़ती है तो उसका बहिष्कार करते हैं। निषेधके विषयमें भी वैष्णवोंका व्यवहार पूर्ववत् ही होता है। वैष्णव ही जगत्के एकमात्र सार पदार्थ हैं। वैष्णव ही जगत्के बन्धु हैं। वैष्णव ही जगत्के मङ्गल हैं।

(जैवधर्म, तीसरा अध्याय)

प्रश्न ७—यदि वैष्णवधर्म इतना महान है, तब कुछ लोग इसे नेड़ा-नेड़ीका धर्म क्यों कहते हैं?

उत्तर—बाउल, साँई, नेड़ा, दरवेस, कर्त्ताभजा, अतिवाड़ी आदि सभी अवैष्णव मत हैं। उनके उपदेश और कार्यमें बड़ा अन्तर होता है। अधिकांश लोग उनके अवैष्णव विचारों एवं बुरे कर्मोंको लक्ष्यकर विशुद्ध वैष्णव-धर्मके प्रति अश्रद्धा करते हैं। परन्तु वास्तवमें यह उनकी भूल है। उपरोक्त मतों और वैष्णव मतका अन्तर न जानने अथवा विशुद्ध वैष्णव मतके स्वरूपका ज्ञान न होनेके कारण ही वे ऐसी भ्रान्त धारणा कर लेते हैं। वास्तवमें वैष्णव-धर्म उपरोक्त धर्मध्वजी मतवादोंके दोषोंके लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता।

(प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ८—क्या वैष्णव मूर्त्तिपूजक पौत्तलिक नहीं हैं?

उत्तर—वैष्णव लोग जिस विग्रहकी पूजा करते हैं, वह ईश्वरके अतिरिक्त एक पुत्तलिका नहीं है। बल्कि वह ईश्वर भक्तिका उद्दीपक और निदर्शनमात्र है। परमेश्वर अद्वितीय पुरुष हैं। कोई भी दूसरा उनके समान या उनसे अधिक नहीं हैं। इसलिए वे असमोर्द्ध्व कहलाते हैं। सभी उनके अधीन हैं। कहीं भी कोई ऐसी चीज नहीं जो उनमें हिंसाका भाव उत्पन्न कर सके। उनके प्रति भक्ति प्राप्त होनेके लिए जो कुछ किया जाता है, वे हृदयकी निष्ठाके प्रति लक्ष्य रखकर उसका फल प्रदान करते हैं। वे समस्त निराकार तत्त्वोंके निदर्शन हैं। यद्यपि निदर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न होता है, तथापि उसके द्वारा तत्त्व वस्तुका भाव उपस्थित होता है। जब कि घड़ी द्वारा निराकार काल, लेख-प्रणाली द्वारा अतिशय सूक्ष्म ज्ञान एवं चित्र द्वारा दया-धर्म आदि निराकार विषयोंका ज्ञान हो सकता है, तब भक्ति साधनमें आलोच्यगत लिङ्ग रूप श्रीविग्रह द्वारा भी उपकार होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। (प्रेम-प्रदीप)

(क्रमशः)

श्रीचैतन्यदेव

[वर्ष ४५ संख्या ९ पृष्ठ २०२ से आगे]

[ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' के एक भाषणसे]

जागतिक बुद्धि पर–जगत्का विचार करनेमें असमर्थ है

हम मनुष्य कर्मफलसे देहमें आबद्ध रहकर कर्म करते हैं, पुनः मरने पर कर्मानुसार शरीर प्राप्त करते हैं—इस प्रकार हम संसार चक्रमें भ्रमण करते हैं। श्रीचैतन्यदेवके विचारोंको सुनकर सार्वभौम लोकातीत जगत्में उपनीत हुए। इन्द्रिय–ज्ञानसे वेदान्त शास्त्रोंको समझा नहीं जा सकता है। लौकिक विचार–प्रणाली द्वारा पारलौकिक वस्तु ग्रहण नहीं की जा सकती है। Transcendental (अधोक्षज) और Phenomenal (अक्षज) को एक नहीं समझना चाहिए। सूर्यका दर्शन करनेके लिए प्रदीपकी सहायताके लिए व्यस्त होनेसे मूर्खताका ही परिचय मिलता है। सूर्यमें प्रचुर प्रकाश है, उसी प्रकाशसे सूर्य और दूसरी–दूसरी वस्तुओंका दर्शन होता है। जिस वस्तुका ज्ञान होनेसे सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है, उसीका ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

जागतिक ज्ञानकी असम्पूर्णता

जगत्का ज्ञान संग्रह करनेवाले मनुष्योंमें एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति सर आइजक न्यूटनने कहा है कि 'मैं अनन्त समुद्रके तीर पर केवल मात्र कुछ कण्डे बीन रहा हूँ।' मानव–ज्ञानमें सङ्कीर्णता है, इसलिए वह असम्पूर्ण है। अतः असम्पूर्ण मानव–ज्ञानके ऊपर निर्भर कर सम्पूर्ण ज्ञानको प्राप्त करनेकी चेष्टा किसी टूटे मेजके ऊपर चढ़कर आकाशको स्पर्श करनेकी चेष्टाके समान है। जो Hasty Conclusion (द्रुत सिद्धान्त) पर पहुँचते हैं, वे सत्य वस्तुको ग्रहण करनेमें असमर्थ होते हैं। वे पूर्णज्ञानके अनुशीलनके लिए थोड़ा भी समय नहीं दे सकते। हमलोग बचपनसे जिस समाजमें पले हैं, उसमें Materialism (जड़ भाव) इतना अधिक है कि नित्य जीवनकी आलोचनाके लिए हम एक क्षण भी नहीं दे सकते। व्यवहारिक कार्योंके लिए २४ घण्टा खर्च करते हैं। परन्तु मैं क्या हूँ, उसे जाननेके लिए तनिक भी चेष्टा नहीं करते। अखण्ड कालकी तुलनामें सौ वर्ष परमायुका परिमाण क्या है? अतएव मनुष्यको अपने जीवनके चौबीस घण्टोंका सदुपयोग पारलौकिक विचारोंमें करना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्यको अपनी सौ वर्षकी आयुको इन्द्रिय सुखके लिए ही व्यतीत करना कर्त्तव्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्तिको अपना–अपना कल्याण अनुसन्धान करना चाहिए। सबको सच्चे अर्थोंमें स्वार्थपर होना चाहिए। 'स्व' का तात्पर्य आत्मासे है। अतएव आत्माका अर्थ अर्थात् आत्मकल्याण ही यथार्थ स्वार्थ है। परन्तु संसारके अधिकांश लोग इतर कार्योंमें ही व्यस्त हैं—लड़के खेलमें, युवक संसार धर्ममें, बूढ़े सम्पत्ति और

शरीर रक्षामें सदा व्यस्त दिखलाई पड़ते हैं। वे इन्हीं सब कार्योंको स्वार्थ समझते हैं। फलतः यथार्थ स्वार्थसे उदासीन होते हैं। स्थानीय (जागतिक) स्वार्थ संग्रहके लिए नित्यस्वार्थके प्रति उदासीन हैं—यह हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

''क्षेत्रे कर्म विधीयते'' नीतिकी असम्पूर्णता

कुछ लोग कहते हैं कि वर्तमान स्वार्थके लिए (आत्म-कल्याणके लिए) चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। भविष्यकी बात—*''क्षेत्रे कर्म विधीयते''*। परन्तु यह बात ठीक नहीं है—बाल्यकालमें विद्या शिक्षा नहीं करने पर असुविधा भोग करनी पड़ती है।

सामाजिक कल्याणकामीका कर्त्तव्य

जो समाजका कल्याण चाहते हैं, उनको अपने स्वार्थके साथ ही दूसरोंके कल्याणकी चिन्ता करनी चाहिए। उनको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे चेतनका धर्म अचेतनके द्वारा बाधित न हो जाय। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि पापकार्य छोड़कर पुण्य करना उचित है—यह दयाका कार्य है। मानवके वास्तविक बुद्धिमान होने पर वह तात्कालिक कार्योंके साथ अपनी नित्य स्थितिका सम्बन्ध क्या है, इसे भलीभाँति समझकर कदम-कदम पर, निद्रा, जागरण आदि सब समय विचार करेगा। ऐसा न होने पर हम परस्पर विवाद कर साम्प्रदायिक हो पड़ेंगे। सभी अपना अमङ्गल चाहते हैं—ऐसी बात नहीं है। ठीक समय पर कार्य करनेसे भविष्यमें लाभ होता है।

समय रहते समयका सदुपयोग करना कर्त्तव्य है

समयका ठीक-ठीक सदुपयोग नहीं करनेसे असुविधा होगी। बुढ़ापेमें परलोककी आलोचना करनेका अभिलाषी व्यक्ति सांसारिक चिन्ताओंसे जर्जरित रहनेके कारण कोई उपकार नहीं पाता। मैं यह नहीं कहता कि समस्त प्रकारके सांसारिक कार्योंको छोड़कर इसी क्षण सब लोग भगवान्‌की सेवामें नियुक्त हो सकेंगे। श्रीगौरसुन्दर कहते हैं—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा। किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्द पूर्णामृताब्धे-र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

—न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य हूँ, न शूद्र न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ, न वानप्रस्थी, न संन्यासी हूँ, किन्तु निखिल परमानन्द परिपूर्ण अमृतसागरस्वरूप गोपीपति श्रीकृष्णके चरणकमलोंके दासोंके दासोंके दासानुदासोंका एक छोटा-सा दास हूँ अर्थात् जीवोंका स्वरूप नित्य भगवद्दास हूँ।

वर्णाश्रम धर्मका क्षेत्र

पाँचभौतिक शरीर और आत्मा एक नहीं है। आत्मा जड़ भौतिक शरीरसे सर्वथा पृथक् है। वर्णाश्रम धर्म पालनकी विशेष आवश्यकता है और ठीक-ठीक पालित होनेपर इहलोक और परलोकमें सुविधा होती है। जब तक शरीर है, तब तक वर्णाश्रम धर्मकी उपकारिता है। ऐहिक मङ्गलके लिए उपयोगी चौदह भुवनोंमें औपाधिक स्थितिमें इसकी उपयोगिता तो है, परन्तु नित्य जगत्‌में इसकी तनिक भी उपयोगिता नहीं है।

श्रीचैतन्यदेवके विचार

चैतन्यदेव कहते हैं, न मैं ब्राह्मण हूँ, न

क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र हूँ। मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं हूँ। मेरा तो केवल मात्र भगवान्‌के साथ नित्य सम्बन्ध है। मैं जहाँ भी रहूँ, उनके साथ ही मेरा सम्बन्ध है। उनको मैं कभी नहीं भूलूँ; मैं सर्वदा यह याद रखूँ कि मैं उनका नित्य दास हूँ; ऐसा होनेसे मेरी सुविधा है। उन्होंने और भी कहा है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

(भा. १/२/२१)

मनोधर्मी अचैतन्यगणके मत

सभी कहते हैं—उस चीजको पाना है। अज्ञेयवादी कहते हैं—आवश्यकता नहीं है। सन्देहवादी कहते हैं—वे हैं या नहीं इसमें सन्देह है। परमाणुवादी कहते हैं—बाह्य जगत् ही ब्रह्म है, मृत्युके पश्यात् कुछ भी नहीं है। ये लोग भगवान्‌का व्यक्तित्व (Personality) स्वीकार नहीं करते।

जीव और भगवान्‌का स्वरूप

वास्तव सत्य यह है—स्थूल और सूक्ष्म शरीर जिसका है, वही शरीरी है। जीव मात्र ही शरीरी है। भगवान् चेतन हैं, जीव भी चेतन हैं। जीव भगवान्‌के अंश (विभिन्नांश) हैं। वर्त्तमान समयमें जीव अपनी चेतनताका अपव्यवहार करके दुर्गति भोग कर रहा है। भगवान्‌से विमुख होना ही अपनी चेतनताका अपव्यवहार करना है। अब भगवान्‌की सन्मुखता ही—उनकी सेवा ही दुर्गतिसे रक्षाका उपाय है।

सार्वभौमको दिव्यज्ञानकी प्राप्ति

सार्वभौमने इन सब सिद्धान्तोंका बहुत दिनोंतक श्रीचैतन्यदेवके निकट श्रवण किया। इस विशुद्ध श्रवणसे सार्वभौमको दिव्यज्ञानकी प्राप्ति हुई। श्रीचैतन्यदेवने उन्हें दया करके अपनी षड्भुज मूर्त्तिका दर्शन कराया, उसीके पश्चात् सार्वभौमजीने निम्नलिखित दो श्लोकोंके द्वारा प्रणाम किया—

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं–गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः।।

श्रीचैतन्यदेव कौन हैं

सार्वभौमजी कहते हैं कि मैं सब कुछ छोड़कर वैराग्य अवलम्बन करनेके लिए प्रस्तुत हूँ। मैं श्रीचैतन्यदेवके शरणागत हूँ। अब प्रश्न यह है कि श्रीचैतन्यदेव कौन हैं? और उनकी शरणागति ही क्या है? क्या मैं कहीं जानेके लिए घोड़ाके शरणागत हूँ? अथवा अपना अभाव दूर करनेके लिए अर्थके शरणागत हूँ? क्या चैतन्यदेव कोई भोग्य वस्तु हैं? चैतन्यदेव क्या कोई साधारण मनुष्य हैं? अथवा प्रचारक मात्र हैं?

श्रीचैतन्यदेव सर्वकारण–कारण हैं

श्रीचैतन्यदेव केवल आजसे ५०० या ५००० वर्ष पूर्वके ही नहीं हैं। वे सनातन हैं; पुरुषोत्तम हैं; वे आदि, सर्वादि एवं सर्वकारण–कारण हैं। वे किसी कालमें उत्पन्न कालके अधीन पुरुष नहीं हैं, बल्कि भूत, भविष्य और वर्त्तमान—ये तीनों काल उनसे ही उत्पन्न हुए हैं। वे अखण्डकालसे भी अतीत हैं। वे हाड़–माँसकी थैली नहीं हैं। वे पुराण हैं। वे परम पुरुष कर्त्ता हैं। सर्व प्रकारसे केवल पृथ्वीकी सृष्टि करके ही

नहीं—सम्पूर्ण आत्म जगत्के परब्रह्म-परमात्मा एवं भगवद्वस्तु हैं। वर्त्तमान समयमें किस लिए आविर्भूत हुए हैं? वैराग्य, विद्या और भक्तियोगकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए पुराण पुरुष कृपाके समुद्र श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतीर्ण हुए हैं। मैं उन्हींके शरणागत हूँ।

वैराग्यका तात्पर्य

वर्तमान जगत्में 'वैराग्य' शब्दका प्रयोग विपरीत भावमें किया जाता है। 'विराग' शब्दका अर्थ अधिकांश लोग Apathetic mood समझते हैं। 'वैराग्य' शब्दका वास्तविक अर्थ समझानेके लिए वे क्षुद्र प्रचारकके वेशमें नहीं आये थे। मानव जाति यह समझ न सकी। हमारी जो आसक्ति Attachment हैं, उसीसे Repulsion (वितृष्णा) का उदय होता है। मनुष्य जातिने वैराग्यकी जो रूप रेखा अपने मनमें अङ्कित कर रखा है, उससे इस श्लोकमें कहा गया वैराग्य सर्वथा पृथक् है। वैराग्य कहनेसे संसारी लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अनेक प्रयत्नसे बसाया हुआ अपना संसार छोड़ देना पड़ेगा और हमारे पूज्य माता-पिता—जिनके उपकारका बदला हमने अब तक एकदम चुकाया नहीं है, उन सबको छोड़कर जंगलका रास्ता लेना पड़ेगा। परन्तु बात ऐसी नहीं है। बाह्यतः त्याग करनेवाले भी यथार्थ त्यागी नहीं हैं। संसारके प्रति आसक्ति अथवा संसारसे वैराग्य—ये दोनों बातें ही अनावश्यक हैं। एक विलास है, तो दूसरी विलासरहित अवस्था है। इन दोनोंसे हमारा कुछ भी पारलौकिक कल्याण नहीं हो सकता है। बौद्धमतानुसार खूब पेट भरकर खा लेनेके पश्चात् किसी गुफाके भीतर जाकर गुफाके द्वार पथको किसी भारी पत्थरसे बन्दकर लेना पड़ता है। कुछ दिनोंके बाद भीतरवाला व्यक्ति अनाहारसे बहुत ही दुर्बल हो पड़ता है, तब उस द्वार पर रखे पत्थरको उठा नहीं सकनेके कारण बाहर नहीं आ पाता और वहीं तड़प-तड़पकर अपने प्राणोंको छोड़ देता है। इसे वैराग्य नहीं कहा जा सकता—यह तो सीधा-सीधा आत्महत्या है। वैराग्य और त्याग—ये दोनों बातें भोगी समाजके लिए बड़े आश्चर्यकी हैं। महाप्रभुजीका कहना है—जो जहाँ भी जिस अवस्थामें हैं, वहीं रहकर यदि वह अपनी उद्दिष्ट वस्तुकी प्राप्ति कर लेता है, तो उसे हिमालयमें रहकर रेचक, पूरक, कुम्भक आदि करनेकी आवश्यकता ही क्या है? इस विषय पर विचार करना आवश्यक है। घरमें या वनमें जहाँ भी रहो, भगवान्का अनुशीलन करो। उनकी लीला-कथाओंकी आलोचनासे इतर विषयोंकी आसक्ति सम्पूर्ण रूपसे दूर हो जायेगी।

युक्तवैराग्य और फल्गु वैराग्य

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते।।
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते।।

विषयोंके प्रति अतिशय आसक्त होकर भगवान्को भूल जाना उचित नहीं है। जहाँ भी रहो, 'यह' (बाह्य वस्तु) नहीं रहनेसे चल नहीं सकता—ऐसा भाव किसी प्रकारसे भी आदरणीय नहीं है। जो जहाँ पर जिस काममें लगा है, वह वहीं उसी प्रकार रहे। आज संसारी, कल त्यागी, पुनः भोगकी फल्गु नदी

हृदयमें प्रवाहित होनेपर परसों फिर भोगी बनना ठीक नहीं है। वैराग्यका तात्पर्य यह है कि भगवदितर वस्तुमें आसक्त न रहकर भगवदनुशीलनमें तत्पर हुआ जाय। परन्तु सावधान! भगवदनुशीलनकी आड़में कहीं प्राकृत सहजिया, गृहव्रत या फल्गु-वैरागी न हो जाओ। अपने आपकी वञ्चना न करो। शिक्षकको पढ़नेके विषयमें ठगनेसे स्वयं ही ठगे जाओगे।

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा

'विद्या'—भगवद्वस्तु विषयक ज्ञानको विद्या कहते हैं। निर्विशेष ब्रह्ममें अथवा प्रकृतिमें लीन होनेका ज्ञान विद्या नहीं है। विद्या-शिक्षा, वैराग्य-शिक्षा और अपने भक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिए ही श्रीचैतन्यावतार हुआ है। कुछ लोग कर्मको और कुछ लोगोंने ज्ञानको भक्ति बतलाया है; परन्तु यह बात ठीक नहीं है। श्रीकृष्णचैतन्य शरीरधारीने ही यथार्थ वैराग्य विद्या और भक्तियोगका उपदेश दिया है।

अनर्पितचरी अमन्दोदया-दयाके समुद्र श्रीचैतन्यदेव

निजभक्तियोगका तात्पर्य अपनी प्रयोजनीय भक्ति या अपनी आत्माके भक्तियोगसे है। वे कृपाम्बुधि—दयाके सागर हैं। इतनी अधिक दया कोई भी नहीं कर सकता। भगवान्‌के किसी भी अतवारमें इतनी अधिक दयाका परिमाण नहीं है। यह दया अयोग्य व्यक्तिको योग्यता प्रदान करनेके लिए है। अनन्त कालके लिए पूर्ण दया—भगवान् अपने आपको दे देते हैं—ऐसी दया किसीने भी आज तक नहीं की है।

श्रीचैतन्यदेवकी कृपा बिना गति नहीं है

हमारा चित्त सदा विषयोंकी तरफ दौड़ता रहता है। इस चित्तवृत्तिको कृत्रिम उपायसे जोर पूर्वक खींचकर मङ्गलके पथपर लानेकी अनेक चेष्टा करके विफल मनोरथ हो चुका हूँ। अतएव अब श्रीचैतन्यदेवकी कृपाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

श्रीचैतन्य-करुणामें मनुष्यमात्रका अधिकार है

श्रीचैतन्यदेवके चरणोंमें मेरा कैसा अनुराग हो? इसपर कहते हैं—जिस प्रकार चञ्चल भ्रमर मधुके एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर उड़ता चला जाता है, उस प्रकार नहीं। मेरा चित्त मधुमक्खीकी भाँति श्रीचैतन्य-चरणरूप पुष्पके मधुको पान करनेमें मत्त हो जाय। श्रीचैतन्यदेवने सब जीवोंका आलिङ्गन किया है। उन्होंने जो प्रेम दान किया है, उसका सौन्दर्य कर्मी, ज्ञानी और योगी—ये लोग दर्शन करनेमें असमर्थ हैं। परन्तु फिर भी कोई भी उसे प्राप्त करनेमें समर्थ है। मनुष्य मात्रका उस दयामें अधिकार है। अन्तमें मैं आप लोगोंसे एक प्रार्थना कर अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूरात्
चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्।।

मैं आपलोगोंकी तुलनामें अत्यन्त अयोग्य होनेपर भी आपलोग मुझे एक भिक्षा अवश्य देंगे। मेरी प्रार्थना यह है कि आपलोगोंके जितने प्रकारके विचार हैं, उन सबको छोड़कर श्रीचैतन्यदेवकी वाणियोंको श्रवण करनेके लिए समय दीजिये। साधारण मनुष्यसे जिनका विशेषत्व है, उनकी कथा श्रवण करनेके

लिए समय देनेसे मानव-राज्यमें यथार्थ शान्तिका पथ—भगवदुपासना उपस्थित होगी। भगवान्‌को पुत्र रूपमें पालन करनेकी प्रवृत्ति होगी। पुरुषके साथ स्त्रीके विवाह द्वारा मानव जीवनकी पूर्णता या शान्ति लाभ करनेका जो विचार उपस्थित होता है, उस जगह भगवान् उपस्थित होनेसे सांसारिक आसक्ति दूर हो जायेगी। यदि हम अपने समस्त भावोंको भगवान्‌के चरणकमलोंमें लगा दें, तभी उनकी सार्थकता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच रस भगवान्‌में पूर्ण मात्रामें अवस्थित है। इन भावोंको भगवान्‌में नियुक्त करनेके बदले हमने अनित्य विषयोंमें लगा रखा है। इसलिए हमलोग भगवान्‌के विषयमें जानकारी नहीं प्राप्तकर पा रहे हैं। उनका सामीप्य न पा सकनेके कारण—बालककी भाँति अपनी भलाई आप न समझ सकनेके कारण हम भगवान्‌के निकट पहुँचकर सर्वतोभावसे उनकी सेवा नहीं करना चाहते। यह हमारा अतीव दुर्भाग्य है। फिर भी जब फेरीवाला दीनतापूर्वक बार-बार हमारे समीप आकर आवाज लगा रहा है, तब उसकी बात एक बार क्यों नहीं सुन लेते?

दन्ते निधाय तृणकं

भगवद् वस्तु पूर्ण ज्ञानमय हैं, आनन्दमय हैं; उनको जाननेके लिए न जाने कितने स्थानोंमें भटक रहा हूँ। परन्तु घरके समीप ही गोलोकपति मनुष्यके आकारमें विषयी लोगोंके पास भी जिस बातको सुनाने आये थे, उसे न सुनकर दूसरी बातोंमें निमग्न रहनेसे बुद्धिमान व्यक्ति हमारी प्रशंसा न करेंगे या हम भी अपनी वैसी बुद्धिकी प्रशंसा न करेंगे।

उपसंहार

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमोनमः।।

श्रीगौराङ्ग सुधा

[वर्ष ४५ संख्या ९ पृष्ठ २११ से आगे]

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

पुण्डरीक विद्यानिधि पर कृपा

एक दिन वैष्णव मण्डलीके मध्य श्रीगौरसुन्दर नृत्य करते-करते अकस्मात् "हे पुण्डरीक विद्यानिधि! हे मेरे परम बन्धु! अभी तक आप मेरे पास क्यों नहीं आए? कब मुझे आपका दर्शन होगा?" ऐसा कहकर विलख-विलखकर रोते-रोते जमीन पर लोट-पोट खाने लगे। यह देखकर तथा प्रभुके श्रीमुखसे "पुण्डरीक विद्यानिधि" नामको सुनकर सभी भक्तलोग उलझनमें फँस गए। उनमेंसे कोई भी कुछ भी समझ नहीं रहा था कि प्रभु किसे पुकार रहे हैं। क्योंकि "पुण्डरीक" तो कृष्णका नाम है। परन्तु पुण्डरीकके साथ प्रभु "विद्यानिधि" शब्दका भी उच्चारण कर रहे हैं। अतः सभी लोगोंने विचार किया कि हो न हो प्रभु पुण्डरीक विद्यानिधि नामके किसी भक्तको पुकार रहे हैं। कुछ देर बाद प्रभु शान्त हुए तो सभीने उनसे पूछा—"प्रभो!

अभी आप किस भक्तके लिए क्रन्दन कर रहे थे? कौन हैं वे महाभाग्यवान, जिनके लिए आप रो रहे थे? उनका जन्म स्थान कहाँ हैं? आप कृपाकर हमें बताइए जिससे हम भी उनका दर्शनकर अपने जीवनको धन्य कर पाएँ।

प्रभु—"आपलोगोंका महासौभाग्य है कि जो आप सबकी इच्छा उनके विषयमें जाननेकी हुई है। उनका जीवनचरित्र भी अद्भुत है, जिसका श्रवण करते ही सारा संसार पवित्र हो जाता है। परन्तु वे घोर विषयी व्यक्तिकी भाँति रहते हैं। बाहरसे उन्हें देखकर कोई भी नहीं कह सकता कि वे एक परम वैष्णव हैं। चाटिग्राममें ब्राह्मण कुलमें उन्होंने जन्म ग्रहण किया है। बाल्यावस्थासे ही वे सदा-सर्वदा कृष्णभक्तिके सागरमें डूबे रहते हैं। उनकी निष्ठाके विषयमें क्या कहूँ, वे कभी भी इस भयसे गङ्गा स्नान नहीं करते कि गङ्गादेवीको चरण स्पर्श हो जाएगा। गङ्गाजीका दर्शन एवं आचमन करनेके लिए भी जाते हैं तो रातके समय, दिनमें नहीं। क्योंकि दिनके समय लोग गङ्गाजीमें कुल्ला करते हैं, पैर धोते हैं, सिर मुड़वाते हैं। गङ्गाजीमें इन अत्याचारोंको देखकर उन्हें बहुत कष्ट होता है। उनका घर चाटिग्राममें भी है तथा यहाँ अर्थात् नवद्वीपमें भी है। इसलिए अतिशीघ्र वे यहाँ आनेवाले हैं, तभी आप सब लोग उनका दर्शन कर पाएँगे। परन्तु उन्हें देखकर आपमेंसे कोई भी पहचान नहीं पाएँगे कि वे ही परम भागवत पुण्डरीक विद्यानिधि हैं। उन्हें आप सभी एक परम भोगी व्यक्तिके रूपमें ही देखेंगे। परन्तु मैं उन्हें देखे बिना छटपटा रहा हूँ। आपमेंसे कोई भी जाकर उन्हें यहाँ ले आएँ। ऐसा कहकर प्रभु पुनः अपने भक्तके प्रेममें आविष्ट होकर—"हा पुण्डरीक! हा पुण्डरीक!" कहकर आर्तनाद करने लगे।

उधर प्रभुके आकर्षणके प्रभावसे चाटिग्राममें पुण्डरीक विद्यानिधिकी इच्छा नवद्वीप आनेकी हुई। अतः वे अपने साथ अनेक सेवक, अथाह सम्पत्ति, ब्राह्मणों एवं शिष्योंके साथ नवद्वीपमें आकर गुप्त रूपसे निवास करने लगे अर्थात् सभी लोगोंकी नजरोंमें एक परम विषयी—भोगीके रूपमें प्रसिद्ध हो गए। अन्तर्यामी प्रभुने जब जाना कि पुण्डरीक विद्यानिधि आ गए हैं तो उन्हें अपार आनन्द हुआ। इस बातको वैष्णव मण्डलीमें मुकुन्दके अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता था। क्योंकि वे भी चाटिग्रामके ही रहने वाले थे। अतः वे विद्यानिधिकी महिमाको भलीभाँति जानते थे।

गदाधर पण्डित मुकुन्दके अत्यन्त प्रिय पात्र थे। अतः एक दिन वे गदाधरसे बोले—"गदाधर! मैं आज तुम्हें एक परम वैष्णवके दर्शन कराना चाहता हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा है, तो चलो।"

यह सुनकर गदाधरजीको बहुत आनन्द हुआ। वे तुरन्त मुकुन्दके साथ चल पड़े। जब वे दोनों पुण्डरीक विद्यानिधिजीके घरमें पहुँचे, उस समय वे अपने घरमें ही बैठे हुए थे। उनका दर्शनकर गदाधरजीने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने गदाधरजीको एक आसन प्रदानकर आदरपूर्वक बैठाया। तत्पश्चात् उन्होंने मुकुन्दसे पूछा—"इनका क्या नाम है तथा ये कहाँ रहते हैं? इनके शरीरसे तो कृष्णभक्तिका तेज निकल रहा है, तथा जैसा इनका सुन्दर

शरीर है, ठीक वैसा ही इनका अनुपम स्वभाव भी है।"

मुकुन्द—"इनका नाम गदाधर है। जागतिक सम्बन्धसे ये माधव मिश्रके पुत्र हैं, तथा समस्त वैष्णवोंके प्रिय पात्र हैं। ये बाल्यावस्थासे ही संसारसे परम विरक्त हैं, तथा सब समय भक्तिभावमें डूबे रहते हैं। आज जब आपका नाम सुना तो आपके दर्शनके लिए चले आये।" यह सुनकर विद्यानिधिजीको बहुत प्रसन्नता हुई तथा वे बहुत प्रेमसे उनसे बात-चीत करने लगे। उस समय वे एक अतिसुन्दर दिव्य पलङ्गपर ऐसे विराजमान थे, मानो वे कोई राजकुमार हों। पलङ्गपर जो शय्या बिछी हुई थी, उसपर सुन्दर श्वेत रङ्गकी रेशमी चादर बिछी हुई थी। उनके पीठके पीछे एक रेशमी वस्त्रका तकिया तथा अगल-बगलमें भी एक-एक तकिया सुशोभित हो रहे थे। पलङ्गके पास एक चाँदीकी थालीमें पानकी बीड़ियाँ तैयार रखी हुई थीं। निकटमें ही एक चाँदीकी पीकदान रखी थी। दोनों ओरसे दो सेवक उन्हें मोर पंखमें हवा कर रहे थे। उन्होंने अपने शरीरपर जो सुगन्धित द्रव्य लगा रखा था, सारा घर उसकी सुगन्धसे महक रहा था। सुन्दर घुँघराले केश आँवलेके तेलसे भीगे हुए थे तथा वे धीर-धीरे पान चबा रहे थे। उनके होंठ पानके रससे लाल-लाल हो रहे थे। उनके इस स्वरूपको यदि कोई अनजान व्यक्ति देखता तो वह अवश्य ही उन्हें कोई राजपुत्र समझ बैठता। उनके स्वरूपका दर्शनकर स्वयं गदाधरजीके मनमें भी कुछ संशय उत्पन्न हो गया। बचपनसे ही संसारकी सुखदायी वस्तुओंसे विरक्त गदाधर विचार करने लगे—"ये भी अच्छे वैष्णव हैं! इनका सारा वेश ही विषयी जैसा है। इनके जैसा दिव्य-दिव्य भोग, दिव्य शय्या, दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध तो साधारण विषयी व्यक्तिके लिए भी सम्भव नहीं है। मुकुन्दजीसे तो मैंने सुना था कि ये परमभागवत हैं, परन्तु ऐसा तो मुझे एक भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ रहा है। इनका दर्शनकर तो इनके प्रति मेरी जो श्रद्धा भक्ति थी, वह भी समाप्त हो गई।" पासमें ही खड़े अनुभवी मुकुन्दजी गदाधरजीके मनकी बात ताड़ गए। उनकी इच्छा हुई कि गदाधरजीके सामने विद्यानिधिजीके वास्तविक स्वरूपको प्रकाशित करना चाहिए। मुकुन्दजीका कण्ठ अत्यन्त ही मधुर था तथा वे भागवतसे कृष्णकी लीलासम्बन्धी श्लोकोंका सुरसपूर्ण गान करते थे। अतः उन्होंने श्रीमद्भागवतसे अतिमधुर स्वरसे एक श्लोकका पाठ आरम्भ किया—

अहो बकी यं स्तन कालकूटं
जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।।

(श्रीमद्भा. ३/२/२३)

अर्थात् अहो! कैसे आश्चर्यकी बात है! बकासुरकी बहिन पूतनाने कृष्णको मारनेके उद्देश्यसे कालकूट विषसे युक्त अपना स्तन उन्हें पान कराया। परन्तु फिर भी भगवान्ने उसे धात्रीके समान गति प्रदान की। ऐसा दयालु कृष्णके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? श्लोक श्रवण करते ही तथा भगवान् कृष्णका स्मरण होते ही पुण्डरीक

विद्यानिधि विलख-विलखकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे गङ्गा यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। शरीर काँपने लगा। एक ही साथ उनके शरीरमें अष्ट सात्त्विक विकार उत्पन्न हो गए। "हरिबोल! हरिबोल!" कहकर गर्जन करते हुए उन्होंने लात मारकर जितनी भी वस्तुएँ थी, सबको चूर्ण विचूर्ण कर दिया। तथा अपने दोनों हाथोंसे सुन्दर शय्याको चीर-फाड़कर फेंक दिया। तत्पश्चात् प्रेमावेशमें ही अपने सुन्दर वस्त्रोंको चीर-फाड़कर शरीरसे अलग कर दिया। कहाँ वह दिव्य सुगन्ध, कहाँ सुन्दर केश, जिनमें आँवलेका तेल चप-चप कर रहा था, कहाँ वह राजवेश, एक क्षणमें ही सब समाप्त हो गया। जो पुण्डरीक विद्यानिधि कुछ क्षण पहले पान चबाते हुए मदमत्त व्यक्तिकी भाँति विराज रहे थे, वे ही अब फूट-फूटकर रोते हुए—"हे कृष्ण! हे प्रभो! हे मेरे प्राणनाथ! आप कहाँ चले गए। आप मुझे कब दर्शन देंगे। आपके दर्शनके बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है तथा मैं प्राण धारण करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ।"—ऐसा कहते हुए रोते-रोते जब वे बेसुध होकर कटे हुए पेड़की तरह जमीन पर गिर पड़ते तो, ऐसा प्रतीत होता, मानो उनकी हड्डियाँ चूर्ण-विचूर्ण हो जाएँगी। उस समय उनके शरीरमें इतना कम्प होने लगा कि दस जन भी मिलकर उन्हें स्थिर नहीं कर पा रहे थे। इस प्रकार कुछ समय उनकी ऐसी ही अवस्था रही। इसके बाद वे मूर्छित ही हो गए। यह सब दृश्य देखकर गदाधरजी विस्मित हो गए। वे मन-ही-मन अनुताप करने लगे—"हाय! हाय! ऐसे महाभागवतके चरणोंमें मेरा अपराध हो गया। वह कौन-सा अशुभ क्षण था, जब मैं ऐसे महात्माके दर्शनके लिए आया।" उन्होंने आनन्दसे विभोर होकर मुकुन्दजीको गलेसे लगा लिया तथा अपने आँसुओंसे उन्हें स्नान कराते हुए बोले—"मुकुन्द! तुमने वास्तवमें ही आज एक बन्धुका कार्य किया है, जो मुझे ऐसे वैष्णवके दर्शन कराए। ऐसा वैष्णव त्रिभुवनमें मिलना मुश्किल है। इनका दर्शनसे तो त्रिभुवन पवित्र हो जाता है। आज तुम्हारे कारणसे मैं एक भयङ्कर अपराधसे बच गया। इनका विषयीके सदृश बाहरी वेश देखकर इनके प्रति मेरी विषयी वैष्णवकी बुद्धि हो गई थी। परन्तु तुमने मेरे हृदयकी बात जानकर इनकी भक्तिको मेरे समक्ष प्रकाशित कराया। फिर भी इनके श्रीचरणोंमें मेरा जो अपराध हो गया है, जब तक वह नष्ट न हो मेरा चित्त शुद्ध नहीं हो सकता। मैंने अभी तक कोई गुरु नहीं बनाया। परन्तु भक्तिमार्गमें एक उपदेशककी आवश्यकता अवश्य होती है। अतः मैं इन महापुरुषसे दीक्षा ग्रहण करूँगा। जिससे शिष्य बन जानेके कारण मेरे अपराध सहज रूपमें ही नष्ट हो जाएँगे तथा इनके जैसे एक परम भागवत गुरुकी प्राप्ति भी हो जाएगी।"

यह सुनकर मुकुन्दकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने गदाधरजीको गले लगाते हुए उनके विचारोंकी प्रशंसा की। इधर छः घण्टे तक पुण्डरीक विद्यानिधि प्रेममें मूर्छित ही पड़े रहे। छः घण्टे बाद जब उन्हें होश आया तो वे स्थिर होकर उठकर बैठ गए। उनका

दर्शनकर गदाधरजीके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधरा प्रवाहित होने लगी। गदाधरकी दशा देखकर पुण्डरीक विद्यानिधि बहुत प्रसन्न हो गए। उन्होंने गदाधरजीको अपनी गोदीमें लेकर अपने हृदयसे लगा लिया। परन्तु गदाधरजी को कुछ सङ्कोच हो रहा था। तब मुकुन्दजी बोले—"आपके बाह्य वेशका दर्शनकर इनके मनमें आपके प्रति कुछ अवज्ञाका भाव आ गया था। परन्तु जब इन्होंने आपके वास्तविक स्वरूपका दर्शन किया, तो अब इन्हें उसका पश्चाताप हो रहा है। इसका प्रायश्चित्त करनेके लिए इन्होंने आपसे मन्त्र दीक्षा लेनेकी ठानी है। ये बचपनसे ही भक्तिमान, संसारसे विरक्त एवं वैष्णवोंके प्रियपात्र हैं। अतः ये सब प्रकारसे आपके शिष्य होने योग्य हैं तथा इन्हें भी आपके जैसे गुरु कहाँ मिल सकते हैं? इस प्रकार आप दोनोंकी गुरु-शिष्यकी जोड़ी उपयुक्त है। अतः आप इन्हें मन्त्र दीक्षा प्रदान करें।"

यह सुनकर विद्यानिधि हँसते हुए कहने लगे—"मुझे तो भाग्यने एक महारत्न प्रदान कर दिया। मैं अवश्य ही इन्हें शिष्य रूपमें ग्रहण करूँगा, क्योंकि बहुत जन्मोंके बाद ऐसा योग्य शिष्य प्राप्त होता है। अतः अब जो शुक्लपक्षकी द्वादशी आएगी, उस दिन शुभ लग्न देखकर इन्हें मेरे पास लेकर आना। उस दिन इनकी मनोवाञ्छा पूर्ण हो होगी। यह सुनकर गदाधरका मन आनन्दसे नृत्य करने लगा। वे दोनों ही प्रसन्न मनसे अकेले ही वापस लौट आए। रात्रिके समय विद्यानिधिजी गुप्त रूपसे प्रभु श्रीगौरसुन्दरके पास आए तथा प्रभुका दर्शन करते ही भाव विह्वल होकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। प्रभुको दण्डवत् प्रणाम भी नहीं कर पाए। कुछ समय पश्चात् जब उनकी मूर्च्छा भङ्ग हो गई तो वे अपने आपको धिक्कार करते हुए रोते-रोते कहने लगे—"हे कृष्ण! हे मेरे प्राणनाथ! मुझे आप और कितना तड़पाएँगे? आपने सारे जगत्का तो उद्धार कर दिया। एक मैं ही ऐसा दुर्भागा रह गया, जिसके ऊपर अभी तक आपकी कृपा दृष्टि नहीं पड़ी।" ये ही पुण्डरीक विद्यानिधि हैं, वहाँ पर उपस्थित कोई भी भक्त अभी तक यह नहीं जान सका। बस, उनके भावोंमें विभावित होकर वे लोग भी क्रन्दन करने लगे। आज इतने दिनोंके बाद अपने प्रिय सेवकको सामने देखकर भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरका भी धैर्य जाता रहा। उन्होंने झपटकर उन्हें अपनी गोदीमें लेकर अपनी छातीसे चिपका लिया, विलख-विलखकर रोते-रोते कहने लगे—"पुण्डरीक! आज बहुत दिनोंके बाद आपको देख रहा हूँ।" प्रभुके श्रीमुखसे 'पुण्डरीक' नाम सुनकर सभी भक्तलोग जान गए कि ये ही वे महाशय हैं, जिन्हें प्रभु "बाप-बाप" कहकर पुकारते हैं तथा क्रन्दन करते हैं। अब तो उनका दर्शनकर वैष्णवोंका हृदय गद्गद हो गया। सभी लोग आनन्दसे जोर-जोरसे रोने लगे। प्रभुकी तो अवस्था ही निराली हो रही थी, वे विद्यानिधिजीको अपनी छातीसे चिपटाकर आँसुओंसे उनका अभिषेक कर रहे थे। बहुत देर हो गई, परन्तु प्रभु उन्हें अपनी छातीसे अलग नहीं करना चाह रहे थे। ऐसा लगता था जैसे प्रभु उनके शरीरमें ही प्रवेश कर जाएँगे। इसी प्रकार एक प्रहर बीत गया।

परन्तु प्रभु निश्चल रूपसे उन्हें अपने वक्षसे चिपटाए बैठे हुए थे। चारों ओरसे भक्तलोग इस मधुर मिलनको देखकर रोमाञ्चित एवं पुलकित होकर रोते-रोते कीर्तन कर रहे थे। एक प्रहर बीतनेके बाद जब प्रभुको बाह्य ज्ञान हुआ तो वे शान्त होकर सभीसे कहने लगे—"आज कृष्णने मेरी मनोवाञ्छाको पूर्णकर दिया। इन्हींका नाम 'पुण्डरीक विद्यानिधि' है। प्रेमाभक्तिका वितरण करनेके लिए ही कृष्णने इन्हें इस जगत्में भेजा है।" इस प्रकार प्रभु उत्कण्ठित होकर आनन्दसे अपने भक्तकी महिमाका गान करने लगे। प्रभु बोले—"आजका प्रातःकाल मेरे लिए अतिशुभ रहा, जो कि ऐसे 'प्रेमनिधि' का दर्शन हो गया।" अभी तक पुण्डरीकजी प्रभुके प्रेममें अपने होश-हवाश खोए हुए थे। ऐसेमें प्रणाम इत्यादि शिष्टाचारकी बात ही क्या? परन्तु अब, जबकि उनका बाह्यज्ञान उदित हुआ तो उन्होंने सर्वप्रथम प्रभुको सामने देखकर उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् अद्वैताचार्यजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् सभी भक्तोंको यथायोग्य सम्मान किया। पुण्डरीक विद्यानिधिको अपने मध्य पाकर सभी भक्तोंका मन आनन्दसे नाच रहा था। उसी समय गदाधर पुण्डरीक विद्यानिधिजीसे मन्त्रदीक्षा लेनेके लिए प्रभुसे आदेश माँगते हुए बोले—"प्रभो! अनजानमें इन्हें विषयी जानकर इनके चरणोंमें मेरा अपराध हो गया है। अब मेरी इच्छा है कि मैं इनसे मन्त्र लेकर इनका शिष्य हो जाऊँ, जिससे मेरा अपराध विनष्ट हो जाएगा।" यह सुनकर प्रभु बहुत आनन्दित हो गए। वे गदाधरके सिरपर प्रेमसे हाथ फेरते हुए बोले—"गदाधर! तुम्हारा विचार महान है। इसलिए अब देर न कर तुम अतिशीघ्र इनसे मन्त्र ग्रहण करो।" तब गदाधरजीने पुण्डरीक विद्यानिधिसे मन्त्र ग्रहण किया तथा उनके प्रिय शिष्य बन गए।

(क्रमशः)

वास्तविक भारतवासी कौन है

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

साधारणतः भारत-भूखण्डमें निवास करनेवालेको भारतवासी कहा जाता है। किन्तु इस विचारके अनुसार 'भारतवासी' शब्दका तात्पर्य संरक्षित नहीं होता है। जिस विचारधारा या आचरणके कारण प्राचीन भारत पूरी पृथ्वीमें श्रेष्ठ हुआ था, यदि वर्तमान भारत-भूखण्डके निवासी उस विचारधारा या आचरणके अनुसार न चलें, तो उन्हें भारतवासी कहना उचित नहीं होगा। पाश्चात्य देश भारतकी गुणगरिमाके कारण ही भारतको सम्मान देते हैं। अतएव 'भारतीय' कहनेसे उनका ही बोध होता है, जो भारतीय गुण और विचारधाराका आचरण करनेवाले हैं। प्राचीन भारतमें वैदिक शिक्षाका ही प्राणपणसे

आचरण किया जाता था। अतएव जिन्होंने उस आचरणका परित्याग किया है, वे भारतीय कहलानेके अधिकारी नहीं हैं। वेद ही प्राचीन भारतकी श्रेष्ठताका मूल है। वेदकी शिक्षा ही उस श्रेष्ठताका एकमात्र कारण है। इसलिए भारतीयगण भारतकी शिक्षाको मस्तकपर धारणकर केशगुच्छके रूपमें परिचय-प्रदान करते। वर्तमान कालमें भारतीयोंके बीच इस शिक्षाके प्रति घृणा-प्रकाश द्वारा केशगुच्छधारण वर्जन करनेसे उनको वैदिक शिक्षाभ्रष्टोंके रूपमें समझा जाता है।

मूलतः वैदिक शिक्षाका आचरण करनेवालेको प्रधानतः भारतवासी कहना उचित है। वर्तमान भारत जिन धर्म और शिक्षाओंका आचरण कर रहा है, वे वैदिक शिक्षाके अनुकूल तो नहीं हैं, बल्कि अधिकांश क्षेत्रमें प्रतिकूल हैं। वेदकी शिक्षासे ही ब्रह्म-वस्तु ज्ञात होता है। वह ब्रह्मज्ञान जिस धर्म या आचरणमें प्रकाशित नहीं है, वह भारतीयताका परिचय नहीं हो सकता। ब्रह्मज्ञ व्यक्तिगण ही वास्तविक भारतवासी हैं। इनके गौरवमें ही भारतका गौरव है। ब्रह्मज्ञ हुए बिना उस गौरवका अधिकारी नहीं बना जा सकता है। यह आत्यन्तिक सत्य है। वेदशास्त्र जिस भाषामें लिखित है, उसका नाम है—संस्कृत भाषा। संस्कृतको छोड़कर और कोई भी भाषा ब्रह्मवस्तुका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं है। इसलिए असंस्कृत भाषा ब्रह्मज्ञानके लिए अनुपयोगी है। एकमात्र भाषा जो संस्कृत अर्थात् परिशुद्ध अथवा ब्रह्मसेवाके उपयोगी है, उसका नाम है—संस्कृत भाषा। वर्तमान भारत इस संस्कृत भाषाका वर्जनकर किस प्रकार भारतीय होनेका दावा करनेमें सक्षम हैं, यह सहज ही अनुमेय है। वर्तमानमें मृत भाषा (Dead Language) कहकर संस्कृतका परित्यागकर भारत प्रकृत भारतीयताका दावेदार नहीं हो सकता। वैदिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए संस्कृत भाषामें अभिज्ञ होना एकान्त आवश्यक है। किन्तु बड़े ही दुःखका विषय है कि वर्तमान भारतने ऐसी कुबुद्धिका आश्रय लिया है कि संस्कृत शिक्षा सम्पूर्ण रूपसे वर्जन करनेके प्रति तनिक भी द्विधा बोध नहीं कर रहा। संस्कृत नहीं जाननेसे ब्रह्मवस्तुको जानना असम्भव है। 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'—इस शास्त्रवचनके अनुसार ब्रह्मवस्तुका ज्ञान लाभ करना संस्कृत भाषाके ज्ञानके बिना असम्भव है। प्राचीन भारतमें संस्कृत भाषाको ही शीर्षस्थान प्रदान किया जाता था। उस समय यह आन्तर्जातिक भाषाके रूपमें ही व्यवहृत होती। वर्तमानमें संस्कृत भाषाका स्थान अंग्रेजी भाषाने अधिकृत कर लिया है। वर्तमान भारतने अंग्रेजी भाषा-भाषीके अनुगत सभी प्रकारकी शिक्षा एवं आचरणको आदर्श मानकर ग्रहण किया है। अतएव भारतीय कहलानेका अधिकार खो दिया है।

अनुकूल आचरण ग्रहण नहीं करनेसे अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान हुए बिना वैदिकी शिक्षा आचरित नहीं हो सकती है। तामसिक व्यवहार और आचरण द्वारा कभी भी वैदिक आचरण पालन करना सम्भव नहीं है। यही वैदिक शास्त्रोंकी शिक्षा है। अतएव जिससे सत्त्वगुण रक्षित और अभिवर्द्धित हो, वैसा आहार-विहार, आचरण प्रभृति होना अत्यन्त

आवश्यक है। प्राचीन भारतके मनीषियोंके आचरणकी अवहेलना कर दुःसङ्गके प्रभावसे भारत अत्यन्त तामसिक आचरणके द्वारा वर्तमानमें गौरवका बोध करता है। मांस, मछली, अंडा आदि अभी उत्तम खाद्यके रूपमें परिगणित हो रहे हैं और तथाकथित भारतीय इसका सेवन भी खूब कर रहे हैं। इसलिए ये वैदिकी शिक्षाके पालनमें पूर्णरूपसे अयोग्य हो गए हैं। वेद पढ़नेके लिए सत्त्वगुण प्रधान होना अनिवार्य है। यदि कोई विधर्मी वेदको जाननेकी इच्छा प्रकट करता, तो उसे दीर्घकाल तक अर्थात् कई महीने तक हविष्यान्न या सात्त्विक आहार ग्रहण करनेके लिए बाध्य होना पड़ता।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।
(गीता १४/१८)

अतएव जघन्य देशज गुण अर्थात् स्त्रीसम्भोगजनित कदाचार द्वारा कभी भी वैदिक शिक्षा आचरित नहीं हो सकती। विमल ब्रह्मविद्या ही चरममें प्रेमभक्तिकी अवस्थामें उन्नीत होती है। इसी प्रेमभक्तिको प्रदान करनेवाले श्रीचैतन्य महाप्रभुने समस्त पृथ्वीको तामसिक आचार-विचार परित्यागकर सत्त्वगुणमें प्रतिष्ठित होनेकी शिक्षा दी है। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए मत्स्य-मांसादि अमेध्य और तामसिक वस्तुएँ अवश्य वर्जनीय हैं।

वर्तमान विश्व उनकी प्रेमभक्तिके श्रेष्ठत्वकी उपलब्धि कर उनके प्रति आकृष्ट हुआ है, यह बड़े ही सौभाग्य और आनन्दकी बात है। इसलिए वे लोग सर्वतोभावेन आजन्म अभ्यस्त तामसिक आहारका परित्यग कर निरामिष और सत्त्वप्रधान आहारके प्रति आदरयुक्त हुए हैं। ऐसा करनेवालेको ही भारतवासी कहनेसे कोई भूल नहीं होगी। इसके बदले जो लोग सात्त्विक आहारादिका अनादरकर तामसिक आहार ग्रहण करते हैं, वे किस प्रकार प्रकृत भारतवासी हो सकते हैं? स्पष्टतः यदि कहा जाय तो प्राचीन भारतीय आचार-विचार, वेश-भूषा, आहारादिसे अनुप्राणित होकर वे लोग भारतीय कहलानेके अधिकारी हो रहे हैं। और, भारतवासीगण विपरीत भावापन्न होकर भारतीयत्वका अधिकार खोकर तमोभावापन्न देशीयके रूपमें परिगणित हो रहे हैं। ये लोग भारतवासी होकर नियमित भजन और हरिनाम करनेमें घृणा और लज्जा बोध करते हैं और इसके विपरीत विदेशीगण भारतीय आचार-विचारको मङ्गलजनक जानकर इसका आचरण करनेमें परमोत्साहका प्रदर्शन कर रहे हैं। क्या यह वर्तमान भारतके लिए दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है?

शिक्षाविभागमें भी इस प्रकारका रुचि परिवर्तन विशेष रूपमें लक्ष्यका विषय हुआ है। ऐसे तथाकथित भारतीय संस्कृत शिक्षाका अनादर कर रहे हैं और तामसिक शिक्षाका प्रवर्तन कर रहे हैं—क्या यह दुःखका विषय नहीं है? छात्र-छात्राओंकी वेश-भूषादिके प्रति दृष्टिपात करने पर यह धारणा उत्पन्न होती है कि ये विदेशी हैं। खाद्य-अखाद्यके विचारसे भी जिन तामसिक आहारादिको उनके पूर्वपुरुषगणने छोड़ा था, वे आज इन्हें रुचिकर हो गए हैं। इससे अधिक परितापका विषय और क्या हो सकता है? वर्तमान

स्कूल-कॉलेजमें प्राचीन भारतीय शिक्षा वर्जित है। हरिनाम करना लज्जाका विषय हो गया है। इसलिए इन लोगोंको भारतीय कहना क्या सङ्गत हो सकता है?

भोग और सेवा वा भक्ति परस्पर विरुद्ध हैं। अपनी इन्द्रियोंकी सुखचेष्टाको भोग कहा जाता है। श्रीकृष्णका सुखविधान भक्ति या उन्नत अवस्थामें प्रेम कहा जाता है। श्रीश्रीगौरनित्यानन्द प्रभुका यही विचार है। इतना ही नहीं, वेदादि समस्त शास्त्रोंका अभिमत है। धर्म, अर्थ, यहाँ तक कि मोक्षको भी भक्ति नहीं कहा गया। मोक्षको सर्वापेक्षा अधिक भोग कहा गया है।

ताहार मध्ये मोक्षवाञ्छा कैतवप्रधान।
याहा हैते कृष्णभक्ति हय अन्तर्धान।।

समस्त दुःख-कष्टोंसे परित्राण पाकर निज सुखस्वरूप ब्रह्ममें सेवाविहीन भावसे युक्त होना भोगका ही परिचय है। विष्णुपादपद्मकी सेवाको ही यथार्थ मोक्ष कहा गया है। सायुज्य मुक्तिमें यह सेवा प्रकाशित नहीं हो पाती है। इसलिए ऐसे मोक्षको चरम भोगमय कहा गया है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षाका विचार करनेसे देखा जाता है कि ऐसे मोक्षमें कृष्णभक्तिकी उत्पत्ति नहीं होती है। कृष्णदास्य—कृष्णकी सेवा या प्रीतिविधान ही जीवका नित्य धर्म है। सायुज्य मुक्तिमें सेवाकी कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए प्रकृत वैदिक शिक्षामें सायुज्य मुक्तिको प्रश्रय नहीं दिया गया है। तटस्था शक्ति जीव कृष्णदास्यमें ही प्रतिष्ठित है। किन्तु कृष्णविमुखताके कारण जीवके इस धर्मका विपर्यय हो जाता है।

कृष्णबहिर्मुख हइया भोगवाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे।।

कृष्णदास्यका परित्यागकर मायामोहित जीव जब संसारको अपना भोग्य समझता है, तो दुःख ही उसका चरम फल होता है। इसी तथ्यको समझानेके लिए वेदादि समस्त शास्त्रोंका आविर्भाव हुआ है।

मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति ज्ञान।
जीवेरे कृत्रपाय कैल कृष्ण वेदपुराण।।

असत्सङ्गके प्रभावसे जीव कृष्णबहिर्मुखता प्राप्त करता है एवं सत्सङ्गके प्रभावसे बहिर्मुखताका परित्यागकर कृष्णसेवाके प्रति उन्मुख होता है। अतएव—

महत्सेवां द्वारामाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।

इस शास्त्रवाक्यानुसार भारतसे अन्यत्र सर्वाधिक योषित्सङ्गसुख लाभके लिए उपयोगी आहार और विचारको उन्नति मानने पर भी उसे चरम अवनति मानना ही कर्तव्य है। अतएव अन्यान्य उन्नतिशील देशोंको यथार्थतः उन्नत कहना उचित नहीं है, अपितु वे चरम अनुन्नत हैं। सभी शास्त्रोंमें योषित्सङ्गको चरम उन्नति प्राप्त करनेमें प्रधान बाधा बताया गया है। योषित्सङ्गकी उन्नति नरकादि यन्त्रणाका कारण होता है।

यमराजजीकी उक्तिमें पाया जाता है—भगवान् मुकुन्दके पादपद्मके अनुशीलनसे रहित घर नरकका द्वार है। ऐसे घरमें आसक्त लोग अवश्य ही नरक-यन्त्रणा भोग करते हैं। परन्तु जिस घरमें भगवत्सेवा होती है, वहाँ जाने तथा दण्ड प्रदान करनेमें यमराज तक असमर्थ होते हैं। अतएव वर्तमान भारत भोगविलासमें यमयातनाका पात्र हो रहा है। यही वस्तुतः आदिकालीन भारतीय शिक्षा है।

महावदान्य गौर-नित्यानन्दने यही शिक्षा समस्त जगत्में अपने निज परिकरों द्वारा प्रचारित कर पतित लोगोंके प्रति परम मङ्गल प्रकाश किया है। उन्होंने स्वयं यह कहा है—

पृथिवी पर्यन्त यत आछे नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबेक मोर नाम।।

अतएव जो इस वाणीको सार्थक कर रहे हैं, वे महावदान्य और सर्वश्रेष्ठ मङ्गलकारी हैं, इसलिए सर्ववरेण्य हैं। वे ही यथार्थ भारतवासी हैं।

विविध संवाद

[श्रीश्रीव्रजमण्डल परिक्रमा]

वैष्णवोंके लिए चातुर्मास्य व्रतका पालन करना कर्त्तव्य है। इसीकी शिक्षा देनेके लिए स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके अनुगत भक्तोंने आदरपूर्वक इस व्रतका पालन करके दिखाया। कार्तिक मास सभीके लिए पालनीय है। विशेषतः उन गौड़ीय वैष्णवोंके लिए, जो महाभाव स्वरूपा श्रीमती राधारानीकी अहैतुकी कृपाको प्राप्त करनेके अभिलाषी हैं। इस मासका शास्त्रोंमें कार्तिक मास, ऊर्जा व्रत, नियमसेवा मास, दामोदर मास इत्यादि अनेक नामोंसे परिचय पाया जाता है। इसको ऊर्जा व्रत क्यों कहते हैं, इसके उत्तरमें श्रील महाराजजीने बताया है कि कृष्ण शक्तिमान हैं और राधाजी उनकी शक्ति या ऊर्जा हैं। कृष्ण इच्छा करते हैं और कृष्णके भीतर स्थित उनकी शक्ति श्रीमती राधिकाजी उनकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करती हैं। इसी मासमें भजन एवं साधन करनेकी अत्यधिक शक्ति प्रदान करने वाली भगवान् कृष्णकी अद्भुत-अद्भुत लीलाएँ हुईं, जिनके श्रवणसे भक्तके हृदयमें भगवान्की स्वरूप शक्तिका सञ्चार होता है और चिरदिन तापित हृदयको शीतलता मिलती है।

इस मासके प्रथम दिनमें ही श्रीकृष्णने वृन्दावनके वंशीवटके नीचे अगणित गोपियोंके साथ शारदीय रास आरम्भ किया। यह रास ब्रह्माजीके एक कल्प तक चला। इसी मासमें ही राधाकुण्डका आविर्भाव, दीपावली, गोवर्धन पूजा, गोपूजा, गोपाष्टमी, अन्नकूट, दाम-बन्धन लीला, रास यात्रा इत्यादि अनेक लीलाएँ हुईं। इस मासमें अनेक गौड़ीय वैष्णव आचार्योंकी आविर्भाव एवं तिरोभाव तिथियाँ पड़ती हैं। श्रील महाराजजीने बताया कि श्रीनारदजीके वरके अनुसार इस मासमें यदि कोई कृष्णकी मधुर लीलाओंका श्रवणकर उनकी उन मधुर लीला स्थलियोंमें जाएगा और श्रद्धापूर्वक उस लीला स्थलीको प्रणाम करके उस स्थानकी रजसे अभिषिक्त होकर यदि उसकी कृपाकी भिक्षा करेगा तो उसके लिए अत्यन्त दुर्लभ प्रेम भी सुलभ हो जाएगा और उसका हृदय सेवा-वासना से युक्त हो जाएगा। यह निगूढ़ सत्य है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए। श्रद्धापूर्वक चित्त निवेश करके हरिकथाका श्रवण करो। किसी प्रकारकी जागतिक कामना मत रखो, हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए कार्य करो, अपने सुखके लिए नहीं, तभी यथार्थ रूपमें कार्तिक व्रत होगा। अन्यथा वञ्चित हो जाओगे। श्रीमनः शिक्षा, उपदेशामृतका चित्त स्थिर करके पालन करते हुए इस मासका पालन करनेकी चेष्टा करो।

इसी मासमें श्रीयशोदाजीने कृष्णको अपनी प्रेमरूपी रज्जुसे प्रकाशित रूपसे बाँधा एवं गोपियोंमें विशेषतः श्रीमती राधाजीने अप्रकाशित रूपमें उनका दाम बन्धन किया, इसलिए इस मासको दामोदर मास भी कहा जाता है। कृष्णका यह बन्धन प्रतिपदाके दिन हुआ।

इस मासमें हमारे सभी गौड़ीय वैष्णव नियम

करके अपना साधन भजन अपतित रूपसे करते हैं। इसलिए इसको नियमसेवा मास भी कहते हैं।

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा प्रारम्भ होनेके पूर्व श्रील महाराजजीने परिक्रमाकी महिमाको बताते हुए कहा कि हमारे परमाराध्यतम गुरुदेव एवं श्रील प्रभुपादने श्रीधाम परिक्रमाकी व्यवस्था श्रद्धालु भगवद्भक्तोंके पारमार्थिक कल्याण लाभ हेतु ही की थी। इस परिक्रमामें श्रवण, कीर्तन इत्यादि भक्तिके सभी अङ्गोंका अनायास ही पालन हो जाता है। सत्सङ्गके अभावमें तीर्थ भ्रमण तथा धर्म-कर्म इत्यादि सभी व्यर्थ हैं। सभी लीलास्थलियों पर जाकर शुद्धभक्तोंके श्रीमुखसे उस स्थान पर हुई लीला एवं भगवान्‌की वीर्यवती कथाओंका श्रवण करनेसे जीवोंके वास्तविक कल्याणका प्रादुर्भाव होता है।

श्रीश्रीगुरु, गौराङ्ग, गान्धर्विका गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीकी असीम अनुकम्पा एवं परमपूज्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी लगभग ५० देशोंसे आए लगभग छः सौ भक्तोंने १ नवम्बरको शारदीय पूर्णिमाके दिन मथुरा स्थित विश्रामघाट पर सङ्कल्प ग्रहण करके व्रजमण्डल परिक्रमाका शुभारम्भ किया। उस दिन श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अध्यक्षतामें नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरहोत्सव भी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें मनाया गया। इस उपलक्ष्यमें अनेक उच्च कोटिके गौड़ीय वैष्णव सम्मिलित हुए, जिन्होंने उनके अतिमर्त्य जीवन चरित्र, गुरुनिष्ठा, उनकी शिक्षाओं, भजन प्रणाली एवं गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके प्रति उनके अवदानको अत्यन्त सुन्दर रूपसे अभिव्यक्त किया। सन्ध्याकालमें भी विभिन्न वक्ताओंने उनके श्रीचरणकमलोंमें भावपूर्ण वक्तृताओं द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान की।

अध्यक्ष श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देते हुए कहा कि मेरे परमाराध्यतम गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपाद और भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण निष्ठावान् थे। इसलिए वे सदा निडर रहते थे। यदि प्रभुपादके विरुद्ध किसीने कुछ कहा तो वे उसका कठोर रूपसे दमनकर ही दम लेते थे।

प्रतिदिन प्रातःकाल मङ्गल आरतिके पश्चात् श्रीदामोदराष्टक, श्रीनन्दनन्दनाष्टक एवं श्रीराधाकृपा-कटाक्षस्तोत्रका सुस्वरसे कीर्तन होता था। कुछ दिनों तक श्रीलमहाराजजीने संक्षेपमें प्रातःकाल श्रीलसनातन गोस्वामीकी टीकाके आधारपर श्रीदामोदराष्टककी सुसिद्धान्त एवं रसपूर्ण व्याख्या की। श्रीलमहाराजजीने कहा कि जिस प्रकार भोजनकी नित्य आवश्यकता है, उसी प्रकार स्तव-स्तुतिका पाठ भी नित्यप्रति करनेकी आवश्यकता है। कुछ भी प्रार्थना करनेसे पहले उनके नाम, रूप, गुण, लीला इत्यादिके स्तवसे ही वे स्वयं द्रवीभूत हो जाते हैं। श्रीलमहाराजजीने इस मासमें श्रीदामोदराष्टक, श्रीभजनरहस्य एवं श्रीचैतन्य चरितामृतके श्रीरायरामानन्द संवादका अत्यधिक सुन्दर, सरस एवं गम्भीर रूपसे ऐसा वर्णन किया कि सभी उपस्थित भक्तवृन्दका हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगा।

—तालवनमें श्रीलमहाराजजीने बताया कि जो व्यक्ति यह सोचता है कि मैंने तो दो बार सम्पूर्ण व्रजमण्डल परिक्रमा कर ली है, बार-बार जानेकी क्या आवश्यकता है, उन्हीं स्थानों पर तो लेकर जाते हैं, वह वास्तवमें गदहा है।

—जिस किसी स्थानपर हम जाते हैं, वहाँकी रज न चाहते हुए भी हमें स्पर्श करती है। इसका क्या फल हो सकता है, वह हम नहीं देख सकते। जिनको दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति हो चुकी है, जो महाभागवत हैं, केवल वे ही इसका फल देख सकते हैं।

—गोकुल स्थित योगमाया मन्दिर ही वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण एवं योगमायाका जन्मस्थान है।

—***'जयति जननिवासे'*** में जयति वर्तमान कालमें है। इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण अभी भी यहाँ पर हैं, परन्तु साधन-भजन करते हुए जिनकी आँखें खुल गई हैं, वे ही उनका दर्शन कर सकते हैं।

—सत्शिष्य ही सद्गुरुकी महिमाकी उपलब्धि अपने भजनके प्रभावसे कर सकता है। वह शिष्य चिन्ता करता है कि कहाँ मैं नालीका कीड़ा था और कहाँ इन्होंने मुझे व्रजकी भक्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया है। भजनके प्रभावसे ही वह अपनेको उनका चिरऋणी समझेगा।

—गोपाल मन्त्र, काम गायत्री इत्यादि केवल शब्द ही नहीं हैं, वास्तवमें यह व्रजका सम्पूर्ण रस है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही इसका अनुभव होगा। केवल अपने साधनसे नहीं।

—महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे प्रश्न किया कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि भगवत्ताके सारकी भी जो सीमा है, जो असम्भवको भी सम्भव बना सकते हैं, वे कृष्ण नन्दबाबाके घरमें पुत्र रूपमें पधारे और यशोदाजी उनको स्तनपान कराती हैं। नन्दजीने ऐसा कौन-सा पुण्य किया? ऐसी कौन-सी तपस्या की? या फिर ऐसा कौन-सा दान किया कि उनको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

साधारण रूपमें यह कहा जाता है कि द्रोण और धराने कठोर तपस्या की। ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उनको कहा—***वरं ब्रूहि***। उन्होंने कहा कि परमब्रह्मके प्रति हमारा वात्सल्य प्रेम हो। 'पुत्र हो'—ऐसा नहीं कहा। ब्रह्माजीने कहा ऐसा ही होगा। परन्तु इसमें शङ्का होती है कि ब्रह्माजी तो स्वयं ही व्रजमें गुल्म, कीट इत्यादि होनेकी प्रार्थना करते हैं तो फिर वे ऐसा वर देनेके अधिकारी कैसे हुए? इसके उत्तरमें श्रीलमहाराजजीने बताया कि यद्यपि ब्रह्माजी देनेके अधिकारी नहीं हैं, परन्तु फिर भी श्रीमन्महाप्रभुने उन्हें आदिगुरुके रूपमें स्वीकार किया है। वे कृष्णकी सृष्टि-क्रियामें आधिकारिक जीव हैं, अतएव जानते हैं कि कृष्ण कब आएँगे। ब्रह्माजीकी आयु एक सौ वर्ष है और उनके आयुकालमें कृष्ण ३६५०० बार आते हैं। हम यदि थोड़ा बहुते जानते हैं तो हमारे आदिगुरु होते हुए क्या वे कृष्ण-तत्त्वको नहीं जानते होंगे? यदि गुरुमें इतनी भी योग्यता नहीं तो गुरु कैसे? अर्थात् वे जानते हैं कि कृष्ण कब अवतरित होंगे एवं वे सदैव अपने परिकरोंके साथ आते हैं। परन्तु इसको स्वीकार करनेसे फिर एक और शङ्का उपस्थित होती है कि यदि द्रोण और धराने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त करके नन्द और यशोदाके रूपमें कृष्णको अपने पुत्र रूपमें प्राप्त किया तो क्या नन्द और यशोदा नित्यसिद्ध रागात्मिक भक्त नहीं हैं?

श्रील महाराजजीने इसका समाधान करते हुए कहा कि नन्दबाबा एवं यशोदा मैया उनके नित्य माता-पिता हैं, उन्होंने किसी साधनसे ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं की। जब ब्रह्माण्डमें कोई सौभाग्यवान जीव उपयुक्त रागानुगा साधन करता है तो वह नित्य नन्द-यशोदाके आनुगत्यमें भजनकर प्रकट लीलामें नन्द-यशोदामें ही मिल जाता है, किन्तु लीला शेष होनेपर अप्रकट लीलाके लिए वह नन्द यशोदासे विलग होकर उनके निकटवर्ती कोई पड़ोसी बनकर वात्सल्य भावयुक्त नित्य सेवाको प्राप्त करता है।

दूसरी बात यह भी है कि कृष्ण अपने वरसे अधिक अपने भक्तोंके वरको अधिक महत्व देते हैं। यदि कृष्ण सबके चित्तको रखते हैं—***'ये यथा मां प्रपद्यन्ते'***, तो क्या ब्रह्माजीकी बातको नहीं रख सकते। और ऐसा भी हो सकता है कि द्रोण और धरा—देवकी, वसुदेव या फिर नन्द-यशोदाके अंश भी हो सकते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर पूर्वपक्ष करते हैं कि जब कोई भक्त प्रार्थना करता है तो लीलाविलासमें युक्त कृष्ण क्या उसकी प्रार्थनाको सुन पाते हैं? वे स्वयं ही इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि हाँ, कृष्ण अवश्य ही उस प्रार्थनाको सुनते हैं। कृष्णमें मुग्धता और सर्वज्ञता सब समय विराजमान रहती है। यदि कोई कहे कि व्रजमें सर्वज्ञता क्यों? तो कहते हैं कि यदि ऐसा नहीं होगा तो फिर कृष्णमें और साधारण बालकमें भेद ही क्या रह जाएगा? यद्यपि कृष्णमें सर्वज्ञता विराजमान है, परन्तु वह मुग्धतामें इस प्रकार स्थित है, जिस प्रकार हरिद्वारमें बहती हुई गङ्गामें एक सौ बोरी नमक डाल देनेसे वह नमक गङ्गाके जलका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता, अपितु स्वयं ही उससे मिलकर उसके जैसा हो जाता है। इसी प्रकार व्रजमें सर्वज्ञता होने पर भी मुग्धता ही Prominent है।

—साधक अवस्थामें भी जिन्होंने श्रीमती राधाजीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया है, उन्हें तुच्छ मत समझो। कभी भी दिल्लगीमें या मजाकमें भी उनका उपहास मत करो। नहीं तो तुम्हारी सेवावृत्तिमें विघ्न पड़ जाएगा।

—यद्यपि श्रीहरिनाम साध्य और साधन दोनों ही है, तथापि रसिक भक्तोंके आनुगत्यमें ही साधन करना होगा अन्यथा वह नाम अधिकसे अधिक वैकुण्ठ तक पहुँचाएगा।

—नयनके द्वारा दर्शन अपूर्ण एवं खण्ड रूपमें होता है, किन्तु मनके द्वारा ही पूर्ण दर्शन सम्भव है। जब तक किसी वस्तुमें मन संलग्न न हो, तब तक नयनोंसे देखने पर भी यथार्थ दर्शन नहीं होगा। नयनोंसे वास्तविक दर्शन केवल मुक्त अवस्थामें ही सम्भव है। यदि थोड़ी-सी भी स्वसुखकी गन्ध रहे, तो कृष्णका पूर्ण दर्शन नहीं होता। नयनोंके द्वारा यदि मुखका दर्शन करेगा तो केवल मुख ही दिखाई देगा, किन्तु मनसे पूर्ण दर्शन सम्भव है। परन्तु गोप कुमार कहते हैं कि मनके द्वारा भी दर्शन पूर्ण रूपसे नहीं होता, केवल आत्माके चक्षुओंसे ही पूर्ण दर्शन सम्भव है।

—गुरु-वैष्णव जिनको चाहते हैं, प्रीति करते हैं, आँख बन्द कर उनका आदर करो। यदि ऐसा करोगे, तभी गुरु-वैष्णवोंकी कृपाप्राप्ति होगी।

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि कनिष्ठ अधिकारीमें देहाभिमान रहता है, इसलिए उनके लिए अर्चनकी व्यवस्था है। अर्चन एवं भजन एक नहीं है, इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। जो कनिष्ठाधिकारी है, उसका भजन आरम्भ नहीं होता, क्योंकि उसके सम्बन्ध ज्ञानका उदय नहीं हुआ होता, ममता उदित नहीं हुई होती।

—जब तक कोई तटस्थ न हो, तब तक वह केवल अपने ही भाव या रसका वर्णन कर सकता है। परन्तु जब तटस्थ होकर विचार किया जाता है, तभी सभी रसोंका वर्णन सम्भव है। श्रील रूप गोस्वामी पादने श्रद्धासे लेकर महाभाव तकका वर्णन किया, तटस्थ होकर। यदि वे रूप मञ्जरी भावमें होते तो कभी भी इस प्रकारसे वर्णन करना उनके लिए सम्भव नहीं होता। दूसरी ओर श्रीचैतन्य महाप्रभु कभी भी अपने भावोंके प्रति तटस्थ नहीं रहे, इसलिए उन्होंने कोई भी ग्रन्थ नहीं लिखा।

—यद्यपि श्रीमती राधाजीके विरहका श्रीमद्भागवतमें अधिक वर्णन किया गया है, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कृष्णमें विरह था ही नहीं। बल्कि ऐसा कहा जा सकता है कि व्रजमें श्रीमतीजीके विरहको बाँटने वाली अनेक गोपियाँ थी, परन्तु कृष्णके पास तो ऐसा कोई भी नहीं था, जिससे अपने हृदयके दुःखको बाँट सकें। किन्तु क्योंकि श्रीशुकदेव गोस्वामी राधापक्षीय थे, इसलिए उन्होंने केवल श्रीमतीजीके विरहका ही वर्णन किया है।

—रासलीलाके उपरान्त जब कृष्णको ढूँढते-ढूँढते गोपियाँ थक गईं, परन्तु कृष्ण नहीं मिले, तब वे कृष्णका गुणगान गाते-गाते भावमें इतनी विभोर हो गईं कि कोई गोपी अपने आपको कृष्ण समझकर गिरिराज-धारण लीलाका अनुकरण करने लगी एवं कोई अन्य गोपी माता यशोदाका अनुकरण करके अन्य किसी गोपी (जो कृष्ण बनी थीं) को रज्जुसे बाँधने लगी। कोई गोपी पूतनाका अनुकरण कर कृष्णको विष पान करानेके लिए उद्यत हुईं। परन्तु श्रीलमहाराजजीने बताया कि एसी अवस्थामें भी किसी गोपीने पूतनाका अनुकरण नहीं किया, बल्कि योगमायाजीने ही लीला पुष्टिके लिए ऐसा कराया क्योंकि पूतनाका भाव प्रतिकूल है।

—श्रीगिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा करते समय श्रीलमहाराजजीने बताया कि हमलोग लाखों-लाखों ज्ञानियों, कर्मियों इत्यादिकी तरह परिक्रमा करने नहीं आए हैं। परन्तु हम साधु-सङ्ग प्राप्तिकी लालसासे अर्थात् कृष्ण सेवा प्राप्तिकी वासनाका Injection लेने आए हैं। यही हमारी परिक्रमाका वास्तविक उद्देश्य है।

(क्रमशः)

भक्तगण श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें श्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा करते हुए

Schedule for Srila Maharaj's Winter Tour 2001

Germany	**11 Dec.—16 Dec.**
San Diego	**18 Dec.—23 Dec.**
Hawaii	**16 Jan.—20 Jan.**
New Zealand	**30 Jan.—4 Feb.**
Fiji	**6 Feb.—9 Feb.**
Murwillumbah	**12 Feb.—17 Feb.**
Brisbane	**19 Feb.—22 Feb.**
Sydney/Cessnock	**23 Feb.—27 Feb.**
Singapore	**3 March—7 March**
Malaysia	**9 March—13 March**

(Return to Calcutta, India on 14 March)

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४५ | श्रीगौराब्द ५१५ | वि. सं. २०५८ माघ मास, सन् २००१, २९ जनवरी–२७ फरवरी | संख्या ११

श्रीकृष्णस्तोत्रम्

—श्रीगोपालतापनीय–श्रुतिधृतम्

नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे। विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः॥१॥
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे। कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः॥२॥

जो विश्वस्वरूप हैं और जो विश्वकी स्थिति, एवं संहारके कारण हैं, उन विश्वमय श्रीगोविन्दको बारम्बार नमस्कार है॥१॥

जो विज्ञानस्वरूप और परमानन्दमय विग्रह हैं, उन गोविन्द, गोपीनाथ, श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है॥२॥

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने। नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः॥३॥
वर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे। रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः॥४॥
कंसवंशविनाशाय केशिचानूरघातिने। वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः॥५॥
वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्द्दिने। कोलिन्दीकुललोलाय लोलकुण्डलधारिणे॥६॥
वल्लवीनयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने। नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः॥७॥
नमः पापप्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च। पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्त्तासूहारिणे॥८॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धिवैरिणे। अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः॥९॥
प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर। आधिव्याधिभुंजगेन दष्टं मामुद्धर प्रभो॥१०॥
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर। संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो॥११॥
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्द्दन। गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव॥१२॥

जो नेत्रोंमें कमलकी शोभा धारण करते हैं, कण्ठमें कमल पुष्पोंकी माला धारण करते हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन लक्ष्मीस्वरूपा—सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधिकाके प्राणेश्वर श्यामसुन्दरको नमस्कार है॥३॥

जिनके मस्तक पर मोर पंखका मुकुट सुशोभित है, जो असीम ज्ञानमय हैं तथा लक्ष्मीदेवीके (श्रीराधिकाके) मान-सरोवरमें विहार करनेवाले राजहंस हैं, उन श्रीगोविन्दको बारम्बार प्रणाम है॥४॥

जो कंसके वंशका विध्वंस करनेवाले तथा केशी और चाणूरके विनाशक हैं और जो श्रीमहादेवके भी वन्दनीय हैं, उन पार्थसारथि श्रीकृष्णको नमस्कार है॥५॥

जो बाँसुरी बजाते हैं, जो गौओंका पालन तथा कालियनागका मान-मर्दन करनेवाले हैं, कालिन्दीके रमणीय तटपर विहार करनेवाले हैं, जिनके कानोंमें धारण किये हुए कुण्डल हिलते हुए झलमला रहे हैं, सहस्रों गोप सुन्दरियोंके निर्निमेष नेत्र जिनके श्रीअङ्गोंमें प्रतिबिम्बित होकर विकसित कमल पुष्पोंकी माला सदृश शोभा पा रहे हैं, जो नृत्य करते हुए अतिशय शोभायमान हो रहे हैं, उन शरणागत पालक श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है॥६-७॥

जो पापोंके विनाशक हैं, श्रीगोवर्द्धनको धारण करनेवाले हैं, पूतनाके विनाशकारी तथा तृणावर्तके प्राणसंहारी हैं, उन श्रीकृष्णको नमस्कार है॥८॥

जो पूर्णस्वरूप हैं, जिनमें मोहका सर्वथा अभाव है, जो परम विशुद्ध, परम पवित्र, अद्वितीय और सबके पूज्य हैं, उन श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है॥९॥

हे परमानन्दस्वरूप! हे परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइए। प्रभो! मुझे आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक व्यथा) रूपी सर्पोंने डस लिया है, कृपया मेरा उद्धार कीजिए॥१०॥

हे कृष्ण! हे रुक्मिणीकान्त! हे गोपसुन्दरियोंका चित्त चुरानेवाले श्यामसुन्दर! मैं संसार-समुद्रमें डूबा जा रहा हूँ। जगद्गुरो! मेरा उद्धार कीजिए॥११॥

हे केशव! हे क्लेशहारी! हे नारायण! हे जनार्दन! हे गोविन्द! हे परमानन्द! हे माधव! मेरा उद्धार कीजिए॥१२॥ ❑

प्रश्नोत्तर

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

प्रश्न ९—वैष्णव जीवोंका क्या उपकार करते हैं? उनको तो किसी प्रकार जीव सेवाका कार्य करते नहीं देखा जाता?

उत्तर—जीवोंपर दया करना—वैष्णव-धर्मका एक प्रधान अङ्ग है। जीवोंपर दया करना वैष्णवोंका स्वभाविक गुण है। जिनमें यह स्वभाव लक्षित नहीं होता, वे सैकड़ों बाहरी चिह्नोंको धारण करनेपर भी वैष्णव नहीं हो सकते। "जीवोंके प्रति दया, भगवन्नाममें रुचि और वैष्णवसेवा"—केवल ये तीन ही वैष्णवोंके कर्त्तव्य हैं—ऐसा श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिने सर्वत्र ही उपदेश किया है। वैष्णवोंका प्रधान कार्य है—जीव समूहको कृष्णोन्मुख करना। जहाँ केवलमात्र स्थूल शरीरके रोगोंकी निवृत्ति या उदरभरण करना ही मुख्य उद्देश्य होता है, वहाँ वैष्णवताका लेश भी नहीं होता; क्योंकि इनके द्वारा केवल क्षणिक उपकार होता है—नित्य उपकार नहीं। तब एक बात है, यदि इन कार्यों द्वारा कृष्णोन्मुखी प्रवृत्तिको अग्रसर होनेमें कुछ सहायता होती है, तब इन कार्योंमें भी वैष्णवोंकी स्वतः प्रवृत्ति होती है।

(सज्जनतोषणी, वर्ष ४, जीवोंके प्रति दया)

प्रश्न १०—यदि शरीर निरोग न हो, तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर—यदि हृदयमें भगवत प्रेम न हो, तो दीर्घ जीवन और रोगशून्यता केवल अनर्थकी जड़ें हैं। प्रत्याहार आदि साधनों द्वारा इन्द्रियोंका संयम हो जानेपर भी साधनमें प्रेमका अभाव होता है। ऐसी दशामें उसे शुष्क और तुच्छ वैराग्य कहते हैं। इसका कारण यह है कि परमार्थके लिए त्याग और ग्रहण दोनों ही एक समान फलदायक होते हैं। निरर्थक त्याग केवल जीवको पत्थरकी भाँति कठोर और निर्जीव-सा कर देता है। (प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ११—धर्म नाना प्रकारका क्यों हुआ?

उत्तर—शुद्धावस्थामें जीवका धर्म एक ही प्रकारका होता है। परन्तु जड़बद्ध होनेपर जीवका वही धर्म प्रथमतः दो प्रकारका होता है—सोपाधिक और निरुपाधिक। इनमेंसे निरुपाधिक धर्म देशकाल आदिके भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारका नहीं होता। परन्तु जड़ोपाधि-प्राप्त जीवका देश, काल और पात्र भेदसे स्वभावादिकी भिन्नताके कारण सोपाधिक धर्म देश-विदेशमें और काल-भेदसे सहज ही विभिन्न प्रकारका हो पड़ता है। उक्त सोपाधिक धर्म ही भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न आकार और नाम धारण करता है। जीवकी उपाधि जितनी ही अधिक मात्रामें दूर होती है, उसका धर्म भी उतने ही अधिक मात्रामें निरुपाधिक होता है। निरुपाधिक अवस्थामें सभी जीवोंका एक ही नित्य धर्म होता है।

(सज्जन तोषणी ४/३, श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा)

प्रश्न१२—किन-किन गुणोंके होनेसे भक्तिका आविर्भाव होता है?

उत्तर—कृष्णैकशरणके अतिरिक्त सारे गुण होनेपर भी जब तक भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो जाती, तब तक भक्ति नहीं होती। कृष्णभक्तिसे रहित सद्गुण-सम्पन्न जीवका जीवन भी व्यर्थ ही है। कृष्णभक्तिके उदय होनेके साथ ही सब जीवोंके प्रति दया, निष्पापता, सत्यसारता, समदर्शिता, दैन्य, शान्ति, गाम्भीर्य, सरलता, मैत्री, फलदक्षता, असत्यकथाके प्रति उदासीनता, पवित्रता, तुच्छकामत्याग इत्यादि सारे गुणोंका सहज ही उदय होता है।

(सज्जनतोषणी ५/१, सद्गुण और भक्ति)

प्रश्न १३—विश्वप्रेम कृष्णप्रेमसे भी उदार और व्यापक है या नहीं?

उत्तर—विश्वप्रेम अथवा मानवका मानवके प्रति जो प्रेम-सा दीख पड़ता है, वह केवल आत्मप्रेमका विकार मात्र है—स्वयं प्रेम नहीं। आत्माका आत्माके प्रति जो प्रेम होता है, वही आत्मप्रेमका आदर्श है। प्रेमके यथार्थ स्वरूपको बिना समझे बूझे ही जिन लोगोंने मनोविज्ञान और प्रीतिविज्ञान इत्यादि लिखा है, वे चाहे कितनी भी युक्तियाँ क्यों न दें, वे केवल भस्ममें घी डालनेकी भाँति व्यर्थ ही परिश्रम है। अहङ्कारमें मत्त होकर केवलमात्र स्व-स्व प्रतिष्ठाका उन्होंने संग्रह मात्र किया है। उनके उक्त कार्योंसे जगतका कोई हित होना तो दूर रहे, अहित ही अधिक हुआ है। एक चिनगारी जिस प्रकार दाह्य-विषयको प्राप्तकर क्रमशः महाग्निका परिचय देकर सम्पूर्ण जगतको जला देनेमें समर्थ होती है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके यथार्थ विषय श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्तकर प्रेमकी महाबाढ़ ला देनेमें समर्थ हो जाता है।

(जैव-धर्म, द्वितीय अध्याय)

प्रश्न १४—किस प्रकारसे साम्प्रदायिक विवादोंसे छुटकारा मिल सकता है एवं सच्चे प्रेमधर्मकी स्थापना हो सकती है?

उत्तर—भगवान्‌की विशुद्ध लीला-कथाओं एवं गुणावलियोंका कीर्त्तन करनेसे तथा उनके प्रेमसे (भगवान्‌के सम्बन्धसे) आपसमें भ्रातृत्वकी स्थापना ही विशुद्ध धर्म है। पूर्व संस्थापित धर्मोंमें काल-प्रभावसे जो दोष प्रवेश कर गये हैं, उनको दूर कर दिये जानेपर सम्प्रदायोंमें जो भजन सम्बन्धी भेद हैं अथवा पारस्परिक विवाद हैं, वे सर्वतोभावेन दूर हो जाते हैं। उस समय सभी वर्ण, सभी जातियाँ तथा सभी देशोंके मनुष्य एकत्र होकर परस्पर भ्रातृत्व भावके साथ परमाराध्य परमेश्वरका नाम सङ्कीर्तन सहज ही करने लगेंगे। तब कोई किसीको चाण्डाल बतलाकर घृणा नहीं करेगा तथा उच्चवंशमें जन्म होनेके अभिमानमें मत्त होकर कोई जीव साधारण भ्रातृत्वको भूल नहीं सकेगा। उस समय हरिदास प्रेमरसका कलस लेकर श्रीवासके मुखमें डालेंगे और श्रीवास हरिदासकी चरणरेणुको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर अपने सर्वाङ्गमें धारण कर "हा चैतन्य! हा नित्यानन्द!" कहकर सहज ही नृत्य करेंगे।

(सज्जन तोषणी ४/३, नित्यधर्मका सूर्योदय)

प्रश्न १५—वैष्णव-धर्मको ही एकमात्र-धर्म कहनेसे क्या यह उनकी हठवादिता नहीं है?

उत्तर—वैष्णव-धर्मके अतिरिक्त और कोई भी धर्म ही नहीं है। इसके अतिरिक्त जितने भी धर्म कहे जाते हैं या कहे जाएँगे, वे सभी वैष्णव-धर्मके या तो सोपान हैं अथवा उसकी विकृति। सोपान-स्थानीय धर्मोंका यथायोग्य आदर करना चाहिए और विकृत धर्मोंके प्रति

द्वेषरहित होकर भक्तितत्त्वका अनुशीलन करना चाहिए। दूसरे धर्मावलम्बियोंके प्रति हिंसा-द्वेषका भाव नहीं रखना चाहिए। जब जिनका शुभ दिन उपस्थित होगा, तब वे अनायास ही वैष्णव बन जायेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

(जैवधर्म आठवाँ अध्याय)

प्रश्न १६—वैष्णव-धर्म ही सनातन-धर्म है, इसका प्रमाण क्या है?

उत्तर—वैष्णव-धर्म जीवोंकी उत्पत्तिके साथ ही साथ उदित हुआ है। सर्वप्रथम वैष्णव हैं—ब्रह्मा। श्रीमहादेवजी वैष्णव हैं। सारे प्रजापति वैष्णव हैं। ब्रह्माके मानस पुत्र श्रीनारद मुनि वैष्णव हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैष्णव-धर्म सृष्टिके प्रारम्भकालसे ही चला आ रहा है। यह कोई आधुनिक धर्म नहीं है। सच बात तो यह है कि सब जीव निर्गुण स्वभाव सम्पन्न नहीं होते। जिस जीवकी प्रकृति जितना ही अधिक निर्गुण होगी, वह उतना ही उच्च कोटिका वैष्णव होगा। महाभारत, रामायण और पुराण ही आर्य जातिके प्रारम्भिक इतिहास ग्रन्थ हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें वैष्णव-धर्मकी ही उत्कर्षता प्रतिपादित है। आपने सृष्टिके आदि कालमें वैष्णव-धर्म देख लिया। उसके पश्चात् हम ध्रुव और प्रह्लादको पाते हैं। ये दोनों ही विशुद्ध वैष्णव हैं। इनके समयमें और भी हजारों-हजारों वैष्णव थे, जिनके सम्बन्धमें कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इतिहासमें केवल प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियोंके ही नाम दिये जाते हैं। ध्रुव मनुके पुत्र हैं और प्रह्लाद कश्यप प्रजापतिके पौत्र हैं। ये सभी अत्यन्त आदि कालके हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः इतिहासके प्रारम्भिक कालसे ही वैष्णव धर्मको पाते हैं। उसके पश्चात् सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजन्यवर्ग तथा बड़े-बड़े ऋषि-महर्षिजन भी वैष्णव थे। सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीनों युगोंमें ही वैष्णव-धर्मका उल्लेख पूर्णरूपसे पाया जाता है। कलियुगमें भी दक्षिण भारतमें श्रीरामानुज, श्रीमध्वाचार्य और श्रीविष्णुस्वामी तथा पश्चिममें श्रीनिम्बादित्य स्वामीने सहस्रों-सहस्रों मनुष्योंको विशुद्ध वैष्णव-धर्ममें दीक्षित किया है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, उन्हीं लोगोंकी कृपासे भारत वर्षके अर्धसंख्यक मनुष्य मायासमुद्रसे पार होकर भगवद्भजनमें प्रवृत हुए। बंगालमें ही देखिये हमारे प्राणेश्वर श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिने न जाने कितने ही दीन-हीन और पतितोंका उद्धार किया है। यह देख सुनकर भी आप लोगोंको वैष्णव-धर्मका माहात्म्य क्यों नहीं दिखलायी पड़ता है?

(जैवधर्म दशम अध्याय)

प्रश्न १७—यदि वैष्णव-धर्म अनादि कालसे ही चलता आ रहा है, तो श्रीचैतन्य महाप्रभुने ऐसी कौन-सी नयी शिक्षा दी है, जिससे वे विशेष श्रद्धाके पात्र हैं?

उत्तर—वैष्णव-धर्म कमल-पुष्पकी भाँति समयानुसार क्रमशः विकशित होता आ रहा है। पहले कलीके रूपमें था, फिर थोड़ा-सा विकशित हुआ और अन्तमें पूर्णरूपसे विकशित होकर अपने सौरभको चारों ओर बिखेरकर जीवोंको आकृष्ट करने लगा। ब्रह्माके समय भगवत्-ज्ञान, मायाविज्ञान, भक्ति-साधन और प्रेमका जीवोंके हृदयमें चतुःश्लोकीके रूपमें स्फुरण हुआ। वैष्णव-धर्मका यह अंकुरित होनेका काल है। प्रह्लाद आदिके समयमें

कलिकाके रूपमें व्यक्त हुआ है। क्रमशः वेदव्यास मुनिके समयमें इस धर्मरूपी पुष्पकी पंखुड़ियाँ कुछ-कुछ विकशित रूपमें दिखाई पड़ती हैं। रामानुज, मध्व आदि आचार्योंके समय वह कुछ विकशित पुष्पके रूपमें दिखलायी देता है और श्रीमन्महाप्रभुके समय वही अर्द्ध विकशित पुष्प पूर्णरूपसे विकशित होकर अपने पवित्र सौरभसे सम्पूर्ण जगतको आकृष्ट करने लगा। नामप्रेम वैष्णव-धर्मका अत्यन्त निगूढ़ भाव है, जिसे श्रीमन्महाप्रभुने जगतके जीवोंके लिये प्रकाशित किया है। श्रीनामसङ्कीर्तन परम अमूल्य और अतिशय आदरकी वस्तु है—इस उपदेशको श्रीमन्महाप्रभुजीको छोड़कर किसी दूसरेने क्या कभी प्रकाशित किया है? यद्यपि यह शास्त्रोंमें पहले भी वर्तमान था, फिर भी जीवोंके सामने ज्वलन्त आदर्शके रूपमें प्रकाशित नहीं था, जिससे साधारण जनता इसे अपने जीवनमें आचरण करनेकी प्रेरणा प्राप्त करती। श्रीमन्महाप्रभुसे पूर्व प्रेमरसका भण्डार क्या इस प्रकार साधारण जीवोंमें किसीने कभी लुटाया है? (जैवधर्म १०वाँ अध्याय)

प्रश्न १८—अच्छी बात है, यदि आपलोगोंका सङ्कीर्तन इतना ही उपादेय है, तो पण्डित मण्डलीमें इसका आदर क्यों नहीं है?

उत्तर—कलियुगमें 'पण्डा' शब्दका अर्थ विपरीत लगाया जाता है। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारङ्गत (उज्ज्वला) बुद्धिको "पण्डित" कहते हैं। ऐसी बुद्धिसे सम्पन्न व्यक्तिको 'पण्डित' कहते हैं। 'पण्डित'—शब्दका यही यथार्थ अर्थ है। परन्तु आजकल थोड़ा-बहुत संस्कृत अध्ययन करके न्याय और स्मृतिशास्त्रोंका लोकरंजक अर्थ करनेवाले अथवा निरर्थक युक्तिजालका विस्तार करनेवाले ही पण्डित कहे जाते हैं। ऐसे पण्डित भला किस प्रकार धर्मका तात्पर्य और शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ समझ सकते हैं अथवा समझा सकते हैं? निरपेक्ष होकर शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह शुष्क तर्क-वितर्कोंसे थोड़े ही पाया जा सकता है? सच बात तो यह है कि व्यर्थकी वाक् वितण्डा करके जो अपनेको और दूसरोंको वंचित करनेमें पटु हैं, ऐसे वंचक व्यक्ति ही कलियुगमें पण्डित हैं। ऐसी पण्डित-मण्डलीमें सर्वदा घट-पट सम्बन्धी तर्क ही हुआ करते हैं। वस्तुज्ञान, सम्बन्ध-ज्ञान-तत्त्व, जीवोंका चरम प्रयोजन तथा उसकी प्राप्तिके उपाय—इन विषयोंके सम्बन्धमें कभी कोई चर्चा नहीं होती। जब तक तत्त्वका यथार्थ विवेचन नहीं होगा, तब तक प्रेम और सङ्कीर्तन क्या वस्तु है, यह कैसे जाना जा सकता है?

प्रश्न १९—वैष्णवधर्मका अनुशीलन करनेसे क्या किसी प्रकारकी कोई वैज्ञानिक उन्नति हो सकती है?

उत्तर—विषय ज्ञानको हेय जानकर उसका तिरस्कार करके शुद्ध ज्ञानकी प्रतिष्ठाका नाम विज्ञान है। 'वस्तु' एक होनेपर भी प्रक्रियाकी भिन्नताके कारण "ज्ञान" और "विज्ञान"—ये दो पृथक्-पृथक् नाम हुए हैं। तुम विषय ज्ञानको ही "विज्ञान" कहते हो और वैष्णवजन विषय ज्ञानको उसके सच्चेरूपमें संस्थापन करनेको 'विज्ञान' कहते हैं। वे धनुर्वेद, आयुर्वेद, ज्योतिष और रसायन आदि विषयोंकी समीक्षा करके इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि यह सब कुछ जड़ज्ञान है; इनके साथ जीवका वास्तवमें कोई नित्य सम्बन्ध नहीं है। अतएव ये जीवके

नित्यधर्मके सम्बन्धमें सर्वथा अनावश्यक हैं। जो जड़ प्रवृत्ति द्वारा परिचालित होकर जड़-ज्ञानकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करते हैं, उन्हें वैष्णवजन कर्मीकी संज्ञा प्रदान करते हैं—उनकी निन्दा नहीं करते। क्योंकि वे भौतिक उन्नतिके द्वारा वैष्णवोंके परमार्थ अनुशीलनमें परोक्षरूपमें कुछ-न-कुछ उपकार ही करते हैं। उनके क्षुद्र जड़मय ज्ञानको आपलोग 'प्राकृतिक ज्ञान' कहते हैं; इसमें कोई आपत्ति नहीं है। नामको लेकर वाद-विवाद करना मूर्खता है।

(जैवधर्म ९ वाँ अध्याय)

प्रश्न २०—यदि जड़-विज्ञानकी उन्नति न होती, तो वैष्णवलोग किस प्रकार भगवानका भजन करते?

उत्तर—प्रवृत्तिके अनुसार प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करता है; परन्तु सर्वनियन्ता ईश्वर उन चेष्टाओंके फलको यथायोग्य सब मनुष्योंमें वितरण कर देते हैं।

प्रश्न २१—वैष्णवधर्मका पालन करनेसे लोग असभ्य तो नहीं कहेंगे?

उत्तर—मनुष्य जीवन थोड़े दिनोंका है। इसपर भी इसमें अनेक विघ्न हैं। अतएव इस क्षणिक जीवनमें सरलतासे हरिभजन करना ही मनुष्यका एकमात्र कर्त्तव्य है। सभ्यता सीखनेका तात्पर्य आत्माको धोखा देना है। हम जानते हैं कि धूर्त्तताका ही दूसरा नाम सभ्यता है। मानव जीवन जब तक सन्मार्गपर स्थित रहता है, तभी तक वह सरल रहता है। परन्तु जैसे-जैसे वह कुमार्गपर अग्रसर होने लगता है, वह ऊपरसे मधुर-मधुर वचनोंसे लोक-रंजन करता हुआ अपने कुकर्मों पर पर्दा डालनेके लिये अधिक सभ्य बननेकी चेष्टा करता है। सभ्यता नामका कोई गुण नहीं; सच्चा व्यवहार और सरलता ही गुण है। अपनी दुष्टता पर पर्दा डालनेकी वर्तमान प्रथाका नाम ही "सभ्यता" है। "सभ्यता"—शब्दका अर्थ है—सभामें बैठनेकी योग्यता। अर्थात् सरल भद्रताके अतिरिक्त और कुछ नहीं। तुम धूर्त्तताको सभ्यता कहते हो। यदि निष्पाप सभ्यता कहीं मिल सकती है तो केवल वैष्णवोंके पास ही मिल सकती है और यदि सभ्यता पापपूर्ण हो, तो वह अवैष्णव समाजका ही भूषण हो सकती है। तुम जिस सभ्यताकी बात कह रहे हो, उससे जीवके नित्यधर्मका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि जन-साधारणको मुग्ध करनेवाली वेशभूषा ही सभ्यता है, तो वेश्याएँ तुमलोगोंसे कहीं अधिक सभ्य हैं। वस्त्रके सम्बन्धमें तो केवल इतना ही माना जा सकता है कि उससे आवश्यकतानुसार शरीर ढका रहे, वह साफ-सुथरा रहे तथा उसमें कोई दुर्गन्ध न रहे। आहारके सम्बन्धमें पवित्रता और उपयोगिताका विचार होता है। परन्तु तुमलोगोंके मतानुसार आहार केवल स्वादिष्ट होना चाहिए, चाहे वह भोजन अपवित्र ही क्यों न हो। मद्य-मांस स्वभावसे ही अपवित्र है। अतएव उनका भोजन करनेसे जो सभ्यता होती है, वह एक पापाचारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वर्तमान सभ्यताको कलियुगी सभ्यता भी कह सकते हैं।

(जैवधर्म, पांचवाँ अध्याय) ❑

ईश-विमुखताका परिणाम और उसे दूर करनेका उपाय

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वयंरूप-तत्त्व हैं। उनके आश्रित जीव जब तक स्व-स्वरूपमें स्थित रहकर उनकी सेवा करते रहते हैं, तब तक मायाका उनपर किसी प्रकारका प्रभाव नहीं होता। परन्तु वे जीव ज्योंहि अपनी स्वतंत्रताका अपव्यवहार करके भगवद् विमुख होते हैं, त्योंहि भगवानकी बहिरङ्गा माया झट उनके स्वरूपको ढक लेती है तथा उसी समयसे उनको इस संसारमें लाकर चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण कराती हुई त्रिविध प्रकारके तापोंसे दग्ध करती रहती है। बहिरङ्गा-माया जीवोंके स्वरूपको इस प्रकार ढक लेती है कि जीव अपने स्वरूपको तनिक भी अनुभव नहीं कर पाते और माया-प्रदत्त भौतिक स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरोंको ही अपना रूप मानने लगते हैं। अब वे भौतिक शरीरको ही "मैं" मानकर भौतिक सुखको ही स्व-सुख समझते हैं और उन्हींके संग्रहको ही जीवनका प्रधान उद्देश्य मानने लगते हैं। इस समय वे विषयसुखमें इस प्रकार मग्न हो पड़ते हैं कि उन्हें अपने स्वरूपकी बात तनिक भी याद नहीं रहती। परतत्त्वके ज्ञानके अभावमें वे प्रेमधर्मको समझनेमें भी असमर्थ हो पड़ते हैं। धर्म-अर्थ-कामके लिए ही उनकी सारी क्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार भगवानकी लीला-कथाओं और सेवा आदिके प्रति उदासीन रहना ही उनका धर्म हो पड़ता है।

परन्तु जीवकी यह भगवद् विमुखता आगमापायी है। किसी भी क्षण इसे दूर किया जा सकता है। किन्तु यह कार्य बड़ा कठिन होता है। भगवान या उनके भक्तोंकी कृपासे ही ऐसा सम्भव है। भगवानकी बहिरङ्गा मायाकी दो वृत्तियाँ होती हैं—एक विक्षेपात्मिका वृत्ति और दूसरी आवरणात्मिका वृत्ति। मायादेवी अपनी विक्षेपात्मिका वृत्ति द्वारा जीवको भगवानसे दूर फेंक देती है तथा आवरणात्मिका वृत्ति द्वारा जीवके स्वरूपको ढक देती है। इस प्रकार इन दोनों वृत्तियों द्वारा वह जीवोंको मायिक संसारमें दुःख प्रदान करती हुई इतस्ततः भ्रमण कराती है। इस भ्रमणकालमें बड़े सौभाग्यसे यदि वे किसी प्रकार धर्म-अर्थ-कामरूपी त्रिवर्गकी अनित्यताकी उपलब्धि कर लेते हैं, तभी मुण्डकोपनिषद्के "द्वा सुपर्णा" आदि मन्त्रोंका तात्पर्य हृदयङ्गमकर भगवत्-सेवाके प्रति उन्मुख होते हैं। ऐसे सेवोन्मुख जीव भगवानसे अभिन्न आश्रय-जातीय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें शरणागत होते हैं और उनकी सेवा करते-करते भजन राज्यमें प्रवेश करते हैं। बड़े सौभाग्यवान जीव ही मायाकी उपरोक्त आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्तियोंके कठिन कवलसे मुक्त होकर कर्म-ज्ञानसे निर्मुक्ता शुद्धा भक्तिका आश्रय करते हैं। तदनन्तर भगवद्विस्मृतिरूप रोग दूर हो जानेपर जीव प्रतिकूल जगतको भी भगवत-सेवोपकरण जानकर संसारकी प्रत्येक वस्तुओंसे भगवानकी सेवा करके आत्म-प्रसन्नता लाभ कर लेता है। अब वह सांसारिक भोगोंमें आसक्त न

होकर श्रीकृष्णके रूप-गुण-सौरभके प्रति उन्मुख और आकर्षित हो जाता है।

मनुष्य जन्म दुर्लभ ही नहीं सुदुर्लभ है। यह बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होता है। समस्त प्रकारके अर्थोंका साधन केवलमात्र इस नर-तनुमें ही सम्भव है। परन्तु साथ ही साथ यह पानीके बुलबुलेकी भाँति अनित्य और क्षणभंगुर भी है। इसलिए ऐसे सुदुर्लभ—परन्तु क्षणभंगुर और अनित्य मनुष्य जन्मको अपात्-रमणीय और परिणाम मैं विषवत् भोगोंको भोगनेमें ही व्यर्थ नष्ट न करके भगवत्प्राप्तिरूप चरम प्रयोजनको लाभ करनेमें लगाना ही उसकी यथार्थ सार्थकता है। मनुष्य जन्मकी सार्थकता विषयोंको भोगनेमें—आहार, निद्रा, भय और मैथुनमें नहीं हैं, क्योंकि विषय भोग तो पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर सभी योनियोंमें अवश्य ही भोगे जाते हैं। अतः बुद्धिमान मनुष्यको श्रीमद्भागवतके **"लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदं"** श्लोकका तात्पर्य समझकर भगवत्प्राप्तिके साधनमें सम्पूर्णरूपसे जुट जाना चाहिए। इस कार्यमें प्रवेश करनेके लिये सर्वप्रथम सद्गुरुका वरण करना चाहिए और उनके आदेश और निर्देशके अनुसार साधन-भजन करना चाहिये। गुरुदेवको कोई मरणशील मानव नहीं समझना चाहिए, बल्कि उनको भगवानसे अभिन्न अथवा भगवत्-प्रकाश मानकर उनकी सेवा करनी चाहिए। उनकी कृपासे ही भगवद्भक्तिमें अधिकार होता है। जो गुरुपादपद्मरूप श्रौत-पथका परित्याग कर देते हैं अथवा गुरुपादपद्मरूप श्रौत-पथका अवलम्बन नहीं करते, वे विमुख जीव ऐसा मानते हैं कि जगतमें अनेक पथ हैं। सभी पथ एक से हैं। और उन भिन्न-भिन्न पथोंसे एक ही अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है। परन्तु ऐसी मान्यता प्रयोजन-तत्त्वके विषयमें भयंकर भूल और मूर्खता है। यह भगवद् विमुखताका ही फल है। कुछ स्वार्थी लोग भगवान विष्णुको ही एकमात्र स्वार्थकी गति न मानकर पंचोपासनामें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु इससे जड़ीय भोगोंके अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लगता। ऐसे-ऐसे कर्मियोंके लिए भगवत्-प्रेम अतीव दुर्लभ है।

श्रीगुरुदेव अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दनके सबसे प्रिय हैं। ये अपने शरणागत जीवोंको शुद्धभक्तिका उपदेश देकर मायाकी उपरोक्त दोनों वृत्तियोंसे मुक्त करा देते हैं। परन्तु उनके श्रीचरणोंमें अपराध होनेपर भगवद् विमुखता और अधिक रूपमें जीवको जकड़ लेती हैं। ऐसी अवस्थामें जीव शुष्क-तर्क-प्रिय हो उठता है, शास्त्र और गुरु-वैष्णवोंकी अवज्ञा करने लगता है। धीरे-धीरे श्रेय-पथको छोड़कर सदाके लिए या तो आपात्-मधुर भोगोंके जालमें गिर पड़ता है अथवा त्यागकी मरीचिकामें भटकता हुआ अपना अस्तित्व भी खो देता है। इसलिये धीर स्वभाववाले पुरुष श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें रहकर उनके निर्देशानुसार भजन मार्गपर अग्रसर होते हैं।

श्रीगुरुदेव न तो भोगकी शिक्षा देते हैं, न त्याग की। ये दोनों वृत्तियाँ भगवत्-विमुखतासे ही उत्पन्न होती हैं। श्रीगुरुदेव इनसे पृथक भगवानकी शुद्धाभक्तिका ही उपदेश देते हैं। यह शुद्धाभक्ति ही जीवको भगवानके समीप ले जा सकती है। वैकुण्ठपति नारायणका ऐश्वर्य पारमैश्वर्य है। परन्तु यह पारमैश्वर्य भी उनके माधुर्यके सौन्दर्यके सामने अतीव लघु और शिथिल हो जाता है। यही नहीं,

श्रीसीता-रामकी स्वकीय उपासना अथवा श्रीरुक्मिणी और द्वारकाधीशकी स्वकीयता भी श्रीश्रीराधाकृष्णकी माधुर्यमयी उपासनाके सामने लघु हो पड़ती है। परतत्त्वकी दृष्टिसे—ये तीन ही परतत्त्व, परतरतत्त्व और परम-तत्त्व हैं। बिना सद्गुरुके इन विचारोंमें प्रवेश करना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

मनुष्य जबतक अपने इन्द्रिय ज्ञानपर भरोसा रखकर चलता है, तबतक वह हिताहितशून्य और भविष्य दर्शन रहित होकर अपने चरम कल्याणके सम्बन्धमें कुछ विचार नहीं कर पाता। परन्तु सौभाग्यवश सत्सङ्ग मिलने पर—कर्मकाण्डकी नश्वरता और अकर्मण्यता समझ लेनेपर अपनी भूल अनुभव करता है। ऐसी दशामें वह श्रीगुरुपादपद्मरूप आश्रयकी आवश्यकता भी भलीभाँति उपलब्धि करता है। श्रीगुरुदेव जीवकी उन्मुखता और भगवन्निष्ठा देखकर उसे 'शब्द ब्रह्म'—वैकुण्ठ-नाम प्रदान करते हैं। साधक जीव गुरुके आनुगत्यमें वैकुण्ठ-नाम और वैकुण्ठ-नामीको अभिन्न जानकर श्रद्धापूर्वक वैकुण्ठ नामकी सेवा करने लगता है। इस प्रकार कुछ ही दिनोंमें वह दिव्यज्ञानसे सम्पन्न होकर आत्म-प्रसाद लाभ करता है। यह श्रौत-पथ कभी बन्द नहीं होता। वह कीर्तन-मुखसे निरन्तर प्रवाहित रहकर तर्कपथकी जड़ताको दूर फेंकता है और आगे बढ़ता रहता है।

जब तक कर्म और ज्ञानके प्रति श्रद्धा रहती है, तब तक उत्तम श्रेयकी जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हो सकती है, तथा उत्तम श्रेयकी जिज्ञासाके बिना जीवका यथार्थ कल्याण नहीं। उत्तम श्रेयका जिज्ञासु ही सद्गुरुके चरणोंमें एकान्तरूपसे शरणागत होकर चरम कल्याण-स्वरूप कृष्ण-प्रेमको प्राप्त कर सकता है, अन्यथा भगवद् विमुखता जीवको निगल लेती है। ❑

ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके प्रश्न और श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीके उत्तर

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
नवद्वीप ८/९/०१

श्रीश्रीवैष्णव चरणे दण्डवत् नति-पूर्विकेयम्
पूज्यपाद श्रील महाराज!

आपके श्रीचरणोंमें असंख्य दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ एवं आपसे कृपापूर्वक इसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना करता हूँ। आशा करता हूँ कि श्रीश्रीगुरु-पादपद्मकी अहैतुकी कृपासे आप भजन-कुशलपूर्वक होंगे। आप सम्भवतः जयपुरमें प्रचारकर लौट आए होंगे, ऐसा सोचकर ही यह पत्र मथुराके पते पर लिख रहा हूँ। जयपुरमें आपका भागवत् सप्ताह एवं प्रचार सुन्दर रूपसे अनुष्ठित हुआ होगा ऐसी आशा करता हूँ।

साधन भजनमें अयोग्य एवं अक्षम होनेके कारण मैं कुछ एक सिद्धान्त यथार्थ रूपमें

समझनेमें इस समय सक्षम नहीं हूँ। इसलिए उन सिद्धान्तोंको आपके द्वारा जाननेकी इच्छासे यह पत्र लिख रहा हूँ। आपके द्वारा इसके सम्बन्धमें प्रकृत धारणा प्रकाश करनेपर मैं आपके निकट चिर कृतज्ञ रहूँगा एवं धन्य होऊँगा।

(१) बद्ध जीवके देह एवं देही अर्थात् शरीर एवं आत्मामें भेद है, किन्तु साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध जीवोंके देह एवं देहीमें भेद है या नहीं , कृपापूर्वक बतावें?

(२) **'मुक्तापि विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते'** शास्त्रमें ऐसा वर्णन मिलता है। ऐसा कहने पर मुक्त जीवोंको सिद्ध देह प्राप्त होता है या नहीं? 'सिद्ध देह दिया वृन्दावन माझे सेवामृत करो दान'—इस कीर्तन-वाक्यके अनुसार साधनसिद्ध जीवके भी सिद्ध देहका वर्णन मिलता है। इस प्रश्नको भी कृपया स्पष्ट करें?

(३) अणुचैतन्य जीवात्मा परमात्मारूपी वस्तुका अंश है या वस्तुकी शक्तिका अंश है? परमात्मा एवं मुक्त जीवात्मा क्या दोनों ही देह-देहीभेदहीन तत्त्व हैं?

(४) ब्रह्मसंहिताके अनुसार **'अंगानि यस्य सकेलन्द्रियवृत्तिमन्ति'** क्या यह विचार केवल गोविन्दके लिए है या उनके तदेकात्मरूप, लीलावतार, अंशावतार या उनके विभिन्नांशरूप मुक्तजीवात्माके लिए भी लागू होता है? क्या नित्यसिद्ध जीवोंके अङ्गसमूह भगवान जैसे ही शक्तिसम्पन्न होते हैं? क्या वे किसी भी अङ्गका कार्य किसी भी अङ्गसे कर सकते हैं?

मेरा शरीर अस्वस्थ है, उसपर भी मेरी चिन्ताशक्ति एवं स्मृतिशक्ति लुप्तप्राय है; अतः पत्रमें हुई किसी भूल-त्रुटिको निजगुणसे ही क्षमा करेंगे—यही प्रार्थना करता हूँ।

प्रणत सेवकाधम

त्रिविक्रम

श्रील महाराजजीका उत्तर

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

मथुरा २९/१०/०१

श्रीश्रीवैष्णव चरणे दण्डवन्नतिपूर्विकेयम्

प्रपूज्यचरण महाराज!

दासाधमकी दण्डवत् प्रणति स्वीकार करनेकी प्रार्थना करता हूँ। आपके द्वारा प्रेरित ८/९/०१ की कृपालिपि प्राप्तकर लिखित विषयसे अवगत हुआ।

जयपुरमें हमारा ९ दिनका प्रचार-कार्यक्रम विशेषरूपसे साफल्य मण्डित हुआ। तत्पश्चात् श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें हमारे पुरुषोत्तमदेव श्रीकृष्णके पादपद्ममें हमारा पुरुषोत्तमव्रत सुष्ठुरूपसे सम्पन्न हुआ। संन्यासी-ब्रह्मचारियों सहित देश-विदेशसे लगभग ५५०-६०० भक्त उपस्थित हुए। आशा करता हूँ कि आप नवद्वीपके भक्तों द्वारा इसके सम्बन्धमें अवगत हुए होंगे। आपको मैं अपने शिक्षागुरुके रूपमें जानता आया हूँ एवं जानूँगा भी। आप समस्त प्रकारके सिद्धान्तोंमें परिपूर्ण एवं पारङ्गत हैं। तथा आपके हृदयका गूढ़ भाव (अभिप्राय) देवताओंके

लिए भी अगम्य है; फिर भी आपने दैन्य प्रकाश करते हुए हमारे सम्मुख कुछ प्रश्न प्रस्तुत किए हैं। मैं सिद्धान्तके विषयमें सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर पर विशेषरूपसे आस्था रखता हूँ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जटिलसे जटिल सिद्धान्तोंको सहज, सरल एवं बोधगम्य भाषामें व्यक्त किया है। अब आपके प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ।

(१) साधनसिद्ध और नित्यसिद्ध जीव, जिनको परिकर जीव भी कहा जाता है, उनके लिए देह और देहीका भेद नहीं रह सकता। जिस प्रकार काँस्यको रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सोना बनाया जाए अथवा खानसे निकला सोना दोनों एक ही हैं, दोनोंमें कोई भेद नहीं रहता है, उसी प्रकार परिकरत्व प्राप्त साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध जीवोंकी आत्मा, लिंग शरीर और स्थूल शरीर—ऐसा त्रिविध भेद नहीं रहता। उनका केवलमात्र एक शुद्ध चिन्मय शरीर ही रहता है। वे चिन्मय शरीरके द्वारा ही भगवानकी सेवा करते हैं। शास्त्रोंमें कहीं भी परिकर जीवोंके लिंग अथवा स्थूल शरीरका वर्णन नहीं मिलता है।

(२) श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके विचारके अनुसार **'मुक्तापि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते'** वर्णनमें कुछ मायिक भाषाका मल है। भजनके प्रभावसे शुद्धभक्तोंके वर्णनका शुद्धभाव ग्रहण करना चाहिए। अपने भजन प्रभावसे ही भक्तगण इस वर्णनका शुद्धभाव ग्रहण करते हैं। 'सिद्ध देह दिया' इस कीर्तन-वाक्यमें भी इसी प्रकारसे समझना चाहिए। किन्तु, परिकरोंके लिए साधनसिद्ध या नित्यसिद्ध ऐसी भावना नहीं रख सकते। परिकर देहमें भगवत्-सेवामें सम्पूर्ण आत्मनियोग होता है ऐसा समझना चाहिए।

(३) समस्त अवस्थाओंमें अणुचैतन्य जीवकी सत्ता वस्तु शक्तिके अंश या विभिन्नांश तत्त्वके रूपमें ही सिद्ध हैं। परमात्मा एवं मुक्तजीवात्मा—परिकरगण, दोनों ही देह-देही-भेदहीन तत्त्व हैं।

(४) **'अंगानि यस्य सकेलन्द्रियवृत्तिमन्ति'**— यह विचार केवल श्रीगोविन्दके लिए ही नहीं, उनके तदेकात्मरूप, लीलावतार यहाँ तक कि मुक्त परिकर जीवोंके लिए भी सम्भव है। लीलापुष्टिके लिए श्रीकृष्णकी निजस्व योगमायाके प्रभावसे उन परिकरोंका सर्वज्ञत्व, प्रत्येक इन्द्रियके कार्य करनेकी अद्भुत क्षमता आच्छादित रहती है। वे किसी भी इन्द्रियसे अन्य किसी इन्द्रियका कार्यकर सकते हैं, लेकिन श्रीकृष्णकी लीलापुष्टिके लिए योगमायाके प्रभावसे उनका सर्वज्ञत्व एवं समस्त इन्द्रियों द्वारा समस्त इन्द्रियोंका कार्य करनेकी क्षमता आच्छादित रहती है। विशेष-विशेष परिस्थितिमें ही उनकी वैसी क्षमता प्रकाशित होती है। श्रीनारद ऋषि श्रीनन्दबाबा, यशोदा माँ, सखा एवं सखी इत्यादि परिकरोंका भी कोटि-कोटि प्रकोष्ठोंमें या कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें उनके कोटि-कोटि विग्रहोंके सम्बन्धमें श्रीबृहत्-भागवतामृतमें वर्णन मिलता है। विशेषकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत श्रीशिक्षाष्टक पर सन्मोदन भाष्यका अनुशीलनकर तथा श्रील गुरु महाराजके विचारोंको श्रवणकर, जिसे उन्होंने पूज्यपाद भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद

भक्तिविचार यायावर गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज आदि आचार्योंकी सभामें, मथुरामें प्रस्तुत किए थे, जीव तत्त्वके सम्बन्धमें मेरा संशय दूर हो चुका है। आप अनुग्रह पूर्वक 'श्रीशिक्षाष्टक' के प्रथम श्लोकमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत 'सन्मोदन भाष्य' अवश्य ही देखें। इस टीकामें **'चेतोदर्पणमार्जननित्यादिना जीवस्य ---- गोपिकादेहमपि प्रकटयति'** तक पढ़नेसे आपके समस्त संशय दूर हो जाएँगे एवं धारणा स्पष्ट हो जाएगी। मैं इससे अधिक क्या लिखूँ।

शेष कुशल।।इति।।

आपका सेवकाधम

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्रीकृष्णकी गौ सेवा

—सप्ताचार्य डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

हिन्दुधर्ममें गौका महत्त्व अत्यधिक माना गया है। सर्वोत्तम दान भी गोदान है। शास्त्रोंमें लिखा है, कि गो सेवासे धन, सन्तान और दीर्घायुष्य प्राप्त होते हैं। गोके सेवकोंको इन सबका प्रत्यक्ष फल दिखाई देता है। रघुवंश महाकाव्यमें राजा दिलीप गो सेवा द्वारा पुत्र प्राप्त करते हैं। जीवमात्रके जन्मकालमें उसकी रक्षाके लिए दूध ही आहार है। बिना दूधके कोई जी नहीं सकता। माताका दूध जिस प्रकार परमोपयोगी है, उसे सभी पीते हैं, उसी प्रकार गायका दूध भी सभी पीते हैं। माता-पिता जिस प्रकार जन्मदाता होनेसे पूज्य हैं, उसी प्रकार पुष्टि करनेके कारण गाय भी पूज्य है। इसका दूध-घी-दही-गोमूत्र-गोबर सभी मानवमात्रका उपयोगी है। यज्ञोंमें घी द्वारा ही आहुतियाँ प्राप्तकर देवगण तृप्तिका अनुभव करते हैं। 'गाय' शत्रु-मित्र दोनोंको समान भावसे दूध प्रदान करती है। इतनी परोपकारिणी है कि मरनेपर भी अपने चर्मके द्वारा पैरोंके रक्षार्थ उपानत् बन जाती है और लोगोंका उपकार करती है। ऐसी गाय अन्न नहीं भूसा खाती है। जबकि अन्य पशु ऊँट, हाथी आदि अन्न खाते हैं। गाय मुखमें तृण रखकर शिक्षा देती है कि शूरोंका काम है कि वे ऐसे जीवोंको न मारें जो मुखमें तृण दबा लें।

कृषि वत्सला—वह गाय न केवल दूध प्रदान करती है, अपितु कृषिके लिए सर्वोत्तम साधन बछड़ा प्रदान करती है, जिससे मानव अन्न उत्पन्नकर अपना उदर भरण करते हैं। कृषिके लिए गोबर-गोमूत्र आदि खाद प्रदानकर उसे अत्यधिक लाभ पहुँचाती है।

किसीने कहा है कि ये तृण खाती हैं, अरण्यमें रहती हैं, जल पीकर दूध देती हैं—

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये
पिवन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि।
दुहन्ति वाश्यन्ति पुनन्ति पापं
गवां रसैर्जीवति जीवलोकः।।

और भी, जब गाय तुष्ट होती है, तो पाप दूर करती है, गो दानसे स्वर्ग देती है, रक्षा करनेसे धन देती है, अतः गायके समान कोई धन है ही नहीं—

तुष्टास्तु गावः शमयन्ति पापं
दत्तास्तु गावः त्रिदिवं नयन्ति।

सुरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित्।।

तथा—सूखे तृण चबाकर, वनमें पानी पीकर अमृत सम दूध देती हैं। सबको पवित्रता प्रदान करती हैं। अतः गायके समान कोई धन नहीं है।

तृणानि शुष्कानि वने चरित्वा
पीत्वापि तोयान्यमृतं स्रवन्ति।
यद्गोमयाधाश्च पुनन्ति लोकान्
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित्।।(१)

होरीत स्मृतिमें लिखा है कि जो अधिक दूध वाली गायका दान करता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है। अलंकृत गायके दानसे स्वर्ग मिलता है, उसी प्रकार वृषभ युग्मके दानसे भी **"अनड्वाहौ तु यो दद्यात् द्विजे सीरेण संयुतौ। अलंकृत्य यथाशक्त्या धूर्वहौ शुभलक्षणौ।।"**(२) पराशर स्मृति,(३) आङ्गिरस स्मृति,(४) आपस्तम्ब स्मृति(५) में पञ्चगव्य द्वारा शुद्धिके विधान दिये गये हैं। विष्णुधर्मोत्तरमें तो लिखा है कि अपनी आत्मासे भी अधिक गायकी रक्षाका ध्यान करना चाहिये।

गवां हि पालनं राज्ञा कर्त्तव्यं भृगुनन्दन।
गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः।।
गावो यज्ञं वितन्वन्ति गावो विश्वस्य मातरः
सकृन्मूत्रं वरं तासामलक्ष्मी तापनं परम्।
तद्धिमेधं प्रयत्नेन तत्र लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।।(६)

गायकी रज परम पवित्र है, अलक्ष्मीका नाश करती है और विघ्नोंका नाश करती है। गायकी श्वास वायुसे घर पवित्र होता है, गायके स्पर्शसे पाप दूर होते हैं। तभी तो हमारे अराध्य प्रभु श्रीकृष्णने अपने द्वारा यदि किसी कार्यको महत्त्व दिया तो वह था गायोंकी रक्षा। तभी तो उनका नाम गोपाल प्रसिद्ध हुआ है।

श्रीकृष्णकी गौ सेवा

श्रीमद्भागवत पुराणमें दशम स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायमें गोचारणकी कथा वर्णित है—

जब भगवानकी कुमारावस्था व्यतीत हुई, पौगण्डावस्थाका आरम्भ हुआ, श्रीकृष्ण गाय चराते हुए वृन्दावनको गौरवान्वित करने लगे।(७) श्रीधरस्वामी ने लिखा है—

ततः पञ्चदशे धेनुपालनं धेनुकार्दणम्।
कालियक्ष्वेऽतो गोपरक्षणं च निरूप्यते।।(८)

श्रीजीव गोस्वामीजी वैष्णव तोषिणीमें इस लीलाका आरम्भ ५ वर्षके पश्चात् मानते हैं, ६ठे वर्षारम्भमें भगवान श्रीकृष्ण गोपाल बने, यह आशय है—

ततः पञ्चवर्षक्रीडानन्तरम्

[वृहद्वैष्णवतोषिणी १०/१५/१]

व्रजमें तीन वर्षकी कुमारावस्था मानी गई है, तीन वर्षकी पौगण्डावस्था एवं तीन वर्षकी किशोरावस्था।

यद्यपि 'कालेनाल्पेन' (भा. १०/८/२६) **इत्यादिरीत्या वर्षत्रयपर्ययेण तयोवर्षगणना निर्णीता तथापि कौमारं तु वर्षमेकमधिकमधिरूढम्।**

(गो. च. १२/१)

वस्त्र हरणलीलामें श्रीकृष्णका और एक वर्ष व्यतीत हो गया था। अतः पौगण्ड अवस्था अखण्ड रूपमें दो वर्षका ही रही, क्योंकि कुमारावस्था एक वर्ष अधिक चढ़ गई थी। यहाँ यह स्मरणीय है कि—

शास्त्रोंमें कुमारावस्था ५ वर्ष तक मानी है—

आपञ्चमाब्दं कौमारं पौगण्डश्च ततः परम्।

जिसे यहाँ ब्रजलीलामें स्वीकार नहीं किया

(१) हेमाद्रि, (२) बहुक्षीराश्च योगावो ब्राह्मणायोपपादयेत्। उत्तरयेत्स आत्मानं सप्त सप्त कुलानि च॥ (३) संवर्त स्मृति, (४) १-२, (५) अध्याय ६, श्लोक १५, १६, १९, २० (६) विष्णुधर्मोत्तर (७) भा. १०/१५/१ गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पवैः (८) भावार्थ दीपिका मङ्गलाचरण १०/१५/१

है; कालेनाल्पेनके आधारपर गोपाल चम्पू पाँचवें वर्षमें गोचारणकी पुष्टि करता है।

तदेवं विहरतोः सर्वेषां मनोहरतोरनयोः पञ्चमं वर्षमाञ्चत्।।

श्रीकर्णपूर गोस्वामीने अपने आनन्द वृन्दावनचम्पूमें छठे वर्षके आरम्भमें गोचारण लीला लिखी है—

अथ कौमारलीलां तिरोधाप्य---हायनातीतो धेनुपालनलीलालावण्यमुररीचकार।।

(आनन्दवृन्दावनचम्पू ८/१)

पौगण्डावस्थामें धूलमें खेलना बन्द हो गया और गेंद क्रीड़ा प्रारम्भ हो गई।

गो-चारण तिथि

भगवान् श्रीकृष्णने गोचारण कार्त्तिक शुल्क अष्टमी बुधवारके दिन प्रारम्भ किया था।

शुक्लाष्टमी कार्त्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः।
तद्दिनाद् वासुदेवोऽभूद् गोपः पूर्वं तु वत्सपः।।

यह महोत्सव तीन दिन तक व्रजमें मनाया गया था, व्रजराज नन्दने अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार ज्योतिषीको बुलाया तथा उनसे मुहूर्त निकलवाया। उन्होंने उक्त मुहूर्त निकाला—

बुधश्रवणविशिष्टायामबहुलबाहुलाष्टम्यां बहुला-पालनं बहुलमेतदिष्टमित्यादिष्टम्।।

(गोपालचम्पू पू. १२/२२)

चम्पूकारका कथन है कि यदि एक-एक वक्ताके दस हजार मुख हो जायँ और उनकी आयु भी दस हजार वर्षकी बनी रहे, तब भी उस गोचारणके दिनके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी इच्छा ही कर सकते हैं। विविध प्रकारके वाद्य वजने लगे, पुरीहितोंको आगे किया गया और धेनुओंको पासमें लाया गया। पाद्य-अर्घ्य आदिसे गायोंकी पूजा की गई, मीठे-मीठे ग्रास उन्हें दिये गये। गायोंको तृप्त किया गया। गायोंकी प्रदक्षिणा की तथा पुरोहितोंको दान दिया। पिता श्रीव्रजराज-नन्दने श्यामसुन्दरके हाथमें लकुट दी, माता व्रजरानीने उनके मस्तक पर तिलक रचना की—

गोपालोचित नव्यवेष-वलनैरक्षा विधानैर्द्विजा-द्याशीर्भिः सुदिनाहलभ्यरचनैर्व्रज्यार्हनीराजनैः।
सङ्गानान्वितवाद्यनृत्यनिकरैः शश्वज्जयाद्यारवैः
श्रीमान् गोपमहेन्द्रसूनुरगमद्रामेण धेनूरनु।।

(गो. च. १२/२५)

माता यशोदाने बलरामसे कहा कि तुम इस कृष्णके आगे रहना, बेटा सुबल! तुम इसकी रक्षा पीछेसे करना। हे श्रीयुक्तदामन्! सुदामन्! तुम दोनों श्रीकृष्णकी भुजाओंके पास स्थित रहना और अन्य बालक अन्य विदिशाओंमें रहें। माँ यशोदाने श्रीकृष्ण एवं प्रत्येक बालकको अपने नयन नीरसे अभिषिक्त किया।

श्रीकृष्णने 'जिहि-जिहि' शब्द किया, जिसे सुनते ही गायें सम्मुख उपस्थित हो गईं और आगे ही न बढ़ीं, तब आप और बलराम गायोंके आगे-आगे चलने लगे और आनन्दपूर्वक गाय उनका अनुसरण करतीं पीछे-पीछे चलीं। श्रीकृष्णने अपने वृद्धों पूज्यजनोंको विदा कर दिया और सभी सखाओंके साथ हँसते-हँसाते गोवर्धन पर्वतकी ओर चल दिये। 'हियों' संकेत द्वारा गायें भी एकत्रित हो जाती हैं। कभी अलग हो जाती हैं। श्रीकृष्ण दण्डके द्वारा ताडन नहीं करते थे। शास्त्रोंमें वर्णित गायकी पूजाका वे प्रत्यक्ष पालन करते रहते थे। गायोंके छत्र-चमर नहीं, पादुका भी नहीं तो भगवान श्रीकृष्ण भला धारण कैसे करते, माँ यशोदाने जब दिये भी तो कहा—"माँ! जब मेरी गायें बिना छत्रके वनमें जा रही हैं, बिना पादुका हैं, तो भला मैं कैसे धारण करूँ, ऐसी भावना थी श्यामसुन्दरकी गोसेवाकी।

गावः प्रतिष्ठा भूतानाम्
(गाय समस्त जीवोंकी प्रतिष्ठा है)

ऋषियोंने हवन कार्यके लिए गायोंकी उपयोगिता वर्णित की है। जहाँ गायें जलपान करतीं, वहीं श्रीकृष्ण जलपान करते। क्योंकि जिस स्थान पर गाय पानी पीती है, वहाँ सरस्वती स्थित होती है।

यत्र तीर्थे सदा गावः पिविन्त तृषिता जलम्।
उत्तरन्त्यथवा येन स्थिता तत्र सरस्वती।।

भगवान् श्रीकृष्ण गायोंको प्रतिदिन प्रयाग करते थे। क्योंकि समस्त तीर्थ गायमें माने गये हैं।

सींगके मूलमें ब्रह्मा-विष्णु, सींगके अग्रभागमें समस्त तीर्थ, शिरके मध्यमें महादेव, ललाटके अग्रभागमें देवी, नासिकामें कार्तिकेय, कँवलमें अश्वतर नाम, कर्णमें अश्विनी कुमार, नेत्रोंमें सूर्य, चन्द्र, दांतोंमें वायुदेव जिह्वामें वरूण देव, हुँकारमें सरस्वती कपोलद्वयमें यम यक्ष, ओष्ठद्वयमें संध्यादेवी, ग्रीवामें इन्द्रदेव, कक्षमें राक्षस, उरमें साध्यगण, जंघामें चार पैर वाला धर्म, खुरमध्यमें गंधर्व, खुरके अग्रभागमें पन्नग, पीठमें एकादश गण, सन्धियोंमें वसुगण, ठोड़ीमें पितर, पूछमें चन्द्रमा-नक्षत्र, पिण्डमें गोमूत्रमें गंगा, गोत्रयमें यमुना, दूधमें सरस्वती, दधिमें नर्मदा, घीमें अग्निदेव, रोममें २८ कोटिदेव निवास करते हैं। तभी तो ब्रह्मपुराणमें गो परिचर्यामें लिखा है कि—

वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावः सेव्यास्तु नित्यशः
गवां गोष्ठे स्थितानां च यः करोति प्रदक्षिणम्
प्रदक्षिणीकृतं तेन जगत् सदसदात्मकम्॥

गाय परम पवित्र है, जो इनकी शुश्रूषा करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

गावः पवित्रा मांगल्या देवानामपि देवताः।
यस्ताः शुश्रूषतेमुक्तया स पापेभ्यः प्रभच्यते॥
(वाराह पुराण)

भगवान श्रीकृष्णने तो स्पष्ट कहा—"गाय मेरे आगे हों, गाय मेरे पीछे हों, गाय मेरे हृदयमें हों, मैं गायोंके मध्य ही रहता हूँ।

गावो मे चाग्रतःसन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

यह साधारण बात नहीं कि अजन्मा, परात्पर परब्रह्म, भगवान् श्रीकृष्णने व्रजमें केवल गायको ही प्राधान्य दिया और गायोंके शुभाशीष प्रदानसे समस्त असुरोंका संहार किया था। बड़े-बड़े असुर गाय सेवा द्वारा ही धराशायी किये। धेनुकासुर , कालिय नागको नाथना, प्रलम्बासुर, व्योमासुर, केशी, अरिष्टासुर आदिका वध गोचारण लीलामें ही किया था। गोचारणमें ही वंशीका अबलम्बन लिया और राधा आदि प्रेयसी गोपिकाओंके साथ लीलाएँ की थी।

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम"—वेदऋचाके अनुसार श्रीकृष्णने गोसेवा करके एक आदर्श प्रस्तुत किया। एक संस्कृतिका उद्धार किया। श्रीकृष्ण सब कुछ सहन कर सकते हैं, परन्तु अपनी गायोंके कष्टको वे नहीं देख सकते। उन्हें अपने प्राणोंकी बाजी लगानी पड़ीं, परन्तु उन्होंने कालिय नाथको मनाकर ही दम लिया। इन्द्रका मान मर्दनकर गोवर्द्धनकी प्रतिष्ठा की थी, जो गोपालन संस्कृतिका केन्द्रबिन्दु बना था। धन्य श्रीकृष्ण और धन्य उनकी गोसेवा। हमें इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ❑

श्रीगौराङ्ग-सुधा

[वर्ष ४५ संख्या १० पृष्ठ २३२ से आगे]

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

श्रीवासकी परीक्षा

एकदिन श्रीगौरसुन्दर श्रीवासजीके साथ उनके घरपर ही बैठकर आनन्दपूर्वक कृष्णकी कथाओंकी चर्चा कर रहे थे। अकस्मात् प्रभु बोले—"श्रीवासजी! मै समझ नहीं पा रहा हूँ कि आपने इस अवधूत (पागल) नित्यानन्दको अपने घरमें कैसे रखा है? क्योंकि इसकी जाति क्या है, कुल क्या है, इसका पता न आपको है तथा न ही मुझे। तथापि आपने इसे अपने घरमें आश्रय दिया है। इतना ही नहीं आपकी पत्नी तो इसे पुत्रकी भाँति स्नेह करती है। तथा अपनी गोदीमें बिठाकर पुचकारते हुए अपने हाथोंसे खाना भी खिलाती है। यह सब तो सर्वथा अनुचित है। क्योंकि आप तो एक कुलीन ब्राह्मण हैं। अतः यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो इस अवधूतको तुरन्त अपने घरसे बाहर निकाल दीजिए, नहीं तो यह आपके सारे कुलको ले डूबेगा।" प्रभुके श्रीमुखसे यह सुनकर श्रीवासजी हँसते हुए कहने लगे—"प्रभो! आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं यह उचित नहीं है। आप माने अथवा न मानें परन्तु मैं सत्य कह रहा हूँ कि कोई व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति अथवा कुलका हो, यदि उसने एक दिन भी आपका भजन किया हो तो वह मुझे अपने प्राणोंके समान प्यारा है। मैं तो यही जानता हूँ कि नित्यानन्द आपके ही शरीर हैं अर्थात् आपके ही स्वरूप हैं। उनके प्रति मेरी कैसी प्रीति है, इस विषयमें अधिक क्या कहूँ? यदि नित्यानन्दजी हाथमें मदिराका पात्र भी ग्रहण करें अथवा मेरी जाति, प्राण, धन आदि सब-कुछ हर लें, फिर भी वे मेरे प्रिय ही रहेंगे। उनके प्रति मेरे हृदयमें लेशमात्र भी विकार नहीं होगा।"

श्रीवासजीके श्रीमुखसे यह सब सुनकर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। उनका हृदय द्रगद हो गया। आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्होंने प्रेमसे श्रीवासजीको अपने गलेसे लगा लिया तथा कहने लगे—"श्रीवासजी आपने क्या कहा? नित्यानन्दके प्रति आपकी इतनी प्रीति तथा ऐसा अटल विश्वास है? आप कैसे जान गये कि नित्यानन्द मेरे ही द्वितीय स्वरूप हैं? आपपर मैं बहुत संतुष्ट हूँ। अतः मैं आपको अपनी इच्छानुसार वरदान दे रहा हूँ—"यदि आवश्यकता पड़े तो लक्ष्मीको भी घर-घर जाकर भीख माँगना पड़ सकता है, परन्तु आपके घरमें कभी किसी वस्तुका अभाव नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त आपके घरमें मनुष्योंकी तो बात ही क्या, जितने भी कुत्ते-बिल्लियाँ इत्यादि हैं, उनकी भी मेरे प्रति दृढ़ भक्ति होगी। मैं प्रायः श्रीपाद नित्यानन्दके लिए चिन्तित रहता हूँ, क्योंकि वे सदा-सर्वदा आवेशमें रहते हैं। परन्तु अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप नित्यानन्दकी अच्छी प्रकारसे देखभाल कर सकते हैं। अतः मैं उन्हें आपको समर्पित कर रहा हूँ।"

इस प्रकार श्रीवासजीको वरदान देकर प्रभु अपने घर चले आए। उधर नित्यानन्द एक शरारती बच्चेकी भाँति सारे नवद्वीपमें घूम रहे

थे। कभी वे गंगामें कूद पड़ते तथा बीचमें जाकर आनन्दसे अनेक प्रकारसे तैरने लगते, तो कभी छोटे-छोटे बच्चोंके साथ खेलने लगते, कभी दौड़ते-दौड़ते प्रभुके घर पहुँच जाते तथा शचीमाताको सामने देखकर बाल्यभावमें आविष्ट होकर उनके श्रीचरणोंको पकड़नेके लिए जाते, परन्तु वे वहाँसे भाग जातीं।

एक दिनकी बात है। शचीमाताने रातमें एक स्वप्न देखा। दूसरे दिन प्रातःकाल वे श्रीगौरसुन्दरको उस स्वप्नके विषयमें बताने लगीं—"बेटा! कल रात्रिके अन्तिम भागमें मैंने एक स्वप्न देखा कि तू और नित्यानन्द दोनों ही मात्र पाँच वर्षके बच्चे होकर झगड़ा-मारामारी करते हुए घरमें इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हो। दौड़ते-दौड़ते तुम दोनों भगवानके मन्दिरमें घुस गये तथा कुछ देर बाद मन्दिरसे बलराम तथा कृष्ण दोनोंको लेकर बाहर निकले। नित्यानन्दने कृष्णका हाथ पकड़ा हुआ था तथा तुम्हारे हाथमें बलरामका हाथ था। मेरे सामने ही तुम चारों मार-पीट करने लगे। कृष्ण एवं बलराम गुस्सेसे कह रहे थे—"तुम दोनों चोर कौन हो, तथा यहाँ किसलिए आए हो? यह घर हम दोनोंका है तथा इस घरमें जितना दूध, दही, सन्देश (मिठाई) आदि है, उन सबपर हमारा अधिकार है। अतः इन सब चीजोंको खानेका विचार छोड़ दो तथा यहाँसे जल्दी भाग जाओ।" यह सुनकर नित्यानन्द बोले—वह समय चला गया। जब तुम दोनों अपने साथियोंको साथ लेकर घर-घर जाकर चोरी करके मक्खन, दूध तथा दही इत्यादि खाया करते थे। उस समय तुमलोग ग्वाले थे, इसलिए विशेष दोष नहीं हुआ। परन्तु अभी तुम दोनों ग्वाले नहीं ब्राह्मण हो। इसलिए अपने ब्राह्मण वंशका ख्याल करो और चुपचाप यहाँसे भाग जाओ, नहीं तो हमारे हाथसे मार खाओगे। इस समय तुम दोनोंको हमारे हाथसे बचाने वाला भी यहाँ कोई नहीं है।" यह सुनकर कृष्ण एवं बलराम दोनों ही क्रोधित होकर कहने लगे—"अच्छा, तो तुम दोनों हमें हमारे ही घरसे निकालोगे? अच्छी बात है, अभी हम तुम दोनों ठगोंको यहीं पर बाँध देते हैं। उसी समय बलदेवजी कहने लगे—"आज हम तुम्हें छोड़ देते हैं। परन्तु तुम दोनोंको कृष्णकी शपथ है, जो तुमसे फिर कभी ऐसा किया तो।" यह सुनकर नित्यानन्द बोले—"अरे! तुम्हारे कृष्णसे क्या भय? मेरे साथ मेरे प्रभु श्रीगौरसुन्दर हैं।"

इस प्रकार तुम दोनों तथा वे दोनों भोजन दूध-दही-सन्देश आदि पर टूट पड़े तथा एक दूसरेसे छीन-छीनकर खाने लगे। कोई किसीके हाथसे छीनकर खा लेता तो कोई किसीके मुखसे मुख लगाकर ही उसके मुखसे खा लेता। उसी समय नित्यानन्दकी आवाज मेरे कानोंमें गई—"माँ! माँ! मुझे बहुत भूख लगी है। कुछ खानेक दो।" यह सुनकर मेरा स्वप्न भंग हो गया। आँखें खोलीं, तो सामने नित्यानन्दको देखा। मैं कुछ समझ नहीं पाई कि वह सब क्या था? इसीलिए तुतसे कह रही हूँ।"

माँकी बात सुनकर प्रभु हँसते-हँसते कहने लगे—"माँ! तुमने बहुत ही शुभ स्वप्न देखा। परन्तु इस स्वप्नकी बात किसीसे नहीं कहना। तुम्हारे स्वप्नकी बात सुनकर मुझे आज पूर्ण विश्वास हो गया है कि हमारे घरमें प्रतिष्ठित भगवान साक्षात्रूपमें खाते-पीते हैं। आज तक मैं जब भी भोग लगाकर थालीको बाहर निकालता था, तो देखकर ऐसा लगता था कि

मानो प्रत्येक वस्तुमेंसे आधा-आधा किसीने खाया है। जब कि घरमें हम तीन ही लोग हैं। उस समय मुझे तुम्हारी बहू पर सन्देह होता था कि अवश्य ही इसने मेरी दृष्टिसे बचकर मन्दिरमें जाकर भोग खा लिया है। परन्तु लज्जाके कारण मैं किसीसे कुछ भी नहीं कह पा रहा था। परन्तु आज मेरा सन्देह दूर हो गया। अब मैं जान गया कि स्वयं कृष्ण ही उस भोगको खा लेते हैं।"

अन्दर कमरेमें बैठी हुई लक्ष्मीजी प्रभुकी बातें सुनकर हँसने लगीं। प्रभु बोले—"माँ! आज तुम नित्यानन्दको यहाँ बुलाकर भोजन कराओ।" पुत्रकी बात सुनकर शचीमाता प्रसन्न होकर लक्ष्मीजीके साथ मिलकर अनेक प्रकारके पकवान तैयार करनेमें लग गईं तथा प्रभु नित्यानन्दजीको बुलानेके लिए श्रीवासजीके घर पहुँचे। वहाँपर पहुँचकर प्रभु बोले—"श्रीपाद नित्यानन्द! आज आपको हमारे घरमें निमन्त्रण है। परन्तु मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि आप वहाँ किसी भी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करेंगे।"

यह सुनकर नित्यानन्दजी दोनों कान पकड़कर 'विष्णु-विष्णु' उच्चारण करते हुए कहने लगे—"जो पागल होते हैं, वे ही चञ्चलता करते हैं। आप सभीको अपने जैसा ही देखते हैं।"

इस प्रकार दोनों हास-परिहास करते हुए चल पड़े तथा कुछ ही देरमें घर पहुँच गये। ईशानने दोनोंके चरण धुलवाए। तत्पश्चात् दोनों भोजन करनेके लिए बैठ गये। माता कौशल्याके घरमें जिस प्रकार राम-लक्ष्मण दोनों प्रेमसे बैठकर भोजन करते थे, उसी प्रकार वे दोनों आनन्दसे प्रेमपूर्वक भोजन करने लगे। शचीमाता स्वयं ही आनन्दसे दोनोंको नाना प्रकारके व्यञ्जन परोस रही थीं। भोजन पूरा होने ही वाला था कि अचानक शचीमाताने देखा कि निताई-गौरके स्थान पर पाँच वर्षके दो बच्चे बैठकर हँसते हुए भोजन कर रहे हैं। उनमेंसे एक बालक गौरवर्णका तथा दूसरा कृष्णवर्णका था। दोनों ही चतुर्भुजधारी थे। परन्तु थे दोनों ही दिगम्बर (वस्त्र रहित) दोनोंने ही शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल, भूषण आदि धारण किये हुए थे। उन्होंने एक और आश्चर्यजनक चीज देखी कि उनमेंसे जो कृष्णवर्णका बालक था, उसके वक्ष स्थलपर उनकी बहू लक्ष्मी देवी विराजमान थी। परन्तु अगले ही क्षण सारा दृश्य लुप्त हो गया तथा शचीमाता मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ीं, जिससे उनके हाथसे अन्नका पात्र छिटककर दूर गिर गया तथा सारे घरमें अन्न-ही-अन्न फैल गया। उनके नेत्रोंसे बहनेवाली अश्रुधारासे उनके समस्त वस्त्र भींग गये। यह देखकर प्रभुने हड़बड़ाकर हाथ धोया, आचमन किया तथा शचीमाताको पकड़कर उठाते हुए कहने लगे—"माँ! उठो, धैर्य धारण करो। तुम अचानक गिरकर बेहोश क्यों हो गई?" कुछ क्षण पश्चात् जब शचीमाताकी मूर्च्छा दूर हो गई, तो वे संभलकर बैठ गईं तथा अपने केशोंको एवं वस्त्रोंको ठीक किया। फिर चुपचाप घरके भीतर जाकर रोने लगी। इशानने सारा घर साफ किया। इस प्रकार एक दिन नहीं बल्कि ऐसी ही लीलाएँ प्रायः होती थीं। धीरे-धीरे प्रभुके जितने भी परिकरोंने इधर-उधर जन्म ग्रहण किया था, वे सभी एक-एक कर नवद्वीपमें आकर प्रभुसे मिलने लगे तथा प्रभुके स्वरूपका दर्शन करने लगे। प्रभु भी उन सभीके ऊपर कृपा करने लगे तथा उन्हें चतुर्भुजरूप, षड्भुजरूप आदिका दर्शन कराने लगे।

शिवभक्तपर कृपा

एक दिन एक शिवभक्त शिवजीका गुणगान करते-करते भिक्षाके उद्देश्यसे प्रभुके द्वारपर उपस्थित हुआ। वह एक हाथसे डमरू बजा रहा था तथा शिवके गीत गाते हुए नृत्य कर रहा था। उसके

मुखसे शिवका गुणानुवर्णन सुनकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर शिवके भावमें आविष्ट हो गये तथा उनका स्वरूप उसी क्षण शंकर-सा हो गया। उस समय बड़ी-बड़ी दिव्य जटाएँ सुशोभित होने लगीं। देखते-ही-देखते प्रभु छलाङ्ग मारकर उसके कंधेपर चढ़ गये तथा गर्जन करते हुए कहने लगे—"मैं शंकर हूँ, मैं शंकर हूँ।" कुछ भाग्यवानोंने देखा कि उस समय प्रभुके सिरपर लम्बी-लम्बी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं। वे एक हाथसे डमरू बजा रहे थे तथा जोर-जोरसे "हरि बोल!" कह रहे थे। इस प्रकार उस शिवभक्तने आज तक निरपराध अथवा विषयभोगोंकी कामनासे शून्य होकर शिवकी जितनी भी आराधना की, आज उसका परिपूर्ण फल उसे साक्षात्‌रूपमें मिल गया। कुछ क्षण पश्चात् जब प्रभुका आवेश दूर हो गया तो उसके कंधेसे नीचे उतर आए तथा बड़े प्रेमसे उसकी झोली अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे भर दी। इस प्रकार वह भाग्यवान भिक्षु कृत-कृतार्थ होकर वहाँसे चल पड़ा।

श्रीवासजीके घरमें रात्रिसङ्कीर्तन प्रारम्भ तथा पाषण्डियोंका क्रोध

एकदिन प्रभु सभी भक्तोंसे बोले—"आप सभी सारा दिन भजन करते हैं। मैं सोच रहा हूँ तथा शास्त्र भी कहते हैं कि चौबीस घण्टा भगवानका भजन करना चाहिए, इसलिए हमें सारी रात कीर्तन करना चाहिए। अतः आज आप सभी लोग संकल्प करें कि आप सभी संध्याके समय श्रीवासजीके घरमें अवश्य ही पहुँचेंगे। तब मैं आप सभीके साथ मङ्गलकीर्तन करते हुए भक्तिस्वरूपिणी गंगामें स्नान करूँगा। उस कीर्तनकी ध्वनिको सुनकर जगतके सभी जीवोंका उद्धार सहजरूपमें ही हो जाएगा।"

यह सुनकर सभी वैष्णवोंको बहुत आनन्द हुआ। उसी दिन रातसे श्रीगौरसुन्दरने श्रीवासजीके घरमें सङ्कीर्तन महोत्सव प्रारम्भ कर दिया। उस उत्सवमें नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास, विद्यानिधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास, गंगादास, वनमाली, विजय, नन्दन, जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान आदि प्रभुके असंख्य भक्त उपस्थित होते थे। इनके अतिरिक्त किसी भी विजातीय व्यक्तिको (अभक्तको) अन्दर आनेकी अनुमति नहीं थी। सभी भक्तोंके अन्दर आ जानेके पश्चात् दरवाजा बन्द कर दिया जाता था। तब सभी वैष्णववृन्द जब मधुर स्वरसे कीर्तन करने लगते, तो प्रभु आविष्ट होकर हुँकार करते हुए उदण्ड नृत्य करने लगते। कीर्तनकी ध्वनिके कारण आस-पड़ोसके पाषण्डी लोगोंकी निद्रामें बाधा पहुँचने लगी, जिससे उन लोगोंके हृदयमें वैष्णव एवं प्रभुके प्रति विद्वेषभाव बढ़ने लगा। वे नाना प्रकारसे प्रभु एवं वैष्णवोंकी निन्दा करने लगे। कोई कहता—"ये लोग रातको दरवाजा बन्दकर घरके भीतर शराब पीते हैं, तथा शराब पीकर पागलोंकी भाँति उछल-कूद मचाते हैं। इन्हें और तो कोई काम है नहीं। ये तो यहाँ-वहाँ भिक्षा माँगकर खानेवाले हैं, परन्तु हम लोगोंके पास बहुत काम है। हम सारा दिन परिश्रम करते हैं। रातको थक-हारकर थोड़ा विश्राम करते हैं, उस पर भी इन निठल्ले लोगोंने शोर-शराबा मचाकर हमारा विश्राम करना भी दूभर कर दिया है।"

इस प्रकार वे पाषण्डी लोग वैष्णवोंकी निन्दा करने लगे। उधर घरके भीतरका दृश्य ही चमत्कारपूर्ण होता था। जब कीर्तन सुनकर प्रभु आविष्ट होकर उदण्ड नृत्य करते-करते पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ते, तो ऐसा प्रतीत होता, मानो पृथ्वीदेवी फट जाएँगी। यह देखकर सभी लोग भयभीत हो जाते थे। प्रभुके सुकोमल शरीरको इस प्रकार भूमिपर गिरते हुए देखकर घरके अन्दर बैठी शचीमाताका हृदय भी काँपने

लग जाता तथा वे डरकर आँखें बन्दकर रोते-रोते अपने बेटेकी रक्षाके लिए भगवानसे प्रार्थना करने लगतीं—"हे गोविन्द! मेरे निमाईकी रक्षा कीजिए। आप मुझे यह वर दीजिए कि जिस समय मेरा निमाई इस तरह पछाड़ खाकर गिरे, मैं उस दृश्यको न देख पाऊँ। मैं जानती हूँ कि उस समय परमानन्दके कारण उसे कष्ट नहीं होता, परन्तु पुत्र स्नेहके कारण मैं इसे नहीं देख सकती।" शचीमाताके दुःखको प्रभु जान गये। इसलिए तबसे जब भी सङ्कीर्तन आरम्भ होता, तो पहले प्रभु शचीमाताको इतना प्रेमानन्द प्रदान करते कि वे 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!' कहते हुए भावविभोर हो जातीं। जब कीर्तन चलता था, तो उन्हें यह भी ज्ञान नहीं रहता था कि मैं कहाँ हूँ तथा क्या हो रहा है? कीर्तनके बाद ही उन्हें बाह्य संज्ञान होता था। (क्रमशः)

विविध संवाद

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा

(गतांकसे आगे)

जब अन्नकूटके समय गोप-गोपियोंने गिरिराजको तृप्त किया तो गिरिराजजीने उन्हें कुछ वर माँगनेके लिए कहा। गोप-गोपियोंने कहा कि यदि आप वर देना चाहते हैं तो हमें इतना ही आश्वासन दें कि हमारे लाला पर कोई भी विपत्ति न आए। गिरिराजजीने कृष्णकी रक्षाका वर दे दिया। गिरिराज कितने महान हैं, इसीसे अनुमान लगाओ। यदि वे कृष्णको भी अभय प्रदान कर सकते हैं, तो फिर हमारा कहना ही क्या?

—आगमें जलकर मरना अच्छा है, शेरके पिंजरेमें बैठना अच्छा है, परन्तु असत्सङ्गमें रहना उचित नहीं, क्योंकि आगमें जलनेसे तो केवल एक जन्म ही नष्ट होगा, परन्तु असत्सङ्ग करनेसे कोटि-कोटि जन्म नष्ट हो जाएँगे। इस विषयमें श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका आदर्श पालनीय है। उन्होंने विषयी लोगोंके सङ्गकी दुर्गन्धसे पैखानेकी दुर्गन्धको कहीं श्रेष्ठ बताया।

—श्रील गिरिराजजीकी अनन्त कन्दराएँ और कुञ्ज आजकल दिखाई नहीं देते। जितना अधिक कलियुग बढ़ता जा रहा है, वे उतना नीचे छिपते जा रहे हैं। यह गिरिराज राधाकृष्णकी प्रमद-मदन-लीलाओंके साक्षी हैं, इसलिए वे पुरुष नहीं हो सकते। क्योंकि किसी भी पुरुषको राधाकृष्णकी लीलाओंके दर्शन करनेका अधिकार नहीं है। शंकरजी भी पुरुष रूपमें राधाकृष्णकी रास लीलाका दर्शन नहीं कर पाये थे। गिरिराजजी राधाजीके मनसे प्रकट हुए, इसलिए वे पुरुष नहीं है। गिरिराजजी आश्रयस्वरूप और विषयस्वरूप दोनों ही हैं।

—जब तक साध्य ठीक नहीं होगा, साधन करना सम्भव नहीं। सर्वप्रथम अपने जीवनका उद्देश्य बनाओ। उस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए भगवान्‌के सर्वोत्तम भक्तोंका चरणाश्रय लो। श्रील रूप गोस्वामीपादको महाप्रभु श्रीचैतन्यका मनोऽभीष्टपूरक कहा गया है, उन्हींसे पूछो और पूछकर अपना उद्देश्य स्थिर करके साधन करो।

—श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं श्रील रूप गोस्वामीजी कहते हैं कि कृष्ण एकरस (आत्म रस) और अनेक रस (पर रस) दोनों ही है अर्थात् जब वे एकरस हैं, तो समस्त जगतमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे वे नहीं जानते। वे भगवत्ताकी सीमा हैं, सभी कारणोंके कारण हैं, वे प्रेमके विषय हैं। किन्तु व्रजवासियों, विशेषकर श्रीराधाजीको मेरी सेवा करके किस प्रकारका आनन्द होता है, इनको नहीं जानते

और उसे अनुभव करनेके लिए शचीनन्दन गौरहरि (पररस) के रूपमें श्रीराधाजीका भाव और अङ्गकान्ति लेकर आते हैं।

—विशाखा अर्थात् विशेष शाखाका आश्रय किये बिना उस कल्पवृक्ष राधाजीके भावको नहीं समझा जा सकता। इसलिए श्रीमन्महाप्रभुने राय रामानन्द (विशाखा) एवं स्वरूप दामोदर (ललिता) जीका आश्रय लेकर उस रसका आस्वादन किया। पररस माने परकीया रस अर्थात् जो श्रीमतीजीमें तो है, परन्तु कृष्णमें नहीं।

—कामगायत्री एवं गोपाल मन्त्रसे कृष्णकी उपासना होती है। यदि मन्त्र प्राप्त करनेपर किसी रसिक वैष्णवके आनुगत्यमें इन मन्त्रोंको नहीं किया, तो ब्रह्माजीकी भाँति सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होगी। इसलिए सावधान।

—यदि कोई कृष्णको भगवान समझकर वृन्दावनकी प्राप्तिकी इच्छा करे तो उसके लिए व्रजेन्द्रनन्दनकी प्राप्ति तो कभी भी सम्भव नहीं है, क्योंकि इसमें लौकिक सद्बन्धुवत सम्बन्ध ही नहीं है।

—भगवान्के नामसे चित्त रूपी दर्पणका मार्जन होता है, यह परम सत्य है। किन्तु इसका क्रम क्या है? साधु-सङ्ग, गुरुपदाश्रय, विश्रम्भेण गुरुसेवा तथा सम्बन्ध ज्ञान सहित वैष्णव आनुगत्यमें नाम। यदि ऐसा करेंगे तभी चित्तरूपी दर्पणका मार्जन सम्भव है। हमारा अभी आंशिक मार्जन हुआ है। पूर्ण मार्जन होनेपर संसारकी समस्त आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं तथा क्रमशः अपने स्वरूपका आभास होता है, किन्तु इसे स्पर्श नहीं कर पाते, जैसे यदि शीशेकी अलमारीमें किताबे बन्द हों, तो आप उसे शीशा साफ होनेपर देख तो सकते हैं, परन्तु स्पर्श नहीं कर सकते। इसी प्रकार चित्त शुद्धिके समय अपने स्वरूप एवं संसारकी विविधताको तो देख पाते हैं, किन्तु स्पर्श नहीं कर पाते।

—नाम स्वयं तो शुद्ध ही है, किन्तु साधकके हृदयकी स्थिति अनुसार वह नामाभास, नामापराध या शुद्ध नाम कहलाता है।

कोई बहुत बड़ा विद्वान हो सकता है। भागवत जाननेवाला हो सकता है, किन्तु चित्तकी द्रवीभूतता कहाँसे आएगी? यह साधुसङ्ग, हरिनाम संकीर्तन, वैष्णवसेवा, गुरु-शास्त्रोंकी वाणीमें विश्वास होनेसे ही होगा। गुरु महिमा, वैष्णव-महिमा, गौर-गुणगान, हरि-गुणगान इत्यादि करनेसे जिसका चित्त द्रवीभूत होता है, वही श्रेष्ठ है। अकिञ्चन होना होगा। नाम श्रवणमात्रसे जिस वैष्णवकी रोमावली पुलकित होती है, वही वैष्णव वास्तवमें संसारके जीवोंका उद्धार करनेके योग्य है, ऐसे व्यक्तिके चरणोंका आश्रय लेकर भजन करना चाहिए।

बाह्य पवित्रता अर्थात् स्नानादिकी आवश्यकता है, किन्तु आंतरिक पवित्रता अर्थात् काम, क्रोध, मात्सर्य आदिसे दूर रहना ही अधिक श्रेष्ठ है। यदि किसीके शरीरपर टट्टी लगी है, किन्तु आंतरिक रूपसे वह पवित्र है, तो वह केवल बाह्य पवित्रता पर ध्यान रखनेसे अनन्त कोटि गुणा श्रेष्ठ है।

गुरुतत्त्व त्रिवेणी स्वरूप है अर्थात् गुरुदेव नित्यानन्द, कृष्ण (साक्षाद् हरित्वेन), एवं राधारानी तीनोंके संगम हैं।

यदि कोई श्रीमती राधारानीके तत्त्वको ठीकसे जानना, समझना चाहता है तो उसे चैतन्यचरितामृतका आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा।

जैसे धागेके बिना कोई कपड़ा नहीं बुना जा सकता, उसी प्रकार राधाजीकी महिमाके बिना कोई शास्त्र नहीं लिखा जा सकता।

राधाजीकी महिमा सर्वत्र कही गई है, परन्तु सभी उसका दर्शन नहीं कर सकते। केवल वे ही उसे देख सकते हैं, जो शुद्ध आम्नाय गुरु परम्परामें स्नात होते हैं। जैसे मेंहदीके पत्तेके

कण-कणमें लालिमा भरी हुई है, परन्तु उन पत्तोंको किस प्रकार पीसकर लालिमा प्रकट होती है, यह सब नहीं जानते। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोकमें श्रीराधाजीका नाम है, परन्तु गुरु परम्पराका आनुगत्य ग्रहण किये बिना उसे समझा नहीं जा सकता।

राधाजीकी उपासना गूढ़ है, जैसे कुम्हार घड़ा पकानेके लिए बन्द कमरेमें अग्नि देता है, तभी वह पककर लाल होता है। यदि कमरेमें कहीं पर छोटा सा छेद भी रह गया तो ताप ठीकसे नहीं लगेगा और घड़ा लाल नहीं होगा। इसी प्रकार राधाजीकी उपासनाको भी अनधिकारी लोगोंसे बचाकर रखना चाहिए। नहीं तो वह छेदका कार्य करेगी और साधकके हृदयमें अनुराग उत्पन्न करनेमें बाधक होगी।

स्वरूपभ्रम होनेके कारण ही असत्-तृष्णाएँ उत्पन्न होती है और असत्-तृष्णाओंके कारण ही हृदय दुर्बल हो जाता है और इसी कारण न चाहते हुए भी और जानते हुए भी जीव अपराध करनेके लिए बाध्य होता है।

यदि हम यह स्वीकार करें कि जीव गोलोकसे गिरता है तो साधन-भजन, जप-तप इत्यादि का कोई महत्व ही नहीं रह जाता। क्योंकि इसीके फलस्वरूप हमें गोलोककी प्राप्ति होगी। परन्तु यदि वहाँसे भी कोई गिर सकता है, तो ऐसा करनेका लाभ ही क्या।

यदि हम विचार करें कि क्या हममें बाह्य दृष्टिसे साधुके लक्षण हैं, आन्तरिक लक्षणोंकी तो बात ही छोड़ दें। तो हम पायेंगे कि नहीं हममें बाह्य दृष्टिसे भी साधुके लक्षण नहीं हैं। साधु तो कृपालु, अकृतद्रोह इत्यादि गुणोंसे विभूषित होता है। साधु तो अकिञ्चन, निष्किञ्चन होता है। हमारे पास तो इतनी मूल्यवान वस्तुएँ हैं कि किसी अच्छेसे अच्छे धनी व्यक्तिके पास भी नहीं होगी। परन्तु यदि हम वास्तविक रूपमें भजन करना चाहते हैं, तो हमे साधुओंके बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकारके लक्षणोंको अपनाना होगा।

आसक्ति केवल कृष्णके प्रति और अन्य सभीके लिए प्रीति रखनी चाहिए। प्रीति अर्थात् बुद्धिपूर्वक आदर-मर्यादा रखना और आसक्ति अर्थात् उनके बिना रह नहीं पाना। यदि यह गुरु-वैष्णवोंके प्रति हो जाए तो भक्तिके द्वार खुल जाते हैं।

कोई प्रश्न कर सकता है कि हम वृन्दावन, गोवर्द्धन या राधाकुण्डमें रहकर ही कार्तिकका व्रत क्यों नहीं करें। वन-वनमें डोलनेकी क्या आवश्यकता है। श्रील गुरुदेवने कहा कि यदि इसका उत्तर चाहिए, तो फिर महाप्रभु और रूप-सनातनसे जाकर पूछो कि वे ब्रजमें स्थान-स्थानपर जाकर एक-एक पेड़के नीचे क्यों रहते थे? कोई यदि केवल दूध ही पीता रहे, तो क्या होगा? वह दही, माखन, पनीर आदि विभिन्न रसोंके आस्वादनसे वञ्चित रहेगा।

कोई यदि कहता है कि श्रीमतीराधाजी तो कृष्णकी विवाहिता पत्नी है, तो हम उससे प्रश्न करते हैं कि ब्रजमें उपवीत संस्कार होनेसे पहले कृष्णका विवाह कैसे हुआ? क्योंकि कृष्णका उपवीत संस्कार तो मथुरामें हुआ। दूसरा, यथार्थ विवाह तभी होता है, जब पिता द्वारा कन्या दान किया जाता है। परन्तु हम तो किसी भी शास्त्रमें ऐसा कोई भी विवरण नहीं देखते। तीसरा, यदि विवाह हुआ तो फिर संकेत नामक लीला स्थलीकी क्या आवश्यकता है। अर्थात् यदि दोनोंका विवाह हुआ है तो फिर छिपकर मिलनेकी या फिर संकेतकी क्या आवश्यकता है?

अनर्थोंमें प्रतिष्ठाकी आशा आसक्ति पर्यन्त रहती है। प्रतिष्ठारूपी विष्ठाको खूब यत्नपूर्वक दूर करना होगा, क्योंकि यही समस्त अनर्थोंका मूल है।

अपनी हरिकथाके अन्तिम पड़ाव अर्थात् वृन्दावनमें श्रील गुरुदेवने समस्त भक्तोंसे एक अपील की कि हे साधको! दन्तोंमें तृण धारणकर काकुति वाक्योंके द्वारा पुनः पुनः मैं आपके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि सब प्रकारके मतभेदादि, अनर्थ, अपराध ईर्ष्यादिका त्यागकर चैतन्यचन्द्रके चरणकमलोंमें अनुराग उत्पन्न करें। अनादि कालसे हम जन्म मृत्युके चक्रमें फँसे हुए हैं, किसी प्रकार इस जन्ममें कुछ सुयोग प्राप्त हुआ है। भगवान्की अहैतुकी कृपाकी प्राप्ति हुई है, गुरु-वैष्णवोंकी सेवासे सुकृति बनाकर भक्तिमें प्रवेशकी चेष्टा द्वारा महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें अनुराग उत्पन्न करें अन्यथा समय निकल जायेगा तो पुनः नहीं आयेगा। यह कलिकाल है, कलह अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए इस मतभेद रूपी खुजलाहटको त्यागकर महाप्रभु-नित्यानन्दप्रभुके चरणोंमें अनुराग उत्पन्न करनेकी चेष्टा करें। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए समस्त प्रकारके मतभेद त्याग दें। श्रील प्रभुपादकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मिल-जुलकर आश्रय विग्रहके आनुगत्यमें विषय विग्रहकी सेवा करें। एकतामें ही बल है। स्वप्नमें भी वैष्णवोंसे विवाद मत करें। एक बार भी यदि किसीने नाम ग्रहण किया है, तो उसका आदर करें। जिस किसीने भी गुरुजीकी तनिक भी सेवा की है, उसके प्रति चिर ऋणी रहें तभी हमारे भजनकी उन्नति होगी। गुरुजीका नाम लेकर यदि कुत्ता भी आ जाए तो उसका भी सम्मान करना चाहिए।

अन्य वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी कार्तिक मासमें श्रील महाराजजीके आनुगत्यमें गौड़ीय गुरुवर्ग—श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरह महोत्सव, पूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीका आविर्भाव, श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका तिरोभाव, पूज्यपाद श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराजजीका तिरोभाव, श्रीलभक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजजीका आविर्भाव दिवस बड़े आदर एवं यत्नपूर्वक मनाये गये। इन अवसरों पर श्रील महाराजजीने उन सबके अप्राकृत जीवन-चरित्र, गुरुनिष्ठा, गुरुसेवा, भजन-आदर्श इत्यादिके सम्बन्धमें प्रेरणाजनक प्रकाश डाला।

विदेशोंमें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज ११/१२/२००१ को दिल्लीसे प्रस्थान कर सर्वप्रथम जर्मनीके फ्रेंकफर्ट नगरमें पहुँचे। वहाँसे वे Paderborn नामक एक स्थानमें पहुँचे जहाँ कि यूरोपके प्रायः भिन्न भागोंसे आए २०० भक्तगण उनके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रील महाराजजी वहाँ पाँच दिनों तक रहे और उन्होंने मुख्यतया श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित जैवधर्मके विषयमें प्रवचन किया। जैवधर्मके सम्बन्धमें उन्होंने बताया—"श्रीरूप गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी सारी शिक्षाओंको श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके हृदयमें स्फुरित कराया, उन शिक्षाओंको ही जीव कल्याणके लिए श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने कथानकके रूपमें लिपिबद्ध किया, जो कि जैवधर्मका वर्तमान स्वरूप है। इस ग्रन्थमें भारतीय वाङ्मय—उपनिषद्, बह्मसूत्र, महाभारत, भागवत आदिका सार संगृहीत हुआ है।

१६/१२/२००१ को जर्मनीसे चलकर श्रीलमहाराज केलिफोर्नियाके Sandiego नामक स्थानमें पहुँचे। Sandiego में श्रील महाराजके प्रवचनका विषय था—साध्य और साधन, जीवनका लक्ष्य और उसे पानेका उपाय। इसके अन्तर्गत आरोपसिद्धा भक्ति, सङ्गसिद्धा भक्ति, भक्तिके विभिन्न सोपान, उत्तमा भक्तिके प्रकार आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया। यहाँ श्रील महाराजने हरिनाम और दीक्षा मन्त्र प्रदान किए।

२४/१२/२००१ को श्रील महाराज Sandiego से Hawaii पहुँचे हैं।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४५ | श्रीगौराब्द ५१५ | वि. सं. २०५८ फाल्गुन मास, सन् २००२, २८ फरवरी–२८ मार्च | संख्या १२

श्रीश्रीकृष्णस्तोत्रम्

[श्रीपृथ्वीदेवीकृतम्]

(श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके ५९वें अध्यायसे)

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम्। प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया॥२४॥

श्रीभूमिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर। भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥२५॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने। नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥२६॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे। पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः॥२७॥
अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये। परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥२८॥

त्वं वै विसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय विभर्ष्यसंवृतः।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः॥२९॥
अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि।
कर्त्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः॥३०॥
तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम्॥३१॥

पृथ्वीदेवीने कहा—हे शंख-चक्र-गदाधारी देवदेवेश! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन्! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ॥२५॥

प्रभो! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं, आपके नेत्र कमलके समान खिले हुए और शान्तिदायक हैं। आपके चरण कमलके समान सुकोमल और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ॥२६॥

आप समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री (रूप), ज्ञान और वैराग्यसे युक्त भगवान् हैं, सर्वव्यापक होनेपर भी स्वयं वसुदेवनन्दन हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके कारण भी हैं। आप स्वयं पूर्णबोध हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥२७॥

आप स्वयं तो जन्म रहित हैं, परन्तु इस जगतके जन्मदाता हैं, आप उत्कृष्ट या अपकृष्ट—सभी जीवोंके परम आत्मा-स्वरूप हैं, हे भूतात्मन्! आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ॥२८॥

प्रभो! जब आप जगतकी रचना करना चाहते हैं, तब उत्कट रजोगुणको और जब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणको तथा जब इसका पालन करना चाहते हैं, तब सत्त्व गुणको स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करने पर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, लिप्त नहीं होते। जगत्पते! आप ही काल, प्रकृति और पुरुष हैं तथा उन तीनोंसे परे भी हैं॥२९॥

भगवन्! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पंचतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अहंकार और महत्तत्त्व, कहाँ तक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत अद्वितीय स्वरूप आपमें ही स्थित है। इन सब पदार्थोंमें स्वतन्त्र-वस्तुकी प्रतीति भ्रमात्मक है॥३०॥

शरणागतोंके दुःखको दूर करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र भौमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें लायी हूँ। आप इसकी रक्षा कीजिए और इसके सिर पर अपना वह कर-कमल रखिए जो सारे जगतके समस्त पाप-तापोंको नष्ट करनेवाला है॥३१॥

श्रद्धा

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

अनादिकालसे ही अगणित जीव मायामोहित होकर इस संसारमें भ्रमण कर रहे हैं। स्वरूपतः जीव कृष्णदास है। अपने स्वरूपगत दासत्वको भूलकर भोग वासनाओंके अधीन होनेके कारण ही जीव मायाका दास हो पड़ा है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने कहा है—

'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।'
'कृष्ण भूलि सेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार–दुःख॥'

मायाबद्ध जीव इस भवसागरमें पतित होकर असीम क्लेश भोग कर रहे हैं। वे सुखकी आशासे चारों ओर भाग-दौड़ कर रहे हैं। वे सोचते हैं कि अमुक वस्तु पानेसे वस्तुका सुख मिलेगा। परन्तु बहुत कष्ट सहकर उस वस्तुको प्राप्त करने पर भी उससे उन्हें सुख नहीं मिलता। तब वे दूसरी वस्तु पानेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु किसी भी प्रकारसे उन्हें सुख नहीं मिलता। फिर भी न तो सुख पानेकी आशा ही मिटती है और न हृदयको शान्ति ही मिलती है। मायारूपी शत्रुके दास होकर उसकी लातें खाने पर भी नींद नहीं टूटती और उसे त्याग करनेकी भी इच्छा नहीं होती। मायामें एक ऐसी मोहिनी शक्ति है कि जीव उसे भोग करनेके लिए अत्यन्त लालायित हैं और उसके दासत्वमें ही अपना सुख समझते हैं। धनवान् व्यक्ति धनके अभिमानमें मस्त होकर दरिद्रोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, बुद्धिमान् व्यक्ति मूर्खोंके उपदेशको ग्रहण करना नहीं चाहते। कोई अविद्यारूपी विद्या अर्जन कर उसीके वृथा अभिमानमें चूर है, कोई उसके अभावमें दुःखी होता है। चिन्मय जगतका दिव्यरत्नस्वरूप जीव आज इस तरह संसार-गर्तके कीचड़में गिरकर मलिन हो गया है। जब भगवान् श्रीकृष्णके प्रति श्रद्धारूपी निर्मल जलके द्वारा विषयासक्तिरूपी कीचड़को धोया जाएगा, तभी जीवरूप रत्नकी ज्योति—कृष्णभक्ति स्वयं उदित होगी। उसी समय वह चिन्मय रत्नस्वरूप जीव भगवत्-धाममें जा सकेगा। किन्तु वह श्रद्धारूपी जल कहाँ और कैसे मिले?

इस संसारके अपार दुःखसे दुःखी होकर जब जीव उससे छुटकारा पानेकी चेष्टा करता है, तब भगवान्के अस्तित्वको माननेके लिए बाध्य होता है। तब वह साधुसङ्ग करनेकी चेष्टा करता है। साधुसङ्गसे उसे सदुपदेश प्राप्त होते हैं। क्रमशः वह शास्त्रोंका विचार कर उनके यथार्थ अर्थ पर विचार करता है। उस समय उसके मनमें यह दृढ़ विश्वास पैदा होता है कि ईश्वर महान् एवं सर्वशक्तिमान् हैं तथा जीव क्षुद्र और शक्तिहीन है; ईश्वर स्वाधीन हैं और जीव उनकी अचिन्त्य शक्तिके अधीन है; ईश्वर प्रभु हैं और जीव उनका दीन-हीन क्षुद्र दास है। तब वह पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान्को पाकर समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करता है। उस समय उसके मनमें सर्वाश्रयस्वरूप भगवान् श्रीहरिका आश्रय लेनेकी प्रबल इच्छा स्वभावतः ही उदित हो पड़ती

है। वह भगवान्‌को पानेके लिए थोड़ी-थोड़ी चेष्टा भी करता है। यही श्रद्धाकी प्रथम अवस्था है।

मायाके संसर्गसे जीवका स्वभाव विकृत हो जानेसे वह जड़ाभ्यस्त हो पड़ता है। सत्सङ्गके अभावमें या कुसङ्गके दोषसे श्रद्धा लुप्त भी हो सकती है। इसलिए उस समय साधुसङ्गकी नितान्त आवश्यकता है। साधुसङ्गके प्रभावसे यही श्रद्धा बढ़ती जाती है और साथ-ही-साथ व्याकुलता भी बढ़ती चली जाती है। उस समय जीव यही सोचते हैं कि किस उपायसे भगवान्‌को पाया जाय? वे यह देख पाते हैं कि अनर्थोंने उन्हें वशीभूत कर रखा है और उनका स्वभाव सुप्तावस्थामें है। तब वे अनर्थोंसे मुक्त किसी जाग्रत स्वभावयुक्त साधुपुरुषका पदाश्रय करते हुए एकनिष्ठ होकर भगवत्-भजनमें प्रवृत्त होते हैं। श्रद्धाकी इसी अवस्थाका नाम दृढ़ या निर्गुण उद्देशिनी श्रद्धा है। यही 'भक्तिलताका बीज' है। श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतमें 'श्रद्धा' की व्याख्या इस तरहसे की गई है—

श्रद्धा शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णभक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय॥

अर्थात् एकमात्र कृष्णभक्ति ही जीवका नित्य स्वभाव है। श्रीकृष्ण-सेवा ही जीवोंका एकमात्र कर्त्तव्य है। इसलिए कृष्णभक्ति करनेसे सब कार्य सम्पन्न हो जाते हैं—ऐसे दृढ़ निश्चय और विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। मायाबद्ध जीवोंका स्वभाव विकृत हो गया है। इसलिए जीवोंका सबसे बड़ा श्रेयः इसीमें है कि वे स्व-स्वभावको प्राप्त करनेके लिए देहयात्राका सुचारु रूपसे निर्वाह करते हुए कृष्णानुशीलन करें। अतएव बुद्धिमान् व्यक्ति भक्तिके अनुकूल विषयोंको ही ग्रहण करते हैं और भक्तिके प्रतिकूल विषयोंको असार जानकर त्याग देते हैं। श्रद्धावान् व्यक्तियोंका कर्माधिकार नहीं है, क्योंकि जो श्रद्धा निष्काम कर्मके द्वारा प्राप्त होती है, उससे उत्तम श्रद्धा उनमें स्वभावतः ही उदित हो गई है। श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

(श्रीमद्भा. ११/२०/९)

अर्थात् जब तक कर्मफलके प्रति विराग न उत्पन्न हो अथवा भगवान्‌की लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्तनमें श्रद्धा न उत्पन्न हो जाय, तभी तक कर्म करनेका अधिकार है। श्रद्धालु व्यक्ति कर्मफलके प्रति आसक्त नहीं होते, क्योंकि वे एकमात्र कृष्णभक्तिको छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहते। उन्हें हरिकथाका श्रवण-कीर्तन करनेमें ही आनन्द मिलता है—उसीमें वे आसक्त होते हैं। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' श्लोकके अनुसार वे समस्त धर्म-कर्म एवं आशा-भरसाओंका त्यागकर एकमात्र भगवान्‌के शरणापन्न होकर *'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः'* [अर्थात् दुःखमें अनुद्विग्न, सुखमें स्पृहाहीन, अनुराग, भय एवं क्रोध आदिसे विमुक्त] होकर *'अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं'* रूप उत्तमा भक्तिका आचरण करनेमें सर्वदा यत्नशील रहते हैं। इसलिए वे समस्त धर्मकर्मोंका परित्यागकर, शुष्क ज्ञानको तुच्छ जानकर एकमात्र विशुद्ध भक्तियोगके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त होनेकी चेष्टा करते हैं। क्योंकि 'श्रद्धावान् जन

हन भक्ति अधिकारी' के अनुसार एकमात्र श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्ति पानेके अधिकारी हैं। 'भक्त्ये भगवानेर अनुभव पूर्णरूप' के अनुसार एकमात्र भक्ति द्वारा ही भगवान्का पूर्ण अनुभव प्राप्त होता है। इसलिए मायाबद्ध जीवोंके लिए श्रद्धा एकमात्र अमूल्य धन है। यही श्रद्धा साधनकी अवस्थामें कृष्णानुशीलनके द्वारा निष्ठा, रुचि, आसक्ति आदिके रूपमें परिणत होती है। भावका उदय होनेसे यहाँ श्रद्धा निर्गुण-श्रद्धा, राग या रति कहलाती है। यह रति प्रेम-मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए द्वारस्वरूप है।

श्रद्धालु जीव एकमात्र कृष्णभक्तिकी ही कामना करते हैं। यदि सूक्ष्मरूपसे भी उनके मनमें अन्य प्रकारकी वासनाएँ रहें, तो यही जानना चाहिए कि उनकी श्रद्धा अभी तक निर्गुण नहीं हो पायी है। साधुसङ्गके द्वारा जब तक वे अन्य अभिलाषाओंका परित्याग नहीं करते, तब तक उनकी भक्ति पानेकी सम्भावना कम ही है। शुद्धभक्ति ही जीवोंकी एकमात्र सम्पत्ति है। उस भक्तिको पानेके लिए सबसे पहले श्रद्धाकी ही आवश्यकता है। श्रद्धा नहीं होनेसे भक्ति नहीं पायी जाती।

कुछ सोचने-समझनेकी बातें

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

(१) जो लोग भगवत्-सेवासे विमुख होते हैं, वे सदा-सर्वदा भगवान्की माया द्वारा दिए हुए सुख-दुःखोंका भोग करते हैं। सुख-दुःख भोगकी भूमिका स्थूल देह और मन है। विचारकोंका ऐसा कहना है कि स्थूल और सूक्ष्म देह जिसके हैं, उसे कुछ भी भोग नहीं करना होता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर ही सारे सुख-दुःखोंका भोग करते हैं। जीवात्मा सुख-दुःख भोगका मालिक नहीं है। जीवात्माकी सुप्तावस्थामें स्थूल और सूक्ष्म—ये दोनों आवरण ही सुख-दुःख भोग करते हैं।

(२) जो लोग स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंको और उन दोनों शरीरोंके मालिक देहीको जान लेते हैं, वे स्वयं मुक्त होकर हरि-सेवा करते हैं। आत्माकी वृत्तिका उन्मेष होनेपर वे हरि-सेवामें प्रवृत्त होते हैं अर्थात् उसकी हरि-सेवा आरम्भ होती है। उस समय मन और स्थूल देह अपने प्रभु आत्माके इच्छानुसार कार्य करते हैं। परन्तु जिस समय प्रभु आत्मा सो जाते हैं और मन एवं स्थूल देह पर उनका शासन नहीं होता, उस सयम देह और मन अपने प्रभुको वञ्चित करके प्रभुके जागतिक सारे उपकरणोंका स्वयं भोक्ता बन बैठते हैं।

(३) जब मन सांसारिक विषयोंको ग्रहण करता है, उसी समय मनमें प्रभुकी वंचना करनेकी दुष्प्रवृत्ति पैदा होती है। ऐसा देखकर नीतिविशारद उपदेशक-सम्प्रदाय व्यक्ति-विशेषकी चिन्ता-धाराके अधिकारी मनको ऐसा उपदेश देते हैं कि तुम्हें अपनेको भोक्ता न मानकर अपने प्रभु जीवात्माके कल्याणके लिए कार्य करना चाहिए। परन्तु रजः और तमः गुणोंसे प्रभावित हुआ मन उनके उपदेशों पर तनिक भी ध्यान नहीं देता है। वह अपने स्वामीके कल्याणके लिए तनिक भी परवाह नहीं करता है। इस प्रकार विशुद्ध या निर्गुण जीवात्मा अपने मनरूपी स्वार्थी सेवक द्वारा वंचित होकर भूतग्रस्त हो पड़ता है। उस समय उपदेशक जीवात्मासे फिर कहते हैं—"देखो, तुम्हारे सिर पर भूत सवार हो रहा है। तुम्हारे सेवकों—मन और

स्थूल देहने तुम्हारी स्वतन्त्रताके ऊपर आक्रमण किया है। अतएव सबसे पहले तुमको इन आक्रामकोंका दमन करना चाहिए। ऐसा नहीं करनेसे तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता।" परन्तु मनोधर्मी जीव उपरोक्त चेतनमय उपदेशोंकी अवज्ञा करते हैं। फल यह होता है कि वे आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक—इन त्रिविध तापोंका भोग करते हैं।

(४) जब त्रिविध-ताप देह और मनको धर दबाते हैं, तब उनकी यथार्थ बोधशक्तिको विकृतकर उन्हें स्वर्ग-नरकमें गमनागमन कराते हैं। यदि देह और मन उपर्युक्त उपदेशकोंके उपदेशोंका श्रवण करते हैं, तो जीवात्माकी निद्रा भङ्ग हो जाती है। जब जीव जग जाता है, तब देह और मन उसकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर पाते। दूसरी तरफ, जब मन आत्म-विमुख होकर देहके अनुकूल कार्य करनेकी अभिलाषा करता है, उसी समय वह अपने प्रभु जीवात्माको चकमा देकर सुला देनेकी चेष्टा करता है तथा साथ ही उपदेशकोंकी वाणियोंका विकृत अर्थ लगाकर अपने विचारोंकी पुष्टि करता है। ऐसी दशामें मनकी गति भगवत्सेवाकी ओर न होकर बहिर्जगतके विषय-भोगोंकी ओर होती है। वह विषयी उपदेशकोंको ही सच्चा और यथार्थ उपदेशक समझता है।

(५) भगवद्भजनका उपदेश करनेवाला जीवके स्वरूपका उद्‌बोधक है। जब ऐसा उपदेशक किसी व्यक्तिके मनके निकट मुक्त-वाणीका प्रचार करता है, उस समय सोचकर वह सहसा उन उपदेशोंको ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत नहीं होता कि मनकी नौकरी समाप्त हो जायेगी, देह और विश्वकी जमींदारी चौपट हो जायेगी। बल्कि वह उन उपदेशकोंसे धर्म-अर्थ-काम-भोगोंके ही सम्बन्धमें परामर्श चाहता है। फिर कभी विषय-भोगोंसे निवृत्त होनेके लिए परामर्श देनेके लिए भी उनको बाध्य करता है।

(६) बिना श्रीगुरुदेवके उपदेशके चंचल मन अपना अधिकार स्थिर नहीं कर पाता। वह यह भूल जाता है कि मैं जीवात्माका सेवक हूँ। जीवात्मा परमात्माका किंकर है—इस धारणाको बाधित करनेके लिए वह आकाश-पाताल एक कर देता है। भगवान्‌की पूर्णताकी उपलब्धिके अभावमें अणु-जीवात्माका स्वरूप सदैव तन्द्राग्रस्त होता है। आत्माको सुला देनेसे मनको अनात्म वस्तुका भोग करनेके लिए सुयोग मिल जाता है। तभी पार्थिव आकाशमें विचरण करनेके लिए उसे दो पंख प्राप्त हो जाते हैं। मुण्डकोपनिषद्‌में दो पंखोंसे युक्त दो पक्षियोंका वर्णन मिलता है। विषयभोगमें प्रमत्त हुआ पक्षी (बद्ध जीवात्मा) भगवान् रूपी दूसरे पक्षीको भी अपने भोगोंकी प्राप्तिमें सहायक बना लेना चाहता है। परन्तु जब वह जान लेता है कि परमात्मा-पक्षीकी सेवा करना ही उसका कर्त्तव्य है, तब वह मनरूपी सेवककी सहायतासे स्वयं कर्मी या भोगी बननेकी कामना-वासनाका सर्वथा त्याग कर देता है।

(७) ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—ये अद्वय ज्ञानवस्तु हैं। इसलिए जीवकी सत्तामें ब्राह्मण, योगी और भक्त स्वतः अवस्थित हैं। जिस समय ब्रह्मज्ञानमें बृहत् प्रतीतिका अणुत्व या खण्डत्व दूसरे अणु या खण्डसे विवाद नहीं करता, उस समय वह ऐसा समझ सकता है कि परमात्मासे विच्छिन्न और वियुक्त अवस्थामें ही आत्म-प्रतीति अधोगतिको प्राप्त होनेके कारण परस्पर वैषम्य उपस्थित हुआ है। अतः परमात्मासे मिलित होना ही योगीका धर्म है। मिलित होनेपर योगधर्म भजनके रूपमें बदल जाता है। भजनीय वस्तुके अबाध दर्शन, अबाध श्रवण, अबाध घ्राण, अबाध आस्वादन, अबाध स्पर्शन और अबाध चिन्तनके द्वारा चिद्विलास-सेवामें संयुक्त रहनेके कारण अधःस्थित पार्थिव दृष्टिकोणसे वह मायाबन्धनकी

अनुपयोगिता लक्ष्य करता है—इसीको भक्तकी आत्मप्रतीति कहते हैं। इसीलिए वह स्वरूपतः कृष्णदास या वैष्णव है। यदि वह अपरा-शक्तिका आश्रय करता है, तब उसकी भोगप्रवृत्ति होती है और यदि पराशक्तिका आश्रय ग्रहण करता है, तब वह पराविद्यामें पारङ्गत होकर भगवत्-सेवामें प्रवृत्त होता है।

(८) अविकृत जीवात्मा या वैष्णवोंका नित्यकृत्य है—हरिसेवा। इसीका दूसरा नाम चिद्विलास है। वर्त्तमान बद्धावस्थामें जीव अचिद्विलासमें मत्त हुआ कहीं जड़भावको ग्रहण करनेमें प्रयत्नशील है तो कहीं आंशिक सत्य या सम्पूर्ण असत्यमें ही नियुक्त है। जहाँ अचिद्विलास प्रबल होता है, वहीं मनोधर्म है। जहाँ चिद्विलासका सहयोग है, वहाँ नित्यभजनीय वस्तुका नित्य भजन होता है तथा वही नित्य भजनकारीकी विचरण भूमि है। वह न तो भूताकाश है, न जड़पिण्डगत पात्र है और न अन्तःकरणका विलासमात्र है। वहाँ स्थूल और सूक्ष्मका अद्वयत्व जीवात्मामें एकीभूत होकर भगवत्-सेवामें संलग्न है। इसलिए भक्तिके उपदेशकगण मनको ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं कि जीव स्वरूपतः वैष्णव है। इसीलिए प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि नित्य चिदिन्द्रियोंकी गति (मनोधर्मियोंके लिए) बहिर्जगतकी ओर होती है। यही कारण है कि मनोधर्मी जीव सच्चिदानन्दमय उपदेशोंका अनुभव नहीं कर पाते।

(९) कभी-कभी मन तटस्थ धर्ममें अवस्थित होकर अपने प्रभु आत्माकी बातें उड़ा देता है तथा अपनी इन्द्रियोंको बहिर्जगतके भोगोंके संग्रहमें ही नियुक्त कर देता है। उस समय वह अपने प्रभु आत्माकी सेवा छोड़कर अपनेको ही कर्त्ता और भोक्ता मानने लगता है। उस समय वह भजनके उपदेशोंकी अवज्ञा करता है। परन्तु जिस समय वह कृष्ण सेवाके लिए उपयोगी होता है, उस समय वह आत्म-शासनके उपदेशोंका श्रवण करता है। इसी समय वह अपने स्वरूपकी उपलब्धि करके सांसारिक भोगोंसे मुँह मोड़कर भगवत्-सेवामें प्रवृत्त होता है। यही साधनका फल है। जीवन्मुक्त पुरुषोंकी प्रपंचमें अवस्थिति जीवोंके कल्याण एवं अपने नित्य मङ्गल संग्रहके उद्देश्यसे ही है।

उडुपीमें श्रीचैतन्य महाप्रभु

प्रभु कहे —"कर्मी, ज्ञानी दुई भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेई दुई चिह्न॥"

(चै. च. म. ९/२७६)

श्रीचैतन्य महाप्रभुने उडुपी ग्राम स्थित मूल मठके तत्कालीन तत्त्वादी आचार्य श्रीरघुवर्यतीर्थ द्वारा कथित साध्य-साधन विचारका खण्डन किया था। इस कारण एवं विशेषकर महाप्रभु द्वारा उक्त आचार्यके प्रति 'तोमार सम्प्रदाय' (तुम्हारा सम्प्रदाय) वाक्य प्रयुक्त करनेसे कोई-कोई ऐसा मानते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु श्रीमध्व सम्प्रदायभुक्त नहीं हैं। वे लोग उक्त कथोपकथनमें ऐसा विचार ग्रहण करते हैं कि श्रीमध्वके मतमें 'साधन' एवं 'साध्य'—ज्ञानमार्ग तथा मुक्ति हैं, अतएव इस मतमें भक्तिहीन कर्म और ज्ञानके चिह्न रहनेके कारण यह श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित शुद्ध 'भक्तिरूप' साधन एवं 'कृष्णप्रेम' रूप साध्यके विचारसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् है। अतएव श्रीमन्महाप्रभु स्वयं ही पृथक् साध्य-साधन विचार सम्पन्न एक पञ्चम सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। सम्प्रदाय-विज्ञान-वैभवके सम्बन्धमें अनभिज्ञ व्यक्तिके लिए इस प्रकारकी भावना अस्वाभाविक नहीं है।

श्रीमध्वमतमें कनिष्ठाधिकारी साधकके लिए प्रथमतः कृष्णके प्रति कर्मार्पणकी बात स्वीकार होनेपर भी अमला भक्ति ही प्रधान साधनके

रूपमें स्थापित हुई है। देह धर्ममें आसक्त, फल-भोगाकांक्षी जीव—'कर्मी' होते हैं। उन्हें कृष्णके प्रति उन्मुख करनेके लिए प्रथमतः कृष्णके प्रति कर्म-अर्पण करानेके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिए श्रीमध्वने भक्तिके अधीन तथा शुद्ध भगवत्-ज्ञानके अनुकूल कर्मको सामान्य रूपसे स्वीकार किया है। *''ॐ सहकारित्वेन च ॐ''* (ब्रह्मसूत्र ३/४/३३) इस सूत्र भाष्यमें उन्होंने लिखा है। *''यथा राज्ञः सहकार्ये मन्त्री तथा ऋतेऽत्र क्षितिपः कार्यमृच्छे। एवं ज्ञानं कर्म विनापि कार्यं सहायभूतं न विचारः कुतश्चिदिति कमठश्रुतौ सहकारित्वोक्तेश्च।''* तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजाके कर्मसचिवके रूपमें मन्त्री वर्त्तमान रहता है, किन्तु राजा मन्त्रीके बिना भी स्वयं कार्य सम्पादनमें समर्थ होता है, उसी प्रकार शुद्ध भगवत्-ज्ञान भी कर्मके बिना मोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ होनेपर भी किसी-किसी स्थान पर उसका कर्मसचिवत्व स्वीकृत हुआ है। इससे स्पष्ट है कि श्रीमध्वपादने कर्मको मुख्य रूपसे मुक्तिका उपाय या 'साधन' मानकर स्वीकार नहीं किया। बल्कि गौणकर्म निर्वाहक मन्त्रीका आसन मात्र दिया है। श्रीमद्भागवतके मतके साथ इस मतका कोई विरोध नहीं है। यह श्रीमद्भागवतके (१०/४७/२४)

''दानव्रततपहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥''

—श्लोककी आलोचना द्वारा समझा जा सकता है। तब आत्मेन्द्रिय-तर्पणमूलमें विष्णुके उद्देश्यसे अनुष्ठित जो याग-यज्ञादिरूप कर्म हैं, वे गौणरूपसे भक्तिके सचिव नहीं हो सकते। कर्मके साधारणतः आत्मेन्द्रिय तर्पणोद्देश्यसे ही साधित होनेके कारण श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—*''कर्मनिन्दा, कर्मत्याग—सर्वशास्त्र कहे।''* किन्तु जो कर्म धर्मके उद्देश्यसे कृत होता है, जो धर्म विरागके उद्देश्यसे साधित होता है एवं जो विराग भगवान्के चरणकमलोंकी सेवाके लिए होता है, वह गौणरूपसे अभिधेय हो सकता है। श्रीमन्मध्वने मात्र इस प्रकारके कर्मको ही भक्तिसचिवका आसन प्रदान किया है। जो कर्म परमार्थके उद्देशक नहीं हैं, ऐसे कर्म निन्दनीय और वर्जनीय हैं, यह उन्होंने सुस्पष्टरूपसे निर्देश किया है—

कर्मणा वयते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति पतयः पारदर्शिनः॥

(सूत्रभाष्य ३/३/५०)

श्रीमध्वमतमें अमला भक्ति ही एकमात्र 'साधन' के रूपमें विचारित हुई है। मध्व-सम्प्रदायके सुप्रचलित संक्षिप्त मध्वमत प्रकाशके एक श्लोकमें यह व्यक्त है। जैसे—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्त्वतो भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभाव गताः।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं ह्यक्षादि त्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

इस श्लोकके ही अनुरूप एक श्लोक—*''श्रीमध्वः प्राह विष्णुं परतमम्''* श्रीप्रमेय-रत्नावली ग्रन्थमें श्रीमद्बलदेव विद्याभूषण प्रभुने प्रकाशकर श्रीमध्वमत और श्रीचैतन्यमतका अपार्थक्य दिखाया है।

श्रीमन्मध्वने अपने विभिन्न भाष्यों (टीकाओं) में श्रवण-कीर्त्तन-लक्षणा भक्तिको ही साधनके रूपमें बारम्बार घोषित किया है। जैसे—

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥

(मुण्डकोपनिषद् भाष्यधृत नारायणसंहिता वचन)

''भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्तिवशः पुरुषो, भक्तिरेव भूयसीति माठर श्रुतेः॥''

(३/३/५७ सूत्र भाष्यः)

भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति विष्णुर्नान्येन केनचित्।
स एव मुक्तिदाता च भक्तिस्तत्रैव कारणम्॥

(महाभारत-तात्पर्य १/११८)।

इस प्रकार उन्होंने पुनः पुनः विभिन्न शास्त्र-

वचनोंका उद्धार कर यह बतलाया है कि 'भक्ति' के अतिरिक्त साध्य मुक्तिको प्राप्त करानेका अन्य उपाय नहीं है।

श्रीमध्वमतमें जो मुक्ति 'साध्य' के रूपमें निर्णीत हुई है, वह पाँच प्रकारकी मुक्तियोंके अन्तर्गत जीव-परमात्मैक्यरूपा सायुज्य मुक्ति नहीं है। यदि वे जीव-परमात्माका साम्य ही स्वीकार करेंगे, तो उनको शुद्धद्वैतवादी या नित्य पञ्च भेदवादी माननेके बाद भास्कर भट्टादिकी भाँति औपचारिक भेदवादी बोलना होगा। श्रीमध्वने जीवोंको श्रीहरिका नित्य अनुचर (सेवक) कहा है। मुक्तावस्थामें जीव और ईश्वरमें भेद एवं जीवकी ईश्वर उपासनाके सम्बन्धमें उन्होंने उच्च स्वरसे घोषित किया है।

''न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चितः (भा. २/९/१०) इत्यादि श्रुतिस्मृतिषु तात्पर्यं मुक्तानां भेदस्यैवोक्तैः।''

(छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य ६ अ.)

अर्थात् जिस स्थान पर अन्योंकी तो बात ही क्या स्वयं माया भी प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं, जहाँ देवासुरादि निखिल-जीवोंके पूजनीय हरिके सेवक अवस्थान करते हैं, इत्यादि। इन श्रुति-स्मृतियोंका तात्पर्य यह है कि सर्वत्र ही मुक्त जीव भगवान्से भिन्न हैं। *''कृष्णो मुक्तैरिज्यते वीतमोहैः''* (म. ता. २/६२) अर्थात् मोहरहित मुक्तजीवों द्वारा श्रीकृष्ण पूजित होते हैं। *''मुक्ता अपि हि कुर्वन्ति स्वेच्छयोपासनं हरेः॥''* (सूत्र भाष्य ३/३/२७) *''मुक्तानामपि भक्तिर्हि नित्यानन्द-स्वरूपिणी''* (म. ता. १/१०५) जैसे वाक्यों द्वारा यही प्रकाशित होता है कि मुक्त जीव भी श्रीहरिकी उपासना करते हैं तथा भक्ति ही उन मुक्त जीवोंके लिए नित्य आनन्दस्वरूपिणी है। *''भेदव्यपदेशाच्च''* (१/१/१७) सूत्रके भाष्यमें भी उन्होंने श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तको ही मुक्तिके स्वरूप रूपमें वर्णन किया है—*''मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेन व्यवस्थितिः''* (भा. २/१०/६) अर्थात् मायिक स्थूल-सूक्ष्म इन दो रूपोंका परित्यागकर शुद्ध जीवस्वरूपमें अर्थात् भगवत्पार्षदरूपमें अवस्थितिका नाम ही मुक्ति है। यहाँ तक कि उक्त मतमें मुक्ति और मुक्तजीवोंके बीच भी तारतम्य तथा आनन्दका तारतम्य भी स्वीकृत हुआ है—*''जीवगणा हरेरनुचरो नीचोच्चभावं गताः''* (संक्षिप्त मध्वमत), *''मुक्तावानन्दो विशिष्यते''* (सूत्र भाष्य ३/३/३३)

इसलिए मायावादके दलनकर्ता श्रीमध्वपादने जिस मुक्तिको साध्य कहकर निर्धारित किया है, वह नितान्त भक्तिपर एवं श्रीमद्भागवतके विचारके अनुसार है। तनिक भी ज्ञानदुष्ट नहीं है। श्रीमद्बलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीमध्व-कथित उक्त मुक्तिका *''मोक्षं विष्णवाङ्घ्रिलाभं''* कहकर वर्णन किया है। घीमें जिस प्रकार क्षीर (दूध) की मौलिकता है। उसी प्रकार श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रचारित साध्य सार प्रेममें भी श्रीमध्व द्वारा प्रतिपादित 'साध्य' श्रीविष्णुके चरणकमलकी प्राप्तिरूपी मुक्ति अनुस्यूत हुई है।

तत्कालीन तत्त्ववादि-आचार्य रघुवर्यतीर्थकी या उनके अनुगत शिष्यवर्गकी अथवा परवर्त्ती तत्त्ववादियोंकी विचार धारा काल क्रमसे श्रीमन्मध्वाचार्यके प्रकृत मतसे बहुत अलग हो गई, यह श्रीमन्मध्वकी लेखनी और आधुनिक तत्त्ववादियोंके आचार-प्रचार एवं लेखनीकी आलोचना करनेसे ही भलीभाँति जाना जा सकता है। इसलिए परवर्त्ती विकृत मतको मूल-आचार्यका सिद्धान्त मानकर स्थापन नहीं किया जा सकता। श्रीमहाप्रभु द्वारा मध्व-सम्प्रदाय स्वीकार करनेपर भी उक्त तत्त्ववादि-आचार्यको 'तोमार सम्प्रदाय' (तुम्हारा सम्प्रदाय) कहकर जो उक्ति हुई, उसके द्वारा यही सूचित होता है कि उक्त तत्त्ववादी महाशय मूल 'मध्व-सम्प्रदाय' की धारासे अति विच्युत होकर स्वतन्त्र हो पड़े थे।

श्रीमन्महाप्रभुने उक्त वाक्यसे उस तत्त्ववादी

आचार्यको यही समझाया—"मेरे द्वारा अभिप्रेत एवं स्वीकृत जो मध्व-सम्प्रदाय है, तुमने उसका प्रकृत (यथार्थ) तात्पर्य न समझकर केवल बहिरङ्ग-मतजालमें आबद्ध होकर कार्यतः एक पृथक् सम्प्रदायकी सृष्टि की है, जिसमें एक मात्र भगवद्विग्रहकी सत्यता स्वीकारनेके अतिरिक्त अन्य कोई भी शुद्ध वैष्णव सिद्धान्त नहीं दीखता। अतएव तुम्हारे द्वारा कल्पित इस सम्प्रदायके साथ व्यासशिष्य श्रीमध्व तथा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

'आऊल' , 'बाऊल' , 'प्राकृत सहजिया' जैसी गोष्ठियाँ भी अपनेको श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत और गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय कहकर अपना परिचय देती है। किन्तु ऐसा कहनेपर भी उनके अपसिद्धान्तको महाप्रभु द्वारा प्रचारित मत नहीं कहा जा सकता। अथवा यदि कोई उनमें अपसिद्धान्तका खण्डन करता है तो ऐसा विचार कि उसने महाप्रभुके मतका खण्डन किया है, नितान्त अयुक्त होगा। तथाकथित तत्त्वादियोंके अपसिद्धान्तको श्रीमन्महाप्रभुने शास्त्रयुक्ति द्वारा खण्डित किया था, इसलिए ऐसा मानना कि महाप्रभुने चार सात्त्वत-सम्प्रदायोंमें अन्यतम पूर्वाचार्य श्रीमध्व द्वारा प्रवर्त्तित श्रौतमतका खण्डन किया था, अतएव उन्होंने कभी भी श्रीमध्व-सम्प्रदाय स्वीकार नहीं किया—इस प्रकारकी युक्ति बालक-भाषाके समान नितान्त अज्ञान है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे)

श्रीगुरु-तत्त्व

—श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री वागरोदी,(साहित्य रत्न)

श्रीगुरुका महत्व

भगवत्तत्त्वका ज्ञान भूरिभाग्य, महती तपस्या, निरन्तर साधना, भगवान्के नाम-रूप-गुण- लीलाके तैलधारावत् रिन्तर श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण आदिके पश्चात् प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्णने परम भक्त अर्जुनको भगवद्गीतामें कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गी. ७/३)

सहस्रों मनुष्योंमें से कोई मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिए यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले पुरुषोंमें से कोई पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्वसे जानता है।

इसी प्रकार 'गुरुतत्त्व' का ज्ञान भी बड़ा ही दुर्गम और अज्ञेय है। सौभाग्यवान् साधक ही भगवत्कृपा और गुरुकृपाके बलपर इस ज्ञानको प्राप्त कर सकता है। गुरु-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करने पर वह अकुतोभय हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है। साथ ही भगवान् एवं गुरुपादपद्मोंका अनन्य उपासक भी बन जाता है।

इस असार संसारमें पाप-पंकमें निमग्न मानवके लिए एकमात्र गुरु ही समुद्धारक हैं, सच्चे हितैषी हैं। वे ही मायामृगमरीचिकामें पड़कर देहात्मबुद्धिसम्पन्न जीवोंके भ्रमके निवारक हैं; आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक त्रितापोंकी असहनीय ज्वालासे संतप्त जीवोंके लिए शीतल-पीयूषवर्षी वारिद हैं, अघोंकी घनघोर घटाओंको विदीर्ण करनेमें शक्तिशाली प्रभंजन हैं, ममताके महोदधिमें निमज्जित जीवके लिए कर्णधार हैं। हृदयपटलस्थ अज्ञानान्धकारके संहारक भास्कर हैं, जिज्ञासु साधकोंके सच्चे मार्गद्रष्टा हैं तथा भवरोगकी एकमात्र महौषधि हैं। अतएव गुरुका महत्त्व सर्वतोधिक एवं भगवान्से भी प्रथम है। गुरु सर्वदेवमय हैं—***'सर्वदेवमयो गुरुः'***।

यद्यपि लोकमें विद्यागुरु, जन्मदाता, पालनकर्ता

भी एक प्रकारसे गुरुके रूपमें ही माने जाते हैं, परन्तु ये आंशिक गुरु हैं। वास्तविक गुरु वे हैं, जो साधकका भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ देते हैं; उसकी वासना-ग्रन्थियोंका छेदन कर उसे शुद्ध वैष्णवका रूप दे देते हैं। गुरुका स्वरूप अपूर्व है।

श्रीमद्भागवतमें परम भागवत परीक्षित्‌ने महामुनि शुकदेवसे निवेदन किया था—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्ल्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

(श्रीमद्भा. ६/१४/५)

—महामुने! मुक्तसिद्धोंमें भी जो प्रशान्तचित्तसे नारायण-परायण महात्मा हैं, वे बहुत ही दुर्लभ हैं। करोड़ोंमें कोई विरले ही ऐसे होते हैं।

मुण्डकोपनिषद्‌में सद्‌गुरुके स्वरूपका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

(मुण्डक १/२/३)

—भगवत्तत्त्वका विज्ञान (प्रेमभक्ति सहित ज्ञान) लाभ करनेके लिए हाथोंमें समिधा लेकर वेदके तात्पर्यको जानेवाले और भगवत्-तत्त्वविद् सद्गुरुके समीप कायमनोवाक्यसे गमन करना चाहिए। श्रीमद्भागवतमें भी गुरुके दो लक्षण बताये गये हैं। एक स्वरूपलक्षण और दूसरा गौणलक्षण। भगवत्-तत्त्वविद् होना अर्थात् भगवत्-तत्त्वका अनुभवी होना ही गुरुका स्वरूप या प्रधान लक्षण है और वेदपारङ्गत होना अर्थात् अखिल वेदतात्पर्यज्ञ होना ही गौण लक्षण है। ऐसे श्रुतिशास्त्र निपुण एवं परब्रह्ममें निष्णात सद्गुरुके निकट ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य जिज्ञासु पुरुषको उत्तम श्रेय जाननेके लिए गमन करना चाहिए—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा. ११/३/२१)

परन्तु इन उपर्युक्त दोनों लक्षणोंमें से यदि स्वरूप लक्षणका अभाव हो तब केवल गौण लक्षण—सर्ववेद-शास्त्र-पारङ्गत होनेपर भी वैसा व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥

(श्रीमद्भा. ११/११/१८)

अतएव श्रीगुरुदेव कृष्ण तत्त्वविद् परम भक्तिमान होते हैं, भले ही वे विप्रकुलमें आविर्भूत हों अथवा शूद्र कूलमें, चाहे वे संन्यासी हों अथवा गृहस्थ। यदि कोई गुरुकी जातिका विचार करता है अथवा मरणशील मानव-बुद्धि करता है, तो वह व्यक्ति निश्चय ही नारकी है—

'गुरुषु नरमतिर्यस्य वा नारकी सः।'

'रुद्रयामल'में गुरु-माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

गुरुरेव परो मंत्रो गुरुरेव परो जपः।
गुरुरेव पराविद्या नास्ति किञ्चिद्‌गुरोः परम्॥

गुरु ही महान मंत्र हैं, गुरु ही श्रेष्ठ जप हैं, गुरु ही उत्तम विद्या हैं। इस लोकमें गुरुसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है।

अतः सद्‌गुरु ही सृष्टिरूपी वाटिकाके अविनाशी मनोहर दिव्य पुष्प हैं। भगवान्‌की करुणाके द्रवणशील स्वरूप हैं। भगवान्‌के समान ही विश्व हितके लिए अवतीर्ण हैं। उनका दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप है। वे श्रद्धालु, योग्य साधकको भगवान्‌के निकट पहुँचानेमें प्रयत्नशील हैं। इस लोकमें विभिन्न अवतारोंके प्रकाशके कारण हैं। इससे यह प्रकट है कि न्यूनाधिक रूपसे भगवान् और सद्‌गुरु अभिन्न ही हैं, उनके कार्य भी एक-से ही हैं। अज्ञानसे मनुष्य उनमें भेदकी कल्पना कर पापभाक् होता है।

भगवान्‌ने श्रीउद्धवसे कहा है—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

(श्रीमद्भा. ११/१७/२७)

सद्गुरु साक्षात् मेरे ही स्वरूप हैं अर्थात् मुझसे अभिन्न आश्रयविग्रह हैं, इसलिए गुरुका कभी भी तिरस्कार न करें। मनुष्य मानकर उनकी निन्दा न करें, क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं—

यो वै मद्भावमापन्नः ईशितुर्वशितुः पुमान्।
कुतश्चित्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम॥

(श्रीमद्भा. ११/१५/२७)

जो महापुरुष ध्यान योगके द्वारा स्वतन्त्र भावसे मुझे प्राप्तकर चुके हैं उनकी आज्ञा भी मेरी आज्ञाके समान माननी चाहिए । अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

इससे यह सिद्ध है कि भगवान्में और गुरुमें कितना निकटतम सम्बन्ध है, कितनी तदाकारता है। बिना गुरुकी कृपाके भगवान्से वास्तविक प्रेम नहीं हो सकता। शुद्ध निर्हेतुक प्रेमकी प्राप्ति गुरु कृपासे ही सम्भव है। सद्गुरु द्वारा ही उपास्यकी प्राप्ति होती है। साधकोंके लिए सद्गुरुका स्थान उपास्यसे उच्च है। इसीसे प्रथम पूजा सद्गुरुकी होती है, उसके पश्चात् उपास्यकी।

गुरु-तत्त्व

''नास्ति तत्वं गुरोः परम'' गुरुसे परम कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। वे स्वतःप्रकाशरूप हैं, मायातीत हैं।

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥

(श्रीमद्भा. ७/१५/२६)

भगवत्-ज्ञानदाता आचार्यरूपी भगवान्को जो व्यक्ति मरणशील मानव समझता है, उसकी भगवत्सेवा, भगवान्के नाम-मन्त्रका जप, हरिकथा-श्रवण, मनन आदि सभी कार्य हाथीके स्नानकी भाँति व्यर्थ हो जाते हैं।

श्रीभक्तिसंदर्भमें गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें वर्णित है—

यो मन्त्र सः गुरुः साक्षात् यो गुरुः स हरिः स्वयम्।
गुरुर्यस्य भवेत् तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम्॥

(वामनकल्पे ब्रह्म वाक्य)

मन्त्र ही साक्षात् गुरु-स्वरूप है और गुरु ही साक्षात् हरि-स्वरूप हैं। इसलिए गुरु जिनके प्रति संतुष्ट होते हैं, स्वयं हरि भी उनके प्रति संतुष्ट होते हैं।

वैष्णवं ज्ञानवक्तारं यो विद्यात् विष्णुवद् गुरुम्।
पूजयेद् वाङ्मनः कार्यः सशास्त्रज्ञः स वैष्णवः॥

(नारद पञ्चरात्र)

भगवत्-ज्ञान-प्रदाता श्रीगुरुदेवको जो विष्णुतुल्य जानकर मनसा, वाचा, कर्मणा उनकी सेवा करते हैं, वे ही वास्तवमें शास्त्रज्ञ हैं, वे ही वास्तवमें वैष्णव या शिष्य हैं।

श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंमें सदा भगवद्बुद्धिकी भावना ही जीवके लिए मङ्गलप्रद है। गुरुदेव स्वरूपतः भगवान् नहीं हैं, उनके प्रति भगवद्-बुद्धिका आरोप करना होगा—यह एक अविवेक है। वास्तवमें गुरु साक्षात् भगवान्के अभिन्न विग्रह ही हैं—

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

अर्थात् निखिल शास्त्रोंमें श्रीगुरुदेवको साक्षात् भगवान्का अभिन्न विग्रह कहा गया है। साधुजन भी उनका उसी रूपमें ध्यान करते हैं। तथापि वे श्रीहरिके परम प्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रियजन हैं अर्थात् वे भगवान्के अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाशविग्रह हैं।

यहाँ इतना ज्ञातव्य अवश्य है कि श्रीकृष्ण विषय विग्रह हैं और गुरुदेव आश्रय विग्रह हैं। यही एक विशेषता है। किसी भी चने आदिकी दालके दो खण्डोंकी भाँति एक ओर आश्रय जातीय भगवान् हैं, दूसरी ओर विषय जातीय भगवान्। आश्रय जातीय भगवान् ही गुरुपादपद्म हैं। जैसे सूर्य और उसका प्रकाश एक है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और गुरु एक हैं। श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं, श्रीगुरुदेव शक्ति हैं। श्रीकृष्ण गोपीनाथ हैं, श्रीगुरुदेव गोपी हैं। श्रीकृष्ण शक्तिमान तत्त्व हैं। श्रीगुरुदेव शक्ति तत्त्व हैं। शक्ति

और शक्तिमान परस्पर अभिन्न हैं—*''शक्ति शक्तिमतोरभेदः।''* श्रीगुरुदेव साक्षात् भगवान्‌के परमभक्त भक्तराज हैं। श्रीगुरुदेव सेवकविग्रह हैं। वे श्रीकृष्णकी आकर्षिणी शक्ति हैं, भगवत्-कृपाके मूर्त्तिमान विग्रह हैं।

साधक या शिष्य

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि श्रेष्ठतम साधक ही श्रीगुरुदेवकी प्राप्ति कर सकता है। जो आलसी है, मलिन है, अहङ्कारी, क्रोधी, लोभी, विषयासक्त, परछिद्रान्वेषी, मत्सर, वंचक, कटुभाषी, पर स्त्रीमें आसक्त, परसंतापी, निर्दयी, दुरात्मा, पापिष्ठ, नराधम, कुकर्मी है, वह गुरुदेवके पादपद्मोंका उपासक नहीं हो सकता। यदि हमें श्रीगुरुदेवकी प्राप्तिकी उत्कट लालसा है, तो हृदयसे अभिमान, स्वार्थ, आलस्य, आन्तरिक मलिनताको दूर करना पड़ेगा। विषय-वासनासे जो हमारा हृदय बन्द है, उसे खोलना होगा। विषय-तृष्णा, आलस्य, ममता, काम आदि दुर्गुणोंका त्याग करना पड़ेगा। निष्काम कर्म करनेकी भावना जागृत करनी होगी। हमें इन्द्रिय और मनका निग्रह करना पड़ेगा, ध्यान एवं मनकी भावना प्रकट करनी होगी। शुद्ध आचरण, उपास्य और सद्‌गुरुमें एकनिष्ठता, अचलता, अहैतुकी शुद्धाभक्ति होनेपर भगवान् आवश्य प्राप्त होंगे। सद्‌गुरुकी प्राप्ति वनमें ढूँढ़ने, पर्वत-पर्वतमें, तीर्थोंमें घूमनेसे नहीं होती। उनकी प्राप्ति तभी होती है, जब साधकके निष्कपट और शुद्ध हृदयमें शुद्धाभक्तिकी प्रबल पिपासा जागृत हो, भगवत्-अनुरागको प्राप्त करनेके लिए उसके हृदयमें व्याकुलता पैदा हो जाय। तब वह श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंके लिए सर्वस्व त्यागकर चल पड़े। त्याग, परोपकार, सेवा व्रत ही श्रीगुरुदेवको आकर्षित करते हैं। जैसे ही साधकके हृदयमें अत्यधिक-विकलता बढ़ी, गुरुदेव फिर कृपा करनेमें विलम्ब नहीं करते।

साधक जैसे ही योग्य हो जाता है, गुरु उसको ढूँढ़ते हुए उसके पास पहुँच जाते हैं, वे संसारके जीवोंका निरीक्षण इस अभिप्रायसे करते हुए घूमते हैं कि किसे उनकी आवश्यकता है और कौन सहायता चाहता है। अधिकारी साधकको देखते ही गुरुदेव चुम्बककी भाँति उसका आकर्षण कर लेते हैं। जिज्ञासु साधक सद्‌गुरुकी प्राप्तिका जितना इच्छुक रहता है, उससे सहस्रगुणा अधिक सद्‌गुरु उसके पास पहुँचनेकी इच्छा करते हैं, जिससे वे उसकी सहायता कर सकें। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि गुरुदेव कभी भी अपने तत्त्वोंका प्रकाश नहीं करते। क्योंकि अधिकांश मनुष्य यही प्रार्थना करने लगते हैं कि हमें महात्मा बना दिया जाय, संसारके वांछित पदार्थ हमें प्राप्त हों, आधि-व्याधि और अन्य दुःख दूर हों। इससे यही होगा कि सभी भक्तिका पुरुषार्थ करना छोड़ देंगे। अतः अनधिकारीके लिए श्रीगुरुदेव सदैव अपने तत्त्वोंको अन्तर्लीन करके रहते हैं। अधिकारीके समक्ष वास्तविक स्वरूपसे प्रकट होते हैं। गुरुदेवसे भक्ति प्राप्तिके लिए भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४/३४)

जिज्ञासु शिष्य तत्त्वदर्शी गुरुको श्रद्धापूर्वक दण्डवत्-प्रणाम कर, निष्कपट सेवा द्वारा सन्तुष्ट कर, निष्कपट भावसे उनसे भगवत्तत्त्व सम्बन्धी प्रश्न जिज्ञासा करेंगे। तब श्रीगुरुदेव प्रसन्न होकर उस ज्ञानका उपदेश करेंगे, जिससे वह शिष्य भगवान्‌को प्राप्त करेगा।

गुरु-प्राप्तिमें प्रणिपात, श्रीगुरुके प्रति पूर्ण श्रद्धा-विश्वास, भक्तिके लिए हृदयमें प्रबल पिपासा, गुरुभक्ति, प्रेम, सर्वस्व समर्पण और सेवा आवश्यक हैं।

निरन्तर अभ्यास, शास्त्राज्ञाओंका पालन, दृढ़-संकल्प, प्रवृत्ति मार्गसे निकल कर निवृत्ति मार्ग

द्वारा उपास्यकी सेवाके लिए तत्परता, शुद्धाचरण, हृदयकी पवित्रता, सर्वात्म-भाव, पर दुःखसे दुःखी, पर-सुखसे सुखी आदि सद्गुण भी होने चाहिए। तभी वह गुरुदेवके पादपद्मोंको पानेका अधिकारी हो सकता है।

गुरु परम्परा

यह परम्परा अति प्राचीन कालसे प्रकट है। भगवान् पुरुषोत्तम ही जगतके आदि गुरु हैं, उन्होंने ही सृष्टिके समय ब्रह्माको उत्पन्न कर गुरु-तत्त्वका महत्त्व समझाते हुए भगवत्तत्त्वका उपदेश दिया।

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्याञ्चैवं मदाश्रया।

पुनः श्रीमद्भागवत (११/१४/३) में कहते हैं—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥
तेन प्रोक्ता स्वपुत्राय मनवे इत्यादि।

अर्थात् वेदवाणी समयके फेरसे प्रलयकालमें लुप्त हो गयी थी, फिर सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने (श्रीकृष्णने) उसका विशद रूपसे ब्रह्माको उपदेश किया। ब्रह्माने पुनः अपने पुत्र मनु आदिको उपदेश किया।

अन्यत्र भी—***'परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मा जगत्पतिः'*** अर्थात् वैकुण्ठपति नारायणके आदि शिष्य विश्वकर्त्ता ब्रह्माजी हैं। इन लोकपितामह ब्रह्मासे यह वेदवाणी या भगवत्तत्त्वज्ञान परम्परा क्रमसे श्रीनारद, व्यास, शुकदेव आदि द्वारा जगतमें फैला है। पुनः श्रीनारायण-प्रिया 'श्री' जी (लक्ष्मीजी), श्रीरुद्र एवं सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—चतुःकुमार—इनसे भी क्रमशः और भी तीन परम्पराएँ निकलकर भगवत्तत्त्वको सर्वत्र प्रकाशित और प्रसारित किया। उपर्युक्त केवल चार परम्पराएँ ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान सम्यक् रूपसे प्रदान करती हैं। इसलिए इनको चार सत् सम्प्रदाय कहते हैं। जगद्गुरु श्रीनारद द्वारा कितना कार्य हुआ है, यह वर्णनसे परेकी वस्तु है। महर्षि वाल्मीकि और भगवान् वेदव्यास जैसे सद्गुरु उन्हींकी कृपासे उपलब्ध हैं, जिन्होंने हमें रामायण, श्रीमद्भागवत आदि अठारह पुराण प्रदान किये हैं, जो मानव जीवनके उद्धारक हैं, प्रबल साधन हैं।

कोई काल, कोई देश, कोई स्थान, कोई सम्प्रदाय, कोई सत् शास्त्र ऐसा नहीं है जो आज सूर्यके प्रकाशसे भी अधिक अलौकिक निरन्तर भासमान गुरुदेवके प्रकाशसे प्रकाशित न हो। गुरुदेवके स्वरूपका वर्णन और उनके उद्धारके कार्य सारे विश्वमें ओत-प्रोत हैं। प्रारम्भसे लेकर आज तक युगों-युगोंसे श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंसे निसृत जलधारामें अवगाहनकर अनेक जीव धन्य हो रहे हैं तथा अपने पापकलुषको धोकर भगवान्की भक्तिके अधिकारी बन रहे हैं। उनकी हरिरस-पूरित वाणीका श्रवण कर कृतार्थ हो रहे हैं। उनका दर्शन कर अपना जीवन सफल कर रहे हैं।

आज जो देशकी दशा अस्त-व्यस्त हो रही है, उसका एकमात्र कारण गुरुदेवके पाद-पद्मोंमें भक्तिका अभाव है। गुरुदेवके प्रति उपेक्षा श्रद्धा और दृढ़ निष्ठाका त्याग है। उनके प्रति मानव बुद्धिकी कल्पना है। यदि देशको फिरसे अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करना है तो एकमत हो श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंमें निष्कपट भावसे अपना मस्तक रख दें और प्रणति-पुरस्सर उद्धारकी प्रार्थना करें।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

[वर्ष ४५ संख्या ११ पृष्ठ २६१ से आगे]

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

कीर्तनकी ध्वनि सुनकर विषयी लोग जब कीर्तन सुनने जाते तो दरवाजा बन्द देखकर क्रोधित हो जाते तथा एकत्रित होकर आपसमें प्रभु एवं वैष्णवोंकी निन्दा करने लगते। कोई कहता—"अरे

भाइयो! आप लोग नहीं जानते कि ये लोग दरवाजा बन्द करके अन्दर क्या गुल खिला रहे हैं। परन्तु मैं जानता हूँ कि ये लोग घरके भीतर मदिरा (शराब) पीते हैं। इसीलिए ये लोग द्वार बन्द कर देते हैं, जिससे कि हम न देख पाएँ।" यह सुनकर उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कोई दूसरा कहता—"हाँ तुम ठीक कह रहे हो। बड़े ही दुर्भाग्यका विषय है कि यह निमाई पण्डित भी इन पाखण्डियोंके सङ्गमें पड़कर नष्ट हो गया। न जाने क्यों भगवान्ने इसकी बुद्धिको नष्ट कर दिया।" यह सुनकर कोई दूसरा कहने लगने लगा—"भाइयो! जिसके सिर परसे पिताका साया उठ जाता है, उसकी तो ऐसी ही दुर्दशा होती है। क्योंकि बच्चे पिताका ही शासन स्वीकार करते हैं। परन्तु जिसका शासन करनेवाला पिता ही नहीं रहता, वह उच्छृंखल हो ही जाता है, यही स्थिति इस निमाईकी हुई है। पहले व्याकरण शास्त्रको लेकर ही पढ़ाईमें मग्न रहता था, परन्तु जबसे यह इन निठल्लोंके चक्करमें पड़ा है, तबसे इसने व्याकरण पूरी तरहसे छोड़ दिया है। पहले बच्चोंको पढ़ाया करता था, अब वह भी छोड़ दिया है।"

इन निन्दासूचक बातोंको सुनकर कोई सज्जन व्यक्ति बोला—"भाइयो! दूसरोंकी निन्दा करनेसे क्या लाभ? इससे तो अपना ही अमङ्गल होता है। इसलिए सभी लोग अपने-अपने घरोंमें जाकर अपना-अपना कार्य करें। कोई बोला—"भाइयो! आप सभी लोग ऐसी बाते इसलिए कर रहे हैं क्योंकि हम लोगोंको अन्दर जाकर कीर्तनको देखने एवं सुननेका सुअवसर नहीं मिल पा रहा है। परन्तु इसमें इन लोगोंका कोई दोष नहीं हैं। दोष तो हमारे दुष्कर्मोंका है।"

उसके मुखसे यह सुनकर सभी लोग उस पर विगड़ गये तथा कहने लगे—"यह भी उसी दलका है, अतः इससे बात-चीत मत करो।" ऐसा कहकर सभी अपने-अपने घरोंको चले गये।

इसी प्रकार प्रतिदिन अनेक लोग आते परन्तु दरवाजा बन्द देखकर प्रभु एवं वैष्णवोंको गालियाँ देकर वापस चले जाते। परन्तु प्रभु एवं वैष्णवोंको इसका कुछ भी पता नहीं होता था, वे तो कीर्तनके आनन्दसागरमें डूबे हुए रहते थे। इस प्रकार कीर्तन करते हुए एक वर्ष बीत गया। परन्तु वैष्णवोंको लगा कि मानों कीर्तन प्रारम्भ हुए मात्र एक ही दिन हुआ है। एक दिन जब कीर्तन समाप्त होने वाला था, तभी श्रीगौरसुन्दर श्रीवासजीके घरमें स्थित मन्दिरमें सेवित शालग्रामको अपनी गोदमें लेकर स्वयं सिंहासन पर बैठ गये। लकड़ीका टूटा-फूटा सिंहासन प्रभुके भारसे "चरमर-चरमर" करने लगा। यह देखकर नित्यानन्द प्रभुने झट जाकर उस सिंहासनको स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही सिंहासनमें अनन्त देवका अधिष्ठान हो गया। इसलिए वह टूटा नहीं। प्रभुने सभीको कीर्तन बन्द करनेका आदेश दिया। जब कीर्तन बन्द हो गया तो प्रभु कृपाकर अपनी महिमाको प्रकाशित करते हुए कहने लगे—"मैं ही इस कलियुगमें कृष्ण हूँ, मैं ही नारायण हूँ, मैं ही देवकीनन्दन हूँ। मैं अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका स्वामी हूँ। जिसके लिए तुमलोग कीर्तन कर रहे हो, मैं वही हूँ। तुम सब मेरे दास हो। तुम लोगोंके लिए ही मेरा अवतार होता है। तुमलोग मुझे जो वस्तु देते हो, मैं वही ग्रहण करता हूँ।"

यह देखकर तथा सुनकर सभी लोग प्रभुको दही, दूध, मक्खन, मिठाइयाँ, फल इत्यादि अर्पण करने लगे तथा प्रभु भी आनन्दसे उन सभी वस्तुओंको खाने लगे। जब समस्त वस्तुओंको खा लिया तो प्रभु बोले—"और क्या है ले आओ। मैं और खाऊँगा।" यह सुनकर भक्तवृन्द भयभीत हो गये, क्योंकि घरमें घरमें जितनी खाद्य वस्तुएँ थीं, उन सब वस्तुओंको तो प्रभुने खा लिया था। अब घरमें प्रभुके खाने लायक कुछ भी नहीं था। इसलिए सभी लोग प्रभुकी स्तुति करते हुए कहने लगे—"हे प्रभो! आपकी महिमा आप ही जान सकते

हैं। आपके अन्दर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड समाए हुए हैं, आपको हम क्या दे सकते हैं? हमारे तुच्छ उपहारोंसे आप कैसे तृप्त हो सकते हैं?" यह सुनकर प्रभु बोले—"श्रीवास! भक्तका उपहार तुच्छ नहीं होता। तुम्हारे पास जो है लो आओ।" यह सुनकर श्रीवास बोले—"प्रभो! मेरे घरमें कर्पूर ताम्बूल (पान) हैं।" प्रभो—"तुम चिन्ता मत करो जल्दीसे मुझे वही प्रदान करो।" यह सुनकर सबका भय दूर हो गया तथा सभी लोग उन्हें ताम्बूल (पान) अर्पण करने लगे। प्रभुने भी आनन्दसे मुस्कराते हुए ग्रहण किया तथा सभीके ऊपर कृपा की।

इस प्रकार कुछ समय तक आविष्ट रहनेके पश्चात् प्रभु मूर्च्छित हो सिंहासनसे जमीनपर गिर गये। उस समय उनके शरीरमें श्वास प्रक्रिया भी बन्द हो गई तथा जीवित होनेका एक भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहा था। यह देखकर वैष्णवलोग विचार करने लगे कि प्रभु हमें छोड़कर अपने धाम चले गये। इसलिए वे लोग प्रभुके विरहमें पागल-से हो गये तथा दहाड़ मारकर रोते-रोते परस्पर कहने लगे—"जब प्रभु ही हमें छोड़कर चले गए, तो उनके दर्शनके बिना जीवित रहनेसे क्या लाभ? अतः हम भी अपने प्राण न्यौछावर कर देंगे।" अपने भक्तोंका विरह देखकर प्रभुसे रहा न गया तथा उन्होंने बाह्य ज्ञान प्रकाशित किया। यह देखकर भक्तोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी। वे हरि-हरि बोलकर नाचने लगे।

प्रभुका सात प्रहरिया भाव

एक दिन महाप्रभु नित्यानन्दके साथ श्रीवासजीके घरमें रोजकी भाँति आए। धीर-धीरे अन्यान्य वैष्णव भी वहाँ पर आ पहुँचे। जब सभी भक्तवृन्द अन्दर आ चुके तो दरवाजा बन्द कर दिया गया। परन्तु आज महाप्रभुका भाव प्रतिदिनकी भाँति स्वभाविक नहीं था। वे ऐश्वर्यभावमें आविष्ट होकर इधर-उधर देख रहे थे। प्रभुका इशारा समझकर वैष्णवोंने उच्च स्वरसे कीर्तन आरम्भ कर दिया। अन्यान्य दिन प्रभु दास्य भावसे नृत्य करते थे तथा कुछ समय बाद उनका आवेश दूर हो जाया करता था। परन्तु आज प्रभु स्वयं भक्तोंका सौभाग्य बढ़ानेके लिए नाचते-नाचते मन्दिरमें भगवान्के सिंहासन पर चढ़ गये तथा सात प्रहर तक विष्णुके सिंहासन पर विराजमान होकर भगवद्भावमें आविष्ट होकर भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण की। प्रभुको सिंहासनपर विराजमान देखकर सभी भक्तवृन्द हाथ जोड़कर सम्भ्रम बुद्धिसे प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करके बैठ गये। तब प्रभुने आदेश दिया—"मेरे अभिषेकका कीर्तन करो।" यह सुनकर भक्तलोग कीर्तन करने लगे। कीर्तन सुनकर प्रभुको अति आनन्द हुआ। प्रभुका इंगित जानकर सभीकी इच्छा प्रभुका अभिषेक करनेकी हुई। अतः सभी लोगोंने गंगाजीसे जल ढो-ढोकर पहले उसे साफ-सुथरे कपड़ेसे छाना तत्पश्चात् उसमें कर्पूर, गुलाब जल इत्यादि सुगन्धित वस्तुएँ मिलाईं। फिर आनन्दसे 'हरिबोल' की जयकार लगाते हुए चारों ओरसे प्रभुको अभिषेक करानेके लिए तैयार हो गये। सबसे पहले श्रीनित्यानन्द प्रभुने मन्त्र पढ़ते हुए सिरपर जल प्रदान किया। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्य, श्रीवास आदि प्रधान भक्तोंने मन्त्रोंके माध्यमसे महाप्रभुका अभिषेक किया। तत्पश्चात् वहाँ पर उपस्थित सभीने क्रमानुसार प्रभुका अभिषेक किया। अभिषेक करते-करते कोई आनन्दसे क्रन्दन कर रहा था, तो कोई उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहा था।

उस समय देवताओंने भी अच्छा अवसर देखा और वे भी नरवेश धारणकर हाथोंमें जलपात्र लेकर वहाँ पर उपस्थित होकर प्रभुको स्नान कराने लगे। श्रीवासजीकी दास-दासियाँ भी गंगासे जल ढो-ढोकर ला रही थीं तथा प्रभु आनन्दसे स्नान कर रहे थे। उन्हीं दासियोंमें एक दासी थी, जिसका नाम था—दुःखी। उसे देखकर प्रभु कहने लगे—"तुम भी मेरा अभिषेक करो।" प्रभुने उसके भक्तिभावको देखकर उसका नाम दुःखीसे सुखी कर दिया। इस प्रकार जब स्नान कराना हो गया तो भक्तोंने दिव्य

वस्त्रसे प्रभुके श्रीअङ्गका मार्जन किया तथा उन्हें नये-नये वस्त्र धारण कराये। उनके श्रीअङ्गमें सुगन्धित चन्दनका लेप किया। उसके बाद सिंहासनको पोंछकर उसपर प्रभुको विराजमान कराया। सिंहासनकी दायीं ओर खड़े होकर नित्यानन्द प्रभुने श्रीगौरसुन्दरके सिरपर छत्र धारण कर लिया। कोई उन्हें चामर ढुलाने लगे। इस प्रकार सभी वैष्णव प्रभुकी सेवा करने लगे। पूजाके पश्चात् सभी लोग उनकी स्तव-स्तुति करते हुए कहने लगे—"हे प्रभो! आपकी दयालुताके विषयमें क्या वर्णन करें? पूतनाने आपको मारनेके उद्देश्यसे अपने स्तनोंमें काल कूट विष लगाकर आपके मुखमें डाला, परन्तु आपने उसे उस राक्षसी वेषसे मुक्तकर अपने धाममें धात्रीके समान पद प्रदान किया। अजामिल जैसे पापीने अपने पुत्रको नारायण नामसे पुकारा, परन्तु आपने अपने दूतोंको भेजकर यमदूतोंसे उसकी रक्षा की। इस प्रकार आप अपनी अहैतुकी कृपासे पापी-से-पापी व्यक्तिका उद्धार करते हैं। आपको हमारा कोटि-कोटि प्रणाम।" अपने प्राणोंके समान प्यारे अपने भक्तोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये।

(क्रमशः)

विविध संवाद

प्राच्य तथा पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचार

जगद्गुरु श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के अन्तरङ्ग पार्षद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुवरके अनुगृहीत मदीय शिक्षागुरु श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज पाश्चात्य और प्राच्य देशोंमें विपुल सफलताके साथ प्रचार कर वर्तमानमें Honolulu में पहुँचे हैं। श्रील महाराजजी सर्वप्रथम ११-१२-२००१ तारीखसे १६-१२-२००१ तक जर्मनीके Frankfurt और Aushrt एवं १७-१२-२००१ से २३-१२-२००१ तक अमेरिकाके Los Angels और Sandiego में प्रचार सेवा समाप्त कर अमेरिकाके पश्चाततम प्रदेश Hawaii द्वीपपुंजमें पहुँचकर उसकी राजधानी Honolulu में प्रचार-कार्यमें व्यस्त हैं। जर्मनीमें प्रचारका प्रमुख विषय था—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत जैवधर्म (जो अभी-अभी अंग्रेजी भाषामें प्रकाशित हुआ है) और कलियुगमें धर्मयाजनका प्रधान उपाय श्रीहरिनाम संकीर्तन। जैवधर्मके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजी बोले—सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनाद ठाकुरने भजनकी प्राथमिक या सर्वनिम्न अवस्थासे भजनकी सर्वोच्च अवस्था तकका वर्णन किया है। भजन-पिपासु साधकोंके लिए जैवधर्मका अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। जैवधर्मके दो-तीन अध्याय अच्छी तरह समझनेसे जैवधर्मके किसी भी सिद्धान्तको समझनेमें असुविधा नहीं होती, सर्वतोभावेन अन्य गोस्वामी ग्रन्थ और श्रीमद्भागवत आदि शास्त्र अत्यन्त सुगम हो जाते हैं। साधकोंके लिए व्रजमण्डल और क्षेत्रमण्डलसे प्रेमपुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरि तथा उनके धाम नवद्वीपका विशेष वैशिष्ट्य है। ***'आराधितो नववनं व्रजवनां .... दूरे'***—इस श्लोकका उत्थापन कर बोले कि नववन श्रीधाम नवद्वीपकी कृपा बिना व्रजधामकी कृपा एवं श्रीद्विजसुत (श्रीमन्महाप्रभु) की कृपाके बिना व्रजनागरकी कृपा सम्भव नहीं है। केवल प्राथमिक अवस्थामें ही नहीं, सभी अवस्थाओंमें श्रीधाम नवद्वीपकी कृपा अनस्वीकार्य और अपरिहार्य है। जर्मनीमें प्रचार-सेवामें सहायता कर सस्त्रीक श्रीरामश्रद्धा दासाधिकारी, सस्त्रीक श्रीहरेर्नामानन्द दासाधिकारी, सस्त्रीक श्रीसर्वभावना दासाधिकारी तथा श्रीराधाविनोद ब्रह्मचारी और श्रीराधामाधव ब्रह्मचारी श्रीसमितिके कृपाभाजन हुए हैं।

जर्मनीमें प्रचार समाप्त कर श्रीलमहाराजजी अमेरिका स्थित Los Angels पहुँचे हैं। Los Angels और Sandiego में १७/१२ से २३/१२ तक प्रचारका प्रधान विषय था नैमित्तिक धर्म असम्पूर्ण, हेय और अचिरस्थायी क्यों है, कंसवधके बाद श्रीकृष्णका गुरुगृह गमन इत्यादि। श्रीकृष्णके गुरुगृह-गमन प्रसङ्गमें श्रीलमहाराजजीने सभा-स्थित श्रोतागणसे प्रश्न किया कि श्रीकृष्णके गुरुका नाम क्या है?

गोपवृन्दपाल—श्रीसान्दीपनि मुनि।

श्रीलमहाराजजी—वे कौन थे?

कृपाराम प्रभु—वे श्रीकृष्णके प्रिय भक्त शिवजीके उपासक शैव थे।

श्रीलमहाराजजी—उस समय भारतवर्षमें अनेक वैष्णवोंके होते हुए भी वे एक शैवके पास शिक्षा-लाभ करनेके लिए क्यों गये?

एक श्रोता—वे इच्छामय हैं, जो इच्छा करते हैं, वही करते हैं।

और एक श्रोता—वे तो स्वयं भगवान् हैं, समस्त शास्त्र, ज्ञान और विद्याके मूलाधार। उनको किसी भी परिस्थितिमें गुरुगृहमें वास करनेका प्रयोजन नहीं है। तथापि लोक-शिक्षाके लिए वे गये हैं।

(श्रील महाराजजीने श्रीपाद माधव महाराजजीको इसके रहस्यकी व्याख्या करनेके लिए आदेश दिया।)

श्रीपाद माधव महाराज—पूर्व वक्तागण द्वारा अपने-अपने अधिकारके अनुसार उत्तर दिये जाने पर भी वास्तवमें इसका एक गूढ़ रहस्य है। शास्त्रमें देखा जाता है, गौड़ीय गुरुवर्गके साधन पथ आदिमें देखा जाता है—***'भक्तिरेवैनं नयति, भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्तिवशः पुरुषः, भक्तिरेव भूयसी'***, अर्थात् भक्ति जीवको भगवान्‌के पास ले जाती है, भगवत्-दर्शन कराती है, परमपुरुष भगवान् केवल भक्तिके ही अधीन हैं (ज्ञान, कर्म, अष्टाङ्ग योग आदिके अधीन नहीं हैं), भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। और भी देखा जाता है—***'भक्तेर हृदये सदा गोविन्द विश्राम।'*** अतएव सर्वत्र ही भक्तिका प्राधान्य देखा जाता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण यदि नरवत् लीलामें किसी भक्तकी पाठशालामें जाते, तब भक्त उनकी भक्तिके प्रभावसे अपने इष्टदेवको समझ लेते, अनुभव कर लेते। जिनका प्रेम प्राप्त करनेके लिए भक्तने इतना कष्ट-साधन किया है, उन प्राणनिधिको पाठशालामें पाकर वे कैसे उनको साधारण मनुष्य-ज्ञानपूर्वक शिक्षा देंगे? यह अत्यन्त असम्भव व्यापार है। इसलिए भगवान्‌ने चिन्ता करके देखा कि यदि मैं अपने भक्तके पाठशालामें न जाकर किसी दूसरेके निकट जाऊँ, तो मेरे शिक्षा-ग्रहणमें कोई बाधा नहीं रहेगी। शैव आदि मुझे अथक प्रयाससे भी पहचान नहीं पाएँगे, लेकिन भक्तगण अनायास पहचान लेंगे। ये सब बातें सोचकर स्वयं भगवान् शैव श्रीसान्दीपनि मुनिके पास शिक्षा ग्रहणके लिए गये थे।

एक श्रोता—श्रीनन्दमहाराजने कृष्ण-बलदेवका उपनयन संस्कार क्यों नहीं कराया एवं श्रीवसुदेव महाराजने इतनी जल्दी क्यों उपनयन संस्कार कराया?

श्रीलमहाराजजी—वर्णाश्रम धर्मके नियमानुसार ब्राह्मणोंका आठ साल तक, क्षत्रियोंका बारह साल तक तथा वैश्योंका सोलह साल तक उपनयन संस्कारकी साधारण विधि है। श्रीनन्दबाबा नरवत् लीला हेतु अपनेको साधारण मनुष्यकी भाँति सोचते हैं। लीलामें जिससे बाधा न हो, इसलिए लीलाशक्ति योगमाया नन्दबाबा तथा दूसरे व्रजवासियोंको यह समझनेका अवसर नहीं देती कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। नन्दबाबाने साधारण मनुष्यकी भाँति सोचा कि वर्णाश्रम नियमके अनुसार बारह वर्षके बाद सोलह वर्षके अन्दर श्रीकृष्ण-बलरामका उपनयन संस्कार कराएँगे तथा

दोनों भाईयोंका विवाह देंगे। इसलिए साधारण गृहस्थ जैसा उन्होंने पहलेसे ही श्रीकृष्ण-बलरामके लिए अन्तःपुर निर्माण कर रखा था।

एक श्रोता—स्वामीजी! श्रीकृष्णने व्रजमें रहते समय दीक्षा ग्रहण किया था या मथुरामें रहते समय?

श्रीलमहाराजजी—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने व्रजमें रहते समय गुरु श्रीभागुरि मुनिके निकट दीक्षा ग्रहण किया था। श्रीकृष्णने अपने मुखसे यह बात सबके सामने कही है। मथुरामें सिर्फ उपनयन संस्कार हुआ था अर्थात् द्विजाति संस्कारके नियमानुसार श्रीवसुदेव महाराजके पुरोहितने ब्रह्मगायत्री मन्त्र प्रदान किया था। श्रीवसुदेव महाराजने विचार-विवेचन कर देखा कि श्रीकृष्णका वैश्य संस्कार दूरकर क्षत्रिय संस्कार करवाना होगा। इस कारणसे शीघ्र ही व्रजमें किसीको भी निमन्त्रण न भेजकर उन्होंने उपनयन संस्कार करा लिया। उनको भय था कि व्रजमें निमन्त्रण देनेपर व्रजवासीगणके आनेसे व्रजभावोद्दीप्त कृष्ण फिर व्रजमें चले जाएँगे, और नहीं लौटेंगे। श्रीकृष्णके व्रजमें जानेसे श्रीबलदेव भी उनका अनुगमन करेंगे। इस भयके कारण ही उन्होंने व्रजमें उपनयन-संस्कारका संवाद नहीं भेजा।

एक श्रोता—क्या श्रीकृष्ण नरवत् लीलाके अनुसार सन्ध्या-वन्दन, मन्त्र-जप आदि करते थे?

श्रीलमहाराजजी—आपलोग लक्ष्यकर देख सकते हैं कि आपके सन्ध्या-वन्दन, हरिनाम इत्यादि करनेसे आपके घरके बच्चे माता-पिताको देखकर उत्साहित होकर माता-पिताकी हरिनाम-माला लेकर हरिनाम करनेका अनुकरण करने लग जाते हैं। आपलोगोंको आह्निक करते देखकर वे आँखें बन्दकर आसन पर बैठकर ध्यानका अनुकरण करने लग जाते हैं। इस प्रकारसे उनके संस्कार बलवान् होते हैं। वे माता-पिता आदि परिवार वर्गको जिस प्रकार करते देखते हैं, वैसे ही अनुकरण करने लगते हैं, सीखनेकी चेष्टा करते हैं। इसलिए कहा जाता है—Charity begins at home. वैसे ही श्रीकृष्ण व्रजेश्वर और व्रजेश्वरीको देखकर अत्यन्त शिशु अवस्थासे ही नन्दबाबाके ठाकुर-गृहमें जाकर पिताजीकी भाँति ध्यान करते थे एवं दीक्षाके बाद अवश्य ही करते थे। भुवनमोहन श्रीकृष्ण स्वयं प्रत्यह स्नानके बाद श्रीनन्दबाबाके ठाकुर-घरमें जाकर रत्नवेदीके ऊपर बैठकर मन्त्र बोलते थे। ***'नारायणं स्मरामिति कृष्णो नेत्रे न्यमीलयत्'*** अर्थात् 'मैं नारायणका स्मरण करता हूँ' एवं नयन-युगल बन्द करते थे।

आपलोगोंने प्रश्न किया है कि वे कौन-सा मन्त्र जप करते थे? आपलोग भजनकी परिपक्व अवस्था लाभकर व्रजमें जाकर स्वयं प्रश्न कर सकते हैं? यद्यपि यह सबके सामने प्रकाश्य नहीं है, फिर भी जब आपलोगोंने परिप्रश्न किया है, आपलोग सब दीक्षित वैष्णव हैं, बीस-पच्चीस सालसे साधन-भजन कर रहे हैं, इसलिए गौड़ीय गुरुवर्गने जो बताया है, उसकी पुनरावृत्ति कर रहा हूँ। श्रीनन्दबाबाके ध्येय या अभीष्ट श्रीनारायण पादपद्म हैं। किन्तु विदग्ध-चूड़ामणि, रसिक-शेखर श्रीकृष्णके ध्यानकी वस्तु अलग है। वह है—उनके प्राणकी आराध्या देवी तथा प्रियतमा श्रीराधा-मूर्त्ति। ***'रोमाञ्चिताङ्गस्तन्नामाङ्कितमन्त्रं जजाप सः'*** अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम-पुलकित शरीरमें श्रीराधा नामाङ्कित मन्त्र जप करने लगे।

Los Angels और San diego में प्रचार सेवामें सहायता कर श्रीजगमोहन ब्रह्मचारी, श्रीललितमोहन ब्रह्मचारी, श्रीउपानन्द प्रभु एवं श्रीऋषभदेव दासाधिकारी समितिके कृपाभाजन हुए हैं।

Hawaii में श्रीलमहाराजजीने Waikiki, like like highway में विशेष रूपसे प्रचार किया। वर्तमान वे Kamehameha highway में

प्रचार कार्यमें व्यस्त हैं। १२–१–२००२ तारीख पर्यन्त प्रचारका प्रधान विषय था—विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी विरह तिथिके उपलक्ष्यमें उनका अप्राकृत जीवनचरित एवं अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति व आचार्य श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भावतिथिपूजाके उपलक्ष्यमें उनका अप्राकृत जीवन–चरित और गुरुसेवानिष्ठा (जो इस संख्या विविध संवादके श्रीव्यासपूजा प्रसङ्गमें दिया गया है)।

३–१–२००२ एवं ७–१–२००२ दो तिथियाँ Kamehameha highway में अनुष्ठित हुईं। श्रीवृन्दावनदास प्रभु तिथि–द्वय मनानेकी सब व्यवस्था कर श्रीसमितिके कृपाभाजन हुए हैं। श्रील प्रभुपादकी विरहतिथिके दिन श्रीलमहाराजजीने 'विरह तिथि महोत्सव क्यों कहा जाता है' एवं 'प्रभुपादके जीवन–चरित' की विशेष रूपसे आलोचना की। श्रील प्रभुपादने अपने उपदेशोंमें बताया है—श्रीचैतन्यदेवका मनोभीष्ट संस्थापन करनेके लिए श्रीरूप गोस्वामीके पादपद्मोंकी धूलि हमारे जीवनकी एकमात्र आकांक्षित वस्तु है। इन उपदेशोंकी व्याख्या करते हुए श्रीलमहाराजजीने बताया कि

(क्रमशः)

श्रीकृष्णके स्वयं भगवान् होने पर भी उनकी कुछ अभिलाषाएँ अपूर्ण रह जाती हैं। अपूर्ण अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिए ही वे श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें जगतमें अवतीर्ण होते हैं। उनके दो प्रधान कार्य हैं—(१) प्रेमरससारका आस्वादन, (२) रागमार्ग भक्तिका जगतमें प्रचार। पहला उनका विज्ञान व्यापार है। ***'श्रीराधायाःप्रणय– महिमाकीदृशो... हरीन्दुः'***—श्रीस्वरूप दामोदर कृत इसी श्लोककी विशद् व्याख्या श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें की है। दूसरा, श्रीलरूप गोस्वामीने स्वकृत ग्रन्थ श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु एवं विशेष रूपमें श्रीउज्ज्वल– नीलमणि ग्रन्थमें वर्णन किया है। श्रीलरूप गोस्वामीकी चरण–रज अर्थात् उनकी विचार–धारा हमारे जीवनका एकमात्र वांछित विषय है। स्वयं युगपत् शचीनन्दन गौरहरि और श्रीयुगलकिशोरके नित्य परिकर होकर भी उन्होंने साधक तथा सिद्ध दोनों रूपोंमें जो सेवा–परिपाटी दिखाई है, उसका अनुसरण करनेसे ही हमारे जीवनकी सार्थकता है।

Hawaii में प्रचार सेवामें सहायता कर सस्त्रीक श्रीवृन्दावन दासाधिकारी, सस्त्रीक श्रीअनिरुद्ध दासाधिकारी और सस्त्रीक श्रीरूपमनोहर दासाधिकारी श्रीसमितिके कृपाभाजन हुए हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

श्रीव्यासपूजा

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके द्वारा प्रतिष्ठित ***श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी ८१वीं आविर्भाव तिथिपूजा (व्यासपूजा)*** समितिके सभी मठोंमें पौष कृष्ण नवमी, जनवरी ७ तारीखको अत्यधिक उत्साहपूर्वक मनायी गयी। विशेष कर श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शिलिगुड़िमें उनकी साक्षाद् उपस्थितिमें इस महोत्सवका आयोजन किया गया। उसके पहले दिन तिथि–अधिवासके उपलक्ष्यमें सायंकाल सात सुसज्जित विमानोंके साथ हजारों वैष्णवोंके बीच उद्दण्ड संकीर्तनके द्वारा समग्र शिलिगुड़ि शहर गुंजित हो उठा, मानो स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी संकीर्तन शोभायात्रा हो। तिथिके दिन श्रीलआचार्यदेव तथा गुरु–परम्पराकी पूजा समितिके

त्रिदण्डी संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और गृहस्थ भक्तों द्वारा की गई। पूज्यपाद आचार्यदेवने व्यासपूजा पालनके वैशिष्ट्य पर गम्भीर विवेचन किया। संन्यासी और ब्रह्मचारियोंने उनके अप्राकृत जीवन चरित्रका विशेष रूपसे कीर्तन किया। यह कीर्तन महोत्सव सात दिनों तक चलता रहा। विदेशमें भी समितिके उपसभापति ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदानत नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अध्यक्षतामें इस उत्सवका पारम्परिक ढंगसे पालन किया गया। उन्होंने आचार्यदेवकी जो महिमा गान किया था, वह इस प्रकार है (जो श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा विदेशसे प्रेषित है)—

अस्मदीय गुरुपादपद्मकी आविर्भाव तिथि-पूजा उद्देश्यमें श्रीलमहाराजजीने बताया—पूज्यपाद वामन महाराजने बहुत बचपनसे ही, ऐसे कि श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अनेक शिष्योंसे पहले ही सन् १९३० में श्रीमायापुर धाममें योगदान किया। वे विश्वके सभी गौड़ीय मठोंके अभिधानस्वरूप हैं। वे जो एकबार सुनते हैं या पढ़ते हैं, कभी भी नहीं भूलते। ऐसे कि छात्रावस्थामें उन्होंने जो सब अंग्रेजी प्रबन्ध पढ़ा है, अभी इस वृद्धावस्थामें भी उनको सब सम्पूर्ण याद हैं। पद्योंकी तो बात ही क्या, यहाँ तक कि गौड़ीय गुरुवर्गकी रचनाएँ व सिद्धान्तसमूह नख-दर्पणकी भाँति उनमें विद्यमान हैं। यह कम्पूटर विज्ञानका युग है। कम्पूटरकी memory की एक सीमा है, लेकिन पूज्यपाद महाराजजीकी memory असीम है। वैदिक युगके श्रुतिधरोंकी बात हमने सुनी है। लेकिन वर्तमान युगमें श्रुतिधर अति विरल हैं। सिर्फ अस्मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रतिष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके शिष्यवरको देखा जाता है। मैंने श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके प्रचारकार्यमें समग्र विश्वका अनेक बार परिभ्रमण किया है, किन्तु आज तक मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला है। उनको हमलोगोंने कभी भी आत्मप्रशंसा करते हुए नहीं देखा है एवं किसी वैष्णवकी समालोचना करते नहीं सुना है। वे दैन्यके मूर्तिमन्त विग्रह हैं। उनकी उदारताके कारण आज श्रील गुरु महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति सुष्ठुरूपसे चल रही है। उनकी गुरु-सेवाका आदर्श मैंने अनेक बार व्यक्त किया है। आप सब Internet के माध्यमसे यह जान चुके हैं।

एक श्रोता—वैष्णवगणके मुखसे मैंने सुना है १०८ संन्यासी नाम हैं। आपलोगोंको उनमेंसे प्रथमसे प्रधान दश नाम न देकर शेष नामोंसे क्यों नामित किया गया?

श्रीलमहाराजजी—मेरे गुरुदेवने अनेक विचार-विवेचन करके ही ये सब नाम प्रथम तीन शिष्योंको संन्यास प्रदानके समय दिये हैं। आज पूज्यपाद महराजजीकी आविर्भाव तिथि है। अतएव श्रीवामन शब्दका अर्थ बोल रहा हूँ—(१) परमाराध्य गुरुदेव उनकी गुरु-सेवा और वैष्णव सेवानिष्ठा देखकर कहते—वाह! (प्रशंसा या विस्मय अर्थमें) तुम्हारे मन, इति वामन अथवा श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवाके लिए तुम्हारा मन सम्पूर्ण रूपसे उत्साहित होता है, इसलिए तुम हो वामन। (२) १०४ डिग्री बुखार होते हुए भी वैष्णव सेवाका आदेश पाने मात्रसे ही रन्धन-सेवामें उन्होंने अपनेको उत्सर्ग किया था जो मैंने पहले बतलाया है। दूसरा कोई होनेसे वाम्य भाव प्रकाश करता अर्थात् 'ना' कहता। किन्तु वैष्णव-सेवाके लिए ये 'वाम न' अर्थात् वाम्य भाववाले नहीं हैं। इसलिए श्रीलगुरुदेवने वामन नाम दिया। (३) और एक गूढ़ रहस्य बोल रहा हूँ, ध्यानसे सुनिए। हमारे गौड़ीय गुरुवर्ग एवं उनके अनुगतजन सभी स्वरूपतः वाम भाव विशिष्ट हैं, दाक्षिण्य भावयुक्त नहीं। अतएव वे क्या स्वरूपतः वाम

(वाम्य) भावविशिष्ट नहीं हैं? वाम न—इति वामन। निश्चय ही स्वरूपतः वाम (वाम्य) भाव विशिष्ट परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने श्रीवामन नामकरण किया है। आपलोग भजन करते-करते उन्नत अवस्थामें पहुँचनेसे इसका भावार्थ समझ पाएँगे। मैंने केवल दिग्दर्शन कराया।

मथुरास्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें भी श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें श्रील आचार्यदेवकी आविर्भाव तिथिपूजाको बड़े आदर एवं यत्नपूर्वक मनाया गया। वैष्णवों द्वारा उनके अप्राकृत जीवन चरित्र पर प्रेरणाजनक प्रकाश डाला गया।

९ फरवरी शनिवार माघ कृष्ण द्वादशीको ***पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीकी आविर्भाव तिथिपूजा***का आयोजन श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदानत नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें किया गया। इस अवसर पर संन्यासी एवं ब्रह्मचारियों द्वारा उनके अप्राकृत जीवन चरित, गुरुसेवानिष्ठा, वैराग्यपूर्ण जीवन आदिका कीर्तन किया गया।

१२ फरवरी मङ्गलवार, माघ कृष्ण मौनी अमावस्याके दिन समितिके समस्त मठोंमें समितिके ***उपसभापति ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिपूजा (व्यासपूजा) महोत्सव*** अनुष्ठित हुआ तथा उनके अप्राकृत जीवनका कीर्तन किया गया। समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीकी उपस्थिति एवं अध्यक्षतामें तथा श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराजजीके संचालनमें श्रीलमहाराजजीकी व्यासपूजा उत्साहपूर्वक अनुष्ठित हुई। दिल्लीमें श्रीपाद रामचन्द्र प्रभु, श्रीवृन्दावन स्थित श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें श्रीपाद हरिप्रिय प्रभु, एवं श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रममें श्रीपाद भक्तिवेदान्त अरण्य महाराजजीके संचालनमें व्यासपंचक यज्ञानुष्ठान आदिके साथ व्यासपूजा उत्सव सम्पन्न हुआ। विशेष कर मथुरास्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीश्रीनिवासजी एवं सविता दीदीके उत्साह व प्रचेष्टाके द्वारा एवं श्रीपाद रसानन्द प्रभुके संचालन तथा श्रीपाद चन्दन प्रभु, श्रीपाद नृसिंह प्रभु, श्रीपाद पुरन्दर प्रभु, श्रीपाद माधवप्रिय प्रभु, श्रीपाद कृष्णकृपा प्रभु आदि प्रमुख वैष्णवोंके सान्निध्यमें विराट महोत्सवका आयोजन किया गया। इस उपलक्ष्यमें श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके संस्थापक नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीके शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिविजय गोविन्द महाराजजीके सभापतित्वमें एक महती वैष्णव-सभाका आयोजन किया गया, जिसमें व्रजके सभी गौड़ीय मठोंसे त्रिदण्डी संन्यासीगण तथा ब्रह्मचारीगण सम्मिलित हुए तथा श्रीलमहाराजजीके अप्राकृत जीवन चरित्र, गुरुनिष्ठा, भक्ति ग्रन्थ प्रकाशन, मन्दिर निर्माण, लुप्त तीर्थ उद्धार, श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमनामसंकीर्तनका समग्र विश्वमें प्रचार आदिकी आलोचना की गयी। सभापति पूज्यपाद गोविन्द महाराजजीने बताया कि शास्त्रोंमें वैष्णव तथा गुरुके जितने गुण बताये गए हैं, वे सब श्रीलमहाराजजीमें देखनेको मिलते हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचारमें रत समस्त गौड़ीय मठोंमें उनका अत्यधिक ममत्व है। किसी भी गौड़ीय मठोंमेंसे कोई कैसी भी समस्या लेकर आये तो उनकी सहायताके लिए सदैव तत्पर रहते हैं। नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के द्वारा प्रवर्त्तित श्रीगौड़ीय सारस्वत धाराके त्रिदण्ड-संन्यास एवं परम्पराकी प्रामाणिकता पर कटाक्ष कर अपनी सिद्ध-प्रणालीकी प्रतिष्ठा करनेकी चेष्टा करनेवाले सहजिया बाबाजियोंके अपसिद्धान्तोंका उन्होंने प्रबन्ध-पंचकम् ग्रन्थके द्वारा मुद्गरकी भाँति प्रहारकर स्तब्ध कर दिया। इस प्रकार गौड़ीय सम्प्रदायकी रक्षामें वे अग्रगण्य भूमिका निभा रहे हैं। नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद

श्रीश्रीमद्भक्तिविलास तीर्थ गोस्वामीके शिष्य श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराजजीने 'नारायण' शब्दकी व्याख्या करते हुए बताया कि 'नर + अयन' अर्थात् जो समस्त जीवोंको आश्रय प्रदान करते हैं। श्रीलमहाराजजी इस शब्दके मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं। हम जब भी इनके पास आते हैं, तो हमें माँकी भाँति स्नेह और आश्वासन वाक्य प्रदान कर हमें भक्तिमार्गमें उत्साह प्रदान करते हैं। श्रीपाद रसानन्द प्रभुने श्रीलमहाराजजीकी वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें बताया कि श्रील जीव गोस्वामीने जिस प्रकार श्रीनरोत्तम, श्यामानन्द, श्रीनिवास प्रभुत्रयको शिक्षा प्रदान कर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी-प्रचार सेवामें नियुक्त किया था, यद्यपि इन तीनोंमेंसे कोई भी उनके दीक्षा-शिष्य नहीं थे, उसी प्रकार श्रीलमहाराजजी भी उदार हृदयके साथ अनेक गौड़ीय गुरुवर्गके शिष्योंको गौड़ीय सत्सिद्धान्तोंमें शिक्षित कर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी-प्रचार सेवामें प्रेरित कर रहे हैं। श्रीपाद अरण्य महाराजजीने अपना अनुभव व्यक्त करते हुए बताया कि यद्यपि वे पिछले चार सालोंसे विदेशमें श्रीलमहाराजजीकी व्यासपूजामें उनके साथ रहे, फिर भी उनको श्रीलमहाराजजीके गुण-कीर्तनका अवसर नहीं मिला। क्योंकि श्रीलमहाराजजी व्यासपूजाके दिन सबको साथमें लेकर उनके गुरु-परम्पराका ही गुणकीर्तन करते-कराते थे। किसीको भी अपने गुणकीर्तनका अवसर नहीं देते थे। यह उनकी आदर्शपूर्ण दैन्य गुणका द्योतक है। उन्होंने आगे कहा कि आज श्रीलमहाराजजी समग्र विश्वमें श्रीरूपानुग भक्ति विचारधाराका वैशिष्ट्य अभूतपूर्व रूपसे स्थापित कर रहे हैं। सविता दीदीने श्रीलमहाराजजीके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देते हुए कहा कि जिस प्रकार श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीने श्रीसनातन गोस्वामीके प्रति 'वैराग्ययुग् भक्तिरसं प्रयत्नैरपाययन्मामनभीप्सुमन्धम्' श्लोककी अवतारणा की थी, ठीक उसी प्रकार श्रीलमहाराजजी प्रतिवर्ष श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा, श्रीगौरमण्डल परिक्रमा, सततः हरिकथा-कीर्तन आदिके द्वारा हम जैसे अनिच्छुक एवं अज्ञानान्ध जीवोंको प्रयत्नपूर्वक वैराग्ययुक्त भक्तिरसका पान करा रहे हैं। अन्यान्य वैष्णवोंने भी श्रीलमहाराजजीके अवदान-वैशिष्ट्य तथा गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें हृदयस्पर्शी विचारोंको प्रकट किया। अन्तमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की गयी एवं एक विशाल भण्डाराका आयोजन हुआ जिसमें अनेक संन्यासी, ब्रह्मचारी, चतुर्वेदी ब्राह्मण तथा गृहस्थ भक्तोंको मिलाकर सहस्राधिकोंने महाप्रसादकी सेवा की। इसके पश्चात् तीन दिनों तक श्रीलमहाराजजीके गुण व महिमा कीर्तनरूपी महोत्सवमें विभिन्न वैष्णवोंने अपनी-अपनी भावपूर्ण पुष्पाञ्जलि अर्पित की। सभीके मुखारविन्दसे जो वाणी सुननेको मिली उसका सार यह है— श्रीलमहाराजजी व्रजवासी हैं, व्रजकी सेवा-परिपाटी एवं व्रजदेवियोंके पक्षपाती हैं एवं इसी भावनाका प्रचार कर श्रीगौरहरिकी मनोभीष्ट सेवा कर रहे हैं। एकमात्र श्रीनन्दनन्दन ही हमारे इष्ट हैं। व्रजरस ही श्रेष्ठ है। उसमें भी परकीया भावकी पुष्टिके लिए श्रीलमहाराजजीकी सम्पूर्ण प्रचेष्टा है तथा सदा-सर्वदा उसकी प्रतिष्ठामें नियुक्त हैं। प्रत्येक अनुयायीको उसमें योगयुक्त करना ही आपका एकमात्र ध्येय है। आप गुरु-गौराङ्गकी मनोभीष्ट सेवामें पारदर्शी हैं एवं अयोग्य व्यक्तियोंको भी योग्यता प्रदान कर सेवाधिकार देते हैं। हमारी अनधिकार चेष्टा एवं अत्याग्रह रहने पर भी आपने अपनी चरण-छायासे वञ्चित नहीं किया। आपने महती उदारतारूपी सूत्रके द्वारा विश्वजगतको आबद्ध कर रखा है। अधम सेवकों पर आप सदैव कृपादृष्टि बनाये रखें, आज आपके श्रीचरणसरोजमें अयोग्य दासोंकी यही सकातर प्रार्थना है।

(निजस्व संवाददाता)